चौखम्बा संस्कृत सीरीज - ११४

श्रीशिङ्गभूपालविरचितः

रसार्णवसुधाकरः

'शशिप्रभा' हिन्दीव्याख्यासहितः

सम्पादक तथा व्याख्याकार

डॉ. जमुना पाठक

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज

११४

+++

श्रीशिङ्गभूपालविरचितः

रसार्णवसुधाकरः

'शशिप्रभा' हिन्दीव्याख्यासहितः

सम्पादक तथा व्याख्याकार :

डॉ. जमुना पाठक

एम.ए., पी-एच.डी.(संस्कृत)

संस्कृत विभाग, कला सङ्काय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, विक्रम संवत् २०६०, सन् २००४

ISBN : 81-7080-125-7

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो.बा.नं. १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन- आफिस : (०५४२) २३३३४५८
आवास : २३३४०३२ एवं २३३५०२०
E-mail : cssoffice@satyam.net.in

अपरञ्च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
पोस्ट बाक्स नं० - ११९८
के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
निकट गोलघर (मैदागिन)
वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : २३३५०२०

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
114

+++

RASĀRNAVA SUDHĀKAR

OF

Sri Singhbhupal

Edited with `Sashiprabha' Hindi Commentary

By

Dr. Jamuna Pathak
M.A., Ph.D.(Sanskrit)
Sanskrit Department, Arts Faculty
B.H.U., Varanasi.

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.
Edition : First, 2004.

ISBN : 81-7080-125-7

© Chowkhamba Sanskrit Series Office
K.37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi-221001(India)
Phone : Off. 2333458
Resi. 2334032 & 2335020
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

Also can be had from :
Chowkhamba Krishnadas Academy
Oriental Publishers & Distributors
P.B.No. 1118
K.37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Varanasi-221001 (India)
Phone : 2335020

प्राक्कथन

रसार्णवसुधाकर शिङ्गभूपालकृत नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। प्राय: कारिका रूप में उपनिबद्ध रञ्जक, रसिक और भावक अभिधान वाले तीन विलासों में विभक्त है। विषयवस्तु की स्पष्टता के लिए इसमें थोड़ी बहुत गद्य विधा का भी प्रयोग मिलता है। इस ग्रन्थ में संस्कृतनाट्यों से सम्बन्धित नाट्यकला विषयक सम्पूर्ण तथ्यों का परिनिष्ठता और क्रमबद्ध साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है। प्राचीन आचार्यों ने नाट्यविषयक तीन पक्षों— रचनात्मकता, रसात्मकता और प्रायोगिता का प्रतिपादन किया है। रसार्णवसुधाकर में रचनात्मक स्वरूप के अन्तर्गत नाट्य के दश भेंदों का स्वरूप, कथावस्तु तथा उसके भेद-प्रभेदों, सन्धियों, सन्ध्यङ्गों, अर्थप्रकृतियों, छत्तीस भूषणों, इक्कीस सन्ध्यन्तरों का विस्तृत तथा शास्त्रीय निरूपण किया गया है। प्रतिपादित लक्षणों के स्पष्टीकरण के लिए ग्रन्थकार ने प्रचुर उदाहरणों को प्रस्तुत किया है जब कि अन्य नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थकर्त्ता एक-दो उदाहरण देकर ही सन्तुष्ट हो गये हैं।

इसके उदाहरण संस्कृत साहित्य के विशाल क्षेत्र से लिये गये हैं। इसमें कतिपय उदाहरण ग्रन्थकार द्वारा रचित हैं। जिसमें कुछ कुवलयावली और कन्दर्पसम्भव से उदधृत हैं तथा कुछ मुक्तक हैं। रसार्णवसुधाकर में यद्यपि पूर्ववर्ती आचार्यों परम्परा का निर्वाह किया गया है फिर भी उसमें समुचित परिवर्तन, परिवर्द्धन और मौलिकता का सन्निवेश है।

नाट्यकला की परिकल्पना आचार्यों द्वारा रसोद्बोधन के लिए की गयी थी। इस प्रकार रस ही नाट्य का जीवनधायक तत्त्व है। वस्तुत: नाट्य का परमलक्ष्य दर्शकों तथा पाठकों को अनुरञ्जित करना है। 'विभावानुभावव्यभिचारियोगाद्रसनिष्पत्ति' के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों के योग से रस की निष्पत्ति होती है। रसार्णसुधाकर में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव— इन तीन रस के अभिधायक तत्त्वों का विस्तृत और परस्परविरोधी मान्यताओं में औचित्यपूर्ण मान्यता को नि:सङ्कोच स्वीकार किया गया है और असङ्गत मतों की समालोचना करते हुए अस्वीकार कर दिया गया है।

रसार्णवसुधाकर में नाट्यकला के रचनात्मक और रसात्मक पक्ष का जितना विस्तृत विवेचन हुआ है उतना प्रायोगिक पक्ष का नहीं, क्योंकि इसमें

प्रायोगिक पक्ष— अभिनय, संवाद, वेशभूषा, रङ्गमञ्च-सज्जा इत्यादि का यत्रतत्र नगण्य सङ्केत मात्र प्राप्त होता है। फिर भी शिङ्गभूपाल द्वारा किया गया नाट्यकला का सन्तुलित, विस्तृत, तात्त्विक और स्पष्ट निरूपण अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ से शिङ्गभूपाल की क्रमवद्ध और सूक्ष्म विवेचन करने की अद्भुत शक्ति का परिचय मिलता है। समालोचनात्मक स्थलों पर पद्य और गद्य दोनों विधाओं का प्रयोग करके पतिपाद्य विषय को स्पष्ट बना दिया गया है। यह ग्रन्थ परवर्ती नाट्यशास्त्रकारों और नाट्यकारों के लिए प्रेरणादायक है।

ऐसे महत्त्वपूर्ण नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ की अद्यावधि हिन्दी नहीं हो सकी थी जिससे हिन्दी भाषा के माध्यम से संस्कृत के अध्येताओं को कठिनाई का सामना करना पड़ता था। इसी अभाव की पूर्ति हेतु यह हिन्दी संस्करण तैयार किया गया है। इससे यदि अध्येताओं का थोड़ा भी लाभ हुआ तो मैं परिश्रम को सार्थक समझूँगा। स्खलन मानव स्वभाव है, त्रुटियाँ सम्भावित है। अत: विज्ञजन सत्सुझाव देने का कष्ट करेंगे तो आगामी संस्करण में सुधार हो जाएगा।

इस संस्करण की पूर्णता में करुणासागर भगवान् श्रीराम की इच्छा ही प्रबल हेतु है क्योंकि उस इच्छा के अभाव में सृष्टि का कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। भईया डॉ. केशव प्रसाद पाठक, उपाचार्य; संस्कृत, पी.जी.कालेज, जगतपुर, वाराणसी का स्नेह तो सदैव विद्यमान रहता है, इसके लिए उनके प्रति नमन के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं है। अनुज-कल्प डॉ. विजयशङ्कर पाण्डेय, उपाचार्य; पी.जी.कालेज, कोयलसा, आजमगढ़ तथा डॉ कृष्णदत्त मिश्र, उपाचार्य; म. गां. काशी विद्यापीठ; वाराणसी को भी मैं शुभाशीष दिये बिना नहीं रह सकता जो समय-समय पर इस कार्य में मेरा उत्साहवर्द्धन करते रहे।

अन्त में इस ग्रन्थ के प्रकाशन में चौखम्बा संस्कृत सीरीज के सञ्चालक टोडर भईया भी धन्यवाद के पात्र हैं जिनके सहयोग से यह कार्य विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत हो सका है। अक्षर सज्जा के लिए साफ्टकाम्प(ग्राफिक्स) के सञ्चालक श्री कौशल कुमार पाण्डेय भी बधाई के पात्र हैं जिन्होंने इस कार्य को पूरी संलग्नता और परिश्रम के साथ सम्पन्न किया है। अस्तु—

विजयादशमी-२००३ विद्वच्चरणानुरागी—

जमुना पाठक

विषयसूचिका

प्रथम विलास

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१	उत्तमादि नायक	१८
शिङ्गभूपाल का वंश परिचय	२	नायक के भेद	१९
नाट्य का उद्भव	१०	धीरोदात्त	१९
ग्रन्थरचना का प्रयोजन	११	धीरललित	२१
नाट्य का लक्षण	१२	धीरशान्त	२२
रस	१२	धीरोद्धत	२३
विभाव	१२	शृङ्गार नायक के भेद	२३
विभाव के प्रकार	१२	पति	२३
नायक के साधारण गुण	१२	पति के भेद	२४
महाभाग्यशालिता	१२	अनुकूल	२४
उदारता	१३	शठ	२५
स्थिरता	१३	धृष्ट	२६
दक्षता	१४	दक्षिण	२६
उज्ज्वलता	१४	उपपति	२७
धार्मिकता	१४	उपपति के वर्ज्य गुण	२७
कुलीनता	१५	वैशिक	२८
वाक्पटुता	१५	वैशिक नायक के भेद	२९
कृतज्ञता	१५	ज्येष्ठ (उत्तम) वैशिक नायक	२९
नयज्ञता	१६	मध्यम वैशिक नायक	२९
शुचिता	१६	अधम वैशिक नायक	२९
मानिता	१७	शृङ्गार नायक के सहायक	३०
तेजस्विता	१७	पीठमर्द	३०
कलासम्पन्नता	१७	विट और चेट	३०
प्रजारञ्जकता	१८	विदूषक	३०

विषय	पृष्ठ
नायक के सहायकों के गुण	३०
नायिका के भेद	३१
स्वकीया	३१
स्वकीया नायिका के भेद	३१
मुग्धा स्वीया नायिका	३१
मध्या स्वकीया नायिका	३४
मध्या स्वीया नायिका के भेद	३५
धीरा मध्या नायिका	३५
अधीरा मध्या नायिका	३६
धीरा-अधीरा मध्यानायिका	३६
प्रगल्भा (प्रौढ़ा) स्वीया नायिका	३७
प्रगल्भा नायिका के भेद	३७
धीरा प्रगल्भा नायिका	३८
अधीरा प्रगल्भा नायिका	३८
धीरा-अधीरा नायिका प्रगल्भा	३९
परकीया नायिका के भेद	४०
कन्या	४०
परोढ़ा	४१
सामान्या नायिका	४१
सामान्या नायिका के भेद	४२
नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ	४४
प्रोषितपतिका	४५
वासकसज्जिका	४५
विरहोत्कण्ठिका	४६
खण्डिता	४७
कलहान्तरिता	४७
अभिसारिका	४८
कन्याभिसारिका	४९
वेश्याभिसारिका	५०
प्रेष्याभिसारिका	५०
विप्रलब्धा	५१

विषय	पृष्ठ
स्वाधीनपतिका	५२
नायिकाओं के उत्तमादि भेद	५२
उत्तमा नायिकाएँ	५२
मध्यमा नायिकाएँ	५३
नीचा नायिकाएँ	४३
नायिकाओं की संख्या	
परकीया नायिका की अवस्थाओं के विषय में कुछ आचार्यों के मत	५४
नायिका की सहायिकाएँ	५४
शृङ्गार के उद्दीपन विभाव	५५
गुण	५५
यौवन	५५
प्रथम यौवन	५५
द्वितीय यौवन	५७
तृतीय यौवन	५८
चतुर्थ यौवन	५८
रूप	५९
लावण्य	६०
सौन्दर्य	६०
अभिरूपता	६०
मार्दव	६१
सौकुमार्य	६१
उत्तम सौकुमार्य	६२
मध्यम सौकुमार्य	६२
अधम सौकुमार्य	६३
अलङ्कृति	६३
तटस्था	६४
अनुभाव	६९
चित्तज अनुभाव	७०
भाव	७०
हाव	७०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
हेला	७१	संल्लाप	८८
शोभा	७२	प्रलाप	८८
कान्ति	७२	अनुलाप	८९
दीप्ति	७३	अपलाप	८९
प्रागल्भ्य	७३	सन्देश	९०
माधुर्य	७४	अतिदेश	९०
धैर्य	७४	निर्देश	९०
औदार्य	७५	उपदेश	९१
गात्रज अनुभाव	७५	अपदेश	९२
लीला	७६	व्यपदेश	९२
विलास	७६	बुद्धिज अनुभाव	९२
विच्छित्ति	७७	रीति	९२
विभ्रम	७७	कोमला रीति	९१
किलकिञ्चित	७८	दश प्राण	९३
मोट्टायित	७८	श्लेष	९३
कुट्टमित	७९	प्रसाद	९४
विब्बोक	७९	समता	९४
ललित	८०	माधुर्य	९५
विहृत	८०	सुकुमारता	९५
स्त्रियों के बीस सात्त्विकभावों		अर्थव्यक्ति	९५
की स्थापना	८२	उदारता	९६
पुरुष के सात्त्विकभाव	८३	ओज	९६
शोभा	८४	कान्ति	९६
विलास	८४	समाधि	९७
माधुर्य	८५	कठिना रीति	९७
लालित्य	८६	मिश्रा रीति	९८
औदार्य	८६	वृत्तियाँ	९९
तेज	८६	वृत्तियों की उत्पत्तिकथा	९९
वाग्ज अनुभाव	८६	भारती वृत्ति	१०२
आलाप	८७	सात्त्वती वृत्ति	१०२
विलाप	८७	सात्त्वती वृत्ति के अङ्ग	१०२

विषय	पृष्ठ
संल्लाप	१०२
उत्थापक	१०३
सङ्घात्य	१०४
परिवर्त्तक	१०५
कैशिकी	१०६
कैशिकी वृत्ति के अङ्ग	१०६
नर्म	१०६
नर्म के भेद	१०६
शृङ्गाररहास्यज	१०६
शृङ्गाररहास्यज के भेद	१०६
सम्भोगेच्छा प्रकटन	१०६
अनुराग प्रकटन	१०८
प्रियापराधनिर्भेद	१०९
शुद्धहास्यज	१११
भयहास्यज	११२
नर्मस्फञ्ज	११४
नर्मस्फोट	११५
नर्मगर्भ	११६
आरभटी वृत्ति	११७
आरभटी वृत्ति के अङ्ग	११७
संक्षिप्ति	११७
अवपातन	११८
वस्तूत्थापन	११९
सम्फेट	११९
वृत्तियों का रसनियम	१२१
प्रवृत्तियाँ	१२३
भाषा	१२३
भाषा के भेद	१२३
विभाषा के भेद	१२४
सात्त्विक भाव	१२४
आठ सात्त्विकभाव	१२४
स्तम्भ	१२५
स्वेद	१२७
रोमाञ्च	१२९
स्वरभेद	१३१
वेपथु	१३१
विवर्णता	१३२
अश्रु	१३३
प्रलय	१३५

द्वितीय विलास

विषय	पृष्ठ
व्यभिचारिभाव	१३८
सञ्चारी शब्द की व्युत्पत्ति	१३८
व्यभिचारी भावों की संख्या	१३८
निर्वेद	१३९
विषाद	१४१
दीनता	१४३
ग्लानि	१४४
श्रम	१४६
मद	१४७
तरुण मद की चेष्टाएँ	१४८
मध्यम मद की चेष्टाएँ	१४८
नीच मद की चेष्टाएँ	१४८
उत्तमादि पुरुष भेद से मद का विभाजन	१४९
गर्व	१५०
शङ्का	१५३
शङ्का के भेद	१५३
स्वोत्था शङ्का	१५३
परोत्था शङ्का	१५४
त्रास	१५५
आवेग	१५७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उत्पातावेग	१५७	उत्सुकता	१८४
वातावेग	१५८	उग्रता	१८६
वर्षावेग	१५९	अमर्ष	१८७
अग्न्यावेग	१५९	असूया	१८८
कुञ्जरावेग	१६०	चपलता	१९०
प्रियश्रवणजावेग	१६१	निद्रा	१९१
अप्रियश्रवणजावेग	१६१	सुप्ति	१९२
शत्रुव्यसनावेग	१६२	बोध	१९३
उन्माद	१६२	उत्तमादि औचित्य से सात्त्विक	
इष्टनाश से उन्माद	१६३	और व्यभिचारी भावों का वर्णन	१९४
अपस्मृति	१६४	उद्वेगादि का कथित व्यभिचारी	
व्याधि	१६४	भावों में अन्तर्भाव	१९५
व्याधि के प्रकार	१६५	व्यभिचारी भावों के प्रकार	१९६
सशीत व्याधि	१६५	स्वतन्त्र व्यभिचारी भाव	१९६
दाहयुक्त व्याधि	१६५	निर्वेद का शान्तरस के	
मोह	१६६	स्थायिभावत्व का अभाव	१९७
मृति	१६७	व्यभिचारी भावों की आभासता	१९८
मृति के भेद	१६७	अनौचित्य के प्रकार	१९८
व्याधिज मृति	१६७	असत्यकृत अनौचित्य	१९८
अभिधातज मृति	१६७	अयोग्यता से अनौचित्य	१९९
विषोत्पन्न आठ वेग	१६८	व्यभिचारी भावों दशाएँ	२००
आलस्य	१६९	उत्पत्ति	२००
जड़ता	१७०	सन्धि	२००
व्रीडा	१७२	शान्ति	२०१
अवहित्था	१७४	शबलता	२०२
स्मृति	१७६	स्थायी भाव	२०३
वितर्क	१७८	स्थायिभावों की संख्या	२०३
चिन्ता	१७९	रति	२०३
मति	१८०	रति विषयक भोज का मत	२०८
धृति	१८०	शिङ्गभूपाल का मत	२०९
हर्ष	१८२	रति के अवस्थान्तर	२०९

विषय	पृष्ठ
प्रेमा	२०९
मान	२१०
प्रणय	२१०
स्नेह	२११
स्नेह के प्रकार	२१२
प्रौढ़ स्नेह	२१२
मध्यम स्नेह	२१३
मन्दस्नेह	२१३
राग	२१५
राग के भेद	२१५
कुसुम्भराग	२१५
नीलीराग	२१५
माञ्जिष्ठ राग	२१६
अनुराग	२१६
हास	२१७
उत्साह	२१८
विस्मय	२२०
क्रोध	२२१
शत्रुविषयक क्रोध में चेष्टाएँ	२२१
भृत्यविषयक क्रोध में चेष्टाएँ	२२२
मित्रविषयक क्रोध में चेष्टाएँ	२२३
पूज्यविषयक क्रोध में चेष्टएँ	२२३
शत्रुविषयक क्रोध में चेष्टाएँ	२२४
रोष	२२५
स्त्रीगोचर पुरुष का रोष	२२५
पुरुषगोचर स्त्री का रोष	२२६
सपत्नी-हेतुक रोष	२२६
अन्य हेतुक रोष	२२६
शोक	२२७
उत्तम व्यक्ति का शोक	२२७
मध्यम व्यक्ति का शोक	२२८
नीच व्यक्ति तथा स्त्री का शोक	२२९
जुगुप्सा	२३०
भय	२३१
भयविषयक सङ्गीतरत्नाकर का मत	२३४
सङ्गीतरत्नाकर के मत का खण्डन और अपने मत का प्रष्ठापन	२३४
भोज के मत में गर्व, स्नेह, धृति और मति का स्थायीभावत्व	२३६
स्नेह के स्थायीभावत्व का निराकरण	२३७
अन्य गर्व, धृति और मति के स्थायिभावत्व का खण्डन	२३७
गर्व के स्थायिभावत्व का निराकरण	२३८
धृति के स्थायिभावत्व का निराकरण	२३९
मति के स्थायिभावत्व का निराकरण	२४०
रसनिरूपण	२४१
काव्य अथवा नाटक में रस	२४४
रस के प्रकार	२४५
विषम से समसङ्ख्यक रस की उत्पत्ति	२४५
शृङ्गार रस के प्रथम निरूपण का कारण	२४५
शृङ्गार रस	२४५
शृङ्गार के भेद	२४५
विप्रलम्भ शृङ्गार	२४५
विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रकार	२४६
पूर्वानुराग	२४६
पूर्वानुराग का स्वरूप	२४७
पूर्वानुराग के प्रकार	२४८
पूर्वानुराग की दश अवस्थाएँ	२४९
अभिलाष	२४९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
चिन्ता	२५०	प्रवास के प्रकार	२६६
अनुस्मृति	२५१	कार्य-प्रवास के भेद	२६६
गुणकीर्त्तन	२५१	कार्य	२६६
उद्वेग	२५२	सम्भ्रम	२६७
विलाप	२५३	शाप	२६८
उन्माद	२५३	करुण विप्रलम्भ	२६९
व्याधि	२५४	करुणविप्रलम्भ की स्थापना	२६९
जड़ता	२५४	सम्भोग शृङ्गार	२७१
मृत्ति	२५५	सम्भोग शृङ्गार के भेद	२७१
अवस्थाओं के संख्याविषयक		संक्षिप्त	२७२
मतभेद	२५६	सङ्कीर्ण	२७२
शिङ्गभूपाल का मत	२५६	सम्पन्न	२७३
मानविप्रलम्भ	२५६	समृद्धिमान्	२७३
मान के प्रकार	२५६	हास्य रस	२७४
हेतुजमान	२५६	हास्य रस के भेद	२७४
अनुमिति के भेद	२५७	आत्मस्थ हास्य रस	२७४
निर्हेतुज मान	२५९	परस्थ हास्य रस	२७५
निर्हेतुज मान और भावकौटिल्य		स्वभाववश हास्य रस के भेद	२७५
मान में भेद	२६१	स्मित	२७६
निर्हेतुक मान की शान्ति	२६१	हसित	२७६
हेतुज मान की शान्ति	२६२	विहसित	२७६
साम	२६२	अवहसित	२७७
भेद	२६२	अपहसित	२७७
दान	२६३	अतिहसित	२७८
नति	२६३	वीर रस	२७८
उपेक्षा	२६४	वीर रस के भेद	२७८
रसान्तर	२६४	दानवीर	२७८
रसान्तर के प्रकार	२६४	युद्धवीर	२७९
यादृच्छिक	२६४	दयावीर	२७९
बुद्धिपूर्व	२६५	अद्भुत रस	२८०
प्रवास विप्रलम्भ	२६५	रौद्ररस	२८१

विषय	पृष्ठ
करुणरस	२८१
बीभत्स रस	२८२
भयानक रस	२८३
ग्रन्थकार का तुल्य बल वाले दो रसों के साङ्कर्य विषयकविचार	२८४
परस्पर विरुद्ध रस का प्रतिपादन	२८५
रसाभास	२८७
शृङ्गाराभास	२८८
हास्याभास	२८८
वीराभास	२८८
अद्भुताभास	२८८
करुणाभास	२८८
बीभत्साभास	२८८
भयानकाभास	२८८
शृङ्गाराभास के भेद	२८८
तिर्यग्राग से रसाभास-विषयक विद्याधर का मत	२९३
शिङ्गभूपाल का मत	२९३

तृतीय विलास

विषय	पृष्ठ
नाट्य शब्द की व्युत्पति	२९७
रूपक शब्द की निष्पत्ति	२९७
नाट्य के प्रकार (भेद)	२९७
रूपक के भेदक तत्त्व	२९७
इतिवृत्त का निरूपण	२९८
कथावस्तु का विभाजन	२९८
फल की दृष्टि से कथावस्तु का विभाजन	२९८
बीज	२९८
बिन्दु	२९९
पताका	२९९
प्रकरी	३००
पताकास्थानक	३०१
भरतानुसार लक्षण	३०१
कार्य (फल)	३०४
स्वरूप की दृष्टि से कथावस्तु का विभाजन	३०५
प्रधान कथावस्तु	३०५
अङ्ग (प्रासङ्गिक) कथावस्तु	३०५
अङ्ग कथावस्तु के भेद	३०६
बीजादि का सन्निवेश क्रम	३०६
कार्य की पाँच अवस्थाएँ	३०६
आरम्भ	३०६
यत्न	३०६
प्राप्त्याशा	३०७
नियताप्ति	३०७
फलागम	३०७
सन्धि	३०८
सन्धि के भेद	३०८
मुखसन्धि	३०८
मुखसन्धि के अङ्ग	३०८
उपक्षेप	३०९
परिकर	३०९
परिन्यास	३१०
विलोभन	३११
युक्ति	३११
प्राप्ति	३१२
समाधान	३१३
विधान	३१३
परिभावना	३१३
उद्भेद	३१४
भेद	३१५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
करण	३१६	विमर्श सन्धि के अङ्ग	३३७
प्रतिमुख सन्धि	३१६	अपवाद	३३७
प्रतिमुख सन्धि के अङ्ग	३१६	सम्फेट	३३७
विलास	३१७	विद्रव	३३८
परिसर्प	३१७	द्रव	३३९
विधूत	३१८	शक्ति	३४०
शम	३१९	द्युति	३४०
नर्म	३२०	प्रसङ्ग	३४१
नर्मद्युति	३२०	छलन	३४२
प्रगमन	३२१	व्यवसाय	३४३
विरोध	३२२	विरोधन	३४३
पर्युपासन	३२३	प्ररोचना	३४४
पुष्प	३२४	विचलन	३४४
वज्र	३२४	आदान	३४५
उपन्यास	३२५	निर्वहरण सन्धि	३४६
वर्णसंहार	३२६	निर्वहण सन्धि के अङ्ग	३४६
गर्भसन्धि	३२७	सन्धि	३४७
गर्भसन्धि के अङ्ग	३२७	विबोध	३४७
अभूताहरण	३२७	ग्रथन	३४८
मार्ग	३२८	निर्णय	३४९
रूप	३२९	परिभाषण	३५०
उदाहरण	३३०	प्रसाद	३५०
क्रम	३३१	आनन्द	३५१
सङ्ग्रह	३३१	समय	३५२
अनुमान	३३२	कृति	३५२
तोटक	३३३	भाषण	३५३
अधिबल	३३४	उपगूहन	३५३
उद्वेग	३३४	पूर्वभाव	३५४
सम्भ्रम	३३५	उपसंहार	३५५
आक्षेप	३३६	प्रशस्ति	३५६
विमर्श सन्धि	३३६	सन्ध्यङ्गयोजन में मतभेद	३५६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सन्ध्यन्तर	३५७	उदाहरण	३७३
सन्ध्यन्तरों की सङ्ख्या	३५७	शोभा	३७४
साम	३५७	संशय	३७४
दान	३५८	दृष्टान्त	३७५
भेद	३५९	अभिप्राय	३७६
दण्ड	३५९	निदर्शन	३७६
प्रत्युत्पन्न मति	३६०	सिद्धि	३७७
वध	३६१	प्रसिद्धि	३७८
गोत्रस्खलित	३६२	दाक्षिण्य	३७८
ओज	३६२	अर्थापत्ति	३७९
धी	३६३	विशेषण	३७९
क्रोध	३६३	पदोच्चय	३८०
साहस	३६४	तुल्यतर्क	३८१
भय	३६४	विचार	३८२
माया	३६५	तद्विपर्यय	३८२
संवृति	३६५	गुणातिपात	३८३
भ्रान्ति	३६६	अतिशय	३८३
दूत्य	३६७	निरुक्त	३८४
हेत्ववधारण	३६७	गुणकीर्तन	३८५
स्वप्न	३६८	गर्हण	३८५
लेख	३६८	अनुनय	३८६
मद	३६९	भ्रंश	३८७
चित्र	३६९	लेश	३८८
सन्ध्यङ्गों और सन्ध्यन्तरों के		क्षोभ	३८८
प्रयोग में मतभेद	३७०	मनोरथ	३८९
भूषण	३७०	अनुक्तसिद्धि	३८९
छत्तीस भूषण	३७०	सारूप्य	३९०
भूषण	३७१	माला	३९१
अक्षरसङ्घात	३७१	मधुरभाषण	३९१
हेतु	३७२	पृच्छा	३९२
प्राप्ति	३७३	उपदिष्ट	३९३

विषय	पृष्ठ
दृष्ट	३९३
नाटक का प्राकृतत्त्व	३९५
अन्य रुपकों का नाटक के प्रति विकृतत्त्व	३९५
नाटक का लक्षण	३९५
नाटक का प्रारम्भ	३९५
प्रस्तावना	३९६
नान्दी	३९६
भारती वृत्तियोजना	३९८
प्ररोचना	३९८
प्रशंसा के प्रकार	३९८
अचेतन	३९८
देश (स्थान)	३९९
चेतन	३९९
कथानाथ (कथानायक)	३९९
चार प्रकार के कवि	४००
उदात्त कवि	४००
उद्धत कवि	४००
प्रौढ़कवि	४०१
विनीत कवि	४०२
सभ्य	४०३
प्रार्थनीय	४०३
प्रार्थक	४०३
नट	४०३
वादक	४०३
गायक	४०३
नर्तक	४०३
प्ररोचना का प्रयोग	४०४
आमुख	४०४
आमुख के अङ्ग	४०५
कथोद्घात	४०५

विषय	पृष्ठ
प्रवर्तक	४०६
प्रयोगातिशय	४०७
आमुख के दो भेद	४०७
प्रस्तावना	४०८
स्थापना	४०८
नाट्य में आमुख की योजना	४०८
वीथी के अङ्ग	४०८
उद्घात्यक	४०९
अवगलित	४१०
प्रपञ्च	४११
त्रिगत	४१२
छल	४१२
वाक्केलि	४१३
अधिबल	४१३
गण्ड	४१४
अवस्यन्दित	४१५
नालिका	४१५
असत्प्रलाप	४१७
व्याहार	४१७
मृदव	४१८
कथावस्तु प्रदर्शन का समय	४१८
कथावस्तु के दो प्रकार	४७८
सूच्य वस्तु	४१९
सूच्य वस्तु के सूचक	४१९
विष्कम्भक	४१९
विष्कम्भक के प्रकार	४१९
मिश्र विष्कम्भक	४१९
शुद्ध विष्कम्भक	४१९
चूलिका	४२०
चूलिका के प्रकार	४२०
खण्डचूलिका	४२१

विषय	पृष्ठ
खण्डचूलिका-विषयक अन्य मत का निराकरण	४१३
अङ्कास्य	४२३
अङ्कावतार	४२४
प्रवेशक	४२४
असूच्य वस्तु	४२४
कहीं अङ्क की ही कल्पना	४२४
अङ्क का लक्षण	४२५
अङ्क प्रदर्शन योग्य वस्तु	४२५
असूच्य कथावस्तु का विभाग	४२५
श्रव्य के भेद	४२५
स्वगत	४२५
प्रकाश	४२६
सर्वप्रकाश	४२६
नियतप्रकाश	४२६
नियतप्रकाश के भेद	४२६
जनान्तिक	४२६
अपवारित	४२६
अङ्क के अन्त में पात्रों का निष्क्रमण	४२६
अङ्क की समाप्ति	४२७
अङ्क में प्रतिपाद्यवस्तु का स्वभाव	४२७
गर्भाङ्क लक्षण	४२७
नाटक में अङ्क का विधान	४२८
नाटक के पूर्ण इत्यादि भेदों की अस्वीकृति	४२८
प्रकरण	४२८
प्रकरण के भेद	४२८
शुद्ध प्रकरण	४२८
धूर्त प्रकरण	४२८
मिश्र प्रकरण	४२८
नाटिका की अभिन्नता	४२८
उत्सृष्टिकाङ्क	४३०
व्यायोग	४३१
भाण	४३१
आकाशभाषित	४३२
भाण में लास्य का संयोजन	४३२
लास्य के दश अङ्ग	४३२
गेयपद	४३२
स्थितपाठ्य	४३२
आसीन	४३३
पुष्पगन्धिका	४३३
प्रच्छेदक	४३३
त्रिमूढक	४३३
सैन्धव	४३३
द्विमूढक	४३३
उत्तमोत्तमक	४३४
उक्तप्रत्युक्त	४३४
समवकार	४३४
कपटत्रय	४३५
विद्रवत्रय	४३५
शृङ्गारत्रय	४३५
समवकार की रचना में विशेष	४३६
वीथी	४३७
प्रहसन	४३७
अवगलित	४३७
अवस्कन्द	४३९
व्यवहार	४४०
विप्रलम्भ	४४१
उपपत्ति	४४२
भय	४४३
अनृत	४४३

विषय	पृष्ठ
विभ्रान्ति	४४४
गद्गदवाक्	४४५
प्रलाप	४४६
प्रहसन के भेद	४४७
शुद्ध	४४७
कीर्ण	४४७
वैकृत	४४७
डिम	४४७
ईहामृग	४४८
नाटक-विषयक परिभाषा	४४९
परिभाषा के प्रकार	४४९
भाषा के भेद	४४९
विभाषा	४४९
भाषा	४५०
संस्कृत भाषा	४५०
प्राकृतिकभाषा	४५०
भाषा व्यतिक्रम	४५१
निर्देश परिभाषा	४५१
निर्देश के भेद	४५२
पूज्यनिर्देश	४५२
सदृश निर्देश	४५३
कनिष्ठ निर्देश	४५३
नामपरिभाषा	४५४
कञ्चुकी का नामकरण	४५४
चेटी का नामकरण	४५४
अनुजीवियों और चारणों का नामकरण	४५४
मन्त्री और पुरोधा का नामकरण	४५४
विदूषक का नामकरण	४५५
नायक का नामकरण	४५५
नायिका का नामकरण	४५५
महारानी का नामकरण	४५५
भोगिनी का नामकरण	४५६
विप्र क्षत्रिय और वैश्य का नामकरण	४५६
विद्याधरों का नामकरण	४५६
कापालिक तथा कापालिका का नामकरण	४५६
सुवासिनी स्त्री का नामकरण	४५६
सत्काव्यप्रशंसा	४५६
ग्रन्थोपसंहार	४५७

रसार्णवसुधाकरः

भूमिका

नाट्य की रमणीयता

काव्य के सभी भेदों में दृश्य (नाट्य) सार्वजनिक मनोरञ्जनोन्मुकता, व्यापकता और सर्वाङ्गीणता, सत्यं शिवं सुन्दरं का योग तथा रसानुभूति की सुगमता के कारण उत्कृष्ट माना जाता है। नाट्य की रमणीयता के ये कारण हैं—

सार्वजनिक मनोरञ्जन का साधन- नाट्य या रूपक सार्वजनिक (सार्ववर्णिक) मनोरञ्जन का साधन है जिसकी रचना सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय होती है क्योंकि देवताओं के समाज में चिन्तन की इच्छा को ध्यान में रख कर ही ब्रह्मा ने पञ्चमवेद रूप इसकी सृष्टि किया है जैसा कि कहा गया है—

'क्रीडनीयकमिच्छामि दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत् ।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ।।' (नाट्यशास्त्र 1.1)

चारों वेदों से केवल तीन वर्ण— ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का हित-सिद्ध होता है किन्तु इस सार्ववर्णिक पञ्चमवेद नाट्य से तो निर्धन-धनी, सवर्ण-असवर्ण, विद्वान्-मूर्ख सभी के लिए मनोरञ्जन तथा हित का साधन होता है। नाट्य से सभी वर्ग के लोग आनन्दानुभूति करते हैं क्योंकि दृश्य होने से वह हृद्य (रमणीय) होता है और श्रव्य होने से व्युत्पत्तिप्रद (उपदेशजनक)। इस प्रकार एक ही साथ सहृदय के हृदय में आनन्दानुभूति भी जगाता है और उसे कान्तासम्मित उपदेश भी देता है- 'दृश्यं हृद्यं श्रव्यं व्युत्पत्तिप्रदमिति प्रीतिव्युत्पत्तिप्रदम् (नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय)। वस्तुतः नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने नाट्य को सार्वजनिक मनोरञ्जन के साधन के रूप में स्वीकार किया है। महाकवि कालिदास ने यदि नाट्य को विभिन्न रूचि वाले प्राणियों के लिए एकमात्र आनन्द प्रदान करने वाला अद्वितीय समाराधन माना है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है— 'नाट्यं भिन्नरूचेः जनस्य बहुधाप्येकं समाराधानम्' (मालविकाग्निमित्र 1.4)।

2. व्यापकता तथा सर्वाङ्गीणता- नाट्य अपने विषय की परिधि में सम्पूर्ण त्रैलोक्य के चर-अचर को समेट लेता है। इसमें सम्पूर्ण त्रैलोक्य के भावों का अनुकीर्तन (प्रदर्शन) होता है संसार का कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, ~~विद्या, कला~~, योग और कर्म नहीं है जो नाट्य में न हो। जैसा कहा गया है—

त्रैलोक्यस्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ॥ (ना.शा. 1/107)
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥ (ना.शा.1/116)

नाट्य तो प्राणिमात्र के विविध भावों तथा अवस्थाओं के चित्रण से युक्त और लोकवृत्त के अनुकरण से संवलित ऐसी काव्य-विधा है जो श्रमार्त तथा शोकार्त सभी लोगों के लिए विश्रान्तिजनक, हितकारक तथा उपदेशप्रद है-

विश्रान्तिजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।
विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति॥ (ना.शा. प्रथम अध्याय)

3. सत्यं शिवं सुन्दरं का संयोग- कोई ऐसा भाव अथवा अवस्था नहीं है जिसका नाट्य में चित्रण न हुआ हो। ऐसा कोई लोकवृत्त नहीं है जो उपेक्षित हो। इसमें तो उत्तम, मध्यम, अधम- सभी प्रकार के लोगों का चित्रण होता है। यथार्थ होने से यह सत्य है, हितोपदेशजनक होने से यह शिव है और विश्रान्तिजनक होने तथा विनोदजनक क्रीडनीयक होने से सुन्दर भी है। 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का ऐसा मनोहर संयोग काव्य की अन्य किसी विधा में सम्भव नहीं होता। (द्रष्टव्य ना. शा. 1/112-115)।

4. रसानुभूति की सुगमता- सहृदय के हृदय का आह्लाद अर्थात् सहृदय के हृदय में रसानुभूति जगाना ही काव्य का प्रमुख उद्देश्य होता है। रसानुभूति का मूलकारण स्थायीभाव का विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारीभाव के साथ संयोग है— "विभावानुभावव्याभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"। दृश्यकाव्य में रङ्गमञ्च पर उपस्थित पात्रों की वेषभूषा, उनके आकार, उनकी भावभङ्गिमा, कथोपकथन इत्यादि से एक सजीव, मनोहर तथा हृदयग्राही बिम्ब उपस्थित हो जाता है जिससे सहृदय-जन के रसानुभूति का मार्ग निर्बाध ही नहीं प्रत्युत सुगम भी हो जाता है। इसी अभिप्राय को दृष्टि में रखकर 'नाटकान्तं कवित्वम्' कहा गया है। वस्तुतः काव्य का चरम लक्ष्य नाट्य से ही प्राप्त हो सकता है।

श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य की श्रेष्ठता- श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य की उत्कृष्टता इन कारणों से होती है—

1. श्रव्यकाव्य में सहृदय श्रवण अथवा पठन के द्वारा रसानुभूति की चेष्टा करता है। इसमें उसे अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा तत्सम्बन्धित समस्त बिम्ब की कल्पना करनी पड़ती है और शब्द ही मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं। फलस्वरूप अनुभूति में उतनी तीव्रता, सजीवता तथा मनोहरता नहीं आ पाती जितनी अपेक्षित होती है। इसके विपरीत दृश्यकाव्य में अभिनेताओं द्वारा किये जाने वाले चार प्रकार के अभिनयों से वर्ण्य का प्रत्यक्ष बिम्ब उपस्थित हो जाता है। फलतः सहृदय को कल्पना के अनावश्यक प्रपञ्च में नहीं जाना

पड़ता।

2. श्रव्यकाव्य के माध्यम से शिक्षित समाज ही रसानुभूति कर सकता है किन्तु नाट्य के द्वारा सर्वसाधारण व्यक्ति भी आनन्दानुभूति कर सकता है। इसीलिए भरत ने नाट्य को सार्वजनिक मनोरञ्जन का साधन बताया है।

3. दृश्यकाव्य में दर्शक और नाट्यपात्रों में साक्षात् सम्बन्ध रहता है जिससे अनुभूति में तीव्रता आ जाती है। इसके विपरीत श्रव्यकाव्य में कवि के माध्यम से सम्बन्ध होता है, फलतः अनुभूति में तीव्रता नहीं आ पाती।

4. दृश्यकाव्य में सङ्गीत, वाद्य, दृश्यविधान आदि काव्यात्मक प्रभाव की वृद्धि में विशेष रूप से सहायक होते हैं और उसकी कथावस्तु कथोपकथन के सहारे आगे बढ़ती है जिससे सहृदय का मन उसमें लगा रहता है। इसके विपरीत श्रव्यकाव्य में अधिकांशतः वर्णन के द्वारा कथावस्तु आगे बढ़ती है जिससे पाठक के हृदय में कौतूहलवृत्ति जागृत नहीं होती, जो आनन्द की एक प्रमुख कड़ी है।

5. यद्यपि दृश्यकाव्य का आनन्द नेत्र तथा श्रवण- दोनों के द्वारा प्राप्त होता है किन्तु वह दृश्यकाव्य प्रधानतया चक्षुरिन्द्रिय का विषय होता है जबकि श्रव्यकाव्य श्रवणेन्द्रिय का। प्रत्यक्ष देखी गयी वस्तु श्रुतिगोचर वस्तु की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक और रमणीय होती है। इसलिए कालिदास ने नाट्य को चाक्षुष यज्ञ कहा है— 'शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्'(मालविकाग्निमित्र 1/4)।

6. श्रव्यकाव्य तथा दृश्यकाव्य दोनों में कान्तासम्मित उपदेश रहता है किन्तु क्रीडनीयक होने से नाट्य गुडप्रच्छन्नकटु औषध के समान चित्त को सन्मार्ग पर आरुढ़ होने की प्रेरणा देता है- 'इदमस्माकं गुडप्रच्छन्नकटु- औषधकल्पं चित्तविक्षेपमात्र-फलम्' (अभिनवभारती)।

इन तथ्यों को ध्यान में रखने पर यह बात आपाततः स्पष्ट हो जाती है कि नाट्य अथवा रूपक काव्य के अन्य सभी भेदों से रमणीय होता है।

नाट्य का उद्भव और विकास—

भारतीय नाट्यपरम्परा सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से नाट्य की उत्पत्ति को स्वीकार करती है। उसके अनुसार देवताओं की प्रार्थना पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने दर्शनीय तथा श्रवणीय पञ्चमवेदरूप नाट्य की परिकल्पना किया और उसमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद से क्रमशः संवाद, गीत, अभिनय और रस को लेकर संयोजन किया। जैसा भरत ने कहा है—

'जग्राह पाठमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

ब्रह्मा ने अर्जित कला के प्रकाशन के लिए भरत को आदेश भी दिया। भरत ने उस नाट्यवेद में भारती, सात्वती, आरभटी इन वृत्तियों का समायोजन किया तथा उसे अत्यधिक रमणीय और आकर्षक बनाने के लिए उसमें सुकुमार साजसज्जा, स्त्रीसुलभ चेष्टाओं और कोमल शृङ्गार से परिपूर्ण कैशिकी वृत्ति का भी संयोजन किया। इस प्रकार संवाद इत्यादि वैदिक तत्त्वों और वृत्तियों से सुसज्जित नाट्य का सर्वप्रथम प्रयोग इन्द्रध्वज महोत्सव के अवसर पर किया गया जिसमें सभी प्रकार के विघ्नों के निराकरणार्थ प्रारम्भ में रङ्गपूजन का विधान किया गया। उसमें अभिनय की शोभावृद्धि के लिए प्रसन्न शिव द्वारा ताण्डव तथा पार्वती द्वारा लास्य नृत्य भी संयोजित किया गया। इस प्रकार अपने पुत्रों (शिष्यों) और अप्सराओं के साथ भरत ने नाट्यवेद का प्रयोग किया जो पूर्णरूपेण सफल रहा।

वैदिक वाङ्मय और नाट्यवेद– नाट्य में संवाद, अभिनय, गीत और रस की प्रधानता होती है। इन चारों तत्वों की वैदिक क्रिया-कलापों से ही कल्पना की गयी। वेदों के अन्तर्गत अनेक ऐसे स्थल प्राप्त होते हैं जो नाट्य-वेद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। ऋग्वेद का संवादसूक्त नाट्य में प्रयुक्त संवादों की आधार-शिला है। इन्हें संस्कृत नाट्यों का मूल कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसके लिए ऋग्वेदीय अगस्त्यलोपामुद्रासंवाद (1.79) इन्द्रमरुत्संवाद (1.165,170) विश्वामित्रनदीसंवाद (3.33) यमयमीसंवाद (10.10) इन्द्रइन्द्राणीवृषाकपिसंवाद (10.86) पुरुरवा-उर्वशीसंवाद (10.95) सरमापणिसंवाद (10.108) इत्यादि द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार यज्ञ के अवसर पर होने वाले ऋत्विजों के क्रियाकलापों के आधार नाट्य में अभिनय का पुट तथा गीतात्मक सामवेद से इसमें गीतों का समावेश हुआ— ऐसा प्रतीत होता है।

मैक्समूलर के अनुसार कथित संवादसूक्त इन्द्र, मरुत् तथा अन्य देवताओं की स्तुति में उनके अनुयायियों द्वारा यज्ञ में गाये जाते थे। सिलवा लेवी के अनुसार सामवेद-काल में गान-कला अपने विकास की उत्कृष्टतम सीमा पर थी और ऋग्वेद में सुन्दर वस्त्र पहन कर स्त्रियों द्वारा अपने प्रेमियों को आकृष्ट करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। अतः यज्ञादि के अवसर पर नाट्याभिनय अवश्य होता रहा होगा। जर्मन पण्डित ड्रा. हर्टल के अनुसार गेय सूक्तों को एक से अधिक लोग मिलकर गाते रहे होंगे। इस प्रकार वक्ताओं की भिन्नता हो जाती रही होगी जिससे नाट्याभिनय प्रेरित हुआ होगा। प्रो. वान्श्रीडर के अनुसार संवादसूक्तों के गान के साथ नृत्य भी होता रहा होगा क्योंकि सङ्गीत और नृत्य का अभिन्न सम्बन्ध होता है। इस प्रकार गेय और अभिनय दोनों तत्त्व यहाँ मिल जाते हैं जो नाट्य का

मूल बीज है। डॉ. विडिश, ओल्डेनवर्ग और पिशेल के अनुमान के अनुसार सूक्त पहले गद्यात्मक और पद्यात्मक थे। ऐतरेयब्राह्मण का शुनःशेप- आख्यान इस प्रकार के अंश का प्रमाण है अतः इन्हीं से नाट्य की उत्पत्ति हुई होगी। किन्तु डा. कीथ ने इन दोनों मतों का खण्डन किया है। उनके अनुसार ऋग्वेद के इन सूक्तों का न तो गायन होता था और न अभिनय। क्योंकि गायन और अभिनय क्रमशः सामवेद और यजुर्वेद के तत्त्व हैं जिनमें संवाद-सूक्तों का सर्वथा अभाव है इनका मात्र शंसन होता था[1]।

वस्तुतः कथोपकथन के मूल बीज ये संवादसूक्त ही हैं जिनके द्वारा नाट्य में प्रयुक्त होने वाले संवादों का जन्म हुआ। अभिनयात्मकता का उदय तो यजुर्वेदीय यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले अध्वर्यु नामक ऋत्विक् के क्रिया-कलापों से उद्भूत हुआ और गीत का संयोजन सामवेद के गानों से हुआ। शुक्लयजुर्वेद के तीसवें अध्याय में नाट्यविषयक विविध वस्तुओं का तथा वाद्ययन्त्रों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त गन्धर्व, अप्सराओं, वीणावादकों इत्यादि का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यजुर्वेद-काल में नाट्य के विभिन्न तत्त्वों नृत्य, गीत, अभिनय इत्यादि का प्रचार था किन्तु नाट्य का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। ब्राह्मणग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-काल में नृत्य, गीत, वाद्य इत्यादि का स्थान कला के रूप में गृहीत हो चुका था किन्तु पराशरगृह्यसूत्र के अनुसार इन कलाओं का प्रयोग द्विजातियों के लिए निषिद्ध था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक भाषा में उपलब्ध तत्त्वों की नाट्यरचना के विशिष्ट स्वरूप को प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

वेदोत्तरसाहित्य और नाट्य- वेदोत्तर साहित्य रामायण और महाभारत में नाट्य का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। रामायण के प्रारम्भ में ही अयोध्या- वर्णन के प्रसङ्ग में अभिनेताओं और वाराङ्गनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। राम के राज्याभिषेक के समय वहाँ नट, नर्तक, गायक इत्यादि उपस्थित थे और उनके कला-कौशल को सुनकर जनता आनन्दित भी हुई-

नटनर्तकसङ्घानां गायकानां च गायताम् ।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः॥

महाभारत में भी नट, शैलूष इत्यादि नाट्यविषयक शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। हरिवंशपुराण के 91-97 अध्याय में दैत्य वज्रनाभ के वध के लिए भगवान् कृष्ण के द्वारा यादवों के साथ कपट नट के रूप में रामायण के नाटक करने का उल्लेख हुआ है

(1) **द्रष्टव्यः-** एच.बी.कीथः संस्कृत ड्रामा, पृष्ठ 15,16

और वहीं कौबेररम्भातिसार नामक नाटक करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें प्रसन्न हुई दैत्यपत्नियों ने अपने आभूषणों को पुरस्कार स्वरूप दे दिया था। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कृशाश्व के नटसूत्रों का उल्लेख किया गया है-'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षनटसूत्रयोः', कर्मन्दकृशाश्वादिनिः (पा.अ. 4.3.110-111)। पातञ्जल्यमहाभाष्य में भी महर्षि पतञ्जलि ने कंसवध और बलिबन्धन नामक दो नाटकों का उल्लेख किया है— 'इह तु कथं वर्तमानकालता कंसं घातयति.......प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति' (म.भा. 3.1.26) अर्थात् जब कंस पहले ही मर चुका है और बलि का बन्धन अनीत काल में हो चुका है तो ये नट कैसे वर्तमान काल में प्रत्यक्ष रूप से कंस को मारते हैं अथवा बलि को बाँधते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत नाट्य का मूलबीज वेदों में उपलब्ध है। इसका क्रमिक विकास इतिहास, पुराण, रामायण, महाभारत काल में भी होता रहा, जिसकी अक्षुण्ण परम्परा भास से लेकर आज तक विद्यमान है। संस्कृत के नाटककारों में कालिदास, भवभूति और शूद्रक प्रमुख हैं। इनमें कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तल सर्वोत्कृष्ट है— काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'।

नाट्योत्पत्ति-विषयक वाद-

भारतीय परम्परा के अनुसार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा द्वारा नाट्य का उपदेश किया गया। देवताओं की स्तुति से प्रसन्न ब्रह्मा ने सार्ववर्णिक पञ्चमवेद के रूप में विकट सङ्कटकाल में भी मानवों को शान्ति प्रदान करने वाले सर्वजनग्राह्य नाट्य की कल्पना किया। इस भारतीय परम्परावाद का विवेचन पहले किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न आधारों पर नाट्योत्पत्ति की कल्पना किया है जिनका संक्षेप इस प्रकार है-

संवादसूक्तवाद- पाश्चात्य विद्वान् ओल्डेनवर्ग के अनुसार ऋग्वेद में उपलब्ध संवादसूक्त ही संस्कृत के नाट्यों की उत्पत्ति के मूलस्रोत हैं। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने कालिदास द्वारा प्राणीत विक्रमोर्वशीय का उल्लेख किया है जो ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी संवाद पर आधारित है। मैक्समूलर सिल्वा लेवी और वान् श्रोडर ने इस सिद्धान्त को परिपुष्ट भी किया है। 'ऋग्वेद के संवादसूक्तों से नाट्योत्पत्ति हुई यह मत तर्क-सङ्गत नहीं है क्योंकि नाट्यों के संवादों में वाचिक इत्यादि अभिनय द्वारा संवाद भावपूर्ण हो जाता है किन्तु वैदिकसंवादों में भावमय भाषा का अभाव है। अत एव यह मत नितान्त भ्रामक है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि नाट्योत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद का आंशिक सहयोग है।

पुत्तलिकानृत्यवाद- प्राचीन काल में भारत में लोगों के मनोरञ्जन के लिए

पुत्तलिका नृत्य का प्रयोग किया जाता था। डा. पिशेल महोदय के मतानुसार पुत्तलिका नृत्य से ही नाट्योत्पत्ति हुई। संस्कृत नाट्यों का सञ्चालक सूत्रधार होता है उसी प्रकार पुत्तलिका नृत्यके सूत्र का सञ्चालक सूत्रधार होता है। यहीं सूत्रधार द्वारा नाट्यों और पुत्तालिका नृत्यों के सञ्चालकत्व की समानता ही पुत्तलिका नृत्य से नाट्योत्पत्ति का प्रमुख आधार है।

नाट्य रस, भाव, अभिनय-कला इत्यादि से सुसज्जित होता है। किन्तु पुत्तलिका नृत्य में रसादि का अभाव तथा चेतनाशून्यता होती है, इसलिए पुत्तलिका नृत्य से नाट्योत्पत्ति की कल्पना सर्वथा अविवेकपूर्ण है,

छायावाद– छाया से नाट्य की उत्पत्ति होने के मत के प्रवर्तक डा. लूडर्स और कोनो महोदय हैं। डा0 लूडर्स के अनुसार यवनिका के भीतर उपस्थित छाया के माध्यम से कथावस्तु का प्रदर्शन होता है। यह कला नाट्योत्पत्ति के पूर्व में प्रचलित थी। कालान्तर में इसी से नाट्य की उत्पत्ति हुई।

डा0 कीथ महोदय के अनुसार यह सिद्धान्त महाभाष्य के अयथार्थ- अवधारणा पर आधारित है किन्तु शास्त्रग्रन्थों में ऐसे रूपकों का निर्देश नहीं है। अत एव ऐसा अनुमान है कि छाया-नाटकों का आविर्भाव नाट्योत्पत्ति से बाद में हुआ।

वीरपूजावाद– डा.पिशेल महोदय के अनुसार कृष्ण की पूजा से नाट्य की उत्पत्ति हुई। उनका मानना है कि नाट्य की उत्पत्ति मृतपुरुषों के प्रति सम्मान प्रदर्शन की भावना से हुई। नाट्य ही सभी धर्मो का स्रोत है। ऐतिहासिक पुरुषों के पराक्रम और गुणों को चिरस्मरणीय रखने के लिए नाट्योद्भव हुआ।

एकदेशीय होने के कारण यह मत अन्य विद्वानों द्वारा समर्थित नहीं हुआ। नाट्य मानवजीवन की सुखात्मक और दुःखात्मक भावनाओं से परिपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त शिव, राम, कृष्ण इत्यादि भक्तों की दृष्टि में महान् और अमर देव हैं। अत एव उनके प्रति मृतात्मा होने की कल्पना हास्यास्पद है।

प्रकृतिपरिवर्तनवाद– कीथ के अनुसार समयानुसार प्रकृति में हुए परिवर्तन को भावात्मक रूप में प्रस्तुत करने के लिए नाट्य की उत्पत्ति हुई। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए महाभाष्य में निर्दिष्ट कंसवध नाटक का उल्लेख किया है। इस नाटक में प्रकृति का भावात्मक रूप स्पष्ट करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि काले वस्त्र पहनने वाले कंस के ऊपर लाल वस्त्र पहनने वाले कृष्ण का विजय हेमन्त के ऊपर ग्रीष्म के विजय का सङ्केत है। यह भी मत संस्कृत नाट्योत्पत्ति के विषय के अनुकूल नहीं है।

मेपेलनृत्यवाद– पाश्चात्य कतिपय विद्वानों ने मेपोल-नृत्य और इन्द्रध्वज महोत्सव के साम्य के विषय में यूनानी नाटक इन्द्रध्वजमहोत्सव से भारतीय नाटक की उत्पत्ति की

कल्पना करते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में इन्द्रध्वजमहोत्सव का उल्लेख है जो उत्सव के दिन विजयोल्लास के कारण सर्वप्रथम नाट्य का प्रयोग हुआ होगा। किन्तु इस उत्स से नाट्योत्पत्ति की कल्पना असम्भव है क्योंकि नाटकों का प्रयोग विशेष उत्सव पर मनोरञ्जन के लिए होता है। अत एव उत्सव नाट्योद्भव का मूलकारण नहीं हो सकता ।

निष्कर्ष– भारतीय नाट्य के उद्भव के विषय में प्रामाणिक ग्रन्थों के अभाव के कारण निश्चित रूप से कुछ भी कहना असम्भव है किन्तु यत्र-तत्र विकीर्ण तथ्यों के आधार पर यह माना जाता है कि अतिप्राचीनकाल में भी नाट्य का अस्तित्व था। साहित्य के क्षेत्र में सर्वाङ्गतत्त्वों के साथ नाट्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से प्रकाश में आया और तभी से प्रगतिपथ पर निरन्तर अग्रसर है। सम्प्रति विद्यमान विस्तृत और विकसित नाट्य-साहित्य अनेक शताब्दियों से विकसित नाट्यप्रवृत्ति का परिणाम है। समय-समय पर इसमें नूतन-विचारों और तथ्यों का समावेश हुआ नाट्योंद्भव काल से भास, कालिदास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष, भट्टनारायण, राजशेखर इत्यादि नाट्य प्रणेताओं के नाट्यों और भरत, अभिनवगुप्त, धञ्जय, सागरनन्दी, रामचन्द्र, गुप्तचन्द्र, भोज, शारदातनय, शिङ्गभूपाल, विश्वनाथ, विद्यानाथ, जगन्नाथ इत्यादि आचार्यों के नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों की नाट्य-साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इसी कारण आज नाट्य-साहित्य अपनी चरमावस्था के विकास को प्राप्त हुआ है।

नाट्यशास्त्र की परम्परा और शिङ्गभूपाल

आचार्य भरत से पहले भी नाट्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थों का प्रणयन अवश्य हुआ था किन्तु आज इन ग्रन्थों के उपलब्ध न होने के कारण आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र ही सर्वप्राचीन नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ माना जाता है और आचार्य भरत नाट्यशास्त्र के प्रतिष्ठापक माने जाते हैं।

आचार्य भरत– भारतीय-परम्परा नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध रचयिता भरत को 'मुनि' की पदवी से विभूषित करती है और उन्हें पौराणिक युगीन मानती है। इनका समय विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर ई.पू. द्वितीय शताब्दी से लेकर ईसा की द्वितीय शताब्दी तक निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। भरत मुनि का एकमात्र ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है। जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि यह नाट्यविषयक लक्षण ग्रन्थ है किन्तु वस्तुतः यह समस्त कलाओं का विश्वकोष है, जैसा नाट्यशास्त्र में ही कहा गया है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन् न दृश्यते॥ (नाट्यशास्त्र 1/116)

शारदातनय ने भावप्रकाशन में नाट्यशास्त्र के दो प्रकार के मूलपाठ का उल्लेख

किया है- (1) बारह हजार श्लोकों वाला और (2) छ हजार श्लोकों वाला (षट्साहस्री संहिता)—

एवं द्वादशसाहस्त्रः श्लोकैरेकं तदर्थतः।
षड्भिः श्लोकसाहस्त्रैर्यो नाट्यवेदस्य सङ्ग्रहः। (भा.प्र.पृ.287)

सम्प्रति नाट्यशास्त्र के दो संस्करण उपलब्ध होते है- 1. निर्णय सागर मुम्बई से प्रकाशित 37 अध्याय वाला और 2. चौखम्बा संस्कृत सिरीज से प्रकाशित 36 अध्याय वाला। इनमें मुम्बई से प्रकाशित संस्करण की अपेक्षा चौखम्बा संस्कृत सिरीज से प्रकाशित संस्करण अधिक प्रामाणिक है। अभिनयगुप्त के अनुसार यह षट्त्रिंशक भरतसूत्रम् नाम से अभिहित है—

षट्त्रिंशकात्मकजगद्गगनावभाससंविन्मरीचिचयचुम्बितबिम्बशोभम्
षट्त्रिंशकं भरतसूत्रमिदं विवृण्वन् वन्दे शिवं श्रुतितदर्थं विवेकधाम।।

(अभिनवभारती-2)

नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य– नाट्यशास्त्र के नाट्योत्पत्ति नामक प्रथम अध्याय में नाट्य की उत्पत्ति, मण्डपाध्याय नामक द्वितीय अध्याय में प्रेक्षागृह की रचना, रङ्गदैवतपूजन नामक तृतीय अध्याय में रङ्गदेवता की पूजा का विधान किया गया है। चतुर्थ अध्याय में ताण्डव-लक्षण, पञ्चम अध्याय में पूर्वरङ्ग और षष्ठ अध्याय में रस का विवेचन हुआ है। भावव्यञ्जक नामक सप्तम अध्याय में भावों, अङ्गाभिनय नामक अष्टम अध्याय में आङ्गिक अभिनयों, उपाङ्गाभिनय नामक नवम अध्याय में हाथ-पैर इत्यादि अङ्गों के अभिनयों, चारी-विधान नामक दशम अध्याय में चारी (नृत्य की गति में भेद) तथा मण्डलविकल्पन नामक एकादश अध्याय में नृत्यगति की व्याख्या की गयी है। गतिप्रचार नामक द्वादश तथा कक्षाप्रवृत्तिधर्मी नामक त्रयोदश अध्याय में क्रमशः रङ्गभूमि में पात्रों के प्रवेश इत्यादि की विधियों तथा वृत्तियों और प्रवृत्तियों का विवेचन हुआ है। चतुर्दश और पञ्चदश अध्याय में वाचिक अभिनय, षोडश अध्याय में नाट्यलक्षण, छन्द, अलङ्कार, सप्तदश में काकुस्वर-विधान और भाषाओं का विवेचन, रूपकाध्याय नामक अष्टादश अध्याय में दशरूपकों तथा एकोनविंश और विंश अध्याय में कथावस्तु, सन्धियों, सन्ध्यङ्गों और भारती इत्यादि वृत्तियों के अङ्गों का वर्णन हुआ है। एकविंश में अभिनय और वेशभूषा इत्यादि सामान्याभिनय नामक द्वाविंश अध्याय में हावभाव, प्रेम की दस अवस्थाओं और युवतियों के अलङ्कार इत्यादि पर विचार किया गया है। त्रयोविंश अध्याय में स्त्री की प्रकृति, चतुर्विंश अध्याय में नायक-नायिका भेद और चित्राभिनय नामक पञ्चविंश अध्याय में अभिनय-विषयक निर्देश और नाट्योक्ति का विवेचन हुआ है। षड्विंश तथा सप्तविंश अध्याय में नाट्यप्रयोग,

अष्टाविंश में आतोद्य प्रयोग, एकोनत्रिंश में आतोद्य-विधान, त्रिंश में सुषिर आतोद्य का स्वरूप ,एकत्रिंश और द्वात्रिंश अध्याय में ताल और लय, त्रयोत्रिंश में गायक-वादक के गुण-दोष, चतुःत्रिंश में मृदङ्ग इत्यादि वाद्यों का विवेचन हुआ है। भूमिकापात्रविकल्पाध्याय नामक पञ्चत्रिंश अध्याय में नाट्यमण्डली की विशेषता, सूत्रधार, विट्, विदूषक इत्यादि का वर्णन हुआ है। षट्त्रिंश अध्याय में दो आख्यानों के साथ नाट्यावतार का विवेचन हुआ है। सप्तत्रिंश अध्याय वाले संस्करण में इस अध्याय के अन्तर्गत नहुष-विषयक द्वितीय आख्यान का वर्णन हुआ है।

भरत से पूर्ववर्ती आचार्य– महर्षि पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में शिलाली और कृशाश्व के नाट्यशास्त्र (नटसूत्र) का उल्लेख किया है— पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षनटसूत्रयोः', 'कर्मन्दकृशाश्वादिनि (पा.अ.4.3.110-111)। हिलेब्रान्ड के अनुसार भारतीय नाट्यसाहित्य की ये प्राचीनतम कृति होनी चाहिए। इनके अतिरिक्त भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के अन्त में अपने से पूर्ववर्ती कोहल, वात्स्य शाण्डिल्य और धूत्तिल— इन चार आचार्यों का नामोल्लेख किया है—

कोहलादिभिरेतैर्वा वात्स्यशाण्डिल्यधूर्तिलैः।
एतच्छास्त्रं प्रयुक्तं तु नराणां बुद्धिवर्धनम् ॥

अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की व्याख्या में अनेक बार कोहल के मतों को निर्दिष्ट किया है तथा सङ्गीताध्याय की व्याख्या तथा अन्य अध्यायों की व्याख्या में दत्तिल के मत का उल्लेख किया है किन्तु वात्स्य और शाण्डिल्य के मत को कहीं निर्दिष्ट नहीं किया है। नखकुट्ट और अश्मकुट्ट नाट्यशास्त्र से प्राचीन आचार्य माने जाते हैं नखकुट्ट और अश्मकुट्ट का उल्लेख विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में किया है। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरत के सौ पुत्रों (शिष्यों में) कोहल, दत्तिल, शाण्डिल्य और धूर्तिल के अतिरिक्त इन दोनों दत्तकुट्ट और अश्मकुट्ट का भी नामोल्लेख हुआ है। इनके अतिरिक्त भरत के पुत्रों में बादरायण का भी उल्लेख हुआ है जिनको सागरनन्दी ने बादरायण और बादरि नाम से निर्दिष्ट किया है। शातकर्णी का भी नाम भरत के पुत्रों में उल्लिखित है। नाट्यशास्त्र में सङ्गीतविषयक विवेचन में तुम्बुरु का भी नाम आया है।

नाट्यशास्त्र के टीकाकार– नाट्यशास्त्र पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी किन्तु वे सभी उपलब्ध नहीं होती। कुछ टीकाओं अथवा टीकाकारों के नाम का उल्लेख ही प्राप्त होता है जिनके आधार पर हम उन्हें नाट्यशास्त्र के टीकाकार के रूप में जान पाते हैं। इनमें से भरत-टीका, हर्षकृत वार्तिक, शाक्याचार्य राहुल कृत कारिकाएँ, मातृगुप्त कृतटीका का हमें केवल नाम या सङ्केत ही मिलता है। इनके अतिरिक्त अभिनवगुप्त ने अपने

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति' की व्याख्या में भट्टलोल्लट, शङ्कुक और भट्टनायक के मतों की समालोचना करके अपने मत को पुष्ट किया है।

मातृगुप्त– सुन्दरमिश्र ने अपने ग्रन्थ नाट्यप्रदीप (रचनाकाल 1613ई0) में नान्दीविषयक भरत के कथन की टीका करते हुए कहा है 'अस्य व्याख्याने मातृगुप्ताचार्यैः इयमुदाहृता'। राघवभट्ट ने अभिज्ञानशाकुन्तल और वासुदेव ने कपूरमञ्जरी की टीका में नाट्यविद्या के आचार्य के रूप में मातृगुप्त का उल्लेख किया है। कल्हण ने राजतरङ्गिणी में भी राजा तथा कवि के रूप में उल्लेख किया है। अभिनवगुप्त ने सङ्गीत-विषयक तथा शारदातनय ने नाट्यवस्तु-विषयक इनके मत का उल्लेख किया है। सागरनन्दी ने अपनी पुस्तक नाटकलक्षणरत्नकोश में इनके कई श्लोकों तथा शार्ङ्गदेव ने सङ्गीत के प्रमाणभूत आचार्य के रूप में उद्धृत किया है।

उद्भट– शार्ङ्गदेव ने अपने सङ्गीतरत्नाकर में भरत के नाट्यशास्त्र के एक प्राचीन टीकाकार के रूप में उद्भट का नामोल्लेख किया है। अभिनवगुप्त द्वारा उद्भट के अनेक मतों के उल्लेख से शार्ङ्गदेव का उद्भट के टीकाकार होने का मत पुष्ट भी हो जाता है किन्तु अभी तक वह टीका प्राप्त नहीं हुई है। अभिनवगुप्त ने वृत्ति के सन्दर्भ में उद्भट की तीन वृत्तियों को ही स्वीकार करने का उल्लेख किया है भरत के समान चार वृत्तियों का नहीं। उन्होंने सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र पर टीका लिखा था या नाट्यविद्या के कुछ ही प्रकरणों पर-यह बात स्पष्ट ज्ञात नहीं हो पाती।

भट्टलोल्लट— भट्टलोल्लट कश्मीरी पण्डित थे। अभिनवगुप्त ने अपनी टीका में रससूत्र की टीका के साथ ही साथ द्वादश, त्रयोदश, अष्टादश तथा एकविंशति अध्यायों की टीका में भट्टलोल्लट का पर्याप्त उल्लेख किया है। भट्टलोल्लट के समय के विषय में कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ये शङ्कुक से पूर्ववर्ती थे क्योंकि शङ्कुक ने भट्टलोल्लट के रससिद्धान्त का प्रत्यक्षतः खण्डन किया है। अभिनवगुप्त के अनुसार 'लोल्लट ने उद्भट के मत का विरोध किया था' से यह स्पष्ट होता है कि लोल्लट उद्भट से परवर्ती या समकालीन थे। इस प्रकार लोल्लट को उद्भट और शङ्कुक के मध्य में होना चाहिए। विद्वानों के अनुसार इनका समय नवीं शताब्दी है। इनकी भी नाट्यशास्त्र पर की गयी टीका उपलब्ध नहीं होती।

सर्वप्रथम लोल्लट ने ही रससूत्र की सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत किया तथा 'संयोगात्' से कार्यकारण रूप भाव-सम्बन्ध और निष्पत्ति पद का उत्पत्ति अर्थ स्वीकार किया। मीमांसक होने के कारण अभिधा को ही समस्त काव्यार्थ का साधन स्वीकार करते थे। इनके अनुसार शब्द की प्रतीति उसी प्रकार होती है जैसे कोई बाण अकेले ही कवच को

भेदकर शरीर में प्रवेश करके प्राणों को हर लेता है— **सोऽयमिषोरिव दीर्घदीर्घतरोऽभिधाव्यापार: (काव्यप्रकाश)।**

शङ्कुक– अभिनवगुप्त ने नाट्यविधा के विभिन्न विषयों पर शङ्कुक के मतों को अनेक स्थलों पर निर्दिष्ट किया है। कल्हड़ की राजतरिङ्गिणी में कश्मीर के शासक अजितापीड (813 ई.) के आश्रित पण्डितों में शङ्कुक का उल्लेख मिलता है। इन्होंने भी भरत के नाट्यशास्त्र पर टीका लिखा है। शार्ङ्गधरपद्धति और सूक्तमुक्तावली के अनुसार ये मयूर के पुत्र थे। हर्ष के आश्रित मयूर का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है अतः इन्हें सातवीं शती के उत्तरार्ध में होना चाहिए। किन्तु विद्वानों ने इस पर आपत्ति करके राजतरिङ्गिणी के आधार पर इनका समय नवीं शती माना है। रससूत्र पर की गयी इनकी व्याख्या अनुमितिवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने भट्टलोल्लट के अनुमितिवाद की समालोचना करके अपने मत को प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया है। इनके अनुसार रस अनुमितिगम्य है। विभावादि साधन और रस साध्य है। इनमें अनुमाप्य और अनुमापक भाव-सम्बन्ध है। इसके अनुसार चित्रतुरगन्याय से रस के अनुमान द्वारा सामाजिकों को रसानुभूति होती है।

भट्टनायक– भट्टनायक कश्मीर के शासक शङ्करवर्मन (883 से 902) के समकालीन थे। अतः इनका समय अभिनवगुप्त से कुछ ही पूर्व रहा होगा। भट्टनायक अभिव्यक्तिवाद के साथ-साथ उत्पत्ति तथा प्रतीतिवाद के सिद्धान्तों का भी खण्डन किया। ये ध्वनिविरोधी आचार्य थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'हृदयदर्पण' में ध्वन्यालोक के सिद्धान्तों का खण्डन किया है जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थ का उल्लेख जयरथ महिमभट्ट और रुय्यक ने भी किया है। भट्टलोल्लट और शङ्कुक की भाँति ये भी अभिधावादी थे किन्तु इन्होंने इसके अतिरिक्त दो और शब्द की शक्तियों को माना है- (1) भावकत्व और भोजकत्व। भरत के रस के विषय में इनका सिद्धान्त भुक्तिवाद नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने संयोगात् का अर्थ भाव्यभावक- सम्बन्ध और निष्पत्ति का तात्पर्य भुक्ति अर्थात् आस्वाद स्वीकार किया है। इनके अनुसार रस की निष्पत्ति सहृदय में होती है।

अभिनवगुप्त– अभिनवगुप्त ने अपने ग्रन्थों में अपना परिचय स्वयं विस्तार पूर्वक दिया है। इसके अनुसार उनके पूर्वज कन्नौज के निवासी थे। अनिवगुप्त से लगभग 200 वर्ष पूर्व इनके पूर्वज अत्रिगुप्त कन्नौज से कश्मीर जाकर बस गये। वस्तुतः इसके पीछे भी एक इतिहास है। तत्कालीन कश्मीर नरेश ललितादित्य (725-71) ने कन्नौज के राजा यशोवर्मन् (630 ई0 से 640 ई0) पर आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया। विद्वान् अत्रिगुप्त की विद्वत्ता से प्रभावित होकर ललितादित्य ने उन्हें कश्मीर बुलाया, वहीं

बसाया और जीविकोपार्जन हेतु विस्तृत भूसम्पत्ति भी प्रदान किया।

इसी वंश में पैदा हुए इनके पितामह वराहगुप्त के पुत्र नृसिंहगुप्त जो चुलुखक नाम से पुकारे जाते थे, अभिनवगुप्त के पिता थे। इनके पिता ही नहीं सम्पूर्ण वंश ही विद्वदग्रगण्य था। इनकी माँ बाल्यावस्था में द्विवङ्गत हो गयीं। माँ के अभाव में अभिनवगुप्त का जीवन वात्सल्यपूर्ण प्यार से रहित, शुष्क, नीरस, और वेदनापूर्ण हो गया। पत्नी के वियोग में इनके पिताजी कुछ दिनों के बाद विरक्त होकर वैराग्य ले लिये। माँ-बाप के आश्रय में तो इनका जीवन सुखी और सरस था अतः अभिनव ने सरस साहित्य का अध्ययन किया किन्तु इनका अभाव हो जाने पर उनका समस्त स्नेहस्रोत सूख गया, साहित्य से रुचि समाप्त हो गयी और शिव की भक्ति ने सरस हृदय में स्थान बना लिया।

अभिनवगुप्त के ग्रन्थों की संख्या 41 है जिनमें से इसकी 11कृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। मुख्य रूप से आनन्दवर्धन के ध्वन्यलोक पर 'लोचन' तथा नाट्यशास्त्र पर अभिनवभारती नामक टीका साहित्य जगत् में विशेष प्रसिद्ध है। ये ध्वनिसम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने तन्त्रशास्त्र और शैवागम पर भी ग्रन्थ लिखा है।

रससूत्र के व्याख्यान में इनका मत अभिव्यक्तिवाद नाम से अभिहित किया जाता है। इनके अनुसार 'संयोगत् का अर्थ 'व्यङ्ग-व्यञ्जकभावरूपात्' हैं और निष्पत्ति शब्द का अर्थ-अभिव्यक्ति है। रस की स्थिति सहृदय में होती है।

नाट्यशास्त्र-विषयक स्वतन्त्र ग्रन्थ

1. अभिनय दर्पण– यह आचार्य नन्दिकेश्वर की रचना है। काव्यमीमांसा 1.1 में नन्दिकेश्वर को रसविषयक आचार्य के रूप में तथा सङ्गीतरत्नाकर 1/16-17 में सङ्गीत के *आचार्य के रूप में याद किया गया है। सङ्गीत के प्रसङ्ग में आचार्य मतङ्ग ने नन्दिकेश्वर* को उद्धृत किया है। मतङ्ग चतुर्थ शती के आचार्य हैं। इस प्रकार मतङ्ग से पूर्ववर्ती होने के कारण नन्दिकेश्वर को तृतीय शताब्दी में होना चाहिए। अभिनयदर्पण में 384 श्लोक हैं। इसमें नाट्य की अभिनय-विधा का विस्तार पूर्वक विवेचन हुआ है। अभिनय की दृष्टि से नाट्य के तीन भेदों (नाट्य,नृत्त और नृत्य) का वर्णन करते हुए उनके प्रयोग के समय को भी बतलाया गया है। नन्दिकेश्वर ने नाट्य के छः तत्त्व बतलाएँ हैं— नृत्य, गीत, अभिनय, भाव, रस और ताल। इन तत्त्वों में प्रमुख तत्त्व अभिनय के आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक तथा उनके भेदोपभेदों के अतिरिक्त शिर, ग्रीवा, दृष्टि, हस्त और पाद विषयक अभिनय का अतिविस्तृत विवेचन हुआ है। अभिनयदर्पण में अभिनय से सम्बन्धित विषयों का विस्तृत विवेचन हुआ है।

2. दशरूपक– दशरूपक के कर्त्ता आचार्य धनञ्जय है। ये मालवा के राजा परमारवंशीय महाराज मुञ्ज के सभापण्डित थे। इनके पिता का नाम विष्णु था। इसका उल्लेख धनञ्जय ने स्वयं दशरूपक में किया है--

विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठी वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥

(दशरूपक 4.86)

मुञ्जराज एक महान् योद्धा तथा कवि भी थे। इसी कारण वे वाक्पतिराज उत्पलराज, अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, श्रीवल्लभ इत्यादि उपाधियों से विभूषित थे। मुञ्ज के भतीजे भोजराज ने स्वयं शृङ्गारप्रकाश और सरस्वतीकण्ठाभरण इत्यादि ग्रन्थों की रचना किया है।

बुहलर के अनुसार मुञ्ज अपने पिता सीयक की मृत्यु के पश्चात् 974 ई. में राजगद्दी पर बैठे और 995 ई. तक शासन किया। इण्डियन एन्टीक्वेरी के अनुसार उस चालुक्य राजा तैलप द्वितीय ने मालवनरेश मुञ्ज को हरा दिया, जिस की मृत्यु 997-998 में हुई। अतः मुञ्ज का समय 974 ई० से 995 माना गया है। इस प्रकार धनञ्जय का भी समय दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध ही निश्चित होता है।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें रूपक के मुख्य दस भेदों का विवेचन किया गया है। धनिक ने अपनी टीका का नाम दशरूपावलोक रखा है। धनञ्जय ने भी दशरूपक के 4.86 में दशरूप नाम का ही निर्देश किया है। इससे ज्ञात होता है। कि इसका दशरूप भी अपर नाम था। यह ग्रन्थ चार प्रकाश में विभक्त है। प्रथम प्रकाश में कथावस्तु और सन्धियों का निरूपण हुआ है। द्वितीय प्रकाश में नायक-नायिका भेद, नायिकाओं अलङ्कार और नाट्यवृत्तियों का निरूपण हुआ है। तृतीय प्रकाश में रूपकों के दश प्रकारों तथा चतुर्थ प्रकाश में रसों का वर्णन है।

3. अवलोक– यह दशरूपक पर धनिककृत टीका है। धनञ्जय ने मात्र तीन सौ कारिकाओं वाले दशरूपक में अत्यन्त संक्षेप में नाट्यशास्त्र-विषयक तथ्यों का प्रतिपादन किया था। धनिक की अवलोक टीका से ही धनञ्जय का दशरूपक अवलोकित हुआ। अवलोक की टीका से ज्ञात होता है कि धनिक विष्णु के पुत्र थे। इस प्रकार ये धनञ्जय के छोटे भाई थे। कुछ विद्वानों के अनुसार दशरूपक की कारिका और वृत्तिभाग के कर्त्ता एक ही व्यक्ति थे किन्तु अधिकांश विद्वान् दोनों के कर्त्ता को अलग-अलग मानते हैं क्योंकि अनेक स्थलों पर कारिकाओं और वृत्तिभाग में मतभेद दष्टिगोचर होता है। धनिक के जीवन के विषय में कोई तथ्य नहीं प्राप्त होता। हाल के अनुसार ये उत्पलराज के यहाँ

महासाध्यपाल थे। ये उत्पलराज महाराज मुञ्ज ही थे। धनिक ने नवसाहसाङ्कचरित का श्लोक दशरूपक की 2.40 टीका में उद्धृत किया है जिसकी रचना सिन्धुराज के समय में हुई थी। सिन्धुराज ने महाराज मुञ्ज के बाद शासन-भार को सभाँला। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि धनिक अपने बड़े भाई धनञ्जय के साथ मुञ्ज की सभा में थे। तदनन्तर सिन्धुराज के शासनकाल में अवलोक टीका का प्रणयन किया। अवलोक के अतिरिक्त धनिक ने 'काव्यनिर्णय' नामक ग्रन्थ लिखा था जिसकी सात कारिकाओं को अपने मत की पुष्टि में अवलोक टीका में उदधृत किया है। अवलोक में धनिक ने कुछ स्वरचित श्लोकों को भी उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है जिससे उनकी कवित्व प्रतिभा भी द्योतित होती है। अवलोक की शैली अतिसरल है।

4. नाटकलक्षणरत्नकोश– यह ग्रन्थ सागरनन्दी द्वारा विरचित है। इस ग्रन्थ में रूपक, पञ्च अवस्थाओं, भाषा के प्रकार, अर्थप्रकृतियों, अङ्क, पञ्चसन्धियों, पताकास्थानक, वृत्ति, अलङ्कार, रस, भाव, नायक-नायिका-भेद तथा उनके गुण इत्यादि का विस्तृत विवेचन हुआ है। सागरनन्दी ने अनेक ग्रन्थों का अनुशीलन करके इस ग्रन्थ की रचना किया है और ग्रन्थ के अन्त में उनमें से अनेक आचार्यों के प्रति श्रद्धा व्यक्त किया है। इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए है— 1. प्रो. एम. डिल्लन द्वारा 1937 में लन्दन से तथा 2. चौखम्बा संस्कृत सिरीज से हिन्दी अनुवाद के साथ। इसका विषय-विवेचन दशरूपक के अनुसार किन्तु अव्यवस्थित है। कहीं-कहीं तो भरत के नाट्यशास्त्र की सामग्री को ज्यों का त्यों रख दिया गया है।

5. नाट्यदर्पण– इसके कर्त्ता रामचन्द्र-गुणचन्द्र हैं। ये दोनों सुप्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य थे। नाट्यदर्पणसूत्र इन दोनों की सम्मिलित रचना है। यह ग्रन्थ चार विवेकों में विभक्त है जिनमें नाट्यविषयक दश-रूपकों, रस, भाव, अभिनय, तथा रूपक-सम्बन्धी विभिन्न तत्त्वों का विवेचन हुआ है। अनुमान है कि यह ग्रन्थ दशरूपक की प्रतिद्वन्दिता में लिखा गया। इसकी वृत्ति भी रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने ही लिखा है। इसमें प्राचीन भरत, कोहल, धनञ्जय आदि नाट्याचार्यों के मतों की समालोचना की गयी है। रामचन्द्र व्याकरण, नाट्यशास्त्र और साहित्य- शास्त्र के मूर्धन्य पण्डित थे। गुणचन्द्र का विशेष उल्लेख नहीं है। रामचन्द्र को प्रबन्धशतकार (सौ ग्रन्थों के रचयिता) के रूप में जाना जाता है। हेमचन्द्र का समय बारहवीं शताब्दी है अतः इन दोनों को भी बारहवीं शताब्दी में होना चाहिए।

6. भावप्रकाशन– इसके कर्त्ता शारदातनय हैं। ये अपने को शारदा के वरदपुत्र मानते थे अतः इनका नाम शारदातनय पड़ा। गोपालभट्ट इनके पिता तथा

लक्ष्मणभट्ट पितामह थे जो काशी में ही निवास करते थे। आचार्य दिवाकर ने इन्हें नाट्यशास्त्र की शिक्षा दिया था। आचार्य दिवाकर नाट्यशास्त्र के पूर्ण पण्डित थे जिनके एक ग्रन्थ का उल्लेख पूर्णसरस्वतीकृत मेघदूत की व्याख्या में हुआ है। शारदातनय ने भाव-प्रकाशन में कोहल, मातृगुप्त, हर्ष, सुबन्धु, आदि अनेक पूर्ववर्ती आचार्यों के साथ-साथ आनन्दवर्धन, रुद्रट, धनञ्जय, अभिनवगुप्त, धनिक, भोज एवं मम्मट के सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए उनकी समीक्षा किया है।भावप्रकाशन दस अधिकारों में विभक्त ग्रन्थ है जिनमें भाव, रस, रसभेद, नायक-नायिका, विवेचन हुआ है। इनका समय तेरहवीं शताब्दी माना जाता है।

7. रसार्णव सुधाकर– इसके कर्त्ता शिङ्गभूपाल हैं जिनका विस्तृत विवेचन भूमिका में आगे किया जाएगा।

8. नाटकचन्द्रिका– इसके कर्त्ता रूपगोस्वामी शिङ्गभूपाल से परवर्ती आचार्य हैं। इनका समय सोलहवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में स्वयं लिखा है कि मैं भरत के नाट्यशास्त्र और शिङ्गभूपाल के रसार्णवसुधाकर का अध्ययन करके इस ग्रन्थ का प्रणयन कर रहा हूँ। रूपगोस्वामी चैतन्यसम्प्रदाय के कृष्ण भक्त थे। इन्होंनें नाट्यविषयक लक्षणों को प्रस्तुत करके कुछ लक्षणों के उदाहरणों के रूप में स्वरचित पद्यों को उद्धृत किया है जो कृष्ण और राधा के वर्णनों से युक्त हैं।

अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्यविषयक विवेचन– उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्यविषयक तथ्य उपलब्ध होते हैं। इनमें से भोजराज (11शती) के शृङ्गारप्रकाश और सरस्वतीकण्ठाभरण— दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें नाट्यशास्त्रीय कुछ विवेचन प्राप्त होते हैं। शृङ्गारप्रकाश के 11 तथा 36 प्रकाश में रसविचार और 12 तथा 31 प्रकाश में क्रमशः रूपकों और नायक-नायिका का विवेचन हुआ है। इस प्रकार सरस्वतीकण्ठाभरण के पाँचवें परिच्छेद में रस, भाव, नायक-नायिका भेद, सन्धियों और वृत्तियों का निरूपण हुआ है। इसी प्रकार हेमचन्द्र सूरि (बारहवीं शताब्दी) के काव्यानुशासन के द्वितीय अध्याय में रस और भाव, सप्तम अध्याय में नायक-नायिका भेद तथा अष्टम अध्याय में दृश्य और श्रव्य काव्य का निरूपण हुआ है। विद्यानाथ (चौदहवीं शताब्दी) के प्रतापरुद्रयशोभूषण नामक ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में नायक, तृतीय प्रकरण में नाट्य और चतुर्थ प्रकरण में रस का विवेचन हुआ है। विश्वनाथ कविराज (चौदहवीं शताब्दी) के साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेद में नायक-नायिका तथा षष्ठ परिच्छेद में रस का प्रतिपादन हुआ है।

शिङ्गभूपाल

वंशपरिचय– रसार्णवसुधाकर में मङ्गलाचरण के पश्चात् कतिपय कारिकाओं में शिङ्गभूपाल ने अपना परिचय दिया है। उसके अनुसार वे शूद्रवर्ण में उत्पन्न राजा थे।[1] शूद्रों में रेचल्ल प्रभा दाचय नामक आप के प्रपितामह थे जो अत्यन्त उदार, कलामर्मज्ञ और समृद्धिशाली राजा थे। युद्धकौशल तथा भुजबल के कारण युद्धस्थल में विजयलक्ष्मी सदैव उन्हें प्राप्त होती थीं। लक्ष्मी की स्थिरता के कारण उन्हें खड्गनारायण की उपाधि मिली थी।[2] भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के समान उदार गुणों वाली वोचमाम्बा नामक उनकी पत्नी थी। उन दोनों-दाचयनायक और वोचमाम्बा से कल्पवृक्ष के समान और शत्रुवीरों को भयभीत करने वाले तीन पुत्र हुए— 1. शिङ्गप्रभु 2. वेन्नम नायक और 3. रेचमहीपति।[3]

दाचयनायक की मृत्यु होने पर वंशपरम्परा के अनुसार तीनों भाइयों में ज्येष्ठ होने के कारण शिङ्गप्रभु राजा हुए। उस शिङ्गभूप के शासन में धर्म समृद्ध हुआ।[4] तथा विनीत (सज्जन) लोगों की उन्नति और अविनीत (दुष्ट) लोगों का पतन हुआ।[5] उस शिङ्गभूप के अनन्त और माधव नामक दो लोकरक्षक पुत्र हुए।[6] शिङ्गभूप के अनुज रेचमहीपति को अत्युत्कृष्ट कठारिराय उपाधि से सम्पन्न नागयनायक नामक पुत्र था।[7] शिङ्गभूप के एक भाई वेन्नमनायक के पुत्र के विषय मे कोई उल्लेख नहीं किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि अल्पायु में उनकी मृत्यु हो गयी होगी।

शिङ्गप्रभु के पश्चात् राजा में पाये जाने वाले दोषों से रहित होने के कारण अनपोत उपाधि वाले अनन्त ने शासनभार सँभाला। कनिष्ठ पुत्र माधव प्रतापी और ख्यातिलब्ध कीर्ति वाले नायक थे जिनके वेदगिरीन्द्र इत्यादि प्रमुख पुत्र हुए।[8] शिव की पत्नी पार्वती, शत्रुघ्न की पत्नी श्रुतिकार्ति तथा अर्जुन की पत्नी सुभद्रा के समान पति को आनन्दित करने वाली अन्नमाम्बा नामक अनन्त की पत्नी थी।[9] राजा अनन्त ने अनेकों सोमयज्ञ किया।[10] ब्राह्मणों को दान दिया।[11] और अनेक युद्धों में शत्रुओं को परास्त किया।[12] उन दोनों अनन्त और अन्नमाम्बा से दो पुत्र हुए-प्रथम देवगिरीश्वर और द्वितीय शिङ्गभूपाल।

---

(1) **द्रष्टव्यः**– 1. 4-5
(2) **द्रष्टव्यः**– 1. 5-7
(3) **द्रष्टव्यः**– 1. 9
(4) **द्रष्टव्यः**– 1. 10
(5) **द्रष्टव्यः**– 1. 11
(6) **द्रष्टव्यः**– 1. 15
(7) **द्रष्टव्यः**– 1. 14
(8) **द्रष्टव्यः**– 1. 16
(9) **द्रष्टव्यः**– 1. 24-25
(10) **द्रष्टव्यः**– 1. 19
(11) **द्रष्टव्यः**– 1. 21
(12) **द्रष्टव्यः**– 1. 22-23

राजा अनन्त के ज्येष्ठ पुत्र देवगिरीश्वर का अपने पिता के शासन-काल में ही देहावसान हो जाने के कारण शिङ्गभूपाल राज्य के उत्तराधिकारी हुए। वंशपरम्परा से प्राप्त श्रीसम्पन्त्र राजाचल नामक राजधानी थी। इनका राज्य दक्षिण में श्रीशैल से लेकर उत्तर में विन्ध्यपर्वत तक विस्तृत था।[1] शिङ्गभूपाल के अनपोत, दाचय, वल्लभ, वेदगिरिस्वामी, माद और दाय-ये छः पुत्र थे।[2]

शिङ्गभूपाल का वंशवृक्ष

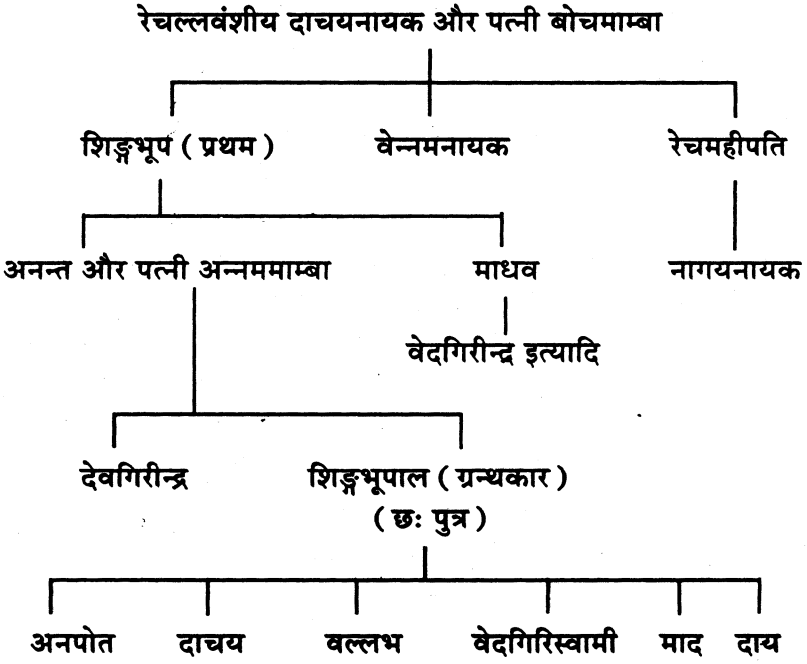

(1) द्रष्टव्यः– 1. 41-42

(2) द्रष्टव्यः– 1.35

शिङ्गभूपाल का जीवन– आचार्य शिङ्गभूपाल तेजवान् और प्रतापी राजा थे। उनके न्याय-अन्याय के ज्ञान तथा गुणों से प्रभावित अन्य सभी राजागण अपने न्याय-अन्याय, गुणदोष और स्थान का विचार करके उनके सामने नतमस्तक रहते थे।[1] उनके युद्ध से पराजित हुए राजा लोग अपनी रानियों के सामने जाकर लज्जा का अनुभव करते थे।[2] वे विद्वानों का आदर करते थे और उन्हें माणिक्य, जमीन, गृह सुवर्ण इत्यादि का दान देकर सर्वदा परितुष्ट करते थे।[3] वे सज्जन-पुरुषों तथा कलाओं के अतिशय प्रेमी थे और अपने शासन में उनको पूर्णरूपेण पुष्ट करते थे।[4] उनके पुत्र भी अपने-अपने क्षेत्र में उत्युत्कृष्टता को प्राप्त किये थे।[5] उनका राज्य समृद्धि-वैभव से भरपूर, योग्य और अनुपम योद्धाओं से सम्पन्न, विद्वानों से सुशोभित और सन्मित्रों से वृद्धि को प्राप्त था। उनके राज्य में किसी वस्तु का अभाव नहीं था। उनके तेजोमय, ओजस्वी, पराक्रमी और यशस्वी व्यक्तित्व के सम्मुख सभी शत्रु नतमस्तक रहते थे। इस प्रकार शिङ्गभूपाल का जीवन राजशाही तथा सुखमय था।

शिङ्गभूपाल का व्यक्तित्व– चमत्कारचन्द्रिका के कर्ता आचार्य विश्वेश्वर कविचन्द्र शिङ्गभूपाल के समृद्धिवैभव, चतुर्दिक विस्तृत प्रताप और व्यक्तित्व से विशेष प्रभावित थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ चमत्कारचन्द्रिका में इनके जीवन की विभिन्न घटनाओं के साथ-साथ उनके शारीरिक सौष्ठव का विविध उपमानों द्वारा अत्यधिक मनोरम और स्वाभाविक चित्रण किया है। जैसे कि—

पल्लवकोमलपाणितलानामुन्नतमांसलवक्षसिजानाम् ।
मानसमुत्तममानवतीनां रक्ततरं त्वयि शिङ्गनृपालः ॥

(चमत्कारचन्द्रिका 1.38)

अर्थात् पल्लव (नये पत्ते) के समान कोमल हथेलियों वाली तथा समुन्नत और मांसल स्तनों वाली परम मानवती (ललना) लोगों का मन तुम्हारे प्रति प्रगाढ़ रागयुक्त रहता है।

शिङ्गभूपाल तेजविशेष से सम्पन्न प्रतापी राजा थे। उनका समृद्ध और विस्तृत राज्य उनकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और अपरिमित शौर्य का स्पष्ट प्रमाण है। इनका रणकौशल अद्वितीय था। इनके धनुष की टङ्कार सुन कर ही शत्रुराजा भयभीत हो जाते थे।

---

(1) **द्रष्टव्यः–** 1. 32
(2) **द्रष्टव्यः–** 1. 34
(3) **द्रष्टव्यः–** 1. 31
(4) **द्रष्टव्यः–** 1. 30
(5) **द्रष्टव्यः–** 1. 37

इनके तेजसम्पन्न व्यक्तित्व, ओजस्विता, पराक्रम और यशस्विता के कारण शत्रु सर्वदा नतमस्तक रहते थे। कलिङ्गराज गजपति ने तो इनसे पराजित होकर अपने विनाश से सशङ्कित होने के कारण इनके साथ अपनी पुत्री का विवाह तक कर दिया—

शिङ्गक्षोणिभुजः कलिङ्गकुभुजे क्रुद्धस्य तस्मिन्क्षणे
दत्ता तत्तनयामुपायनतया लोकोत्तमां पश्यतः।
व्यावृत्ता धनुषः कटाक्षसरणिस्तद्भूतलालोकिनी
दृक्कोणं परिहृत्य रागमहिमा चित्ते परं चेष्टते।

(चमत्कारचन्द्रिका 5.16)

यद्यपि इनके राज्य की सीमा अत्यधिक विस्तृत थी तथापि इनके अनुशासन की कला से प्रजा की सुखसमृद्धि, जनहितता तथा प्रजारञ्जकता में कोई व्यवधान नहीं था। उनके अलौकिक गुण और अनुपम गौरव के कारण उनकी उज्ज्वलकीर्त्ति दिगन्तरालों में पूर्णरूपेण चमकती थी—

श्रीशिङ्गधरणीश! तव कीर्तिपरम्परा
स्पर्धते चन्द्रिकापूरैर्दृशां बलवदाश्रयात् (चमत्कारचन्द्रिका 8/8) इत्यादि।

शिङ्गभूपाल प्रजावत्सल, दिग्विजयी, प्रतापी, न्यायप्रिय, उदार, दानी, यशस्वी, और शरणागत वत्सल राजा थे। इसके साथ ही विद्वानों, कवियों, कलाकारों के आश्रयदाता तथा स्वयं भी कलाप्रिय, कला के ज्ञाता, कवि और विद्वान् थे। कवि विश्वेश्वर कविचन्द्र ने चमत्कारचन्द्रिका में अपने आश्रयदाता के विपुलगुणों से प्रभावित होकर अनेक प्रशंसात्मक श्लोकों द्वारा अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया है।

शिङ्गभूपाल का कवित्त्व– एक सफल राजा होने के साथ-साथ शिङ्गभूपाल का सरस्वती पर भी पूर्ण अधिकार था। वे व्याकरण साहित्य, अलङ्कार और नाट्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ-साथ रसिक, सरस और प्रौढ़ कवि तथा निष्पक्ष समालोचक भी थे। इसी लिए चमत्कार-चन्द्रिका में कविचन्द्र ने इन्हें 'सर्वज्ञ' उपाधि से विभूषित किया है- विद्यादैवत तात तावक (?) गुरौ सर्वज्ञचूडामणौ (4.23)। सङ्गीतरत्नाकर की टीका में भी इन्हें इसी उपाधि से विभूषित किया गया है— सम्यग्व्याख्याकुशलः सर्वज्ञः शिङ्गभूप एवैकः (1/11 की टीका)।

नारीचित्रण– प्रकृति और नारी के सौन्दर्यात्मक स्वरूप का सजीव चित्रण करना कवियों का प्रमुख विषय रहा है। रसिक कवि शिङ्गभूपाल भी इससे पूर्णतः प्रभावित थे। इनके प्रकृति-परक वर्णनों में निरीक्षण की नवीनता, सहृदय की सरसता तथा कल्पना की कमनीयता दृष्टिगोचर होती है। नारी-सौन्दर्य को तो अपने असाधारण रचना-कौशल

द्वारा ऐसा सजाया है कि सरस सहृदय उसमें बार-बार गोता लगाते हुए उसी में डूबा रहना चाहता है। नववय वाली मुग्धा नायिका का प्रतीयमान अर्थों से सुसज्जित चित्रण इनके सौन्दर्याभिभूति को अभिव्यञ्जित करता है—

उल्लोलितं हिमकरे निविडान्धकार-
मुत्तेजितं विषमसायकबाणयुग्मम् ।
उन्मज्जितं कनककोरकयुग्ममस्या-
मुल्लासिता च गगने तनुवीचिरेखा ॥

अर्थात् इस नायिका के चन्द्रमा (मुख) पर चञ्चल घना अन्धकार (काला बाल) लहरा रहा है और कठिन पंखयुक्त दो बाण (दोनों नयन) तीखे हो गये हैं। सुवर्ण के समान दो कलियाँ (गौर स्तन) बाहर निकल गये हैं तथा आकाश (पेट) पर अत्यन्त पतली तरङ्गों (त्रिवली) की रेखा (पंक्ति) हो गयी है।

शिङ्गभूपाल नारियों के नखशिख-चित्रण तथा उनके मनोभावों के कुशल पारखी हैं। विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रसङ्ग में उनके द्वारा दिये गये स्वनिर्मित उदाहरण में विरहिणी नायिका की मनोव्यथा का अत्यन्त मार्मिक और स्वाभाविक चित्रण हुआ है—

दूरे तिष्ठति सोऽधुना प्रियतमः प्राप्तो वसन्तोत्सवः
कष्टं कोकिलकूजितानि सहसा जातानि दम्भोलयः ।
अङ्गान्यवश्यानि याचिकतां यातीव मे चेतना
हा कष्टं मम दुष्कृतस्य महिमा चन्द्रोऽपि चण्डायते ॥

अर्थात् (विरहिणी नायिका कहती है कि) वह (मेरा) प्रियतम (इस समय मुझसे) दूर (देश) में रह रहा है और वसन्तोत्सव आ गया। यह कष्ट (की बात है) कि (इस समय होने वाली) कोयल की कूजन मेरे लिए वज्र (के समान) हो गयी है। मेरे अङ्ग (मेरे) वश में नहीं है। मेरी चेतना मानो याचकता को प्राप्त हो रही है (अर्थात् याचना करने वाली हो गयी है)। मेरे दुर्भाग्य की ही यह महिमा है कि (शीतल) चन्द्रमा भी मेरे लिए प्रचण्ड ताप उगल रहा है-यह कष्ट का विषय है।

प्रियतम के थोड़ा सा आने में देर करने पर प्रियतमा की मानसिक दशा का ऐसा सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण शिङ्गभूपाल की सरसता और रसिकता का स्पष्ट प्रमाण है—

चिरयति मनाक् कान्ते कान्ता निरागसि सोत्सुका
मधु मलयजं माकन्दं वा निरीक्षितुमक्षमा ।
गलितपतितं नो जानीते करादपि कङ्कणं
परभृतरुतं श्रुत्वा बाष्पं विमुञ्चति वेपते ॥

अर्थात्— (अन्य स्त्री के साथ सम्भोग न करने के कारण) अपराध-रहित प्रियतम के थोड़ा सा देर कर देने पर उत्सुक प्रियतमा मधुर चन्दन को अथवा अशोक वृक्ष को देखने में असमर्थ हो जाती है। हाथों से निकल कर गिरे हुए कङ्गन को भी नहीं जान पाती। कोयल की कूँजन को सुनकर आँसू बहाने लगती है और काँपने लगती है।।

दूसरी नायिका के साथ समागम का अपराध करके आने वाले प्रियतम को वक्रोक्ति द्वारा कोई मुग्धा प्रियतमा किस चातुरी से उलाहना देती है- यह शिङ्गभूपाल के इस श्लोक में बडी. रसिकतापूर्वक चित्रित किया गया है—

को दोषो मणिमालिका यदि भवेत्कण्ठे न किं शङ्करो
धत्ते भूषणर्धचन्द्रममलं चन्द्रे न किं कालिमा।
तत्साध्वेव कृतं कृतं भणितिभिर्नैवापराद्धं त्वया
भाग्यं द्रष्टुनीशयैव भवतः कान्तापराद्धं मया।।

अर्थात्— यदि मणिमालिका (मणिनिर्मित माला) गले में नही है तो इसमे दोष ही क्या है (अर्थात् कोई दोष नहीं है) क्या शङ्कर जी निर्मल अर्धचन्द्र को धारण नहीं करते (अर्थात् अवश्य धारण करते हैं।) और उस चन्द्रमा में क्या कालिमा (दाग) नहीं है (अर्थात् अवश्य है) तो आपने (परनायिका से सम्भोग करके) अच्छा ही किया है, अच्छा ही किया है।(यह तो अपराध मेरा है कि) मै आप के इस सौभाग्य को देखने के लिए सक्षम नहीं हूँ— इस प्रकार (वक्रीक्ति से) कहने वाली नायिका के प्रति मैंने (परस्त्रीगमन का) अपराध किया है।

किसी प्रियतम द्वारा सङ्केत देकर सङ्केत-स्थल पर न पहुँचने के कारण विप्रलब्धा नायिका की मनोदशा का स्वाभाविक चित्रण भी दर्शनीय है—

चन्दबिम्बमुदयाद्रिमागतं पश्य तेन सखि! वञ्चिता वयम् ।
अत्र किं निजगृहं नयस्व मां तत्र वा किमिति विव्यथे वधूः।।

अर्थात्— रे सखी! चन्द्रबिम्ब उदयाचल को आ गया अर्थात् चन्द्रमा उदित होने वाला है और (संङ्केत करके इस स्थान पर न आने वाले नायक ने) हम लोगों को धोखा दिया है (अब) यहाँ रहने से क्या लाभ? मुझे अपने घर ले चलो अथवा वहाँ भी चलने से क्या लाभ? इस प्रकार वधू व्यथित हो गयी।

सम्पूर्णयौवना नायिका के अङ्गों को निर्माण करने वाले ब्रह्मा ने तो उसमें सुकृत को ही उडेल दिया है—

उत्तुङ्गौ कुचकुम्भौ रम्भास्तम्भोपमानमुरुयुगम्।
तरले दृशौ च तस्याः सृजता धात्रा किमाहितं सुकृतम्।।

इसी प्रकार शिङ्गभूपाल के अन्य स्त्री-विषयक चित्रित ये स्थल अति मार्मिक, सरस और स्वाभाविक हैं— आकीर्णघर्मजल.....(पृ.३५) नामव्यतिक्रम.....(पृ.२५८) कान्ते सागसि.....(पृ.३४) निःश्वासोल्लसदुन्नतस्तनतटं.....(पृ.३७) केलिगृहं ललित-शयनं.....(पृ.४६) निशङ्क नितरां.....(पृ.३६) सलीलं धम्मिल्ले.....(पृ.५२) आकर्ण्य.....(पृ.७७) उन्मीलननवमालतीपरिमल.....(पृ.२०८) अश्रान्तकण्टकोद्.....(पृ.२१६) इत्यादि।

समालोचकत्त्व– सहृदय और सरस कवित्व के साथ-साथ शिङ्गभूपाल में निष्पक्ष समालोचना की कुशलता भी विद्यमान है। इन्होंने भोज, रुद्रट, शारदातनय, धनञ्जय इत्यादि प्रसिद्ध आचार्यों के मतों की एक ओर तो यथास्थान समालोचना करते हुए उनके मतों का खण्डन करके अपने मत को प्रतिष्ठापित किया है तथा अन्यत्र समुचित स्थलों पर उनके मतों के प्रति श्रद्धाभाव प्रदर्शित करते हुए अङ्गीकार भी किया है। जैसे— 2.159 में भोज द्वारा कहे गये गर्व, स्नेह, धृति और मति नामक स्थायीभाव और उनसे होने वाले उद्धत, प्रेय, शान्त और उदात्त रस के लक्षण में दिये गये उदाहरणों और उनकी भोजकृत व्याख्या को उद्धृत करके खण्डन करते हुए उनका अपने अनुसार समुचित समाधान दिया है।.

इसी प्रकार वृत्तियों के निरूपण करने के प्रसङ्ग में भारती, सात्त्वती, आरभटी तथा कैशिकी-इन चार वृत्तियों के अतिरिक्त भोज द्वारा शृङ्गारप्रकाश में निरूपित इस वृत्तियों के मिश्रण से निष्पन्न मिश्रा नामक पाँचवी वृत्ति का 1.286 में आचार्य भरत द्वारा वृत्तियों के प्रयोग का रस-विशेष से सम्बन्ध निरूपित करने के कारण खण्डन किया है और उसके मिश्रण से निष्पन्न मिश्रा वृत्ति के प्रति अपनी उदासीनता को प्रकट किया है।

जुगुप्सा नामक व्यभिचारीभाव के प्रसङ्ग में अहृद्यपदार्थों के दर्शन और श्रवण से उत्पन्न होने वाली जुगुप्सा के प्रसङ्ग में धनञ्जय द्वारा दशरूपक में निरूपित घृणा और शुद्धा नामक जुगुप्सा के दो भेदों का 2.150 में श्रवण से उत्पन्न जुगुप्सा में ही अन्तर्भाव माना है। इसी प्रकार किसी अज्ञात नाम वाले आचार्य द्वारा प्रतिपादित ऐश्वर्यादि से उत्पन्न मद को इन्होंने 2.124 में गर्व का भेद माना है। आचार्य धनञ्जय ने दशरूपक में सन्ध्यङ्गों में सन्ध्यन्तरों का अन्तर्भाव किया है किन्तु शिङ्गभूपाल ने सन्ध्यन्तरों के सन्ध्यङ्गों में अन्तर्भाव को निरासित करके उनका अलग-अलग निरूपण किया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिङ्गभूपाल एक प्रतापी राजा तथा सरस कवि होने के साथ ही साथ एक सफल आलोचक भी थे।

शिङ्गभूपाल का काल– शिङ्गभूपाल के समय-सीमा-निर्धारण की दृष्टि से रसार्णवसुधाकर में उदधृत ग्रन्थों के कर्त्ताओं तथा अन्य आचार्यों द्वारा उद्धृत शिङ्गभूपाल-

विषयक तथ्यों का अनुशीलन अपरिहार्य है। इन्हीं के आधार पर शिङ्गभूपाल का कालनिर्धारण करना उपयुक्त है।

रसार्णवसुधाकर में भोतकृत शृङ्गारप्रकाश और शारदातनय कृत भाव-प्रकाश के तथ्यों को प्रमुखता से उद्धृत करके उनकी समालोचना की गयी है। इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र के प्रणेता के रूप में आचार्य भरत को स्मरण किया गया है। रुद्रट, शार्ङ्गदेव, दशरूपककार धनञ्जय के भी मतों को आवश्यकतानुसार यथास्थान उद्धृत किया गया है। इन आचार्यों में शारदातनय सबसे परवर्ती आचार्य हैं। विद्वानों ने इनका समय 1100 से 1300 ईसवीय के मध्य में माना है। इस प्रकार शिङ्गभूपाल 1300 ईसवीय से बाद के आचार्य निर्धारित होते हैं।

शिङ्गभूपाल के नाट्यविषयक ग्रन्थ रसार्णवसुधाकर ने परवर्ती आचार्यों को विशेष रूप से प्रभावित किया जिनमें आचार्य विश्वेश्वर कविचन्द्र तथा आचार्य रूपगोस्वामी प्रमुख हैं।आचार्य कविचन्द्र शिङ्गभूपाल की राजसभा के सम्मानित पण्डित थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ चमत्कारचन्द्रिका में शिङ्गभूपाल द्वारा विरचित कतिपय श्लोकों को भी सङ्कलित किया है। वस्तुतः चमत्कारचन्द्रिका में कवि ने अपने आश्रयदाता शिङ्गभूपाल का यशोगान ही किया है। विद्वानों ने आचार्य विश्वेश्वर कविचन्द्र का काल 1300 से 1400 ईसवीय के मध्य माना है। अत एव शिङ्गभूपाल का भी समकालिक होने के कारण यही काल निर्धारित होता है।

नाटकचन्द्रिका रूपगोस्वामी ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही भरत के नाट्यशास्त्र और शिङ्गभूपाल के रसार्णवसुधाकर के अनुशीलन करने की बात को स्वीकार किया है—

वीक्ष्य भरतमुनिशास्त्रं रसपूर्वसुधाकरम् ।
लक्षणमतिसङ्क्षेपाद्विलिख्यते नाटकस्येदम् ।। (नाटकचन्द्रिका, 1)

रूपगोस्वामी का समय 1490 से 1553 ईसवीय के मध्य निर्धारित किया गया है। इस प्रकार शिङ्गभूपाल का इनसे पूर्ववर्ती होना स्वतः सिद्ध हो जाता है।

टीकाकार मल्लिनाथ ने कुमारसम्भव 7.91 की टीका में रसार्णवसुधाकर को उद्धृत करते हुए कहा है—

तदुक्तं भूपालेन–
कौशिकी स्यात्तु शृङ्गारे रसे वीरे तु सात्त्वती ।
रौद्रवीभत्सयोर्वृत्तिर्नियतारभटी पुनः ।।
शृङ्गारादिस्वभावैष रसेष्विष्टा तु भारती ।। रसार्णव 1/288

इसी प्रकार रघुवंश 6/12 की टीका में भी रसार्णवसुधाकर को उद्धृत करते हुए

कहा है—

अत्र शृङ्गारलक्षणं रससुधाकरे-

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।

नीता सदस्यरस्यत्वं रतिश्शृङ्गार उच्यते ॥ (रसार्णव 2/171)

रतिरिच्छाविशेषः, तच्चोक्तं तत्रैव-

यूनोरन्योऽन्यविषयस्थायिनीच्छा रतिस्स्मृता। (रसार्णव 2/108 पू.0)

इससे यह स्पष्ट होता है कि मल्लिनाथ के समय तक शिङ्गभूपाल का रसार्णव-सुधाकर निःसन्देह प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुका था। मल्लिनाथ का समय 1422 से 1426 ईसवीय निर्धारित किया गया है। अतः शिङ्गभूपाल मल्लिनाथ के समय 1422 से पहले हुए हैं।

इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिङ्गभूपाल का राज्यकाल तथा रचनाकाल 1330 से 1400 ईसवीय के मध्य होना चाहिए।

शिङ्गभूपाल की कृतियाँ– शिङ्गभूपाल एक सफल शासक राजा होने के साथ महान् आचार्य और उत्कृष्ट पण्डित भी थे। ये साहित्य के अतिशय प्रेमी थे जिसका निदर्शन हमें रसार्णवसुधाकर से स्वयं प्राप्त हो जाता है। इनके द्वारा रसार्णवसुधाकर में उदाहरण के रूप में दिये गये स्वरचित पद्य उनकी उत्कृष्ट काव्यकला के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इनका प्रिय रस शृङ्गार था जिसमें उन्होंने नायिकाओं की विभिन्न अवस्थाओं तथा उन-उन दशाओं में उनके मनोभावों का सूक्ष्म तथा स्वाभाविक चित्रण किया है। इसके साथ ही ये सङ्गीतशास्त्र में निष्णात थे। तद्विषयक इनकी सङ्गीतरत्नाकर पर सङ्गीतसुधाकर नामक टीका इनके सङ्गीतज्ञान की उत्कृष्टता का उदाहरण है। सम्प्रति इनके ये ग्रन्थ हैं— (क) शास्त्रीय ग्रन्थ— 1- रसार्णवसुधाकर, 2- नाटकपरिभाषा, 3- सङ्गीतरत्नाकर की सङ्गीतसुधाकर नामक टीका। (ख) साहित्यिक ग्रन्थ— 4- कुवलयावली नाटिका और 5- कन्दर्पसम्भव।

1- रसार्णवसुधाकर– इसका विस्तृत विवेचन इसी ग्रन्थ की भूमिका में ही किया जाएगा।

2- नाटकपरिभाषा– यह 289 श्लोकों वाला शिङ्गभूपाल का लघुकाय ग्रन्थ है। इसमें नाम के अनुरूप नाटकविषयक परिभाषिक शब्दों का विवेचन किया गया है।

3- सङ्गीतसुधाकर टीका– शिङ्गभूपाल के सभापण्डित शार्ङ्गदेव ने सङ्गीत-रत्नाकर नामक ग्रन्थ की रचना किया है जिसमें सङ्गीतशास्त्र के विविध विषयों पर साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ सङ्गीतशास्त्र के सम्यग्ज्ञान के लिए सर्वश्रेष्ठ

है। आज तक इस ग्रन्थ के समान किसी अन्य ग्रन्थ का प्रणयन नहीं हो सका है। विषयवस्तु की विस्तृतता के कारण यह उपजीव्य-ग्रन्थ सङ्गीतज्ञों के लिए दुरूह है। अतः इसको सरल बनाने के लिए शिङ्गभूपाल ने सङ्गीतशास्त्र का सम्यक् अध्ययन करके इस ग्रन्थ पर सङ्गीतसुधाकर नामक टीका लिखा है। इनकी यह टीका सङ्गीतज्ञों को सङ्गीतरत्नाकर को समझने के लिए परमोपयोगी तथा प्रामाणिक है।

4. कुवलयावली नाटिका– शिङ्गभूपाल कृत चार अङ्कों में विभक्त यह एक लघु नाटिका है। यह त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज से 1941 में प्रकाशित भी हो चुकी है। इसके प्रारम्भिक परिचय-वर्णन में ही इसे शिङ्गभूपाल की रचना माना गया है— श्रीमता शिङ्गभूपालेन प्रणीताम्...(कुवलयावली 1/11)। इस शिङ्गभूपाल की खड्गनारायण उपाधि थी- खण्ड्गनारायणेन (कुवलयावली 1/8)। इसके कतिपय श्लोकों को शिङ्गभूपाल ने रसार्णवसुधाकर में उदाहरणों के रूप में उद्धृत किया है और उन्हें अपने द्वारा कृत कहा है। इसका 'रत्नपञ्चालिका' यह दूसरा नाम भी उपलब्ध होता है। सहृदयों के लिए शिङ्गभूपालकृत नाटकीय उत्कर्षों से युक्त और रसानन्दप्रवाहिणी यह नाटिका हृदयसंवेद्य है—

पूर्णेयं शिङ्गभूपेन कविता मधुजल्पितैः ।
रत्नपञ्चालिका नाम नाटिका रसपेटिका ॥ (कुवलयावली की पुष्पिका)

कुवलयावली का कथानक शिङ्गभूपाल की कल्पना की उपज है। नायक कृष्ण तो प्रधान पुरुष हैं किन्तु कुवलयावली कल्पित नायिका है। स्वयं कन्या का रूप धारण करने वाली पृथ्वी कन्या रूप में नारद द्वारा रानी रुक्मिणी के पास भेज दी जाती है। नारद द्वारा दी गयी मुद्रा के प्रभाव से वह स्त्रियों को तो स्त्री और पुरुषों को रत्न की पुतली प्रतीत होती है। एक दिन वह अपनी सखी चन्दलेखा के साथ राजोद्यान में गयी और वहाँ साम को कालयवन को परास्त करके लौटे हुए कृष्ण को देख लिया। कृष्ण ने भी चन्द्रलेखा से बात करते हुए रत्न की पुतली के समान प्रतीत होने वाली उस कन्या को देख लिया । उसी समय संयोगात् उद्यान में क्रीड़ा करती हुई उसकी नारदप्रदत्त अङ्गूठी गिर गयी। अङ्गूठी के गिरने से उसका प्रभाव समाप्त हो गया। प्रभाव-मुक्त हो जाने के कारण उसका नारी-सौन्दर्य पुरुषों के लिए दर्शनीय हो गया। उसके नारी-सौन्दर्य को देख कर कृष्ण का मन उस कन्या पर आकृष्ट हो गया और दोनों सखियाँ राजभवन को चली गयीं। प्रेमविह्वल कृष्ण उसकी गिरी हुई अगुङ्गी को पा गये और उस पर उत्कीर्ण लेख से उन्हें पूरा रहस्य ज्ञात हो गया। पुनः उसी समय जब वह कुवलयावली नामक कन्या अङ्गुठी को खोजते हुए उद्यान में आयी तब कृष्ण ने स्वयं उसकी अङ्गुठी को उस अङ्गुली में पहना दिया। उसी

समय दोनों के हृदय में परस्पर अनुराग अङ्कुरित हो गया। सत्यभामा को कृष्ण और कुवलयावली का प्रेम ज्ञात हो गया और उसने इस बात को रुक्मिणी से बता दिया। रुक्मिणी क्रोधित होकर कुवलयावली को अपने प्रासाद में बन्दी बना लिया। बन्दीगृह से कोई दानव कुवलयावली को चुरा लिया। कृष्ण ने उस दुष्ट दानव से उसे मुक्त कराया और उसी समय स्वयं प्रकट होकर रुक्मिणी को कुवलायावली का रहस्य बतलाया। रहस्य को जान कर स्वयं रुक्मिणी ने कुवलयावली को कृष्ण के लिए उपहार के रूप में सौंप दिया।

5. कन्दर्पसम्भव– कन्दर्पसम्भव का अर्थ है- कामदेव का जन्म। इस ग्रन्थ का उल्लेख स्वयं शिङ्गभूपाल ने रसार्णवसुधाकर में किया है। 2.112 में स्नेह के लक्षण को लक्षित करके उन्होंने कन्दर्पसम्भव से उदाहरण को उद्धृत किया है और यह भी स्पष्ट किया है कि यह मेरी रचना है।

रसार्णवसुधाकर

स्वरूप– रसार्णवसुधाकर शिङ्गभूपालकृत नाट्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थ है। कारिकारूप में उपनिबद्ध यह ग्रन्थ तीन विलासों में विभक्त है। इसके प्रथम विलास में 324, द्वितीय विलास में 365 और तृतीय विलास में 350 कारिकाएँ इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ में कुल 1029 कारिकाएँ हैं। आड्यार लाइब्रेरी सेन्टर से टी. वेंकटाचार्य द्वारा सम्पादित संस्करण में द्वितीय विलास के प्रारम्भ में दो तथा तृतीय विलास के प्रारम्भ में एक अतिरित्त्क कारिका है। इस प्रकार इस संस्करण में कुल 1032 कारिकाएँ हैं। इन कारिकाओं के अतिरिक्त बीच-बीच में विषयवस्तु को स्पष्ट करने के लिए तथा अन्य पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों की समीक्षा करने के लिए गद्यात्मक वृत्ति भी जोड़ी गयी है।

ग्रन्थ के प्रथम विलास के प्रारम्भ में ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए किये गये मङ्गलाचरण के अनन्तर शिङ्गभूपाल ने अपने वंशवृक्ष का परिचय दिया है। पुनः ग्रन्थ की प्रवृत्ति का कारण, नाट्यवेद की उत्पत्ति, नाट्य और रस का लक्षण, विभाव में आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक के गुण तथा भेद शृङ्गारनायक के सहायकों का विवेचन हुआ है। इसी सन्दर्भ में नायिकाओं के गुण तथा भेद का विस्तार पूर्वक सोदाहरण विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् श्रृङ्गार रस के उद्दीपन- विभाव, अनुभाव तथा उसके चित्तज, गात्रज, वाग्ज और बुद्धिज-इन चार भेदों का निरूपण हुआ है। बुद्धिज अनुभाव के तीन प्रकारों— रीति, वृत्ति और प्रवृत्ति तथा आठ सात्त्विकभावों का विवेचन हुआ है।

द्वितीय विलास में तैंतीस व्यभिचारिभावों, उनके भेदों और उनमें होने वाली

चेष्टाओं का सोहादाहरण निरूपण किया गया है। तदनन्तर रति, हास, उत्साह, विस्मय, क्रोध, शोक, जुगुप्सा और भय-इन आठ स्थायीभावों का लक्षण, भेद तथा उदाहरण के सहित विस्तृत विवेचन हुआ है। भोज के द्वारा बतलाए गये गर्व, स्नेह धृति और मति स्थायिभावों का खण्डन करके उनका इन्हीं आठ स्थायिभावों में अन्तर्भाव स्थापित करके आठ ही स्थायिभावों का समर्थन किया गया है। इन्हीं आठ स्थायिभावों से निष्पन्न आठ रसों का लक्षण और भेद सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। इसी प्रसङ्ग में परस्पर विरोधी और मित्रभाव से रहने वाले रसों तथा रसाभास का भी निरूपण किया गया है।

तृतीय विलास में नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति, नाट्यों के दश भेद, इतिवृत्त (कथावस्तु) और उसके भेद, मुख प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण-इन पाँच सन्धियों को लक्षण तथा उदाहरण-सहित प्रस्तुत किया गया है।इसके अतिरिक्त सन्ध्यङ्गों और सन्ध्यन्तरों का विस्तृत विवेचन हुआ है। तत्पश्चात् नान्दी, सूत्रधार, इत्यादि नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का निरूपण हुआ है। नाटिका का नाटक और प्रकरण में अन्तर्भाव किया गया है। सबसे अन्त में विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले सम्बोधन पदों का निर्देश किया गया है।

इस प्रकार रसार्णवसुधाकर में नाट्यशास्त्र-विषयक तथ्यों का अतिसूक्ष्म और सविस्तार निरूपण किया गया है। नाट्यशास्त्र-विषयक ऐसा कोई भी तथ्य नहीं है जो रसार्णव-सुधाकर में निरूपित न हुआ हो। इसमें ग्रन्थकार ने सभी विषयों का साङ्गोपाङ्ग सोदाहरण विवेचन किया है।

रसार्णवसुधाकर और नाट्यकला– रसार्णवसुधाकर में संस्कृतनाट्यों से सम्बन्धित नाट्यकला-विषयक सम्पूर्ण पक्षों का परिनिष्ठित, क्रमबद्ध और साङ्गोपाङ्ग विस्तृत निरूपण किया गया है। प्रचीन आचार्यों ने नाट्यविषयक तीन पक्षों-रचनात्मकता, रसात्मकता तथा प्रायोगिकता का प्रतिपादन किया है। रसार्णवसुधाकर में रचनात्मक-स्वरूप के अन्तर्गत नाट्य के दश भेदों का स्वरूप, कथावस्तु और उनके भेद-प्रभेदों, सन्धियों, सन्ध्यङ्गों अर्थप्रकृतियों, छत्तीस भूषणों, इक्कीस सन्ध्यन्तरों का विस्तृत तथा शास्त्रीय निरूपण किया गया है। प्रतिपादित लक्षणों के स्पष्टीकरण के लिए ग्रन्थकार ने प्रचुरमात्रा में उदाहरणों को प्रस्तुत किया है जब कि अन्य नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थकर्त्ता एक दो उदाहरण को देकर ही सन्तुष्ट हो गये हैं। रसार्णव-सुधाकर में यद्यपि पूर्ववर्ती परम्परा का निर्वाह किया गया है फिर भी उसमें समुचित परिवर्तन, परिवर्धन और मौलिकता का सन्निवेश है।

नाट्य की परिकल्पना रसोद्बोधन के लिए की गयी है। इस प्रकार रस ही नाट्य का जीवनाधायक तत्त्व आत्मा है। वस्तुतः नाट्य का परमलक्ष्य दर्शकों तथा पाठकों को

अनुरञ्जित करना है। भरत के अनुसार 'विभावानुभावव्यभिचारियोगाद्रसनिष्पतिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रसार्णवसुधाकर में विभाव, अनुभाव और व्याभिचारिभाव— इन तीनों के अभिधायक तत्त्वों का विस्तृत और साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। इस सन्दर्भ में पूर्ववर्ती आचार्यों के परस्पर विरोधी मान्यताओं में औचित्यपूर्ण मान्यता को निःसङ्कोच स्वीकार किया गया है तथा असङ्गत मतों की समालोचना करते हुए उन्हें अस्वीकार कर दिया गया है।

रसार्णवसुधाकर में नाट्यकला के रचनात्मक पक्ष का जितना विस्तृत विवेचन है उतना प्रायोगिक पक्ष का नहीं। प्रायोगिक पक्ष के अन्तर्गत अभिनय, संवाद, वेशभूषा तथा रङ्गमञ्च-सज्जा इत्यादि विवेचनीय तथ्य हैं। इनके विषय में रसार्णवसुधाकर में यत्र-तत्र नगण्य सङ्केत मात्र प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इसमें नाट्यकला के प्रयोगात्मक पक्ष का प्रायः अभाव है।

शिङ्गभूपाल द्वारा दिया गया नाट्यकला का सन्तुलित, विस्तृत, तात्त्विक और स्पष्ट निरूपण अपने आप में महत्त्वपूर्ण है।

इस विवेचन से शिङ्गभूपाल की क्रमबद्ध और सूक्ष्म विवेचन करने की अद्भुत शक्ति का परिचय मिलता है।समालोचनात्मक स्थलों पर पद्य और गद्य दोनों विधाओं का प्रयोग करके प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट बना दिया गया है। यह ग्रन्थ परवर्ती नाट्यशास्त्रकारों और नाट्यकारों के लिए प्रेरणादायक है। इस प्रकार नाट्यविषयक सभी तथ्यों के सर्वाङ्गीण विवेचन द्वारा भारतीय नाट्यकला के अभ्युत्थान और प्रतिष्ठापन में शिङ्गभूपाल का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

नाट्यपरम्परा और शिङ्गभूपाल– विषय की बहुलता और बोधगम्य शैली के कारण शिङ्गभूपाल का रसार्णवसुधाकर नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में समादर की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि महत्त्व की दृष्टि से धनञ्जय का दशरूपक अधिक ख्यातिलब्ध है फिर भी शिङ्गभूपाल का रसार्णवसुधाकर विषय की व्यापकता, सूक्ष्मता, और गम्भीरता के कारण दशरूपक से बढ़ चढ़ कर है। शिङ्गभूपाल ने अपने पूर्ववर्ती नाट्यकला से सम्बन्धित ग्रन्थों का समालोचन करके उसमें से निकले घृत को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है।। उन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित समुचित तथ्यों का समर्थन भी किया है किन्तु कसौटी पर खरे न उतरने वाले अनुचित तथ्यों की प्रसङ्गवशात् स्थल-स्थल पर समालोचना करके उनका परिमार्जन भी किया है। इन्हीं कारणों से शिङ्गभूपाल नाट्यशास्त्रीय आचार्यों के मध्य में मणिमुकुट के समान देदीप्यमान हैं। शिङ्गभूपाल मौलिक-प्रवृत्ति के धनी है। उनकी समालोचना-शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म तथा प्रबल है। अतः वे विना पूर्वाग्रह के स्वतन्त्र और तटस्थ समीक्षक हैं।

जैसे— भोज द्वारा स्वीकृत गर्व स्नेह, धृति और मति-इन स्थायीभावों से निष्पन्न क्रमशः उद्धत, प्रेय, शान्त और उदात्त रसों के अनौचित्य को अपने तर्क द्वारा स्थापित करके प्रेय का शृङ्गार में तथा उद्धत, शान्त और उदात्त रस का वीर रस में अन्तर्भाव को स्वीकारते हैं तथा भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित आठ स्थायीभावों से निष्पन्न होने वाले आठ ही रसों का समर्थन करते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इन्होंने अपने पूर्ववतो आचार्यों के मतों का खण्डन ही किया है, स्थल-स्थल पर भरत, रुद्रट, धनञ्जय, भोज और शारदातनय आदि आचार्यों के मतों का और उनके प्रतिपाद्य विषय का यथोचित उपयोग भी किया है।

शिङ्गभूपाल ने अपने पूर्ववर्ती समस्त आचार्यों के ग्रन्थों का अध्ययन और मनन करके उनके यथोचित तथ्यों को अपनी रचना में उपस्थापित किया है। पूर्ववर्ती ग्रन्थों में प्रतीत होने वाली कमियों और त्रुटियों को दूर करके अपने ग्रन्थ में प्रतिष्ठित किया है जिससे उनका ग्रन्थ सर्वाङ्गीण, सारगर्भित, महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय हो गया है। रीति, वृत्ति और रस इत्यादि के विवेचन के प्रसङ्ग में अनेक आचार्यों का मत उद्धृत करके सम्भावित गुत्थियों को सुलझा भी दिया है। इसी कारण इनसे परवर्ती आचार्य रूपगोस्वामी, विश्वेश्वर, कविचन्द्र और टीकाकार मल्लिनाथ अत्यधिक प्रभावित होकर अपनी कृतियों में इन्हें समादरित किया है।

रसार्णवसुधाकर में शिङ्गभूपाल ने दुरूह और प्रमुख स्थलों को विस्तृत विवेचन द्वारा सुगम तथा बोधगम्य बनाने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किया है और इसमें उन्हें सराहनीय सफलता भी प्राप्त हुई है। इसमें शिङ्गभूपाल ने अपनी सूक्ष्म ग्राह्यता का परिचय भी दिया है। जैसे धनञ्जय ने दशरूपक में अवहित्था का लक्षण इस प्रकार किया है— **लज्जाद्यैर्विक्रियागुप्तावहित्थाङ्गविक्रिया** अर्थात् लज्जा इत्यादि भावों के कारण उत्पन्न (हर्षादि) अङ्ग के विकारों को छिपाना अवहित्था कहलाता है और उसमें अङ्गों में होने वाले विकार ही अनुभाव होते हैं। इस पर धनिक अपने अवलोक में मात्र एक उदाहरण देकर सन्तुष्ट हो गये हैं। इसी प्रकार भोज और शारदातनय ने भी अवहित्था का विवेचन किया है। शिङ्गभूपाल ने इन आचार्यों द्वारा की गयी कमियों पर ध्यान देते हुए अवहित्था का लक्षण और कार्य-कारण विषयक सात उदाहरण देकर विषय को सुस्पष्ट कर दिया है। यह तो मात्र एक निदर्शन है। शिङ्गभूपाल ने ऐसे अनेक स्थलों पर विषय को विस्तृत करके अनेक उदाहरणों द्वारा उसको परिपुष्ट किया है किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि रसार्णवसुधाकर में अनावश्यक विस्तार किया गया है। शिङ्गभूपाल ने अनावश्यक और अनर्थक प्रसङ्गों को अल्पमात्र भी प्रश्रय नहीं दिया है।

।।श्रीः।।

श्रीशिङ्गभूपालविरचितः

रसार्णवसुधाकरः

'शशिप्रभा' हिन्दीव्याख्यासमन्वितः

प्रथमो विलासः

शृङ्गारवीरसौहार्दं मौग्ध्यवैयात्यसौरभम् ।
लास्यताण्डवसौजन्यं दाम्पत्यं तद् भजामहे ।।१।।

मङ्गलाचरण- [अपने रसार्णसुधाकर नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए शास्त्रकार ने सर्वप्रथम मङ्गलाचरण के रूप में पार्वती तथा शिव के दाम्पत्य और विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की प्रार्थना किया है।]

मैं (शिङ्गभूपाल) पार्वती तथा शिव के उस दाम्पत्य की वन्दना करता हूँ जिसमें (पार्वती से सम्बन्धित) शृङ्गार तथा (शिव से सम्बन्धित) वीर (रस) मित्रतापूर्वक निवास करते हैं और जो (पार्वती से सम्बन्धित) मुग्धता और (शिव से सम्बन्धित) औद्धत्य से शोभायमान है तथा जिसमें (पार्वती का) लास्य तथा (शिव का) ताण्डव (नृत्य) सौजन्यतापूर्वक विद्यमान है।।१।।

वीणाङ्कितकरां वन्दे वाणीमेणीदृशं सदा।
सदानन्दमयीं देवीं सरोजासनवल्लभाम् ।।२।।

वीणा से शोभायमान हाथों वाली, हरिण के समान नेत्रों वाली, सर्वदा आनन्द से युक्त तथा कमलासन से प्रेम करने वाली वाग्देवी (सरस्वती) की मैं सर्वदा वन्दना करता हूँ।।२।।

अस्ति किञ्चित्परं वस्तु परमानन्दकन्दलम् ।
कमलाकुचकाठिन्यकुतूहलिभुजान्तरम् ।।३।।

लक्ष्मी के स्तनों की कठोरता के द्वारा प्रशंसित भुजाओं वाला तथा परमानन्दमय होने के कारण मधुर (स्वरूप वाला विष्णु रूपी) कोई परम वस्तु (परमब्रह्म) है।।३।।

तस्य पादाम्बुजाज्जातो वर्णो विगतकल्मषः।
यस्य सोदरतां प्राप्तं भगीरथतपःफलम् ।।४।।

उस (विष्णु रूपी परम ब्रह्म) के चरण-कमल से निष्कलुष वर्ण (शूद्र) उत्पन्न हुआ। (उसी चरण-कमल से) भगीरथ की तपस्या के फल (रूपी गङ्गा जी) ने जिस (वर्ण की)

सहोदरता (भ्रातृत्व) को प्राप्त किया है (तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार विष्णु के चरण-कमल से उत्पन्न गङ्गा जी निष्कलुष हैं उसी प्रकार उनका सहोदर होने के कारण शूद्रवर्ण भी निष्कलुष है)॥४॥

तत्र रेचल्लवंशाब्धिशरद्राकासुधाकरः।
कलानिधिरुदारश्रीरासीद्दाचयनायकः ॥५॥

शिङ्गभूपाल का परिचय–

उस (शूद्र वर्ण) में रेचल्लवंश रूपी समुद्र में वृद्धि करने वाले शरत्-कालीन रात्रि के चन्द्रमा के समान कला-निधि और उदार कीर्ति वाले दाचयनायक थे॥५॥

यस्यासिधारामार्गेण दुर्गेण रथाङ्गणे।
पाण्ड्यराजगजानीकाज्जयलक्ष्मीरुपागता॥६॥

जिस (दाचय नायक) के युद्धाङ्गण में तलवार की धार रूपी दुर्ग-मार्ग से होती हुई जय रूपी लक्ष्मी पाण्ड्यराजा के हाथी वाले सैनिकों के पास से उनके पास चली आयीं॥६॥

खड्गनारायणे यस्मिन् भवति श्रीरतिस्थिरा।
भूरभूत् करिणी वश्या दुष्टराजगजाङ्कुशे॥७॥

दुष्ट राजा रूपी हाथियों को वश में करने वाले अङ्कुश के समान जिस खड्ग धारण करने वाले राजा (दाचयनायक) में राजलक्ष्मी का स्थिर प्रेम था और पृथ्वी करिणी के समान उनकी वशर्तिनी (वश में रहने वाली) थी॥७॥

तस्य भार्या महाभाग्या विष्णोः श्रीरिव विश्रुता।
वोचमाम्बा गुणोदारा जाता तामरसान्वयात् ॥८॥

उनकी वोचमाम्बा (नामक) महान् सौभाग्यशाली और उदार गुणों वाली पत्नी अनुगमन के कारण विष्णु की (पत्नी) लक्ष्मी के समान विश्रुत हुई॥८॥

तयोरभूवन् क्षितिकल्पवृक्षाः पुत्रास्त्रयस्त्रासितवैरिवीराः।
शिङ्गप्रभुर्वेन्नमनायकश्च वीराग्रणी रेचमहीपतिश्च॥९॥

उन दोनों (पति-पत्नी दाचयनायक और वोचमाम्बा) के शत्रु-वीरों को भयभीत करने वाले तथा पृथिवी के कल्पवृक्ष के समान तीन पुत्र हुए— १. शिङ्गप्रभु २. वेन्नमनायक और ३. वीरों में अग्रणी रेचमहीपति॥९॥

कलावेकपदो धर्मो यैरेभिश्चरणैरिव।
सम्पूर्णपदतां प्राप्य नाकाङ्क्षति कृतं युगम् ॥१०॥

कलयुग में अकेला पड़ा धर्म जिनके आश्रय से सम्पूर्ण गौरव को प्राप्त करके सत्ययुग की अभिलाषा नहीं करता था॥१०॥

तत्र शिङ्गमहीपाले पालयत्यखिलां महीम् ।
नमतामुन्नतिश्चित्रं राज्ञामनमतां नतिः।।११।।

उस शिङ्गराजा के सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करने पर राजा के प्रति विनम्र लोगों की अत्यधिक उन्नति और अविनीत लोगों की अवनति हुई।।११।।

कृष्णैलेश्वरसन्निधौ कृतमहासम्भारमेलेश्वरे
वीतापायमनेकशो विदधता ब्रह्मप्रतिष्ठापनम् ।
आनृण्यं समपादि येन विभुना तत्तद्गुणैरात्मनो
निर्माणातिशयप्रयासगरिमव्यासङ्गिनि ब्रह्मणि।।१२।।

कृष्णा (नदी के तटपर) एलेश्वर (येलेश्वर नामक स्थान) के समीप में अत्यधिक सामग्रियों को (इकट्ठा) करके एलेश्वर में अभाव से रहित तथा अनेक प्रकार से तत्तत् (ब्रह्मा के प्रत्येक) गुणों से युक्त अत एव ब्रह्म की प्रतिष्ठा (उपाधि) को धारण करते हुए जिस प्रभु (दाचयनायक) के द्वारा (अपने) निर्माण में अतिशय प्रयत्न के गौरव की एकनिष्ठता वाले ब्रह्मा के प्रति अपनी अनृणता (ऋण-रहितता) को सम्पादित कर दिया गया।।१२।।

कृतान्तजिह्वाकुटिलां कृपाणीं
दृष्ट्वा यदीयां त्रसतामरीणाम् ।
स्वेदोदयश्चेतसि सञ्चितानां
मानोष्मणामातनुते प्रशान्तिम् ।।१३।।

यमराज की जिह्वा की भाँति कुटिल भुजाली (बर्छी) को देखकर जिसके भयभीत शत्रुओं के चित्त में सञ्चित (अत एव) उत्पन्न पसीना मान-रूपी ताप को शान्त करता था।।१३।।

श्रीमान् रेचमहीपतिः सुचरितो यस्यानुजन्मा स्फुटं
प्राप्तो वीरगुरुप्रथां पृथुतरां वीरस्य मुद्राकरीम् ।
लब्ध्वा लब्धकठारिरायविरुदं राहुत्तरायाङ्कितं
पुत्रं नागयनायकं वसुमतीवीरैकचूणामणिम् ।।१४।।

जिस (शिङ्गप्रभु) के सुचरित अनुज श्रीमान् रेचमहीपति ने वीरों के गुरुओं में प्रख्यात तथा अत्युत्कृष्ट वीरों के चिह्न वाली और राहुत्तराय द्वारा अङ्कित कठारिराय उपाधि वाले और वीरों में अनुपम चूणामणि के समान नागयनायक नामक पुत्र को प्राप्त किया।।१४।।

सोऽयं शिङ्गमहीपालो वसुदेव इति स्फुटम् ।
अनन्तमाधवौ यस्य तनूजौ लोकरक्षकौ।।१५।।

वे शिङ्ग महीपाल वसुदेव के समान प्रसिद्ध थे और उनके लोगों की रक्षा करने

वाले अनन्त और माधव नाम के दो पुत्र थे॥१५॥

तत्रानुजो माधवनायकेन्द्रो
दिगन्तरालप्रथितप्रतापः ।
यस्याभवन् वंशकरा नरेन्द्रा-
स्तनूभवा वेदगिरीन्द्रमुख्याः ॥१६॥

उनमें अनुज माधवनायकेन्द्र सभी दिशाओं में विस्तृत प्रताप वाले थे जिसके वेद, गिरीन्द्र इत्यादि प्रमुख राजा वंश को बढ़ाने वाले पुत्र हुए॥१६॥

तस्याग्रजन्मा भुवि राजदोषै-
रप्रोतभावादनपोतसंज्ञाम् ।
ख्यातां दधाति स्म यथार्थभूता-
मनन्तसंज्ञां च महीधरत्वात् ॥१७॥

उस (माधव के) अग्रज (अनन्त) पृथ्वी पर राजदोष से रहित भाव के कारण प्रसिद्ध अनपोत (उपाधि) और पृथ्वी को धारण करने के कारण यथार्थभूत अनन्त नाम को धारण करते थे॥१७॥

सोदर्यो बलभद्रमूर्तिरनिशं देवी प्रिया रुक्मिणी
प्रद्युम्नस्तनयोऽपि पौत्रनिवहो यस्यानिरुद्धादयः ।
सोऽयं श्रीपतिरन्नपोतनृपतिः किञ्चाननाम्भोरुहे
धत्ते चारुसुदर्शनश्रियमसौ स स्वात्महस्ताम्बुजे ॥१८॥

वह श्रीसम्पन्न अनपोत राजा (अनन्त) जिनका भाई बलराम के समान शरीर वाला, पत्नी देवी रुक्मिणी के समान, पुत्र प्रद्युम्न के समान और पौत्र अनिरुद्ध इत्यादि के समान थे, वे अपने मुखकमल तथा हस्तकमल पर रूचिकर सुदर्शन की कान्ति को धारण करते थे॥१८॥

बहुसोमसुतं कृत्वा भूलोकं यत्र रक्षति ।
एकसोमसुतं रक्षन् स्वर्लोकं लज्जते हरिः ॥१९॥

(जिनके) अनेक बार सोम का सवन (सोमसुत) करके भूलोक की रक्षा करते समय अकेले बुध (सोमसुत) की रक्षा करते हुए स्वर्गलोक में भगवान् विष्णु लज्जित होते थे॥१९॥

सोमकुलपरशुरामे
भुजबलभीमेऽरिगायिगोपाले ।
यत्र च जाग्रति शासति
जगतां जागर्ति नित्यकल्याणम् ॥२०॥

सोमवंश में उत्पन्न परशुराम के समान, भुजाओं के बल में भीम के समान और

शत्रुओं का दमन करने में कृष्ण के समान जिनके पृथ्वी पर उद्‌बुद्ध शासन करते समय लोगों का नित्य कल्याण होता था॥२०॥

हेमाद्रिदानैर्धरणीसुराणां
महाचलं हस्तगतं विहाय ।
यश्चारुसोपानपथेन चक्रे
श्रीपर्वतं सर्वजनप्रगम्यम् ।।२१।।

हस्तगत महाचल पर्वत को छोड़कर सुवर्ण पर्वत को ब्राह्मणों के दान में देने के कारण सुन्दर सीढ़ी के मार्ग द्वारा भी पर्वत को सभी लोगों के लिए सुगम बना दिया॥२१॥

यो नैकवीरोद्दलनोऽप्यसङ्ख्य-
सङ्ख्योऽप्यभग्नात्मगतिक्रमोऽपि ।
अजातिसाङ्कर्यभवोऽपि चित्रं
दधाति सोमान्वयभार्गवाङ्कम् ।।२२।।

जो अनेक राजाओं का दलन (दमन) करने वाले, असंख्य युद्धों को करने वाले और अपराजित आत्मगति वाले थे किन्तु वे जाति सङ्करता (वर्णसङ्करता) से नहीं उत्पन्न हुए सोमवंशीय परशुराम के चिह्न को धारण करते थे— यह विचित्र बात थी॥२२॥

तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त गुणों वाले परशुराम वर्णसङ्कर थे किन्तु वे अनन्त वर्णसङ्कर नहीं थे।

धावं धावं रिपुनृपयो युद्धरङ्गापविद्धाः
खड्गे खड्गे फलितवपुषं यं पुरस्ताद् विलोक्य ।
प्रत्यावृत्ता अपि तत इतो वीक्षमाणा यदीयं
सम्मन्यन्ते स्फुटमवितथं खङ्गनारायणङ्कम् ।।२३।।

युद्ध क्षेत्र से विमुख हुए अत एव इधर-उधर दौड़ते हुए शत्रु राजा गण प्रत्येक तलवार में जिस यथार्थ (या फलदायी) शरीर वाले (अनन्त) को सामने देखकर वहाँ लौटते हुए भी जिसके खड्गनारायण के चिह्न (उपाधि) को स्पष्ट रूप में यथार्थ (सत्य) मानते थे अर्थात् प्रत्येक तलवार में उनकी छाया दिखाई देने से खङ्गनारायण नाम यथार्थ प्रतीत होता था। ॥२३॥

अन्नमाम्बेति विख्याता तस्यासीद्धरणीपतेः ।
देवी शिवा शिवस्येव राजमौलेर्महोज्ज्वला ।।२४।।
शत्रुघ्नं श्रुतकीर्तिर्या सुभद्रा यशसार्जुनम् ।
आनन्दयति भर्त्तारं श्यामा राजनमुज्ज्वलम् ।।२५।।

शंकर की देवी पार्वती के समान, शत्रुघ्न की श्रुतिकिर्ति के समान, अर्जुन की

सुभद्रा के समान पृथ्वी पर विख्यात अन्नमाम्बा नामक उनकी पत्नी राजाओं में उज्ज्वल कीर्ति वाले पति को आनन्दित करती थी॥२४-२५॥

तयोरभूतां पुत्रौ द्वावाद्यो देवगिरीश्वरः ।
द्वितीयस्त्वद्वितीयोऽसौ यशसा शिङ्गभूपतिः ।।२६।।

उनके दो पुत्र हुए— १.देवगिरीश्वर और २.अद्वितीय यशवाला शिङ्गभूपति (शिङ्गभूपाल)॥२६॥

अथ श्रीशिङ्गभूपालो दीर्घायुर्वसुधामिमाम् ।
निजांसपीठे निर्व्याजं कुरुते सुप्रतिष्ठिताम् ।।२७।।

दीर्घायु शिङ्गभूपाल ने सतर्कतापूर्वक इस पृथ्वी के भार को अपने कन्धों पर सुप्रतिष्ठित (धारण) किया॥२७॥

अहीनज्याबन्धः कनकरुचिरं कार्मुकवरं
बलिध्वंसी बाणः परपुरमनेकं च विषयः ।
इति प्रायो लोकोत्तरसमरसन्नाहविधिना
महेशोऽयं शिङ्गक्षितिप इति यं जल्पति जनः ।।२८।।

कसकर बँधी हुई (अहीन) प्रत्यञ्चा वाली सुवर्णनिर्मित होने के कारण रुचिर श्रेष्ठ धनुष, प्राणियों को विनष्ट करने वाले बाण, लक्ष्य बने शत्रुओं के अनेक नगर- इस प्रकार प्रायः लोकोत्तर युद्ध की तैयारी के द्वारा यह शिङ्गभूपाल महेश (शङ्कर) हैं— इस प्रकार जिसके विषय में लोग कहते हैं॥२८॥

यत्र च रणसन्नाहिनि तृणचरणं निजपुराच्च निस्सरणम् ।
वनचरणं तच्चरणपरिचरणं वा विरोधिनां शरणम् ।।२९।।

जिस शिङ्गभूपाल के युद्ध के लिए तैयार हो जाने पर घास खाना, अपने नगर से निकल जाना, वन में घूमना अथवा उस (शिङ्गभूपाल) के चरणों की सेवा करना ही विरोधी राजाओं का आश्रय होता था॥२९॥

सतां प्रीतिं कुर्वन् कुवलयविकासं विरचयन्
कलाः कान्ताः पुष्णन् दधदपि जैवातृककथा ।
नितान्तं यो राजा प्रकटयति मित्रोदयमहो
तथा चक्रानन्दानपि च कमलोल्लाससुषमाम् ।।३०।।

सज्जनों से प्रीति करते हुए, पृथिवी (के लोगों) का विकास करते हुए, कलाओं और पत्नियों का पोषण करते हुए, चन्द्रमा की कथाओं (कलाओं) को धारण करते हुए जो राजा मित्रों के अत्यधिक अभ्युदय तथा आनन्द देने वाले कमलों के विकास की सुषमा को प्रकट करता था॥३०॥

तल्लब्धानि घनाघनैरतितरां वारां पृषन्त्यम्बुधौ
स्वात्यामेव हि शुक्तिकासु दधते मुक्तानि मुक्तात्मताम् ।
यद्दानोदकविप्रुषस्तु सुधियां हस्ते पतन्त्योऽभवन्
माणिक्यानि महाम्बराणि बहुशो धामानि हेमानि च ।।३१।।

घने बादलों द्वारा प्राप्त अतिशय जल समुद्र में गिरता है किन्तु स्वाती नक्षत्र में ही (समुद्र की) सीपियों में (पड़ा जल) मोतियों के रूप में मोती के गुण को प्राप्त करता है जब कि इनके दान रूपी जल की बूँदें सुधी लोगों के हाथ में गिरते ही अनेक प्रकार के माणिक्य, वस्त्र, घर और सुवर्ण हो जाती थी।।३१।।

नयमनयं गुणमगुणं पदमपदं निजमवेक्ष्य रिपुभूपाः ।
यस्य च नयगुणविदुषो विनमन्ति पदारविन्दपीठाम् ।।३२।।

अपनी नीति-अनीति, गुण-दोष, न्याय-अन्याय को देख कर शत्रु राजा नीति और गुण के ज्ञाता (शिङ्गभूपाल) के पद कमल की पीठ (पैर रखने के आसन) पर झुक जाते (शिर झुकाते) थे।।३२।।

प्राणानां परिरक्षणाय बहुशो वृत्तिं मदीयां गता-
स्त्वत्सामन्तमहीभुजः करुणया ते रक्षणीया इति ।
कर्णे वर्णयितुं नितान्तसुहृदोः कर्णान्तविश्रान्तयो-
र्मन्ये यस्य दृगन्तयोः परिसरं सा कामधेनुः श्रिता ।।३३।।

प्राणों की रक्षा के लिए मैंने बहुत सा उपाय किया किन्तु आप सामन्त राजा की करुणा से उन (प्राणों) की रक्षा हुई-इस प्रकार मानो जिसके कानों में कहने के लिए परम मित्र तथा कानों तक फैले हुए आँखों के किनारों से आँसू बहाने वाली कामधेनु ने जिनका आश्रय ले लिया था।।३३।।

युष्माभिः प्रतिगण्डभैरवरणे प्राणाः कथं रक्षिता
इत्यन्तःपुरपृच्छया यदरयो लज्जावशं प्रपिताः ।
शंसन्त्युत्तरमाननव्यतिकरव्यापारपारङ्गता
गण्डादोलितकर्णकुण्डलहरिन्माणिक्यवर्णाङ्कुराः ।।३४।।

'विपक्षी योद्धाओं के घमासान युद्ध में आप लोगों द्वारा किस प्रकार प्राणों की रक्षा की गयी'- इस प्रकार रनिवास की रानियों द्वारा पूछे जाने के कारण शत्रुओं के लज्जा के वशीभूत हो जाने पर मुख से मिश्रित हाथों के व्यापार को जानने वाली तथा गालों पर आन्दोलित (हिलते हुए) कानों के कुण्डलों के हरे माणिक्यों से रोमाञ्चित हुई पत्नियाँ उत्तर की आशंसा करती थीं।।३४।।

मन्दारपारिजातचन्दनसन्तानकल्पमणिसदृशैः ।
अनपोतदाचवल्लभवेदगिरिस्वामिमाददामयसंज्ञैः ।।३५।।
आत्मभवैरनितरजनसुलभ (दया) दानविदितैर्यः।
रत्नाकर इव राजति राजकरारचितसुकमलोल्लासः।।३६।।

मन्दार, परिजात, चन्दन के विस्तार तथा कल्पमणि के समान अनपोत, दाच, वल्लभ, वेदगिरि, स्वामी, माद, दामय नामक पुत्रों से युक्त तथा दूसरे लोगों को असुलभ दयादान की प्रसिद्धि से युक्त होकर समुद्र के समान अपने हाथों पर रचित कमल के विकास वाले जो (शिङ्गभूपाल) शोभायनान थे।।३५-३६।।

यस्याद्यः प्रथमः कुमारतिलकः श्रीयन्नपोतोगुणै-
रेकस्याग्रजमात्मरूपविभवे चापे द्वयोरग्रजम् ।
आरूढे त्रितयाग्रजं विजयते दुर्वारदोर्विक्रमे
सत्योक्तौ चतुराग्रजं विजयते किञ्चापि पञ्चाग्रजम् ।।३७।।

जिसका प्रथम पुत्र तथा कुमारों में तिलक-स्वरूप श्री अनपोत अपने गुणों से, एक अग्रज वाला (अर्थात् दूसरा पुत्र) अपने रूप वैभव में, दो अग्रजों वाला (अर्थात् तृतीय पुत्र) (अपने) धनुष (की निपुणता) में, तीन अग्रजों वाला (अर्थात् चतुर्थ पुत्र) उत्कृष्ट और दुर्निवार्य भुजाओं के विक्रम में और चार अग्रजों वाला (अर्थात् पञ्चम पुत्र) सत्योक्ति में पराजित करता था। फिर पाँच अग्रजों वाले (षष्ठ पुत्र) को क्या कहना।।३७।।

युद्धे यस्य कुमारदाचयविभोः खड्गाग्रधाराजले
मज्जन्ति प्रतिपक्षभूमिपतयः शौर्योष्मसन्तापिताः ।
चित्रं तत्प्रमदाः प्रणष्टतिलकाः व्याकीर्णनीलालकाः
प्रभ्रश्यत्कुचकुङ्कुमाः परिगलन्नेत्रान्तकालाञ्जनाः ।।३८।।

युद्ध में (शिङ्गभूपाल के द्वितीय पुत्र) जिस कुमार दाचय प्रभु के तलवार की अगली धार में शौर्य के ताप से सन्तप हुए विरोधी राजागण स्नान करते थे। यह विचित्र बात है कि उनकी रमणियों (पत्नियाँ) अपने (सौभाग्य के चिह्न मस्तक के) तिलक को विनष्ट कर देती थी, काले बालों को छिटका देती थी, स्तनों पर लगाये गये कुङ्कुमों को हटा देती थीं और नेत्रों से काले अञ्जनों को बहाती थीं।।३८।।

परिपोषिणि यस्य पुत्ररत्ने दयिते वल्लभरायपूर्णचन्द्रे ।
समुदेति सतां प्रभावशेषः कमलानामभिवर्धनं तु चित्रम् ।।३९।।

जिस (शिङ्गभूपाल) के (तृतीय) प्रिय पुत्ररत्न वल्लभराय पूर्णचन्द्र के उन्नति करने पर सज्जनों के प्रति प्रभाव अवशिष्ट रह जाता था, फिर कमलों का खिलना तो विचित्र (बात) थी।।३९।।

एतैरन्यैश्च तनयैः सोऽयं शिङ्गमहीपतिः ।
षड्भिः प्रतिष्ठामयते स्वामिवाङ्गै सुसङ्गतैः ।।४०।।

और इस प्रकार के अन्य पुत्रों से युक्त वे ये शिङ्गभूपाल मानों ६ अङ्गों से सुसङ्गत होकर अपनी प्रतिष्ठा को विस्तृत कर रहे थे।।४०।।

राजा स राजाचलनामधेयामध्यास्त वंशक्रमराजधानीम् ।
सतां च रक्षामसतां च शिक्षां न्यायानुरोधादनुसन्दधार ।।४१।।

वे राजा (शिङ्गभूपाल) वंशपरम्परा वाली राजाचल नामक राजधानी में रहते थे और न्याय के अनुसार सज्जनों को सुरक्षा तथा दुष्टों को शिक्षा (दण्ड) ग्रहण कराते थे।।४१।।

विन्ध्यश्रीशैलमध्यक्ष्मामण्डलं पालयन् सुतैः ।
वंशप्रवर्तकैरर्थान् भुङ्क्ते भोगपुरन्दरः ।।४२।।

वंशप्रवर्तक पुत्रों के साथ विन्ध्य और श्रीपर्वत के मध्यवर्ती भूमण्डल का पालन करते हुए इन्द्र के समान भोगों का उपभोग कर रहे थे।।४२।।

तस्मिन् शासति शिङ्गभूमिरमणे क्ष्मामन्नपोतात्मजे
काठिन्यं कुचमण्डले तरलता नेत्राञ्चले सुभ्रुवाम् ।
वैषम्यं त्रिवलीषु मन्दपदता लीलालसायां गतौ
कौटिल्यं चिकुरेषु किञ्च कृशता मध्ये परं बाध्यते ।।४३।।

उस शिङ्गभूमि पर रमण करने वाले तथा अनपोत (अनन्त) के पुत्र (शिङ्गभूपाल) के पृथिवी पर शासन करने पर (कामिनियों के) स्तनमण्डल में कठोरता थी (व्यवहार में कठोरता नहीं थी)। सुन्दर भौहों वाली (तरुणियों) के नेत्रों के कोनों में तरलता (स्निग्धता) थी (दुःख के कारण आँसू बहने से नहीं)। बालों में कुटिलता (मोड़, झुकाव) था (विचारों में नहीं) और क्या! (तरुणियों के) कमर में अत्यधिक कृशता (पतलापन) बँधा था (कष्ट के कारण कोई दुर्बल नहीं था)।।४३।।

सोऽहं कल्याणरूपस्य वर्णोत्कर्षैककारकम् ।
विद्वत्प्रसादनाहेतोर्वक्ष्ये नाट्यस्य लक्षणम् ।।४४।।

वह (पूर्वोक्त गुणों वाला) मैं (शिङ्गभूपाल) विद्वानों की प्रसन्नता के लिए कल्याणस्वरूप नाट्य (रूपक) का (सभी) वर्णों के उत्कर्ष को करने वाले नाट्य के लक्षण को कह रहा हूँ (निरूपित कर रहा हूँ)।।४४।।

पुरा पुरन्दराद्यास्ते प्रणम्य चतुराननम् ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पप्रच्छुः सर्ववेदिनम् ।।४५।।
भगवन् श्रोतुमिच्छामः श्राव्यं दृश्यं मनोहरम् ।

धर्म्यं यशस्यमर्थ्यञ्च सर्वशिल्पप्रदर्शनम् ।।४६।।
परं पञ्चममाम्नायं सर्ववर्णाधिकारिकम् ।
इति पृष्टः स तैर्ब्रह्मा सर्ववेदाननुस्मरन् ।।४७।।
तेभ्यश्च सारमादाय नाट्यवेदमथासृजत् ।
अध्याप्य भरताचार्यं प्रजापतिरभाषत ।।४८।।

नाट्य का उद्भव-

पहले इन्द्रादि वे (देवतागण) चतुरानन (ब्रह्मा) को प्रणाम करके (और) अञ्जलि बाँधकर सर्वज्ञ (चतुरानन) से कहा—

हे भगवान् जो (साथ-साथ) सुनने और देखने की योग्यता वाला, मनोरम, धर्मसम्मत अथवा विशेष गुणों से युक्त, कीर्ति की ओर ले जाने वाला (विख्यात) उचित, सभी कलाओं को प्रदर्शित करने वाला तथा सभी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) वर्णों के लिए अधिकार सम्पन्न हो, ऐसे पञ्चम वेद को हम लोग (आप से) सुनना (जानना) चाहते हैं।

उन (देवताओं) के द्वारा इस प्रकार पूछने पर उस ब्रह्मा ने सभी वेदों का स्मरण करते हुए और उनसे सार (तत्त्व) को लेकर नाट्यवेद की रचना किया (और उस नाट्यवेद को) आचार्य भरत को पढ़ाकर प्रजापति ने कहा-।।४५-४८।।

सह पुत्रैरिमं वेदं प्रयोगेण प्रकाशय ।
इति तेन नियुक्तस्तु भरतः सह सूनुभिः ।।४९।।
प्रायोजयत् सुधर्मायामिन्द्रस्याग्रेऽप्सरसां गणैः ।
सर्वलोकोपकाराय नाट्यशास्त्रं च निर्ममे ।।५०।।
तथा तदनुसारेण शाण्डिल्यः कोहलोऽपि च ।
दत्तिलश्च मतङ्गश्च ये चान्ये तत्तनूभवाः ।।५१।।
ग्रन्थान्नानाविधाञ्चक्रुः प्रख्यातास्ते महीतले ।
तेषामतिगभीरत्वाद् विप्रकीर्णक्रमत्वतः ।।५२।।
सम्प्रदायस्य विच्छेदात् तद्विदां विरलत्वतः ।
प्रायो विरलसञ्चारा नाट्यपद्धतिरस्फुटा ।।५३।।
तस्मादस्मत्प्रयत्नोऽयं तत्प्रकाशनलक्षणः ।
सारैकग्राहिणां चित्तमानन्दयति धीमताम् ।।५४।।

रसार्णवसुधाकर के रचना की आवश्यकता-

(हे भरत!) इस वेद को अपने पुत्रों (शिष्यों) के साथ प्रयोग (अभिनय) द्वारा प्रकाश में लाओ। इस प्रकार उस (ब्रह्मा के द्वारा) नियुक्त किये गये भरत ने अपने पुत्रों

(शिष्यों) और अप्सराओं के साथ देवताओं की सभा में इन्द्र के सम्मुख प्रायोजित किया और सभी लोगों के उपकार के लिए भरत ने नाट्यशास्त्र की भी रचना किया।

तदन्तर उन्हीं (भरत) के अनुसार शाण्डिल्य, कोहल, दत्तिल, मतङ्ग और अन्य जो उनके पुत्र थे, उन्होंने अनेक प्रकार के ग्रन्थों की रचना किया जो पृथ्वी पर प्रसिद्ध हैं।

उन (शाण्डिल्य इत्यादि के ग्रन्थों) के अतिगम्भीर (गूढ़) होने, (विषयवस्तु के) अस्तव्यस्त होने तथा सम्प्रदाय के विनष्ट हो जाने के कारण उनके जानने वाले बहुत कम हैं।

प्राय: उनके प्रचार प्रसार की कमी होने से नाट्य-पद्धति अस्पष्ट हो गयी है। इसी कारण से यह मेरा प्रयत्न उसके प्रकाशित करने लिए किया जा रहा है जो तत्त्वग्राही बुद्धिमान् (विद्वान्) लोगों के चित्त को आनन्द देगा।।४९-५४।।

नेदानीन्तनदीपिका किमु तमस्सङ्घातमुन्मूलये-
ज्ज्योत्स्ना किं न चकोरपारणकृते तत्कालसंशोभिनी ।
बालः किं कमलाकरान् दिनमणिर्नोल्लासयेदञ्जसा
तत्सम्प्रत्यपि मादृशामपि वचः स्यादेव सत्प्रीतये ।।५५।।

ग्रन्थ-रचना का प्रयोजन- अब तक कोई ऐसी दीपिका (प्रकाशित करने वाला दीपक) नहीं थी जो अन्धकार के समूह को जड़ से विनष्ट कर दें। तत्काल संशोभित (शोभायमान होने वाली) उस चाँदनी से क्या लाभ जो चकोर के पान करने के लिए उपयुक्त न हो। उस बाल सूर्य से क्या लाभ जो अपनी चमक से कमलों के समूह को उल्लसित (प्रफुल्लित) न करे। तो इस समय मुझ जैसे की वाणी सज्जन लोगों को प्रसन्न करने के लिए (समर्थ) होवे।।५५।।

विमर्श- शिङ्गभूपाल के कहने का तात्पर्य है कि अब तक कोई नाट्यशास्त्र विषयक ऐसा ग्रन्थ नहीं था जो नाट्य के विषय में समुचित जानकारी दे सके। जो नाट्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थ हैं, वे अतिविस्तार, अति संक्षेप अथवा एकाङ्गी होने के कारण उसी प्रकार अनुपयोगी हैं जैसे चकोर के पान के लिए अनुपयोगी चाँदनी अथवा कमलों को अपनी चमक से प्रफुल्लित न करने वाला सूर्य।

स्वच्छस्वादुरसाधारो वस्तुच्छायामनोहरः ।
सेव्यः सुवर्णनिधिवद् नाट्यमार्गः सनायकः ।।५६।।

स्वच्छ और आस्वादनीय (शृङ्गारादि) रस का आधार तथा कथावस्तु की छाया से मनोहर नायक के सहित नाट्यमार्ग का सेवन करना चाहिए।।५६।।

सात्त्विकाद्यैरभिनयैः प्रेक्षकाणां यतो भवेत् ।
नटे नायकतादात्म्यबुद्धिस्तन्नाट्यमुच्यते ।।५७।।

नाट्य का लक्षण– सात्विक इत्यादि अभिनयों द्वारा दर्शकों की नट में जिससे नायकविषयक तादात्म्य बुद्धि हो जाती है, वह नाट्य कहलाता है।।५७।।

रसोत्कर्षो हि नाट्यस्य प्राणास्तत् स निरूप्यते।
विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ।।५८।।
आनीयमानः स्वादुत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः।
तत्र ज्ञेयो बिभावस्तु रसज्ञापनकारणम् ।।५९।।

रस की उत्कृष्टता ही नाट्य का प्राण है, इसलिए (पहले) उसी का निरूपण किया जा रहा है।

रस– विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव और व्यभिचारी भावों द्वारा आस्वादन के योग्य बनाया गया स्थायीभाव ही रस कहलाता है।

विभाव– उनमें से विभाव को ही रसज्ञापन का कारण जानना चाहिए।।५८-५९।।

बुधैर्ज्ञेयोऽयमालम्ब उद्दीपनमिति द्विधा।
आधारविषयत्वाभ्यां नायको नायिकापि च।।६०।।

विभाव के प्रकार– आचार्यों ने उस (विभाव) को दो प्रकार का जाना (कहा) है— आलम्बन तथा उद्दीपन। आधार और विषयता से नायक और नायिका- ये दोनों आलम्बन कहे जाते हैं ।।६०।।

आलम्बनं मतं तत्र नायको गुणवान् पुमान् ।
तद्गुणास्तु महाभाग्यमौदार्यं स्थैर्यदक्षते ।।६१।।
औज्ज्वल्यं धार्मिकत्वं च कुलीनत्वं च वाग्मिता ।
कृतज्ञत्वं नयज्ञत्वं शुचिता मानशालिता ।।६२।।
तेजस्विता कलावत्वं प्रजारञ्जकादयः ।
एते साधारणाः प्रोक्ता नायकस्य गुणाः बुधैः ।।६३।।

नायक के साधारण गुण– उस (आलम्बन) में नायक गुणवान् व्यक्ति होता है। उस नायक के ये गुण होते हैं— महाभाग्यशालिता, उदारता, स्थिरता, दक्षता, उज्ज्वलता, धार्मिकता, कुलीनता, वाक्पटुता, कृतज्ञता, नयज्ञता, शुचिता, मानशालिता, तेजस्विता, कलासम्पन्नता, प्रजारञ्जकता इत्यादि। नायक के ये साधारणगुण आचार्यों द्वारा कहे गये हैं।।६१-६३।।

तत्र महाभाग्यम्–

सर्वातिशायिराज्यत्वं महाभाग्यमुदाहृतम्।

यथा (रघुवंशे १८.४)-

पौत्रः कुशस्यापि कुशेशयाक्षः ससागरां सागरधीरचेताः ।
एकातपत्रां भुवमेकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज ।।1।।

उन (गुणों) में महाभाग्यशालिता- सर्वोत्कृष्ट राज्यसम्पन्न होना महाभाग्यत्व कहलाता है॥६४पू.॥

जैसे (रघुवंश १८.४ में)-

समुद्र के समान गम्भीर चित्त वाले और नगर के प्रधान फाटक की अर्गला के समान बड़ी-बड़ी बाहु वाले, अद्वितीय वीर कुश के पौत्र निषध ने भी सागर तक फैली हुई एकछत्र पृथ्वी का भोग किया।।1।।

अथौदार्यम्-

यद् विश्राणनशीलत्वं तदौदार्यं बुधा विदुः।।६४।।

यथा (रघुवंशे ५/३१)-

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ
द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिस्पृहोऽर्थी
नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ।।2।

उदारता- सर्वस्व दे देने की भावना को आचार्यों ने उदारता कहा है॥६४ उ.॥

जैसे (रघुवंश ५.३१ में)-

उस समय अयोध्या निवासी याचक कौत्स और दाता रघु-दोनों की सराहना करने लगे। इधर तो कौत्स गुरुदक्षिणा से अधिक एक कौड़ी भी लेना नहीं चाहते थे और उधर रघु वह समस्त धन कौत्स को देने के लिए इच्छुक थे।।2।।

अथ स्थैर्यम्-

व्यापारं फलपर्यन्तं स्थैर्यमाहुर्मनीषिणः ।

यथा (रघुवंशे ८.२२)-

न नवः प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीराः परमार्थदर्शनात् ।।3।।

स्थिरता- फलप्राप्तिपर्यन्त कार्य करते रहना आचार्यों द्वारा स्थिरता कहा गया है॥६५ पू.॥

जैसे रघुवंश ८.२२ में-

स्थिर कार्यकर्त्ता नये राजा (अज) अपने फल की प्राप्ति हुए बिना अपने आरम्भ किये हुए कर्मों से विरत नहीं हुए तथा स्थिर बुद्धिवाले प्राचीन राजा (रघु) परमात्मा के साक्षात्कार के विना योगाभ्यास से विरत नहीं हुए।।3।।

अथ दक्षता-

दुष्करे क्षिप्रकारित्वं दक्षता परिचक्षते ।।६५।।

यथा-

वालधिं त्रातुमावृत्य चमरेणार्पिते गले ।
पतन्तमिषुमन्येन स कृपालुरखण्डयत् ।।4।।

दक्षता- दुष्कर कार्यों में शीघ्रता करना दक्षता कहलाता है।।।६५उ.।।

जैसे- बालों से युक्त गले में रक्षा के लिए पूछ को लपेट कर उस दयालु (हनुमान्) ने शत्रु द्वारा गिरते हुए बाण को तोड़ डाला।।4।।

अथौज्ज्वल्यम्-

औज्ज्वल्यं नयनानन्दकारित्वं कथ्यते बुधैः।

यथा (रघुवंशे ६/१२)-

तां राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो
नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां
सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ।।5।।

उज्ज्वलता- देखने से नेत्रों को आनन्द देने वाला अर्थात् मधुर आकृति वाला होना उज्ज्वलता कहलाता है।।६६पू.।।

जैसे (रघुवंश ६.१२) में-

वे स्त्रियाँ एक टक होकर अज को अपने नेत्रों से इस प्रकार देख रही थी कि मानों उनका ध्यान किसी दूसरे काम की ओर गया ही नहीं था, क्योंकि इन स्त्रियों के दूसरी इन्द्रियों का व्यापार नेत्रों में ही प्रविष्ट हो गया है।।5।।

अथ धार्मिकत्वम्-

धर्मप्रवणचित्तत्वं धार्मिकत्वमितीर्यते ।।६६।।

यथा (रघुवंशे १.२२)-

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान् परिणेतुः प्रसूतये ।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः ।।6।।

धार्मिकता- धर्म में अनुरक्त मन वाला होना धार्मिकता कहलाता है।।६६ उ.।।

जैसे (रघुवंश १.२५)-

लोकमर्यादा- पालन के लिए दण्ड देने योग्य अपराधियों को ही दण्ड देने से तथा सन्तानोत्पत्ति के लिए ही विवाह करने से बुद्धिमान् महाराज दिलीप के अर्थ और काम भी धर्मरूप ही थे।।6।।

अथ कुलीनत्वम्-

कुले महति सम्भूतिः कुलीनत्वमुदाहृतम् ।

यथा- (विक्रमोर्वशीये ४.१९)-

सूर्याचन्द्रमसौ यस्य मातामहपितामहौ ।
स्वयं वृत्तपतिर्द्वाभ्यामुर्वश्या च भुवा च यः ।।7।।

कुलीनता- महान् कुल (वंश) में जन्म होना कुलीनता कहलाता है।।६७ पू.।।

जैसे (विक्रमोर्वशीय-४.१९ में)-

सूर्य और चन्द्र क्रमशः जिसके मातृकुल के ज्येष्ठ मातामह (नाना) और पितृकुल के पितामह (दादा) हैं, स्वयं जो दिव्यनारी उर्वशी तथा पृथ्वी दोनों का स्वयंवर पद्धति से चुना हुआ पति हैं ऐसे मुझ सत्कुलोत्पन्न पराक्रमी राजा पुरूरवा को तू नहीं जानता।।7।।

अथ वाग्मिता-

वाग्मिता तु बुधैरुक्ता समयोचितभाषिता।।६७।।

यथा- (विक्रमोर्वशीये १.१७)-

ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्
विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः ।
वसुधाधरकन्दराद् विसर्पी
प्रतिशब्दोऽपि हरेर्भिनत्ति नागान् ।।8।।

वाक्पटुता (वाग्मिता)- समय के अनुसार उचित बोलना वाक्पटुता कहलाता है।।६७।।

जैसे (विक्रमोर्वशीय-१.१७)-

यह तो वज्रधारण करने वाले (इन्द्र) का ही पराक्रम है कि उनके पक्ष वाले (हम जैसे) लोग (उनके) शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। (क्योंकि, देखे) पहाड़ की गुफाओं में गूँजने वाले सिंह के गर्जन की प्रतिध्वनि भी हाथियों को नष्ट कर देती हैं (उनको भयभीत करके झुण्ड को तितर-वितर कर देती है वस्तुतः जैसे इसमें सिंह का गर्जन ही प्रधान है, उसी प्रकार यहाँ पर भी इन्द्र का पराक्रम ही महत्व रखता है।)।।8।।

अथ कृतज्ञत्वम्-

कृतानामुपकाराणामभिज्ञं कृतज्ञता ।

यथा– (हनुमन्नाटके १३.३५)–

एकस्यैवोपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे !
प्रत्यहं क्रियमाणस्य शेषस्य ऋणिनो वयम् ।।9।।

कृतज्ञता– किये गये उपकार को याद रखना कृतज्ञता कहलाता है।।६८ पू.।।

जैसे (हनुमन्नाटक १३.३५ में)–

श्री राम हनुमान् से कह रहे हैं कि हे कपि! तुम्हारे एक ही उपकार के बदले मैं अपने प्राणों को दे दूँगा। (तुम्हारे द्वारा) प्रतिदिन किये गये शेष उपकार के प्रति हम लोग (सदा) ऋणी बने रहेंगे।।9।।

अथ नयज्ञत्वम्–

सामाद्युपायचातुर्यं नयज्ञत्वमुदाहृतम् ।।६८।।

यथा (किरातार्जुनीये १.१५)–

अनारतं तेन पदेषु लम्भिता
विभज्य सम्यग् विनियोगसत्क्रियाः ।
फलन्त्युपायाः परिबृंहितायती-
रुपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः ।।10।।

नयज्ञता– सामादि (साम, दाम, दण्ड और विभेद) चार प्रकार की नीतियों में निपुण होना नयज्ञता कहलाता है।।६८उ.।।

जैसे (किरातार्जुनीय १.१५ में)–

उस दुर्योधन के द्वारा उचित स्थानों में समुचित विभाग करके प्रयुक्त किये गये और उचित प्रयोग (विनियोग) द्वारा समादृत (अनुग्रहीत) हुए उपाय(साम, दाम,दण्ड और भेद) मानो परस्पर स्पर्धाभाव को प्राप्त हुए से भविष्य में वृद्धि को प्राप्त होने वाली (स्थिर भविष्य वाली) धन-सम्पत्तियों को निरन्तर उत्पन्न करते हैं।।10।

अथ शुचिता–

अन्तःकरणशुद्धिर्या शुचिता सा प्रकीर्तिता ।

यथा (रघुवंशे १६.८)–

का त्वं शुभे! कस्य परिग्रहो वा
किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां
मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्तिः ।।11।।

शुचिता– अन्तःकरण की पवित्रता शुचिता कहलाती है।।६९।।

जैसे (रघुवंश १६.८ में)-

हे कल्याणि! तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? अथवा मेरे पास तुम्हारे आने का कारण क्या है? जितेन्द्रिय रघुवंशियों का मन परायी स्त्री से विमुख स्वभाव वाला (जेहि सपनेहुँ पर नारि न हेरी) मान कर बोलो।।11।।

अथ मानिता-

अकार्पण्यसहिष्णुत्वं कथिता मानशालिता ।।६९।।

यथा (अनर्घराघवे ३.४१)-

सन्तुष्टे तिसृणां पुरामपि रिपौ कण्डूलदोर्मण्डल—
क्रीडाकृतपुनःप्ररूढशिरसो वीरस्य लिप्सोर्वरम् ।
याञ्च्यादैन्यपराञ्चि यस्य कलहायन्ते मिथस्त्वं वृणु
त्वं वृण्वित्यभितो मुखानि स दशग्रीवः कथं कथ्यते ।।12।।

मानिता- लघुता (दैन्य) को सहन न करना मानशालिता कहा जाता है।।६९उ.।।

जैसे- अनर्घराघव (३.४१में)-

(शौष्कल जनक से रावण के मुखों की मानशालिता का वर्णन करते हुए कहता है— राजर्षि जनक!) त्रिपुर (नामक राक्षस) के शत्रु (शिव) के प्रसन्न हो जाने पर भी खुजलाहट धारी भुजाओं ने जब अनायास ही सभी शिर काट दिये, रावण वर प्राप्त करना चाहता भी था, परन्तु याचना दैन्य-विमुख उसके सभी मुख "तुम माँगो, तुम माँगो" कह कर परस्पर झगड़ने लगे थे, उस रावण का क्या वर्णन किया जाय।।12।।

यहाँ रावण के मुखों द्वारा याचना करने के दैन्य की असहनीयता होने से मानशालिता है।

अथ तेजस्विता-

तेजस्वित्वमवज्ञादेरसहिष्णुत्वमुच्यते।

यथा (महावीरचरिते २.१७)-

सोऽयं त्रिसप्तवारानविकलसकलक्षत्रतन्त्रप्रमाथो
वीरः क्रौञ्चस्य भेदी कृतधरणितलापूर्वहंसावतारः ।
जेता हेरम्बभृङ्गिप्रमुखगणचमूचक्रिणस्तारकारे-
स्त्वां पृच्छञ्जामदग्न्यः स्वगुरुहरधनुर्भङ्गरोषादुपैति ।।13।।

तेजस्विता- अनादर(तिरस्कार) इत्यादि का सहन न करना तेजस्विता कहलाता है।।७०पू.।।

जैसे (महावीरचरित २.१७ में)-

(नेपथ्य से राम के प्रति यह कथन)- जिन्होंने इक्कीस बार सकल क्षत्रिय का संहार कर दिया, क्रौञ्चपर्वत का भेदन करके पृथ्वी पर सर्वप्रथम हंसों को आने का अवसर दिया, गणेश तथा भृङ्गिगण रूपसैन्य से युक्त स्कन्द को जीता, वे ही परशुराम अपने गुरु के धनुर्भङ्ग होने के कारण उत्पन्न रोषवश तुम्हें पूछते हुए आ रहे हैं।।13।।

यहाँ परशुराम की तेजस्विता का कथन हुआ है।

अथ कलावत्त्वम्–

कलावत्त्वं निगदितं सर्वविद्यासु कौशलम् ।।७०।।

यथा–

गोष्ठीसु विद्वज्जनसञ्चितस्य
कलाकलापस्य स तारतम्यम् ।
विवेकसीमा विगतावलेपो
विवेद हेम्नो निकषाश्मनीव ।।14।।

कलासम्पन्नता– सभी विद्याओं में कुशलता कलासम्पन्नता कहलाता है।।७०उ.।।

जैसे– विवेक रूपी सीमा वाले तथा अहंकार से रहित उसने सभाओं में विद्वानों द्वारा सञ्ज्ञात कलाकलाप के क्रम की सुवर्ण की पत्थर वाली कसौटी के समान समझा।।14।।

अथ प्रजारञ्जकत्वम्–

रञ्जकत्वं तु सकलचित्ताह्लादनकारिता।

यथा (रघुवंशे ८.८)–

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत् ।
उदधेरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित् ।।15।।

प्रजारञ्जकता–सभी प्रजाजनों के चित्त को प्रसन्न रखना प्रजारञ्जकता कहलाता है।।७१पू.।।

जैसे (रघुवंश ८.८ में)–

प्रजाओं में सब लोगों ने यही समझा कि मैं ही महाराज अज का सबसे अधिक अभिमत व्यक्ति हूँ। सैकड़ों सरिताओं में सागर के समान इसके द्वारा कहीं भी किसी का अपमान नहीं हुआ। चूँकि कभी कोई अपमानित नहीं हुआ अतः सभी यही समझते थे कि मैं ही राजा का प्रियपात्र हूँ।।15।।

उच्चैर्गुणैश्च सकलैर्युक्तः स्यादुत्तमो नेता ।।७१।।
मध्यः कतिपयहीनो बहुगुणहीनोऽधमो नाम ।
नेता चतुर्विधोऽसौ धीरोदात्तश्च धीरललितश्च ।।७२।।
धीरप्रशान्तनामा ततश्च धीरोद्धतः ख्यातः ।

उत्तमादि नायक– उपर्युक्त सभी गुणों से युक्त नायक उत्तम, कतिपय गुणों से हीन (नायक) मध्यम तथा अधिक गुणों से हीन नायक अधम नायक कहलाता है।।७१उ.-७२पू.।।

नायक के भेद– ये नायक चार प्रकार के कहे गये हैं— १. धीरोदात्त, २. धीरललित, ३. धीरप्रशान्त तथा ४. धीरोद्धत।

तत्र धीरोदत्तः–

दयावानतिगम्भीरो विनीतः सत्त्वसारवान् ।।७३।।
दृढ़व्रतस्तितिक्षावानात्मश्लाघापराङ्मुखः ।
निगूढाहङ्कृतिर्धीरैर्धीरोदात्त उदाहृतः ।।७४।।

तत्र दयावत्त्वम्–

द्ययातिशयशालित्वं दयावत्वमुदाहृतम् ।

तत्र दयावत्वं यथा (रघुवंशे ६.६५)–

सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रै-
र्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम् ।
यशो हृतं सम्प्रति राघवेण
न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः ।।16।।

१. धीरोदात्त (नायक)– दयावान् , अतिगम्भीर, विनीत, उत्कृष्ट अन्तःकरण वाला, दृढ़व्रती, सहिष्णु, आत्मप्रशंसा से विमुख, नम्रता के कारण छिपे हुए गर्व वाला (निगूढाहंकार) नायक धीरोदात्त कहलाता है।।७४।।

दायावान् जैसे (रघुवंश ६.६५में)–

उन मूर्छित पड़े हुए राजाओं की पताकाओं पर रुधिर से लिप्त बाणों के अग्रभाग से अज ने यह लिखवा दिया कि हे राजाओं! इस समय रघुपुत्र अज ने आप लोगों के यश को तो ले लिया किन्तु दया करके प्राण नहीं लिया।।16।।

इसमें शत्रुओं के प्रति अज की दया का उदात्त चित्रण हुआ है।

अतिगम्भीरता–

गाम्भीर्यमविकारः स्यात् सत्यपि क्षोभकारणे।।७५।।

यथा (रघुवंशे १२/८)–

दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले ।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः ।।।17।।

अतिगम्भीरता– शोक का कारण होने पर भी विकार न होना (समभाव से रहना) गम्भीरता कहलाता है।।७५उ.।।

जैसे (रघुवंश १२/८ में)-

यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि राम के मुँह का भाव जैसा राज्याभिषेक के रेशमी वस्त्र पहनते समय था, ठीक वैसा ही वन जाने के लिए वल्कल वस्त्र पहनते समय भी था अर्थात् राम के मुख पर हर्ष या शोक का चिह्न न देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये।।17।।

राज्याभिषेक तथा वनगमन दोनों में राम का प्रकृतिभाव (समभाव) से रहना उनकी गम्भीरता को द्योतित करता है।

विनीतत्वं यथा (शिशुपालवधे १३.६)-

अवलोक एव नृपतेः स्म दूरतो
रभसाद् रथादवतरीतुमिच्छतः ।
अवतीर्णवान् प्रथममात्मना हरि-
र्विनयं विशेषयति सम्भ्रमेण सः ।।18।।

विनीतता जैसे (शिशुपालवध में)-

रथ से उतरने की इच्छा करते हुए राजा (युधिष्ठिर) को दूर से ही देखने पर हर्ष से भगवान् (कृष्ण) उनके (उतरने से) पहले ही (रथ से) उतर गये, इस प्रकार उस (कृष्ण) ने शीघ्रता (से उतरने) के कारण (अपने) विनयशीलता को विशिष्ट उत्कृष्ट बना दिया।।18।।

सत्वसारवत्त्वं यथा (रामायणे १.१.६५)-

उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः ।
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम् ।।19।।

उत्कृष्ट अन्तकरण वाला जैसे (रामायण १.१.६५)-

महाबाहु और महाबलशाली (राम) ने मुस्कराकर और उस अस्थि (हड्डियों के समूह) को एक बार देख कर (अपने) पैर के अङ्गूठे से (उछाल कर) उसे दश योजन दूर फेंक दिया।।19।।

दृढव्रतत्वं यथा (रघुवंशे १२/१७)-

तमशक्यमपाक्रष्टुं निवेशात् स्वर्गिणः पितुः ।
ययाचे पादुके पश्चात्कर्त्तुं राज्याधिदेवते ।।20।।

दृढ़व्रती जैसे (रघुवंश १२.१७ में)-

राम जब अपने स्वर्गीय पिता की आज्ञा से टस से मस नहीं हुए तब भरत जी ने उनसे प्रार्थना की कि आप अपनी चरणपादुका मुझे दे दीजिए जिन्हें मैं आपके स्थान पर रखकर राज्य का काम चलाऊँ।।20।।

यहाँ राम के दृढ़व्रतत्व (दृढ़निश्चय) का कथन हुआ है।

तितिक्षावत्त्वं यथा (शिशुपालवधे १६.२५)-

प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभुभुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न तु गोपायुरुतानि केशरी ।।21।।

सहिष्णुता जैसे (शिशुपालवध में)-

श्री कृष्ण ने शाप को प्राप्त चेदिनरेश (शिशुपाल) के लिए प्रत्युत्तर नहीं दिया क्योंकि सिंह सियारों के रोने पर घोर गर्जना नहीं करता।।२१।।

आत्मश्लाघापराङ्मुखत्वं यथा (रघुवंशे १५/२७)-

तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः ।
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयावनतं शिरः ।।22।।

आत्मप्रशंसा से विमुखता (जैसे रघुवंश १५.२७ में)-

जब तपस्वियों का काम पूरा हो गया तब वे शत्रुघ्न की बड़ाई करने लगे पर अपनी प्रशंसा सुनकर शत्रुघ्न ने शील के मारे लजा कर अपना शिर नीचे कर लिया।।२२।।

यहाँ शत्रुघ्न की आत्मप्रशंसा (आत्मश्लाघा) से विमुखता का कथन है।

निगूढाहङ्कारत्त्वं यथा (अनर्घराघवे ४.३५)-

भूमात्रं कियदेतदर्णवमितं तत्साधितं हार्यते
यद्वीरेण भवादृशेन वदता त्रिस्सप्तकृत्वो जयम् ।
डिम्भोऽहं नवबाहुरीदृशमिदं घोरं च वीरव्रतं
तत्क्रोधाद् विरम प्रसीद भगवञ्जात्यैव पूज्योऽसि नः ।।23।।

निगूढाहङ्कार वाला जैसे (अनर्घराघव ४.३५) में)-

धैर्य से मुस्कराते हुए श्री राम परशुराम से कहते हैं— समुद्रवेष्ठित इस पृथ्वी को प्राप्त करके आप ने दान में दे दिया, यह कौन-सी बड़ी बात है, आप ने तो पृथ्वी को इक्कीस बार जीता है। मैं नवबाहुशाली बालक हूँ और यह वीर व्रत बड़ा भयङ्कर है। क्रोध छोड़िये, आप मेरे लिए जन्म से ही आदणीय हैं।।23।।

यहाँ राम का निगूढाहङ्कार है।

अथ धीरललितः

निश्चिन्तो धीरललितस्तरुणो वनितावशः।

यथा (रघवंशे १९.४)-

सोऽधिकारमभिकः कुलोचितं
काश्चन स्वयमवर्तयत् समाः ।

सन्निवेश्य सचिवेष्वतः परं
स्त्रीविधेयनवयौवनोऽभवत् ।।24।।

२. धीरललित (नायक)– धीरललित (नायक) निश्चिन्त, युवा तथा स्त्री के वश में रहने वाला होता है।।७६पू.।।

जैसे (रघुवंश १९.४ में)–

पिता राजा सुदर्शन के द्वारा पहले ही शत्रुओं को बाहुबल से पराजित करके निष्कण्टक किये गये राज्य को प्राप्त करके अग्निवर्ण कामुक हो गये। कुछ वर्षों तक तो उन्होंने स्वयं कुलोचित अधिकार (प्रजा-पालन कर्म) को किया फिर मन्त्रियों पर राज्य का भार डालकर स्त्रियों में आसक्त होकर यौवन का रस लेने लगे।।24।।

यहाँ निश्चिन्तता, युवावस्था तथा स्त्री के वशीभूत होने के कारण अग्निवर्ण धीरललित नायक है।

अथ धीरशान्तः–

समप्रकृतिकः क्लेशसहिष्णुश्च विवेचकः ।।७६।।
ललितादिगुणोपेतो विप्रो वा सचिवो वणिक् ।
धीरशान्तश्चारुदत्तमाधवादिरुदीरितः ।।७७।।

यथा (मालतीमाधवे ५.५)–

कुवलयदलश्यामोऽप्यङ्गं दधत् परिधूसरं
सुललितपदन्यासः श्रीमान् मृगाङ्कनिभाननः ।
हरति विनयं वामो यस्य प्रकाशितसाहसः
प्रविगलदसृक्पङ्कः पाणिर्ललन्नरजाङ्गलः ।।25।।

३. धीरप्रशान्त (नायक)– धीरप्रशान्त नायक ब्राह्मण, सचिव (मन्त्री) अथवा वणिक् होता है जो समान स्वभाव वाला, क्लेश सहन करने की क्षमता वाला, विवेचना करने वाला तथा ललित आदि गुणों से युक्त होता है।।७६उ.-७७पू.।।

(मृच्छकटिक का नायक) चारुदत्त (मालतीमाधव का नायक) माधव इत्यादि धीरप्रशान्त (नायक) कहे गये हैं।।७७उ.।।

जैसे (मालतीमाधव ५.५ में)–

(माधव का वर्णन करते हुए कपालकुण्डला कहती है)— नीलकमल के पत्ते के समान श्यामवर्ण वाला भी धूसरवर्ण वाले अङ्ग को धारण करता हुआ सुन्दर और विकृत शरीर-चालन से युक्त, शोभासम्पन्न होकर चन्द्रतुल्य मुख से भूषित है। मनुष्य-मांस जिसके बाँये हाथ में है और जिससे गाढ़ रक्त (खून) टपक रहा है— इस प्रकार से साहस को प्रकाशित करने वाला जिसका

बायाँ हाथ विनीत वृत्ति का निवारण कर रहा है।।25।।

अथ धीरोद्धतः–

मात्सर्यवानहङ्कारी मायावी रोषणश्चलः ।
विकत्थनो भार्गवादिर्धीरोद्धत उदाहृतः ।।७८।।

यथामहावीरचरिते (२.२८)–

न त्रस्तं यदि नाम भूतकरुणासन्तानशान्तात्मन-
स्तेन व्यारुजता धनुर्भगवतो देवाद्भवानीपतेः ।
तत्पुत्रस्तु मदान्धतारकवधाद् विश्वस्य दत्तोत्सवः
स्कन्दः स्कन्द इव प्रियोऽहमथवा शिष्यः कथं विस्मृतः ।।26।।

४. धीरोद्धत (नायक)– धीरोद्धत नायक ईर्ष्यावान् (दूसरों की उन्नति से डाह रखने वाला), अहंकारवान्, मायावी, क्रोधी, चञ्चल और आत्मप्रशंसक होता है।

(हनुमन्नाटक के) परशुराम आदि नायक धीरोद्धत कहलाते हैं।।७८।।

जैसे (महावीरचरित २.२८ में)–

यदि इसने शङ्कर जी के धनुष को तोड़ दिया तो इसको प्राणियों पर दया करने वाले भगवान् शिव का भय नहीं हुआ! अथवा तारकासुर को मारकर विश्व को प्रसन्न करने वाले यह शङ्कर के पुत्र कार्तिकेय की या पुत्र के समान स्नेहपात्र मेरी याद नहीं रही।।26।।

एते च नायकाः सर्वरससाधारणाः स्मृताः ।
शृङ्गारापेक्षया तेषां त्रैविध्यं कथ्यते बुधैः ।।७९।।
पतिश्चोपपतिश्च वैशिकश्चेति भेदतः ।
पतिस्तु विधिना पाणिग्राहकः कथ्यते बुधैः ।।८०।।

यथा (कुमारसम्भवे १.१८)–

स मानसीं मेरुसखः पितृणां
कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितज्ञः ।
मेनां मुनीनामपि माननीया-
मात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ।।27।।

शृङ्गार नायक के भेद– सभी रसों के लिए सामान्य रूप से ये नायक कहे गए हैं। शृङ्गार की दृष्टि से आचार्यों ने तीन प्रकार के नायकों को बतलाया है- **१.** पति **२.** उपपति **३.** वैशिक।।७९-८०पू.।।

१. पति– आचार्यों ने विधिपूर्वक विवाह करने वाले नायक को पति कहा है।।८०उ.।।

जैसे (कुमारसम्भव १.१८ में)-

सुमेर पर्वत के मित्र इस मर्यादा जानने वाले हिमालय ने पितरों के मन:सङ्कल्प से उत्पन्न, मुनियों की भी माननीया एवं अपने अनुरूप मेना नामक कन्या के साथ अपने कुल की स्थिति (वंश-परम्परा के लिए) शास्त्र-विधि से विवाह किया।।२७।।

चतुर्धा सोऽपि कथितो वृत्त्या काव्यविचक्षणैः ।
अनुकूलः शठो धृष्टो दक्षिणश्चेति भेदतः ।।८१।।

पति के भेद- वह (पति) वृत्ति (अवस्था,दशा) के अनुसार अनुकूल, शठ, धृष्ट और दक्षिण भेद से चार प्रकार का कहा गया है।८१।

तत्र-

अनुकूलस्त्वेकजानिः

(अ) अनुकूल (नायक)- केवल एक नायिका वाला नायक अनुकूल कहलाता है।

तत्र धीरोदात्तानुकूलो यथा (रघुवंशे १४/८७)-

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपमेये यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतुना जहार ।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयव्यापिना तेन भर्त्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ।।28।।

धीरोदात्तानुकूल जैसे (रघुवंश १४.८७ में)-

रावण के शत्रु राम ने सीता को त्यागकर किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया, किन्तु अश्वमेध यज्ञ करते समय उन्होंने सीता की स्वर्णमयी मूर्ति को उनका प्रतिनिधि बनाकर अर्द्धांगिनी के रूप में बायें बैठाया था, जब सीता जी ने अपने पति की ये बातें सुनी, तब उनके मन में छोड़े जाने का जो असह्य दुःख था वह किसी प्रकार सहन हो सका।।28।।

धीरललितानुकूलो यथा (रघुवंशे ८.३२)-

स कदाचिदवेक्षितप्रजः सह देव्या विजहार सुप्रजाः ।
नगरोपवने शचीसखो मरुतां पालयितेव नन्दने ।।29।।

धीरललितानुकूल (नायक) जैसे (रघुवंश ८.३२ में)-

एक दिन उत्तम-सन्तान वाले प्रजापालक राजा अज अपनी रानी इन्दुमती के साथ नगर के उपवन में उसी प्रकार विहार कर रहे थे जिस प्रकार देवताओं के पालक इन्द्र नन्दन वन में इन्द्राणी के साथ विहार करते हैं।।29।।

धीरशान्तानुकूलो यथा (मालतीमाधवे ९.९)-

प्रियमाधवे! किमसि मय्यवत्सला

ननु सोऽहमेव यमनन्दयत्पुरा ।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कण-
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ।।30।।

धीरशान्तानुकूल नायक जैसे (मालतीमाधव ९.९ में)-

(माधव मालती से कहता है) हे माधव से प्रेम करने वाली मालती! मुझ (माधव) के ऊपर क्यों प्रणयशून्य हो गयी हो। अरी! मैं वही हूँ, पहले सुन्दर कङ्कन को धारण करने वाला मूर्तिमान् महोत्सव के समान तुम्हारे हाथ ने जिस माधव को आनन्दित किया था।।30।।

धीरोद्धतानुकूलो यथा (वेणीसंहारे २.९)-

किं कण्ठे शिथिलीकृता भुजलता स्वापप्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखं नाद्यासि सम्भाविता ।
अन्यस्त्रीजनसङ्कथालघुरहं स्वप्नेऽपि नो लक्षितो
दोषं पश्यसि कं प्रिये! परिचयोपालम्भयोग्ये मयि ।।31।।

धीरोद्धतानुकूल (नायक) जैसे (वेणीसहार २.९ में)-

असावधानी के कारण मेरे द्वारा गले में बाहुरूपी लताओं का पाश (बन्धन) शिथिल किया गया है क्या? (अर्थात् तुम्हारे द्वारा बाहुओं को डालकर मेरे गले में लटकने पर मैंने दूसरी ओर ध्यान होने के कारण उन्हें ढीली कर दिया है क्या)? आज नींद उचटने पर करवटें बदलने में (मेरे द्वारा) नहीं सम्मानित की गयी हो (क्या)? (अर्थात् क्या सोते समय भी मैनें तुम्हारा तिरस्कार किया है क्या)? स्वप्न में तुम्हारे द्वारा मैं दूसरी स्त्री के साथ बात-चीत में तल्लीन होने के कारण लघु (ओछा-तिरस्करणीय) समझ लिया गया (क्या)? हे प्रिये, सेवक की (तरह) भर्त्सना (डाँट) के पात्र मुझमें किस दोष को देख रही हो (जिसके कारण मुझ पर नाराज होकर यहाँ चली आयी हो)?।।31।।

अथ शठः-

शठो गूढापराधकृत् ।

यथा (रघुवंशे १९/२२)-

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः
प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम् ।
प्रच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः
क्रोधभिन्नबलयैर्विवर्तनैः ।।32।।

(आ) शठ (नायक)- (पूर्वनायिका के प्रति) गुप्त रूप से (अन्य नायिका से मिलकर) अपराध करने वाला शठ नायक होता है।।८२पू.।।

जैसे (रघुवंश १९.२२) में–

जब स्त्रियाँ देखती थीं कि स्वप्न में बड़बड़ाते हुए राजा अग्निमित्र दूसरी स्त्री की बड़ाई कर रहा है तब वे स्त्रियाँ बिना बोले ही बिस्तर के कोने पर आँसू गिराती हुई क्रोध से कङ्गन को तोड़कर और उससे पीठ फेर कर सो जाती थीं, इस प्रकार उससे रूठ कर उसका तिरस्कार करती थी।।32।।

अथ धृष्टः–

धृष्टो व्यक्तान्ययुवतिभोगलक्ष्मा विनिर्भयः ।।८२।।

यथा ममैव–

को दोषो मणिमालिका यदि भवेत् कण्ठे न किं शङ्करो
धत्ते भूषणमर्धचन्द्रममलं चन्द्रे न किं कालिमा ।
तत्साध्वेव कृतं भणितिभिर्नैवापराद्धं त्वया
भाग्यं द्रष्टुमनीशयैव भवतः कान्तापराद्धं मया ।।33।।

(इ) धृष्ट (नायक)–

जिस नायक के अङ्गों पर अन्य युवति के साथ सम्भोग करने के विद्यमान चिह्न स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं तथा वह (पहली नायिका से) भयरहित होता है, वह धृष्ट नायक कहलाता है।।८२।।

जैसे मेरा (शिङ्गभूपाल का) ही–

यदि मणिमालिका (मणिनिर्मित माला) गले में नहीं है, तो इसमें दोष ही क्या है (अर्थात् दोष नहीं है)। क्या शङ्कर जी निर्मल अर्धचन्द्र को धारण नहीं करते हैं (अर्थात् अवश्य धारण करते हैं) और उस चन्द्रमा में क्या कालिमा (दाग) नहीं है (अर्थात् अवश्य है)। तो आप ने (परनायिका से सम्भोग करके) अच्छा ही किया, अच्छा ही किया, इसमें आप द्वारा अपराध नहीं किया गया। (यह तो अपराध मेरा है कि) मैं आप के इस सौभाग्य को देखने के लिए सक्षम नहीं हूँ— इस प्रकार (वक्रोक्ति) से कहने वाली नायिका के प्रति मैंने (परस्त्रीगमन का) अपराध किया है।।33।।

अथ दक्षिणः–

नायिकास्वप्यनेकासु तुल्यो दक्षिण उच्यते ।।८२।।

यथा– (दशरूपके उद्धृतम् ८९)–

स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽङ्गराजस्वसु-
र्द्यूते रात्रिरियं जिता कमलया देवी प्रसाद्याद्य च ।
इत्यन्तःपुरसुन्दरी प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते

देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः ।।34।।

(ई) दक्षिण (नायक)– अनेक नायिकाओं के होने पर भी (सभी के साथ) समान (प्रीति रखने वाला) दक्षिण नायक कहलाता है।।८३पू.।।

जैसे (दशरूपक में उद्धृत ८९)

कुन्तलेश्वर की पुत्री नहायी हुई बैठी है, आज अङ्गराज की बहिन की बारी है, कमला ने यह रात्रि जुए में जीत ली है, आज देवी को भी प्रसन्न करना है- इस प्रकार अन्तःपुर की सुन्दरियों के प्रति जान कर जब मैंने राजा को सूचित किया तो महाराज कुछ निश्चय न करने के कारण मूढ मन से दो तीन घड़ी स्तब्ध रहे।।34।।

अथोपपतिः-

लङ्घिताचारया यस्तु विनापि विधिना स्त्रिया ।।८३।।
सङ्केतं नीयते प्रोक्तो बुधैरुपपतिस्तु सः ।

यथा-

भर्त्ता निःश्वसितेऽप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः
श्वश्रूरिङ्गितदैवतं नयनयोरीहालिहो यातरः ।
लद्दूरादयमञ्जलिः किममुना दृग्भङ्गिपातेन ते
वैदग्धीरचनाप्रपञ्चरसिक! व्यर्थोऽयमत्र श्रमः ।।35।।

२. उपपति– विधिपूर्वक विवाह किये बिना ही आचार का उल्लङ्घन करने वाली स्त्री के द्वारा जो (नायक) सङ्केत (सम्भोग के लिए पहले से ही निश्चित) स्थान पर (सम्भोग के लिए) ले जाया जाता है, वह (नायक) आचार्यों द्वारा उपपति कहा गया है।।८३उ.-८४पू.।।

जैसे– (कोई परकीया नायिका अपने उपपति से कहती है)—

पति साँस लेने पर भी शङ्का करता है, सपत्नियाँ मन की बात जानने की कोशिश करती हैं, सास किये गये सड्केत की देवता (जानने वाली) हैं, भौरे आँखों के सेवक हैं, इसलिए हे कुशल रचना को प्रदर्शित करने वाले रसिक! दूर से ही मैं ये हाथ जोड़ रही हूँ, तुम्हारे इस कटाक्षपूर्वक देखने से क्या लाभ है, यहाँ ~~यह~~ तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है।।३५।।

दाक्षिण्यमानुकूल्यं च धार्ष्ट्यं चानियतत्वतः ।।८४।।
नोचितान्यस्य शाठ्यं स्यादन्यचित्तत्वसम्भवात् ।

उपपति के वर्ज्यगुण– प्रसङ्ग (उपपति के अनुकूल) न होने के कारण दाक्षिण्य, आनुकूल्य तथा धृष्टता— ये (गुण) उपपति के लिए उचित (उपयुक्त) नहीं होता, दूसरी (नायिका) के प्रति चित्त होने से उत्पन्न शठता ही (उपपति का) गुण होता है।।८४उ.-८५पू.।।

शठोपपतिर्यथा-

मज्झण्णे जणसुण्णे करिणीए भक्खिदेसु कमलेसु ।
अविसेसण्ण कहं विअ गदोऽसि सणवाडिअं दट्ठुम् ।।36।।
(मध्याह्ने जनशून्ये करिण्या भक्षितेषु कमलेषु ।
अविशेषज्ञ! कथमिव गतोऽसि शणवाटिकां द्रष्टुम्।।)

अत्र कयाचित्स्वैरिण्या मयि सङ्केतं गतायां त्वं तु शणवाटिकायां कयापि रन्तुं गतोऽसि व्यङ्ग्यार्थेनान्यासम्भोगसूचनादयं शठोपपतिः।

शठ उपपति जैसे-

हे अविशेषज्ञ! मध्याह्न (दोपहर) में एकान्त में हथिनी के द्वारा कमलों के खाने पर शणवाटिका को देखने के लिए क्यों गये थे।।36।।

यहाँ किसी स्वैरिणी रमणी द्वारा मेरे सङ्केत वाले स्थल में जाने पर तुम तो शणवाटिका में किसी (अन्य रमणी) के साथ रमण करने के लिए गये थे। इस व्यङ्ग्य अर्थ से दूसरी स्त्री के साथ समागम के सूचित होने के कारण यह शठ उपपति है।

अथ वैशिकः-

रूपवान् शीलसम्पन्नः शास्त्रज्ञः प्रियदर्शनः ।।८५।।
कुलीनो मतिमान् शूरो रम्यवेषयुतो युवा ।
अदीनः सुरभिस्त्यागी सहनः प्रियभाषिणः ।।८६।।
शङ्काविहीनो मानी च देशकालविभागवित् ।
दाक्ष्यचातुर्यमाधुर्यसौभाग्यादिरभिरन्वितः ।।८७।।
वेश्योपभोगरसिको यो भवेत् सः तु वैशिकः ।
कलकण्ठादिको लक्ष्ये भाणादावेव वैशिकः ।।८८।।

३. वैशिक- जो नायक रूपवान् शीलसम्पन्न, शास्त्र का ज्ञाता, देखने में प्रिय लगने वाला, कुलीन, बुद्धिमान् वीर, रमणीय वेषवाला, युवक, धनवान्, रुचिकर, त्यागी, सहनशील, प्रियवक्ता, शङ्कारहित, अभिमानी, देश तथा काल का ज्ञाता, दक्षता-चतुरता-माधुर्य-सौभाग्य इत्यादि से सम्पन्न तथा वेश्याओं के साथ सम्भोग में रस लेने वाला होता है, वह वैशिक होता है।

भाण इत्यादि रूपकों में कलकण्ठ इत्यादि नायक वैशिक हैं।।८५उ.-८८।।

स त्रिधा कथ्यते ज्येष्ठमध्यनीचविभेदतः।
तेषां लक्षणानि भावप्रकाशिकायामुक्तानि-

यथा भावप्रकाशे (५/३७-४४)-

असङ्गोऽपि स्वभावेन सक्तवच्चेष्टते मुहुः ।

त्यागी स्वभावमधुरः समदुःखसुखः शुचिः ॥
कामतन्त्रेषु निपुणः क्रुद्धानुनयकोविदः ।
स्फुरिते चाधरे किञ्चिद् दयिताया विरज्यति ॥
उपचारपरो ह्येष उत्तमः कथ्यते बुधैः ।

वैशिक (नायक) के भेद– वह वैशिक (नायक) ज्येष्ठ (उत्तम), मध्यम तथा नीच- भेद से तीन प्रकार का होता है।।८९पू.।।

उन वैशिक (नायकों) के लक्षण भावप्रकाशिका में कहे गये हैं—

ज्येष्ठ (उत्तम) वैशिक नायक– जो (नायक) स्वभाव से अनासक्त होते हुए भी आसक्त की भाँति बार-बार चेष्टा करता है, त्यागी, स्वभाव से मधुर, दुःख और सुख में समान रहने वाला, पवित्र, कामक्रियाओं में निपुण, क्रुद्ध (वेश्या) को अनुनय द्वारा प्रसन्न करने में कुशल तथा जो दयिता (वेश्या) के होठों के स्फुरित होने पर रागरहित (विरक्त) हो जाता है, इस प्रकार के उपचार वाला वैशिक (नायक) आचार्यों द्वारा उत्तम कहा गया है।

व्यलीकमात्रे दृष्टेऽस्या न कुप्यति न रज्यति ॥
ददाति काले काले च भावं गृह्णाति भावतः ।
सर्वार्थैरपि मध्यस्थस्तामेवोपरेत् पुनः ॥
दृष्टे दोषे विरज्येत स भवेन्मध्यमः पुमान् ।

मध्यम वैशिक नायक– जो इस (नायिका=वेश्या) के मिथ्या (अथवा कुत्सित) देखने पर न तो क्रोधित होता है और न अनुराग करता है, समय-समय पर (धन) देता है; (वेश्या के) भाव से भाव ग्रहण करता है, सभी के लिए मध्यस्थता का उपचार करता है; दोष देखने पर विलग हो जाता है, वह मध्यम वैशिक (नायक) कहलाता है।

कामतन्त्रेषु निर्लज्जः कर्कशो रतिकेलिषु ॥
अविज्ञातभयामर्षः कृत्याकृत्यविमूढधीः ।
मूर्खः प्रसक्तभावश्च विरक्तायामपि स्त्रियाम् ॥
मित्रैर्निवार्यमाणोऽपि पारुष्यं प्रापितोऽपि च ।
अन्यस्नेहपरावृत्तां सङ्क्रान्तरमणामपि ॥
स्त्रियं कामयते यस्तु सोऽधमः परिकीर्तितः ।

अधम वैशिक नायक– जो काम-विषय में निर्लज्ज, रतिक्रियाओं में कठोर, भय और क्रोध के ज्ञान से रहित, कर्त्तव्याकर्त्तव्य में जड़बुद्धि वाला, मूर्ख, मित्रों के द्वारा रोके जाने तथा बुरा भला कहने पर भी विरक्तस्त्री के प्रति आसक्तभाव वाला, दूसरे के प्रति स्नेह करने वाली तथा रमण का सङ्क्रमण की हुई भी स्त्री की कामना करता है, वह अधम वैशिक नायक कहलाता है।

अथ शृङ्गारनेतृणां साहाय्यकरणोचिताः ।।८९।।
निरूप्यन्ते पीठमर्दविटचेटविदूषकाः ।

शृङ्गार नायक के सहायक– (नायक का निरूपण करने के बाद) अब शृङ्गार (रस) वाले नायकों की सहायता करने वाले पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक का निरूपण किया जा रहा है।।८९उ.-९०पू.।।

तत्र पीठमर्दः–

नायकानुचरो भक्तः किञ्चिदूनस्तु तद्गुणैः ।।९०।।
पीठमर्द इति ख्यातः कुपितस्त्रीप्रसादकः ।

पीठमर्द– (प्रधान) नायक का अनुचर तथा भक्त, उस (प्रधान नायक) के गुणों से कुछ न्यून गुणों वाला और कुपित स्त्री को प्रसन्न करने वाला (नायक का सहायक) पीठमर्द कहलाता है।।९०उ.-९१पू.।।

कामतन्त्रकलावेदी विट इत्यभिधीयते ।।९१।।
सन्धानकुशलश्चेटः कलहंसादिको मतः ।

विट और चेट– काम-विषयक कलाओं को जानने वाला (नायक का सहायक) विट कहलाता है। (मानयुक्त नायिका से नायक को) मिलाने में निपुण (नायक का सहायक) चेट कहलाता है। जैसे कलहंस इत्यादि।।९१उ.-९२पू.।।

विकृताङ्गवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः ।।९२।।

विदूषक– अङ्ग, वाणी तथा वेष के विकार से हास्य करने वाला (नायक का सहायक) विदूषक कहलाता है।।९२उ.।।

अथ सहायगुणाः–

देशकालज्ञता भाषामाधुर्यं च विदग्धता ।
प्रोत्साहने कुशलता यथोक्तकथनं तथा ।।९३।।
निगूढमन्त्रणेत्याद्याः सहायानां गुणा मताः ।

नायक के सहायकों के गुण– देश और काल को जानना, वाणी में मधुरता कुशाग्र बुद्धिमत्ता, प्रोत्साहन में कुशलता तथा उचित कथन और निगूढ़ मन्त्रणा इत्यादि (नायक के) सहायकों के गुण कहे गये हैं।।९३-९४पू.।।

।।इति नायकप्रकरणम् ।।
।। इस प्रकार नायक प्रकरण समाप्त ।।

अथ नायिका निरूप्यन्ते-

नेतृसाधारणगुणैरुपेता नायिका मता ।।९४।।
स्वकीया परकीया च सामान्या चेति सा त्रिधाः ।

नायिका के भेद- (नायक के बाद) अब नायिका का निरूपण किया जा रहा है— नायक के सामान्य गुणों से युक्त नायिका होती है। वह नायिका तीन प्रकार की होती है— १. स्वकीया, २. परकीया तथा ३. सामान्या।।९४उ.-९५पू.।।

तत्र स्वकीया-

सम्पत्काले विपत्काले या न मुञ्चति वल्लभम् ।।९५।।
शीलार्जवगुणोपेता सा स्वीया कथिता बुधैः ।

१. स्वकीया- शील और सरलता- इन गुणों से युक्त जो (नायिका) सम्पत्ति और विपत्ति के समय प्रियतम (नायक) को नहीं छोड़ती, वह (नायिका) आचार्यों द्वारा स्वकीया कही गयी है।।९५उ.-९६पू.।।

यथा (बालरामायणे ६.१९)-

किं तादेण णरिन्दसेहरसिहालीढग्गपादेण मे
किं वा मे ससुरेण वासवमहासिंहासणद्धासिणा ।
ते देसा गिरिणो अ दे वणमही सा च्चेअ मे वल्लहा
कोसल्लातणअस्स जत्थ चलणे वन्दामि णन्दामि अ ।।37।।
(किं तातेन नरेन्द्रशेखरशिखालीढाग्रपादेन मे
किं वा मे श्वसुरेण वासवमहासिंहासनाध्यासिना ।
ते देशा गिरयश्च ते वनमही सा चैव मे वल्लभा
कौशल्यातनयस्य यत्र चरणौ वन्दे च नन्दामि च ।।)

जैसे (बालरामायण ६.१९ में)-

राजाओं के शिरों से जिनके पैर चूमें जाते हैं उन पिताजी से मेरा क्या?और इन्द्र सभा के सिंहासन के अर्धभाग में बैठने वाले श्वसुर से क्या? वे ही पर्वत मेरे देश हैं और वनभूमि ही मेरी प्रिय है जहाँ कौशल्या के पुत्र राम के चरणों की वन्दना करूँ और प्रसन्न होऊँ।।37।।

सा च स्वीया त्रिधा मुग्धा मध्या प्रौढेति कथ्यते ।।९६।।

तत्र मुग्धा-

मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि ।
यतते रतचेष्टायां गूढं लज्जामनोहरम् ।।९७।।
कृतापराधे दयिते वीक्षते रुदती सती ।

अप्रियं वा प्रियं वापि न किञ्चिदपि भाषते ।।९८।।

स्वकीया नायिका के भेद– वह (स्वकीया नायिका) (अ) मुग्धा, (आ) मध्या और (इ) प्रौढ़ा- (भेद से) तीन प्रकार की कही गयी है।।९६उ.।।

(अ) मुग्धा स्वीया नायिका– जिसकी अवस्था और कामभावना नवीन होती है, जो रतिक्रीडा में झिझकने वाली (वामा=विपरीत, प्रतिकूल, विमुख) और क्रोध करने में भी कोमल होती है, जो रतिचेष्टा में गूढ़ और मनोहर लज्जा करती है, प्रियतम (नायक) के (अन्य स्त्री के साथ सम्भोग के द्वारा) किये गये (अपने प्रति) अपराध को रोती हुई देखती रहती है तथा (इस अपराध के विषय में) वह प्रिय अथवा अप्रिय कुछ भी नहीं बोलती, वह मुग्धा (स्वकीया नायिका) कहलाती है।।९७-९८।।

वयसा मुग्धा यथा ममैव–

उल्लोलितं हिमकरे निबिडान्धकार-
मुत्तेजितं विषमसायकबाणयुग्मम् ।
उन्मज्जितं कनककोरकयुग्ममस्या-
मुल्लासिता च गगने तनुवीचिरेखा ।।38।।

वयोमुग्धा जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

इस (नायिका) के चन्द्रमा (मुख) पर चञ्चल घना अन्धकार (काले बाल) लटक रहे हैं) और कठिन पङ्खयुक्त दो बाण (दोनों आँखें) तीखी हो गयी है। सुवर्ण के समान दो कलियाँ (गोरे स्तन) बाहर निकल गये हैं तथा आकाश (पेट) पर अत्यन्त पतली तरङ्गों (त्रिवली) की रेखा (पङ्क्ति) हो गयी है।।38।।

नवकामा यथा ममैव–

बाला प्रसाधनविधौ निदधाति चित्तं
दत्तादरा परिणये मणिपुत्रिकाणाम् ।
आलज्जते निजसखीजनमन्दहासै-
रालक्ष्यते तदिह भावनवावतारः ।।39।।

नवकामा जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

षोडशी रमणी प्रसाधन (सजावट) के कार्यों में मन लगाती है, मणिपुत्रिकाओं (गुड्डे-गुड्डियों) के विवाह (के खेल) में आदर देती है, अपनी सखियों की मन्द हँसी से लज्जित हो जाती है। इस प्रकार उसमें (काम-विषयक) नये भाव का अवतरण (उदय) हो रहा है।।39।।

रतौ वामत्वं यथा ममैव–

आलोक्य हारमणिबिम्बितमात्मनाथ-

मालिङ्गतीति सहसा परिवर्तमाना ।
आलम्बिता करतले परिवेपमाना
सा सम्भ्रमात् सहचरीमवलम्बते स्म ।।40।।

रति में वामता जैसे शिङ्गभूपाल का ही– अपने हार की मणि में प्रतिबिम्बित प्रियतम को देखकर "आलिङ्गन कर रहा है" इस प्रकार सहसा पीछे मुड़ी हुई हथेलियों का आश्रय लेकर काँपती हुई वह नायिका भ्रम के कारण सखियों का सहारा लिया।।40।।

मृदुकोपत्वं यथा–

व्यावृत्तिक्रमणोद्यमेऽपि पदयोः प्रत्युद्गतौ वर्तनं
भ्रूभेदोऽपि तदीक्षणव्यसनिना व्यस्मारि मे चक्षुषा ।
चाटूक्तानि करोति दग्धरसना रूक्षाक्षरेऽप्युद्यता
सख्यः! किं करवाणि मानसमये सङ्घातभेदो मम ।।41।।

मृदुकोपता जैसे–

(कोई नायिका अपनी सखी से कह रही है कि) हे सखि! (प्रियतम के आने पर) वहाँ से हटने का प्रयत्न करने पर भी (मेरे) पैरों का आगे बढ़ना रुक गया, उस (प्रियतम) को देखने में दुर्बल हुई मेरी आँखों के द्वारा भौहों की कुटिलता को भी भुला दिया गया, कर्कश शब्द बोलने के लिए उद्यत हुई आग में तपी हुई करधनी (मधुर ध्वनि से उस प्रियतम की) चाटुकारिता करने लगी। हे सखि! क्या करूँ, उस मान के समय मेरे (अङ्गों का) समूह (मुझसे) अलग हो गया (अर्थात् ये मेरा विरोध करने लगे) ।।41।।

सव्रीडसुरतप्रयत्नं यथा (रत्नावल्याम् १.२)–

औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।
दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे
संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायास्तु ते ।।42।।

सव्रीड सुरतप्रयत्न जैसे (रत्नावली १.२ में)–

परिणयोपरान्त नव (प्रथम) समागम में उत्सुकता से शीघ्रता करने वाली स्वाभाविक रूप से लज्जा के कारण वापस लौटने का उपक्रम किये हुये, प्रियजन (भौजाई आदि) के अनेक प्रकार के वचनों से पुनः सम्मुख ले जायी गयी सामने पति (शिवजी) को देखकर भयभीत तथा रोमाञ्चयुक्त, हँसते हुए शिव जी द्वारा आलिङ्गन की गयी पार्वती जी तुम सब सामाजिकों के कल्याण के लिए होवें अर्थात् तुम सब का कल्याण करें।।42।।

परिणयोपरान्त नवसमागम में पार्वती की लज्जा का कथन हुआ है।

क्रोधादभाषणा रुदती यथा ममैव-

कान्ते कृतागसि पुरः परिवर्तमाने
सख्यं सरोजशशिनोः सहसा बभूव ।
रोषाक्षरं सुदृशि वक्तुमपारयन्त्या-
मिन्दिवरद्वयमवाप तुषारधाराम् ।।43।।

क्रोध के कारण न बोल पाती हुई (अतः) रोती हुई जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

(दूसरी नायिका के साथ सम्भोग करके) अपराध किये हुए (प्रियतम) के पास में आने पर प्रियतमा (का गोरा मुख) उसी प्रकार लाल हो गया जैसे कमलिनी और चन्द्रमा का साथ होने पर सफेद कमलिनी लाल वर्ण की हो जाती है। उस सुन्दर नेत्रों वाली को अपनी क्रोधपूर्ण बात न कह पाने के कारण दोनों कमल (के समान आँखें) आसुओं की धारा से भर गयीं।।43।।

अथ मध्या-

समानलज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी ।
मध्या कामयते कान्तं मोहन्तसुरतक्षमा ।।९८।।

(आ) मध्या स्वकीया नायिका- जो लज्जा और समागम में समान रहने वाली (समानलज्जामदना), परिपुष्ट यौवन वाली (प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी) तथा मोह की अवस्था पर्यन्त सुरत में सक्षम (मोहान्तसुरतक्षमा) तथा अन्त तक प्रियतम को चाहने वाली होती हैं, वह मध्या नायिका कहलाती है।।९९।।

तुल्यलज्जास्मरत्वं यथा ममैव-

कान्ते पश्यति सानुरागमबला साचीकरोत्याननं
तस्मिन्कामकलाकलापकुशले व्यावृत्तवक्त्रे किल ।
पश्यन्ती मुहुरन्तरङ्गमदनं दोलायमानेक्षणा
लज्जामन्मथमध्यागापि नितरां तस्याभवत् प्रीतये ।।44।।

तुल्यलज्जास्मरत्व जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

मुख खोले हुए उस कामकला में निपुण प्रियतम के देखने पर (नायिका) मुख को नीचे कर लेती है। फिर लज्जा और कामवासना के मध्य फँसी हुई, अपने भीतर के काम (वासना)को देखती (अनुभव करती) हुई चञ्चल नेत्रों वाली (नायिका उस समय) उस (प्रियतम) की अत्यधिक प्रसन्नता के लिए (कारण) हो गयी।।44।।

प्रोद्यत्तारुण्यशालित्वं यथा ममैव-

नेत्राञ्चलेन ललिता वलिता च दृष्टिः
सख्यं करोति जघनं पुलिनेन साकम् ।

चक्रद्वयेन सदृशौ कुचकुड्मलौ च
नित्या विभति नितरां मदनस्य लक्ष्मी ।।45।।

प्रोद्यत्तारुण्यशालित्व जैसे शिङ्गभूपाल का–

नायिका की चञ्चल आँखे (नेत्रों के) कोरों से शोभायमान हैं, जघन (नितम्ब) किनारे के साथ मेल कर रहा है। पूर्ण खिले हुए (विकसित) दोनों स्तन दो चक्रों के समान हो गये हैं- (इस प्रकार) कामदेव की शोभा (रूपी नायिका) अत्यधिक सुशोभित हो रही है।।45।।

मोहान्तसुरतक्षमत्वं यथा ममैव–

आकीर्णघर्मजलमाकुलकेशपाश-
मामीलिताक्षियुगमादृतपारवश्यम् ।
आनन्दकन्दलितमस्तमितान्यभाव-
माशास्महे किमपि चेष्टितमायताक्ष्याः ।।46।।

मोहान्तसुरतक्षमत्व जैसे शिङ्गभूपाल का–

इस आयताक्षी रमणी के फैले हुए पसीने, बिखरे हुए जूड़े, मुँदी हुई दोनों आँखें, समादृत परवशता, आनन्द से रोमाञ्च और तिरोहित हुए अन्य भाव वाले किसी अलौकिक चेष्टा की मैं आशा करता हूँ।।46।।

मध्या त्रिधा मानवृत्तेर्धीराधीरोभयात्मिका ।

मध्या नायिका के भेद– मानवृत्ति के आधार पर मध्या नायिका तीन प्रकार की होती है— **१.** धीरा, **२.** अधीरा तथा **३.** उभयात्मिका ॥१००पू.॥

तत्र धीरा–

धीरा तु वक्ति वक्रोक्त्या सोत्प्रासं सागसं प्रियम् ।।१००।।

१. धीरा मध्या– मध्या धीरा नायिका अपराधी प्रियतम को ताने सहित (सोत्प्रास) वक्रोक्ति से कहती (फटकारती) है॥१००उ.॥

यथा ममैव–

को दोषो मणिमालिका यदि भवेत्कण्ठे न किं शङ्करो
धत्ते भूषणमर्धचन्द्रममलं चन्द्रे न किं कालिमा ।
तत्साध्वेव कृतं कृतं भणितिभिर्नैवापराद्धं त्वया
भाग्यं द्रष्टुमनीशयैव भवतः कान्तापराद्धं मया ।।47।।

जैसे शिङ्गभूपाल का–

यदि मणिमालिका (मणिनिर्मित माला) गले में नहीं है तो इसमें दोष ही क्या है(अर्थात्

कोई दोष नहीं है)। क्या शङ्कर जी निर्मल अर्धचन्द्र को धारण नहीं करते (अर्थात् अवश्य धारण करते हैं) और उस चन्द्रमा में क्या कालिमा (दाग) नहीं है (अर्थात् अवश्य है)। तो आप ने (परनायिका से सम्भोग करके) अच्छा ही किया है, अच्छा ही किया है। (यह तो अपराध मेरा है कि) मैं आप के इस सौभाग्य को देखने के लिए सक्षम नहीं हूँ— इस प्रकार (वक्रोक्ति से कहने वाली नायिका के प्रति) मैने (परस्त्रीगमन का) अपराध किया है।।47।।

अथाधीरा–

अधीरा परुषैर्वाक्यैः खेदयेद् वल्लभं रुषा ।

यथा ममैव–

निश्शङ्कमागतमवेक्ष्य कृतापराधं
काचिन्नितान्तपरुषं विनिवृत्तवक्त्रा ।
किं प्रार्थनाभिरधिकं सुखमेधि याहि
याहीति खिन्नमकरोदसकृद् ब्रुवाणा ।।48।।

२. अधीरा मध्या नायिका– अधीरा मध्या नायिका (अपराध करने वाले) प्रियतम को कठोर वाक्यों द्वारा (अपने) क्रोध से पीड़ित करती है।।१०१पू.।।

जैसे शिङ्गभूपाल का–

(दूसरी नायिका के साथ सम्भोग का) अपराध करके निःशङ्क आये हुए (नायक) को 'प्रार्थना करने से क्या लाभ? अधिक सुख करो, जाओ-जाओ'- इस प्रकार बार-बार मुख से अत्यन्त कठोर वाणी को निकालती हुई किसी (नायिका) ने दुःखी कर दिया।।48।।

अथ धीराधीरा–

धीराधीरा तु वक्रोक्त्या सबाष्पं वदति प्रियम् ।।१०१।।

३.धीरा अधीरा (उभयात्मिका) मध्या नायिका– धीरा-अधीरा मध्या नायिका अश्रुपूर्वक (आँसू बहाती हुई) अपराधयुक्त प्रियतम को वक्रोक्ति से कहती (उलाहना देती) है।।१०१उ.।।

यथा ममैव–

आश्लेषोल्लसिताशयेन दयिताप्यार्द्रा त्वया चुम्बिता
चित्रोक्तिश्रवणोत्सुकेन कलिता तस्यां निशायां कथा ।
तद्युक्तं दिवसागमेऽत्र जडता कार्श्यं कलाहीनता
राजन्नित्युदिताश्रुगद्गदपदं काचिद् ब्रवीति प्रियम् ।।49।।

जैसे शिङ्गभूपाल का–

हे राजन्! आलिङ्गन के आशय से कोमल (अथवा रसीली) प्रियतमा का तुमने चुम्बन

किया। रुचिकर वचन सुनने की उत्सुकता से उस रात में बातचीत आरम्भ किया, यह उचित ही था। इस प्रकार अब दिन हो जाने पर जड़ता और कलाहीनता से युक्त कोई (नायिका) उत्पन्न आँसुओं के कारण अस्पष्ट और प्रिय शब्द को कह रही है।।49।।

अथ प्रगल्भा–

सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता प्रगल्भा रूढमन्मथा ।
दयिताङ्गे विलीनेव यतते रतिकेलिषु ।।१०२।।
रतप्रारम्भमात्रेऽपि गच्छत्यानन्दमूर्च्छनाम् ।

(इ) प्रगल्भा (प्रौढ़ा)– प्रगल्भा नायिका सम्पूर्ण यौवन (चढ़ी जवानी) के कारण उन्मत्त, (सम्पूर्ण यौवनोन्मत्ता), प्ररूढ काम वाली (रूढमन्मथा), रति- क्रीडा में प्रियतम के अङ्गों में प्रविष्ट-सी होती हुई तथा सुरत के प्रारम्भ मात्र में ही आनन्द की मूर्च्छा को प्राप्त हो जाती है।।१०२-१०३पू.।।

सम्पूर्णयौवनत्वं यथा ममैव–

उत्तुङ्गौ कुचकुम्भौ रम्भास्तम्भोपमानमूरुयुगलम् ।
तरले दृशौ च तस्याः सृजता धात्रा किमाहितं सुकृतम् ।।50।।

सम्पूर्णयौवनत्व जैसे शिङ्गभूपाल का–

उस (नायिका के) घड़े के समान दोनों स्तन ऊपर को उठे हुए है, दोनों जङ्घाएँ कदली के खम्भे के समान हैं और दोनों आँखें चञ्चल हैं इस प्रकार (उसको) बनाते हुए विधाता के द्वारा (उसमें) कौन-सा अनुग्रह (पुण्य) स्थापित किया है।।50।।

रूढमन्मथत्वं यथा ममैव–

निःश्वासोल्लसदुन्नतस्तनतटं निर्दष्टबिम्बाधरं
निर्मिष्टाङ्गविलेपनैश्च करणैश्चित्रे प्रवृत्ते रते ।
काञ्चीदामविभिन्नमङ्गदयुगं भग्नं तथापि प्रियं
सम्प्रोत्साहयति स्म सा विदधती हस्तं क्वणत्कङ्कणम् ।।51।।

रूढमन्मथत्व जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

अङ्गों के विलेपन को मिटा देने वाली क्रियाओं के साथ (प्रियतम के) रुचिकर (दिलचस्प) सुरत-क्रिया में प्रवृत्त होने पर (नायिका के) निःश्वास (लम्बी लम्बी श्वाँस) के कारण उन्नत स्तनों का चुचुक रोमाञ्चित हो गया, बिम्ब के समान लाल ओष्ठ (नायक द्वारा) काट लिया गया, करधनी की डोरी टूट गयी, दोनों बाजूबन्द खण्डित हो गये, तो भी बजते हुए कङ्गनों वाले हाथ वाली उस नायिका ने प्रियतम को पूरी तरह से प्रोत्साहित किया।।51।।

मानवृत्तेः प्रगल्भापि त्रिधा धीरादिभेदतः ।।१०३।।

प्रगल्भा नायिका के भेद– मानवृत्ति के आधार पर धीरा इत्यादि भेद से प्रगल्भा नायिका भी तीन प्रकार की होती है॥१०३उ.॥

तत्र धीरप्रगल्भा–

उदास्ते सुरते धीरा सावहित्था च सादरा ।

१. धीरा प्रगल्भा नायिका– धीरा प्रगल्भा नायिका सुरत-काल में आदर के साथ अपने मन के (काम-) विकार को छिपाए हुए उदासीन रहती है॥१०४पू.॥

यथा–

न प्रत्युद्गमनं करोति रशनाव्यासञ्जनादिच्छला-
न्नादत्ते नवमञ्जरीमलिभयव्याजेन दत्तामपि ।
धत्ते दर्पणमादरेण न गिरं रूक्षाक्षरं मानिनी
चातुर्यात् पिदधाति मानमथवा व्यक्तिकरोति प्रिया ॥52॥

जैसे–

(नायिका) करधनी बाँधने के बहाने से प्रत्युद्गमन नहीं करती (अतिथि के स्वागत के लिए नहीं उठती)। भ्रमरों से भय के बहाने दी गयी मञ्जरी (आम के बौर) को नहीं लेती। आदरपूर्वक दर्पण धारण करती है (किन्तु) रूखाई से नहीं बोलती। (इस प्रकार) मान करने वाली (यह) प्रियतमा (अपनी) चतुरता से न तो मान छिपाती है और न व्यक्त करती है॥52॥

अथाधीरप्रगल्भा–

सन्तर्ज्य निष्ठुरं रोषादधीरा ताडयेत् प्रियम् ॥१०४॥

२. अधीरा प्रगल्भा– अधीरा प्रगल्भा नायिका अपने क्रोध के कारण अपराधी प्रियतम को कठोरता पूर्वक डाँटकर पीटती है॥१०४उ.॥

यथा ममैव–

कान्ते सागसि काचिदन्तिकगते निर्भर्त्स्य रोषाक्षरै-
र्भ्रूभङ्गीकुटिलैरपाङ्गवलनैरालोकमाना मुहुः ।
बद्ध्वा मेखलया सपत्नरमणीपादाब्जलाक्षाङ्कितं
लीलानीलसरोरुहेण निटिलं हन्ति स्म रोषाकुला ॥53॥

जैसे शिङ्गभूपाल का–

दूसरी नायिका के साथ सम्भोग करके अपराध करने वाले प्रियतम के समीप में आने पर कठोर शब्दों से झिड़ककर, त्यौरी चढ़ाने से टेढ़ी अतएव घुमी हुई आँखों से बार-बार देखती हुई, रोष से व्याकुल (नायिका) ने सपत्नी के (साथ रमण करने के कारण) चरण-कमलों की महावर के स्पर्श से लगे हुए चिह्न वाले (प्रियतम) को मेखला से बाँध कर लीलापूर्वक नीले कमल

से मारती थी।।53।।

अथ धीराधीरप्रगल्भा–

धीराधीरगुणोपेता धीराधीरेति कथ्यते ।

(३) धीरा–अधीरा प्रगल्भा– धीरा-अधीरा प्रगल्भा नायिका धीरा और अधीरा दोनों के मिश्रित गुणों से युक्त होती है।।१०५पू.।।

यथा ममैव–

प्रत्यासीदति सागसि प्रियतमे सा सम्भ्रमादुत्थिता
वैयात्यात् पुरतः स्थिते सति पुनर्मानावधूताशया ।
रात्रौ क्वासि न चेदियं मणिमयी माला कुतस्ते वदे-
त्युक्त्वा मेखलया हतेन सहसाश्लिष्टा सबाष्पं स्थिता ।।54।।

जैसे शिङ्गभूपाल का–

(दूसरी नायिका के साथ सम्भोग करके) अपराध करने वाले प्रियतम को समीप में बैठ जाने पर विक्षोभ के कारण पलङ्ग से उठी हुई (नायिका) ने पुनः बहाने से उसको सामने खड़े हो जाने पर मान से अपमानित होने के कारण 'बोलो रात में कहाँ थे, यदि नहीं तो यह मणिजड़ित माला तुमको कहाँ से मिली'— इस प्रकार कहकर मेखला से मारे गये नायक से सहसा आश्लिष्ट तथा आँसू बहाती हुई खड़ी हो गयी।।54।।

द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठेति मध्या प्रौढापि तादृशी ।।१०५।।

मध्या तथा प्रौढ़ा (प्रगल्भा) नायिकाएँ ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा भेद से दो -दो प्रकार की होती है।।१०५उ.।।

उभेऽपि यथा (अमरुशतके १९)–

एकत्रासनसङ्गमे प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-
देकस्या नयने पिधाय विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।
ईषद्वक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-
मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ।।55।।

दोनों जैसे (अमरुशतक 19 में)– (सखी नायक की चातुरी का वर्णन सखी से कर रही है-) एक ही आसन पर दो प्रियतमाओं को बैठी हुई देख कर उस धूर्त ने पीछे से जाकर एक प्रिया की आँखे मूँद दिया और बड़े आदर से क्रीडा के बहाने अपनी गरदन कुछ टेढ़ी करके रोमाञ्चित होकर वह दूसरी प्रिया के गालों को चूम रहा है जिसका मन प्रेम में प्रफुल्लित तथा कपोल हँसी से फड़क रहे हैं।।55।।

अत्रेतरस्यां पश्यन्तामपि सम्भावनार्हतया पिहितलोचनायाः ज्येष्ठत्वम्, तत्र समक्षं

सम्भावनानर्हतत्वात् चुम्बितायाः कनिष्ठत्वम्। एवमितरदप्युदाहार्यम्।

यहाँ एक दूसरी नायिका के देखते रहने पर भी सम्मान की योग्यता के कारण बन्द आँखों वाली नायिका का ज्येष्ठत्व और उसके समक्ष सम्मान की योग्यता न होने के कारण चुम्बन की जाती हुई नायिका का कनिष्ठत्व स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्य भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

धीराधीरादिभेदेन मध्या प्रौढे त्रिधा त्रिधा
ज्येष्ठाकनिष्ठिकाभेदेन ताः प्रत्येकं द्विधा द्विधा।।१०६।।
मुग्धा त्वेकविधा चैवं सा त्रयोदशोदिता।

इस प्रकार धीराधीरा इत्यादि भेद से मध्या और प्रौढ़ा नायिकाएँ तीन- तीन प्रकार की होती हैं। उनमें से प्रत्येक ज्येष्ठा तथा कनिष्ठिका भेद से पुनः दो-दो प्रकार की होती हैं। मुग्धा नायिका एक ही प्रकार की होती है। इस प्रकार स्वीया नायिकाएँ तेरह प्रकार की कही गयी हैं।। १०६-१०७पू.।।

अथ परकीया-

अन्यापि द्विविधा कन्या परोढा चेति भेदतः।।१०७।।
तत्र कन्या त्वनूढा स्यात् सलज्जा पितृपालिता।
सखीकेलिषु विस्रब्धा प्रायो मुग्धागुणान्विता।।१०८।।

(२) परकीया नायिका के भेद- परकीया (अन्या) नायिका कन्या और परोढा भेद से दो प्रकार की होती हैं।।१०७उ.।।

(अ) कन्या- उस (परकीया नायिका) में कन्या (परकीया नायिका) अविवाहिता, सलज्जा, पितृपालिता, सखियों के साथ आमोद-प्रमोद में तल्लीन रहने वाली तथा प्रायः मुग्धा नायिका के गुणों वाली होती है।।१०८।।

यथा (कुमारसम्भवे१/५०)-

तां नारदः कामचरः कदाचित्
कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे ।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं
प्रेम्णां शरीरार्धहरां हरस्य ।।56।।

जैसे (कुमारसम्भव १.५० में)-

इच्छानुसार विचरण करने वाले नारदमुनि ने किसी समय हिमालय के पास पार्वती को देख कर ऐसी भविष्यवाणी किया कि यह कन्या शङ्कर जी के आधे शरीर को हरण करने वाली उनकी एकमात्र पत्नी होगी।।56।।

प्रधानमप्रधानं वा नाटकादावियं भवेत् ।
मालतीमाधवे लक्ष्ये मालतीमदयन्तिके ।।१०९।।

नाटक इत्यादि में यह (परकीया नायिका कन्या) प्रधान अथवा अप्रधान रूप से दिखलायी पड़ती है। जैसे— मालतीमाधव में मालती तथा मदयन्तिका (कन्या परकीया नायिकाएँ) हैं।।१०९।।

अथ परोढा–

परोढा परेणोढाप्यन्यसम्भोगलालसा ।
लक्ष्या क्षुद्रप्रबन्धे सा सप्तशत्यादिके बुधैः ।।११०।।

(आ) परोढा– दूसरे पुरुष से विवाहित होने पर भी (उस विवाहित पति से) अन्य पुरुष के साथ सम्भोग की प्रबल इच्छा (उत्सुकता) वाली (नायिका) परोढा (नायिका) कहलाती है। यह नायिका सप्तशती इत्यादि क्षुद्रप्रबन्ध में दिखलायी देती है।।११०।।

यथा–

भर्त्ता निश्वसितेऽप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः
श्वश्रूरिङ्गितदैवतं नयनयोरीहालीहो यातरः ।
तद्दूरादयमञ्जलिः किममुना दृग्भङ्गिपातेन ते
वैदग्धीरचनाप्रपञ्चरसिक! व्यर्थोऽयमत्र श्रमः ।।57।।

जैसे–

पति साँस लेने पर भी शङ्का करता है। सपत्नियाँ मन की बात जानने की कोशिश करती हैं, सास किये गये सङ्केत की देवता (जानने वाली) है, भौंरे आँखों के सेवक हैं, इसलिए हे कुशल-रचना को प्रदर्शित करने वाले रसिक! दूर से ही मैं ये हाथ जोड़ रही हूँ, तुम्हारे इस कटाक्षपूर्वक देखने से क्या लाभ है, यहाँ तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है।।57।।

अथ सामान्या–

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधार्ष्ट्र्ययुक् ।

(३) सामान्या नायिका– कला, कुशलता (चतुराई) तथा धूर्तता से युक्त गणिका सामान्या नायिका (सामान्यस्त्री) कहलाती है।।१११पू.।।

यथा (शृङ्गारतिलके १.१२७)–

गाढालिङ्गनपीडितस्तनतटं स्विद्यत्कपोलस्थलं
सन्दष्टाधरमुक्तसीत्कृतमतिभ्राम्यद्भ्रू नृत्यत्करम् ।
चाटुप्रायवचो विचित्रभणितैर्यातै रुतैश्चाङ्कितं
वेश्यानां धृतिधाम पुष्पधनुषः प्राप्नोति धन्यो रतम् ।।58।।

जैसे शृङ्गारतिलक १.१२७ में)–

(जिस सुरत में) गाढे आलिङ्गन के कारण स्तनतट (चुचुक) दबा दिये जाते हैं, निकलने वाले पसीने से गाल तर हो जाते है, (वेश्या के) होठ (नायक द्वारा) काट लिये जाते हैं, (वेश्याओं द्वारा) सी-सी की ध्वनि की जाती है, (वेश्या की) आँखे चञ्चल बरौनियों से युक्त हो जाती हैं, (वेश्या के) हाथ (इधर-उधर) हिलते डुलते रहते हैं, जो (सुरत वेश्या की) चाटुकारिता भरे विचित्र वचन से युक्त होता है और जो (सुरत) कामदेव का हस्तगत घर है— ऐसा वेश्याओं का सुरत भाग्यशाली जन ही पाते हैं।।58।।

एषा स्याद् द्विविधा रक्ता विरक्ता चेति भेदतः ।।१११।।

सामान्या नायिका के भेद– रक्ता और विरक्ता भेद से यह (सामान्या नायिका) दो प्रकार की होती है।।११३.।।

तत्र रक्ता तु वर्ण्या स्यादप्रधान्येन नाटके ।
अग्निमित्रस्य विज्ञेया यथा राज्ञ इरावती ।।११२।।

उन (सामान्य नायिकाओं) में रक्ता (सामान्या नायिका) नाटक में अप्रधान (गौड़) रूप से वर्णित होती है। जैसे— (मालविकाग्निमित्र नाटक में) राजा अग्निमित्र की इरावती (नामक-नायिका) को समझना चाहिए।।११२।।

प्रधानमप्रधानं वा नाटकेतररूपके ।
सा चेद् दिव्या नाटके तु प्रधान्येनैव वर्ण्यते ।।११३।।

नाटक से अन्य प्रहसन आदि रूपकों में प्रधान अथवा अप्रधान रूप से वर्णित होती है। यदि वह (रक्ता सामान्या नायिका) दिव्या (देवलोक से सम्बन्धित) होती है तो नाटक में भी प्रधान रूप से (नायिका के रूप में) वर्णित होती है।।११३।।

यथा (विक्रमोर्वशीये२.२)–

आ दर्शनात्प्रविष्टा सा मे सुरलोकसुन्दरी ।
बाणेन मकरकेतोः कृतमार्गमवन्ध्यपातेन ।।59।।

जैसे– (विक्रमोर्वशीय २.२में)–

(उत्कण्ठित राजा पुरुरवा विदूषक से कहता है)-

वह देवसुन्दरी जब से मैंने उसे देखा, तभी से मन्मथ के अमोघ शरसम्पात से भिन्न हुए अथ च प्रवेश के लिए मार्ग बना दिये गये मेरे हृदय में सम्प्रविष्ट हो गयी है (अब कैसे उसे भूलूँ?)।।59।।

यहाँ नाटक में देवलोक से सम्बन्धित होने के कारण उर्वशी दिव्या रक्ता सामान्या नायिका है, अतः विक्रमोर्वशीय नाटक में प्रधान रूप से वर्णित है।

विरक्ता तु प्रहसनप्रभृतिष्वेव वर्ण्यते ।
तस्या धौर्त्यप्रभृतयो गुणास्तदुपयोगिनः ।।११४।।

विरक्ता सामान्या नायिका प्रहसन इत्यादि में वर्णित होती है। उसके धूर्तता आदि गुण उसके लिए उपयोगी होते हैं।।११४।।

छन्नकामान् रतार्थाज्ञान् बालपाषण्डषण्डकान् ।
रक्तेव रञ्जयेदिभ्यान्निःस्वान् मात्रा विवासयेत् ।।११५।।

छन्नकामाः श्रोत्रियादयः। रतार्था रतिसुखप्रयोजनाः। अज्ञाः मूढाः। शेषाः प्रसिद्धाः।

वह (विरक्ता सामान्या नायिका) धनसम्पन्न, छन्नकामियों, रतिप्रयोजन वालों, अज्ञों (मूर्खों) अनजान पाखण्डियों और हिजड़ों को रक्ता की भाँति सन्तुष्ट करती है तथा धन से रहित जन को (अपनी) माता के द्वारा बाहर निकलवा देती है।।११५।।

श्रोत्रिय इत्यादि छन्नकामी, रतिसुखप्रयोजन वाले रतार्थ तथा मूढ़ लोग अज्ञ कहलाते हैं। शेष प्रसिद्ध हैं।

अत्र केचिदाहुः–

गणिकाया नानुरागो गुणवत्यपि नायके ।
रसाभासप्रसङ्गः स्यादरक्तायाः वर्णने ।

अतश्च नाटकादौ तु वर्ण्या सा न भवेदिति ।

इस विषय में कुछ लोग कहते हैं–

"गुणवान् नायक में भी वेश्या का अनुराग नहीं होता। विरक्ता (अरक्ता) का नाटक में स्थान न होने पर भी प्रसङ्गवशात् उसकी उपस्थिति से रसाभासमात्र हो जाता है।

अतः नाटक इत्यादि में वह (विरक्ता सामान्या नायिका) वर्णित नहीं होती।।११६पू.।।

तथा चाहुः (शृङ्गारतिलके १.१२०,१२२)–

सामान्यवनिता वेश्या सा द्रव्यं परमिच्छति ।
गुणहीने न च द्वेषो नानुरागो गुणिन्यपि ।।
शृङ्गाराभास एतत्स्यात् न शृङ्गारः कदाचन ।।इति।।

तन्मतं नानुमनुते श्रीशिङ्गभूपतिः।।११६।।

और भी (शृङ्गार-तिलक) में कहा गया है–

सामान्या स्त्री (सामान्या वनिता) वेश्या होती है। वह दूसरे के धन को चाहती है। गुणविहीन नायक के प्रति न उसका द्वेष होता है और न गुणवान् के प्रति अनुराग। इसके द्वारा शृङ्गाराभास ही होता है, शृङ्गार (रस की निष्पत्ति) नहीं।

किन्तु शिङ्गभूपाल इस मत को नहीं मानते ।।११६उ.।।

भावानुबन्धाभावेन नायिकात्वपराहतेः ।
तस्याः प्रकरणादौ च नायिकात्वविधानतः ।।११७।।
अनायिकावर्णने तु रसाभासप्रसङ्गतः ।
तथा प्रकरणादीनामरसाश्रयतागतेः ।।११८।।
रसाश्रयं तु दशधेत्यादिशास्त्रविरोधतः ।
तस्मात्साधारणस्त्रीणां गुणशालिनि नायके ।।११९।।
भावानुबन्धः स्यादेव रुद्रटस्यापि भाषणात्।

(विरक्ता गणिका) निर्लिप्तभावहीन होने के कारण (प्रकरण इत्यादि की) नायिका नहीं हो सकती किन्तु उस (विरक्ता) का प्रकरण आदि में नायिका के रूप में वर्णन होने तथा अनायिका के रूप में प्रसंगवशात् वर्णन होने पर रसाभास के होने और प्रकरण इत्यादि में रस की आश्रयता को प्राप्त न होने तथा 'रसाश्रय दस प्रकार का होता है' इस शास्त्र का विरोध होने से भी वेश्या का गुणशाली नायक में भावानुबन्ध होता ही है- ऐसा रुद्रट के कथन से प्रतीत होता है।।११७-१२०पू.।।

तथाह रुद्रटः(शृङ्गारतिलके १.१२८)-

"ईर्ष्या कुलस्त्रीषु न नायकस्य,
निशङ्ककेलिर्न पराङ्गनासु ।
वेश्यासु चैतद् द्वितयं प्ररूढ़
सर्वस्वमेतास्तदहो स्मरस्य" ।।इति।।

उदात्तादिभिदां केचित् सर्वासामपि मन्वते ।।१२०।।
तास्तु प्रायेण दृश्यन्ते सर्वत्र व्यवहारतः ।

जैसा रुद्रट ने (शृङ्गारतिलक में) कहा है-

नायक की कुलस्त्रियों के प्रति ईर्ष्या नहीं होती और दूसरे की स्त्रियों के साथ (समागम के समय) निःशङ्क होकर कामक्रीडा नहीं होती किन्तु (अनुरक्त) वेश्याओं (के साथ समागम) में ये दोनों अत्यधिक बढ़े हुए होते हैं क्योंकि ये (वेश्याएँ) कामदेव की सर्वस्व (सम्पूर्णता) होती हैं।

कुछ आचार्य इन सभी नायिकाओं के उदात्तादि (उदात्त, मध्यम और अधम) भेद माने हैं उनको लोक-व्यवहार में देख लेना चाहिए ।।१२०उ.१२१पू.।।

अथासामष्टावस्था-

प्रथमं प्रोषितपतिका वासकसज्जा ततश्च विरहोत्का ।।१२१।।
अथ खण्डिका मता स्यात् कलहान्तरिताभिसारिका चैव ।

कथिता च विप्रलब्धा स्वाधीनपतिका चान्या ।।१२२।।
शृङ्गारकृतावस्थाभेदात् ताश्चाष्टधा भिन्नाः ।

नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ- शृङ्गार (रस) के लिए अवस्थाभेद से नायिकाएँ भिन्न-भिन्न आठ प्रकार की होती हैं- (१) प्रोषितपतिका (२) वासकसज्जा (३) विरहोत्का (४) खण्डिता (५) कलहान्तरिता (६) अभिसारिका (७) विप्रलब्धा और (८) स्वाधीनपतिका।।१२१उ.-१२३पू.।।

तत्र प्रोषितपतिका-

दूरदेशं गते कान्ते भवेत्प्रोषितभर्तृका ।।१२३।।
अस्यास्तु जागरः कार्श्यं निर्मित्तादिविलोकनम् ।
मालिन्यमनवस्थानं प्रायः शय्यानिषेवणम् ।।१२४।।
जाड्यचिन्ताप्रभृतयो विक्रियाः कथिता बुधैः ।

यथा ममैव-

दूरे तिष्ठति सोऽधुना प्रियतमः प्राप्तो वसन्तोत्सवः
कष्टं कोकिलकूजितानि सहसा जातानि दम्भोलयः ।
अङ्गान्यप्यवशानि याचिकतां यातीव मे चेतना
हा कष्टं मम दुष्कृतस्य महिमा चन्द्रोऽपि चण्डायते ।।60।।

(१) प्रोषितपतिका (प्रोषितभर्तृका)- प्रियतम के दूर देश में चले जाने पर (नायिका) प्रोषित-भर्तृका कहलाती है। जागरण, दुर्बलता, शकुन (निमित्त) आदि देखना, मलिनता, स्थिर न रहना(अनवस्थान), प्राय: शय्या पर पड़े रहना, जड़ता, चिन्ता इत्यादि इस (प्रोषितभर्तृका नायिका) की विक्रियाएँ आचार्यों द्वारा कही गयी हैं।।१२३उ.-१२५पू.।।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

वह (मेरा) प्रियतम (इस समय मुझसे) दूर (देश) में रह रहा है और वसन्तोत्सव आ गया है। यह कष्ट की (ही बात) है कि (इस समय होने वाली) कोयलों की कूँजन मेरे लिए वज्र (के समान) हो गयी है। मेरे अङ्ग (मेरे) वश में नहीं है। मेरी चेतना मानो याचकता को प्राप्त हो रही है(अर्थात् याचना करने वाली हो गयी है।) मेरे दुर्भाग्य की ही यह महिमा है कि (शीतल) चन्द्रमा भी (मेरे लिए) प्रचण्ड ताप उगल रहा है- यह कष्ट का विषय है।।60।।

अथ वासकसज्जिका-

भरताद्यैरभिदधे स्त्रीणां वारस्तु वासकः ।।१२५।।
स्ववासगते कान्ते समेष्यति गृहान्तिकम् ।
सज्जीकरोति चात्मानं या सा वासकसज्जिका ।।१२६।।

अस्यास्तु चेष्टाः सम्पर्कमनोरथविचिन्तनम् ।
सखीविनोदो हृल्लेखो मुहुर्दूतीनिरीक्षणम् ।।१२७।।
प्रियाभिगमनमार्गाभिवीक्षा-प्रभृतयो मताः ।

यथा ममैव-

केलिगेहं ललितशयनं भूषितं चात्मदेहं
दर्शं-दर्शं दयितपदवीं सादरं वीक्षमाणा ।
मानक्रीडां मनसि विविधां भाविनीं कल्पयन्ती
सारङ्गाक्षी रणरणिकया निःश्वसन्ती समास्ते ।।61।।

(२) वासकसज्जिका- भरत आदि आचार्यों ने स्त्रियों की वासक सीमा को निर्धारित किया है- जो (दूर गये) प्रियतम को घर आने पर घर में जाती हैं और अपने को (प्रसाधन द्वारा) सजाती हैं, वे वासकसज्जिका होती है। सम्भोग की अभिलाषा का चिन्तन, सखियों के साथ मनोरञ्जन, प्रेमपत्र लिखना, बार-बार दूती की ओर देखना, प्रियतम के आने के रास्ते को देखना इत्यादि इसकी चेष्टाएँ कही गयी हैं।।१२५उ.-१२८पू.।।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

(नायिका ने अपने) क्रीडागृह, मनोहर शय्या और अपने शरीर को सजा लिया। प्रियतम के आने वाले मार्ग को बार-बार देखती हुई और अपने मन में होने वाली अनेक मान (विषयक) क्रीड़ाओं की कल्पना करती हुई वह मृगनयनी (होने वाले सुरतरूपी) युद्ध की झनझनाहट से लम्बी-लम्बी साँसे भरती हुई आश्वस्त हुई।।61।।

अथ विरहोत्कण्ठिता-

अनागसि प्रियतमे चिरयत्युत्सुका तु या ।।१२८।।
विरहोत्कण्ठिता भाववेदिभिः सा समीरिता ।
अस्यास्तु चेष्टा हृत्तापो वेपथुश्चाङ्गसादनम् ।।१२९।।
अरतिर्बाष्पमोक्षश्च स्वावस्थाकथनादयः ।

यथा ममैव-

चिरयति मनाक् कान्ते कान्ता निरागसि सोत्सुका
मधुमलयजं माकन्दं वा निरीक्षितुमक्षमा ।
गलितपतितं नो जानीते करादपि कङ्कणं
परभृतरुतं श्रुत्वा बाष्पं विमुञ्चति वेपते ।।62।।

(३) विरहोत्कण्ठिता- (परस्त्री-सम्भोग के) अपराध से रहित प्रियतम के आने में देर होने पर जो उत्कण्ठित हो जाती है, उसको भावविज्ञ (आचार्य) विरहोत्कण्ठिता कहते हैं।

हृदय में सन्ताप, कँपकँपी, अङ्गों में क्लान्ति, बेचैनी, आँसू बहाना, अपनी विषम-दशा का कथन इत्यादि इसकी चेष्टाएँ होती है॥१२८उ.-१३०पू.॥

जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

(अन्य स्त्री के साथ सम्भोग न करने के कारण) अपराध-रहित प्रियतम के थोड़ासा देर कर देने पर उत्सुक प्रियतमा मधुर चन्दन को अथवा अशोकवृक्ष को देखने में असमर्थ हो जाती है। हाथों से निकल कर गिरे हुए कङ्गन को भी नहीं जान पाती। कोयल की कूजन को सुनकर आँसू बहाने लगती है और काँपने लगती है।।62।।

अथ खण्डिता-

उल्लङ्घ्य समयं यस्याः प्रेयानन्योपभोगवान् ।।१३०।।
भोगक्ष्माङ्कितः प्रातरागच्छेत् सा हि खण्डिता ।
अस्यास्तु चिन्ता निःश्वासस्तूष्णीम्भावोऽश्रुमोचनम् ।।१३१।।
खेदभ्रान्त्यस्फुटालापा इत्याद्या विक्रिया मताः ।

यथा ममैव-

प्रभाते प्राणेशं नवमदनमुद्राङ्किततनुं
वधूर्दृष्ट्वा रोषात् किमपि कुटिलं जल्पति मुहुः ।
मुहुर्धत्ते चिन्तां मुहुरपि परिभ्राम्यति मुहु-
र्विधत्ते निःश्वासं मुहुरपि च बाष्पं विसृजति ।।63।।

(४) खण्डिता- जिस (नायिका) का प्रियतम (रात में) दूसरी (नायिका) का उपभोग करके तथा (दूसरी नायिका के साथ) सम्भोग करने के चिह्नों से युक्त हुआ प्रातःकाल (वापस) आता है, वह (नायिका) खण्डिता (नायिका) कहलाती है। चिन्ता, निःश्वास (लम्बी-लम्बी साँस लेना,) निस्तब्धता, आँसू बहाना, खेद, इधर-उधर घूमना (भ्रान्ति), अस्पष्ट कथन इत्यादि इसकी विक्रियाएँ कही गयी हैं॥१३०उ.-१३२पू.॥

जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

(रात में दूसरी नायिका के साथ सम्भोग करने के कारण) नयी काममुद्रा से चिह्नित शरीर वाले पति को प्रातःकाल देख कर वधू (पत्नी) रोष के कारण कुछ टेढ़ा बोलती है फिर चिन्तित हो जाती है, फिर इधर-उधर घूमने लगती है, फिर लम्बी-लम्बी श्वास लेने लगती है और फिर आँसू बहाने लगती है।।63।।

अथ कलहान्तरिता-

या सखीनां पुरः पादपतितं वल्लभं रुषा ।।१३२।।
निरस्य पश्चात्तपति कलहान्तरिता तु सा ।
अस्यास्तु भ्रान्तिसन्तापौ मोहो निःश्वसितं ज्वरः ।।१३३।।

मुहुःप्रलाप इत्याद्या इष्टाश्चेष्टा मनीषिभिः ।

(५) **कलहान्तरिता**– जो सखियों के सामने पैरों पर गिरे हुए प्रियतम को क्रोध से दूर भगा कर बाद में पश्चात्ताप करती है, वह कलहान्तरिता कहलाती है। मनीषियों द्वारा इधर-उधर घूमना, सन्ताप, मूर्च्छा, निःश्वास, ज्वर, बार-बार प्रलाप इत्यादि इसकी चेष्टाएँ कही गयी है॥१३२उ.-१३४ पू.॥

यथा ममैव–

निःशङ्का नितरां निरस्य दयितं पादानतं प्रेयसी
कोपेनाद्य कृतं मया किमिदमित्यार्ता सखीं जल्पति ।
सोद्वेगं भ्रमति क्षिपत्यनुदिशं दृष्टिं विलोलाकुलां
रम्यं द्वेष्टि मुहुर्मुहुः प्रलपति श्वासाधिकं मूर्च्छति ॥64॥

जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

निःशङ्क प्रियतमा पैरों पर गिरे हुए प्रियतम को दूर भगा कर पुनः दुःखी हो गयी। उसने सखी से कहा कि आज क्रोध के कारण मैंने यह क्या कर दिया। (फिर) क्षोभ के साथ (इधर-उधर) घूमने लगी तथा चञ्चल और व्याकुल दृष्टि को चारों ओर डालने लगी, रमणीय वस्तु से द्वेष करने लगी, बार-बार प्रलाप करने लगी तथा लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगी॥64॥

अथाभिसारिका–

मदनानलसन्तप्ता याभिसारयति प्रियम् ॥१३४॥
ज्योत्स्नातमस्विनीयानयोग्याम्बरविभूषणा ।
स्वयमभिसरेद् या तु सा भवेदभिसारिका ॥१३५॥
अस्याः सन्तापचिन्ताद्या विक्रियास्तु यथोचितम् ।

(६) **अभिसारिका**– कामाग्नि से सन्तप्त जो (नायिका) प्रियतम को (अपने पास बुलाकर उससे) सम्भोग कराती है अथवा (चाँदनी रात्रि में) चाँदनी में छिपने योग्य (सफेद) तथा (अन्धेरी रात में) अन्धेरे में छिपने योग्य (काले) वस्त्र को पहनी हुई (प्रियतम के पास जाकर) स्वयं (उससे) सम्भोग करती है, वह अभिसारिका कहलाती है यथोचित सन्ताप, चिन्ता इत्यादि इसकी विक्रियाएँ होती है॥१३४उ.-१३६पू.॥

कान्ताभिसरणे स्वीया लज्जानाशादिशङ्कया ॥१३६॥
व्याघ्रहुङ्कारसन्त्रस्तमृगशावविलोचना ।
नील्यादिरक्तवसनारचितङ्गावगुष्ठना ॥१३७॥
स्वाङ्गे विलीनावयवा निश्शब्दपदचारिणी ।
सुस्निग्धसखीमात्रयुक्ता याति समुत्सुका ॥१३८॥

एषा प्रिये निद्राणे पार्श्वे तिष्ठति निश्चला ।
गर्वातिरेकनिभृता शीतैः स्रग्दामचन्दनैः ।।१३९।।
भावमाबोधयन्त्येनं तद्भावविक्षणोत्सुका ।

प्रियतम के साथ अभिसरण करने में स्वीया (नायिका) लज्जा के विनष्ट होने इत्यादि की आशङ्का से, व्याघ्र की गर्जना से भयभीत मृगशावक के समान चञ्चल नेत्रों वाली, नीला इत्यादि (समयानुकूल) वस्त्र धारण करने वाली, शरीर पर घूँघट काढ़े हुई, अपने शरीर में अङ्गों को छिपाये हुई, ध्वनिरहित पैरों को रखने (चलने)वाली और केवल अतिशय प्रिय सखी के साथ (अभिसरण के लिए) उत्सुक होकर जाती है। यह नायिका सोये हुए प्रियतम के पास निश्चल बैठती है। गर्व की अधिकता से भरी हुई (अत्यधिक गर्वित) शीतल पुष्पमाला और चन्दन के द्वारा उस (प्रियतम) को अपने भावों का उत्सुक होकर बोध कराती हैं।।१३६उ.-१४०पू.।।

यथा–

तमःसवर्णं विदधे विभूषणं निनाददोषेण नुनोद नूपुरम् ।
प्रतीक्षितुं न स्फुटचन्द्रिकाभयादियेष दूतीमभिसारिकाजनः ।।65।।

जैसे–

अन्धकार के समान आभूषणों को धारण करती है। ध्वनि के दोष के कारण नूपुरों को निकाल देती है। चाँदनी से भय के कारण अभिसारिकाएँ दूती- जनों की प्रतीक्षा करना नहीं चाहती।।65।।

यथा वा–

मल्लिकाभारभारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः ।
क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्नायामभिसारिकाः ।।66।।

अथवा जैसे–

चमेली (के पुष्पों) के भार से भरी हुई तथा सभी अङ्गों में गीला चन्दन लगायी हुई, और रेशमी वस्त्र पहनी हुई अभिसारिकाएँ चाँदनी (रात) में भी नहीं दिखलायी पड़तीं।।66।।

(अथ कन्याभिसारिका)–

स्वीयावत्कन्यका ज्ञेया कान्ताभिसरणक्रमे ।।१४०।।

(अथ वेश्याभिसारिका)–

वेश्याभिसारिका त्वेति हृष्टा वैशिकनायकम् ।
आविर्भूतस्मितमुखी मदघूर्णितलोचना ।।१४१।।
अनुलिप्ताखिलाङ्गी च विचित्राभरणान्विता ।
स्नेहाङ्कुरितरोमाञ्चस्फुटीभूतमनोभवा ।।१४२।।

संवेष्टिता परिजनैर्भोगोपकरणान्वितैः ।
रसनारावमाधुर्यदीपितानङ्गवैभवा ।।१४३।।
चरणाम्बुजसंलग्नमणिमञ्जीरमञ्जुला ।
एषा च मृदुसंस्पर्शैः केशकण्डूयनादिभिः ।।१४४।।
प्रबोधयति तद्बोधे प्रणयात् कुपितेक्षणा ।

कन्याभिसारिका– प्रियतम के साथ अभिसरण के क्रम में कन्या (नायिका) को स्वकीया (नायिका) के समान समझना चाहिए।।१४०उ.।।

वेश्याभिसारिका– वेश्याभिसारिका (नायिका) तो प्रसन्न होकर वैशिक नायक के पास जाती है। अभिसारिकाएँ उत्पन्न मुस्कान से युक्त मुख वाली, मद के कारण इधर-उधर घूमती हुई आँखों वाली, सभी अङ्गों में अनुलेप लगायी हुई, विचित्र आभूषणों से युक्त, स्नेह से अङ्कुरित रोमाञ्च से स्पष्ट होते हुए कामभावना वाली, भोग की सामग्रियों से युक्त सेवकों से घिरी हुई, करधनी की ध्वनि की मधुरता से प्रज्ज्वलित अङ्गों के वैभव वाली, चरणकमल में लगी हुई मणियों के नूपुरों से शोभायमान होती हैं। ये मृदुस्पर्श से तथा बालों को खुजलाने इत्यादि से (नायक) को प्रबोधित करती है और उनके द्वारा प्रबोधित होने पर प्रणय के कारण क्रोधयुक्त नेत्रों वाली हो जाती हैं।।१४१-१४५पू.।।

यथा ममैव–

मासि मघौ चन्द्रातपधवलायां निशि सखीजनापलापैः ।
मदनातुराभिसरति प्रणयवती यं स एव खलु धन्यः ।।67।।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

माघ महीने में चन्द्रमा की किरणों से धवलित रात में सखी लोगों के अपलापों से युक्त कामातुरा प्रणयवती स्त्रियाँ जिससे अभिसरण करती हैं,वह निश्चित रूप से धन्य है।।66।।

अथ प्रेष्याभिसारिका–

बाहुविक्षेपलुलितस्रस्तधम्मिल्लमल्लिका ।।१४५।।
चकितभ्रूविकारादिविलासललितेक्षणा ।
मैरेयाविरतास्वादमदस्खलितजल्पिता ।।१४६।।
प्रेष्याभियाति दयितं चेटीभिः सह गर्विता ।
प्रियं कङ्कणनिक्वाणमञ्जुव्यजनवीजनैः ।।१४७।।
विबोध्य निर्भर्त्सयति नासाभङ्गपुरस्सरम् ।

प्रेष्याभिसारिका– (प्रेष्याभिसारिका नायिका वह होती है जिसके) बाहुओं को (इधर-उधर) हिलाए (चलाएं) जाने से हिलते हुए जूड़ों में गुथी हुई चमेली के फूल खिसक

जोते हैं, चञ्चल भौंहों के विकारादि विलास से नेत्र विषयासक्त हो जाते हैं, मैरेय (एक प्रकार की सुरा) के आस्वादन (पान) में संलग्न (अविरत) रहने से वाणी मद (नशे) के कारण लड़खड़ायी हुई होती है- ऐसी प्रेष्याभिसारिका (नायिकाएँ) चेटियों के साथ गर्वित होकर प्रियतम के पास जाती हैं तथा कङ्कनों की ध्वनि करके अथवा पंखा झलकर प्रिय को विबोधित करती हैं और नाक टेढ़ी करके निर्भत्सना करती है।।१४५उ.-१४८पू.।।

यथा–

स्रस्तस्रक्कबरीभरं सुललितभ्रूवल्लिहालामदै-
रव्यक्ताक्षरजल्पितं प्रतिपदं विक्षिप्तबाहालतम् ।
सङ्केतालयमेत्य कङ्कणरवैरुद्बोध्य सुप्तं प्रियं
प्रेष्या प्रेमवशात् तनोति निटिलभ्रूवल्लिसन्तर्जनम् ।।68।।

जैसे–

नायिका के जूड़े में लगी माला ढीली हो गयी है, भौहों के बालों की रेखाएँ मनोहर हैं, सुरा के मद के कारण ध्वनि अव्यक्त (अस्पष्ट) अक्षरों वाली हो गयी है, हमेशा बाहु रूपी लताएँ इधर-उधर फेकी (हिलायी) जा रही हैं। इस प्रकार (समागम के लिए) सङ्केतित स्थान पर आकर और सोये हुए प्रियतम को कङ्कनों की ध्वनि से जगाकर प्रेष्या (अभिसारिका नायिका) प्रेम के वशीभूत होने से मस्तक की ओर भौहों के बालों की रेखाओं को तान कर धमका रही है।।68।।

अथ विप्रलब्धा–

कृत्वा सङ्केतमप्राप्ते दयिते व्यथिता तु या ।।१४८।।
विप्रलब्धेति सा प्रोक्ता बुधैरस्यास्तु विक्रियाः ।
निर्वेदचिन्ताखेदाश्रुमूर्च्छानिःश्वसितादयः ।।१४९।।

यथा ममैव–

चन्द्रबिम्बमुदयाद्रिमागतं
पश्य तेन सखि! वञ्चिता वयम् ।
अत्र किं निजगृहं नयस्व मां
तत्र वा किमिति विव्यथे वधूः ।।69।।

(७) विप्रलब्धा– सङ्केत देकर (सङ्केत स्थल पर) प्रियतम के न प्राप्त होने पर जो विक्षुब्ध हो जाती है, वह विप्रलब्धा नायिका कहलाती है। आचार्यों द्वारा घृणा, चिन्ता, खेद, अश्रुपात, मूर्च्छा, निःश्वास इत्यादि इसकी विक्रियाएँ कही गयी हैं।।१४८उ.-१४९।।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

हे सखी! चन्द्रबिम्ब उदयाचल को आ गया और (सङ्केत करके इस स्थान पर न आने

वाले नायक ने) हम लोगों को धोखा दिया है। (अब) यहाँ रहने से क्या लाभ? मुझे अपने घर ले चलो अथवा वहाँ भी चलने से क्या लाभ? इस प्रकार वधू व्यथित हो गयी।।69।।

अथ स्वाधीनपतिका–

स्वायत्तामासन्नदयिता हृष्टा स्वाधीनवल्लभा ।
अस्यास्तु चेष्टा कथिता स्मरपूजामहोत्सवः ।।१५०।।
पानकेलिजलक्रीडाकुसुमापचयादयः ।

यथा ममैव–

सलीलं धम्मिल्ले दरहसितकह्लाररचनां
कपोले सोत्कम्पं मृगमदमयं पत्रतिलकम् ।
कुचाभोगे कुर्वन् ललितमकरीं कुङ्कुममयीं
युवा धन्यः सोऽयं मदयति च नित्यं प्रियतमाम् ।।70।।

(८) स्वाधीनपतिका– अधीन रहने वाले पति के (अपने समीप में) होने पर जो प्रसन्न रहती है, वह स्वाधीनपतिका (स्वाधीनवल्लभा) कहलाती है। कामदेव की पूजा का महोत्सव मनाना, पानक्रीडा, जलक्रीडा, पुष्पचयन आदि इसकी चेष्टाएँ होती है।।१५०-१५१पू.।।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

लीलापूर्वक जूडे. में अलग करने वाली विकसित श्वेतकमल के रचना को, गालों पर कस्तूरी से पत्र-तिलक को तथा स्तनों की परिधि पर कुङ्कुम से सुन्दर भ्रमरी को बनाता हुआ वह यह युवक धन्य है जो (इन कार्यों से) प्रतिदिन (अपनी) प्रियतमा को आमोदित (आनन्दित) करता है।।70।।

उत्तमा मध्यमा नीचेत्यवं सर्वास्त्रियः त्रिधा ।।१५१।।

नायिकाओं के उत्तमादिभेद– उत्तमा, मध्यमा तथा नीचा भेद से (पूर्वोक्त) सभी नायिकाएँ तीन-तीन प्रकार की होती हैं।।१५१उ.।।

तत्रोत्तमा–

अभिजातैर्भोगतृप्तैगुणिभिर्या च काम्यते ।
गृह्णाति कारणे कोपमनुनीता प्रसीदति ।।१५२।।
विदधत्यप्रियं पत्यौ स्वयमाचरति प्रियम् ।
वल्लभे सापराधेऽपि तूष्णीं तिष्ठति सोत्तमा ।।१५३।।

उत्तमा नायिकाएँ– सम्भोग (विषय) से सन्तृप्त कुलीन गुणवान् लोगों द्वारा जिसकी कामना की जाती हैं।, जो कारण उत्पन्न होने पर क्रोधित हो जाती हैं और प्रार्थना (मनावन) करने पर प्रसन्न हो जाती हैं, जो पति के प्रति प्रिय धारण करती हैं,स्वयं (पति के

प्रति) प्रिय व्यवहार करती हैं, प्रियतम के अपराध करने पर भी चुप रहती हैं, वे उत्तम नायिकाएँ होती हैं॥१५२-१५३॥

अथ मध्यमा–

पुंसः स्वयं कामयते काम्यते या च तैर्वधूः ।
सक्रोधे क्रुध्यति मुहुः सानृतेऽनृतवादिनी ॥१५४॥
सापकारेऽपकर्त्री स्यात् स्निग्धे स्निह्यति वल्लभे ।
एवमादिगुणोपेता मध्यमा सा प्रकीर्तिता ॥१५५॥

मध्यमा नायिकाएँ– पुरुष की जो स्वयं कामना करती हैं और पुरुष जिनकी कामना करता है, (पुरुष के) क्रोधित होने पर जो क्रोधित हो जाती हैं, (पुरुष के) झूठ बोलने पर जो झूठ बोलती है, (पुरुष के) अपकार करने पर उसका अपकार करती हैं और जो स्नेह करने पर स्नेह करती हैं, इत्यादि इस प्रकार के गुणों से युक्त (नायिका) मध्यमा नायिका कहलाती है॥१५४-१५५॥

अथ नीचा–

अकस्मात्कुप्यति रुषं प्रार्थितापि न मुञ्चति ।
सुरूपं वा कुरूपं वा गुणवन्तमथागुणम् ॥१५६॥
स्थविरं तरुणं वापि या वा कामयते मुहुः ।
ईर्ष्याकोपविषादेषु नियता साधमास्मृता ॥१५७॥

आसामुदाहरणानि लोकत एवावगन्तव्यानि ।

नीचा नायिकाएँ– जो अकस्मात् क्रोधित हो जाती हैं और प्रार्थना करने पर भी क्रोध नहीं छोड़ती, जो सुरूप तथा कुरूप, गुणवान् तथा दोषी, वृद्ध तथा युवक की (सम्भोग के लिए) बार-बार कामना करती हैं, जो ईर्ष्या, कोप और विषाद में नियन्त्रित (स्वशासित) होती हैं वे अधमा (नायिकाएँ) कहलाती हैं॥१५६-१५७॥

इनके उदाहरण लोक में (व्यवहार) से समझ लेना चाहिए।

स्वीया त्रयोदशविधा द्विविधा च वराङ्गना ।
वैशिकैवं षोडशधा ताश्चावस्थाभिरष्टभिः ॥१५८॥
एकैकमष्टधा तासामुत्तमादिभेदतः ।
त्रैविध्यमेवं सचतुरशीति स्त्रिशती भवेत् ॥१५९॥
अवस्था त्रयमेवेति केचिदाहु परस्त्रियाः ।

नायिकाओं की संख्या– इस प्रकार स्वकीया (नायिका) तेरह प्रकार की, परकीया (नायिका, वराङ्गना) दो प्रकार की, सामान्या नायिका सोलह प्रकार की होती हैं। उनकी

अवस्थाओं (स्थितियों) के आधार पर एक-एक के आठ-आठ भेद होते हैं। पुनः उनके उत्तमादि भेद से उनके तीन-तीन प्रकार होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर नायिकाओं के ३८४ भेद होते हैं॥१५८-१५९॥

परकीया नायिका की अवस्थाओं के विषय में कुछ आचार्यों के मत– कतिपय आचार्य परकीया नायिका की तीन अवस्थाएँ ही स्वीकारते हैं॥१६०पू.॥

यथा (भावप्रकाशे)–

त्र्यवस्थैव परस्त्री स्यात् प्रथमं विरहोन्मताः ।
ततोऽभिसारिका भूत्वाभिसरन्ती व्रजेत्स्वयम् ॥
सङ्केताच्च परिभ्रष्टा विप्रलब्धा भवेत्पुनः ।
पराधीनपतित्वेन नान्यावस्थात्र सङ्गता ॥इति॥

जैसे भावप्रकाश में–

परकीया नायिका तीन अवस्थाओं वाली ही होती हैं— (१) विरहोन्मत्ता फिर (२) अभिसारिका होकर अभिसरण करती हुई (पर नायक के पास) स्वयं जाती हैं और फिर (३) वहाँ सङ्केत स्थल से (प्रियमिलन न होने के कारण) वञ्चित होकर विप्रलब्धा हो जाती हैं। किन्तु पति के पराधीन होने के कारण नायिकाओं की(इनसे) अन्य अवस्था सङ्गत नहीं है।

अथ नायिकासहायाः–

आसां दूत्यः सखी चेटी लिङ्गिनी प्रतिवेशिनी ॥१६०॥
धात्रेयी शिल्पकारी च कुमारी च कथिनी तथा ।
कारुर्विप्रश्निका चेति नेतृमित्रगुणान्विता ॥१६१॥

लिङ्गिनी पण्डितकौशिक्यादिः। प्रतिवेशिनी समीपगृहवर्तिनी। शिल्पकारी वीणावादनादिनिपुणा कारु रजक्यादिः। विप्रश्निका दैवज्ञा। शेषाः प्रसिद्धाः। इतररसालम्बनानामनतिनिरूपणीयतया पृथक्प्रकरणारम्भस्यानुपयोगात् तत्तद्रसप्रसङ्ग एव निरूपणं करिष्यामः।

नायिका की सहायिकाएं– नायक के मित्र (सहायक) के गुणों से युक्त दूतियाँ, सखी, चेटी, लिङ्गिनी, प्रतिवेशिनी, धात्री, शिल्पकारी, कुमारी, कथिनी, कारु तथा विप्रश्निका- ये नायिकाओं की सहायिकाएँ होती हैं।

लिङ्गिनी=पण्डित, सपेरा इत्यादि, प्रतिवेशिनी=पड़ोसिन, शिल्पकारी=वीणा बजाने इत्यादि में निपुण स्त्रियाँ, कारु=धोबिन इत्यादि, विप्रश्निका=ज्योतिषी स्त्री- इनके अतिरिक्त दूती-रहस्य की (गुप्त) बाते जानने वाली सन्देशवाहिका, सखी=सहेली, चेटी=सेविका, दासी, धात्री=धाय, उपमाता, कुमारी=अविवाहिता तरुणी, कथिनी=नायक से नायिका का वर्णन करने वाली स्त्री ये प्रसिद्ध हैं। (ये शृङ्गार रस की नायिका की सहायिकाएँ हैं)। इससे

अन्य रसों के आलम्बनों का निरूपण अत्यावश्यक न होने के कारण पृथग्रूप से तथा इस प्रकरण की उपयोगिता न होने से उन रसों के वर्णन के प्रसङ्ग में उनके आलम्बनों का निरूपण करेंगे।

।।इति नायिकाप्रकरणम्।।

।।इस प्रकार नायिका प्रकरण समाप्त।।

अथ शृङ्गाररसस्योद्दीपनविभावः-

उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम् ।
गुणचेष्टालङ्कृतयस्तटस्थाश्चेति भेदतः ।।१६२।।

शृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव- आलम्बन के समाश्रित (शृङ्गार रस के) उद्दीपन (विभाव)— १. गुण, २. चेष्टा, ३. अलङ्कृति तथा ४. तटस्था भेद से चार प्रकार के होते हैं।।१६२।।

तत्र गुणाः-

यौवनं रूपलावण्ये सौन्दर्यमभिरूपता ।
मार्दवं सौकुमार्यं चेत्यालम्बनगता गुणाः ।।१६३।।

१. गुण- १. यौवन, २. रूप ३. लावण्य ४. सौन्दर्य ५. अभिरूपता ६. मार्दव ७. सौकुमार्य- ये आलम्बन के गुण हैं।।१६३।।

तत्र यौवनम्:-

सर्वासामपि नारीणां यौवनं तु चतुर्विधम् ।
प्रतियौवनमेतासां चेष्टितानि पृथक्-पृथक् ।।१६४।।

१. यौवन- सभी स्त्रियों में चार प्रकार का यौवन होता है— ((अ) प्रथम यौवन, (आ) द्वितीय यौवन (इ) तृतीय यौवन तथा (ई) चतुर्थ यौवन)। प्रत्येक यौवन में इन स्त्रियों की चेष्टाएँ अलग-अलग होती है।।१६४।।

तत्र प्रथम-यौवनम्-

ईषच्चपलनेत्रान्तं स्मरस्मेरमुखाम्बुजम् ।
सगर्वजरजोगण्डमसमग्रारुणाधरम् ।।१६५।।
लावण्योद्भेदरम्याङ्गं विलसद्भावसौरभम् ।
उन्मीलिताङ्कुरकुचमस्फुटाङ्गसन्धिकम् ।।१६६।।
प्रथमं यौवनं तत्र वर्तमाना मृगेक्षणा ।

अपेक्षते मृदुस्पर्शं सहते नोद्धतां रतिम् ।।१६७।।
सखीकेलिरता स्वाङ्गसंस्कारकलितादरा ।
न कोपहर्षौ भजते सपत्नीदर्शनादिषु ।।१६८।।
नातिरज्यति कान्तस्य सङ्गमे किन्तु लज्जते ।

(अ) प्रथम यौवन– इस यौवन में नायिका के नेत्र का बाहरी कोना थोड़ा चञ्चल होता है। मुखकमल काम के कारण प्रफुल्लित रहता है। कपोल गर्व के संवेग से युक्त होते हैं। अधर पूर्णरूप से अरुण नहीं होते। अङ्ग लावण्य के आविर्भाव के कारण रमणीय होते है।भावसौरभ दमकता रहता है। स्तनों के अङ्कुर प्रकट होते हैं। अङ्गों के जोड़ अस्पष्ट होते हैं। यह (नायिका) का प्रथम यौवन है। इस अवस्था में वर्तमान मृगनयनी (नायिका) सुकुमार स्पर्श की अपेक्षा करती है। वह उद्धत रति को सहन नहीं करती। सखियों के साथ क्रीडा में लीन रहती है और अपने अङ्गों को संस्कृत करने (सजाने) में आदर देती है। सपत्नी के देखने इत्यादि कार्यों में कोप अथवा हर्ष नहीं करती। प्रियतम का सङ्गम होने पर अधिक अनुरक्त नहीं होती किन्तु लज्जा करती है।।१६५-१६९पू.।।

यथा (दशरूपकावलोके उद्धृतम् १६०)–

विस्तारी स्तनभार एष गमितो न स्वोचितामुन्नतिं
रेखोद्भासि तथा वलित्रयमिदं न स्पष्टनिम्नोन्नतम् ।
मध्येऽस्या ऋजुरायतार्धकपिशा रोमावली दृश्यते
रम्यं शैशवयौवनव्यतिकरोन्मिश्रं वपुर्वर्तते ।।71।।

जैसे दशरूपक में उद्धृत १०६–

यह स्तन-भार बढ़ने वाला है किन्तु अभी उचित विस्तार को नहीं प्राप्त हुआ है। यह त्रिवली रेखाओं से तो प्रकट हो रही है किन्तु स्पष्टतः नीची-उँची नहीं है। इसके मध्य में सीधी विस्तृत रोमावली बन गयी है, जो आधी कपिश वर्ण की (भूरी) ही है। इस प्रकार इसकी यौवन और शैशव के संसर्ग (व्यतिकर) से मिश्रित शरीर रमणीय है।।71।।

अस्या चेष्टा यथा ममैव–

आविर्भवत्प्रथमदर्शनसाध्वसानि
सावज्ञमादृतसखीजनजल्पितानि ।
सव्याजकोपमधुराणि गिरेः सुतायाः
वः पान्तु नूतनसमागमचेष्टितानि ।।72।।

इस (प्रथम यौवन) की चेष्टाएँ जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

पर्वत की पुत्री (पार्वती की) प्रथम दर्शन में उत्पन्न लज्जा वाली अवज्ञापूर्वक (तिरस्कार से) प्रिय सखियों के साथ तथा कोप के बहाने मधुर बात करने वाली- इस प्रकार

नूतन समागम की चेष्टाएँ तुम लोगों की रक्षा करें।।७२।।

अथ द्वितीययौवनम्-

स्तनौ पीनौ तनुर्मध्यः पाणिपादस्य रक्तिमा ।।१६९।।
उरू करिकराकारावङ्गं व्यक्ताङ्गसन्धिकम् ।
नितम्बो विपुलो नाभिर्गभीरा जघनं घनम् ।।१७०।।
व्यक्ता रोमावली स्नैग्ध्यमङ्गकेशरदाक्षिणी ।
द्वितीये यौवने तेन कलिता वामलोचना ।।१७१।।
सखीषु स्वाशयज्ञासु स्निग्धा प्रायेण मानिनी ।
न प्रसीदत्यनुनये सपत्नीष्वभिसूयिनी ।।१७२।।
नापराधान् विषहते प्रणयेर्ष्याकषायिता ।
रतिकेलिष्वनिभृता चेष्टते गर्विता रहः ।।१७३।।

(आ) द्वित्तीय यौवन- इस यौवन में दोनों स्तन स्थूल (विशाल) हो जाते हैं। मध्यभाग (कमर) पतली हो जाती है। हाथों और पैरों में रक्तिमा आ जाती है। दोनों जङ्घाएँ हाथी के सूड़ के आकार वाली हो जाती है। अङ्गों के जोड़ स्पष्ट हो जाते है। रोमावली व्यक्त होने लगती है। अङ्गों, बालों तथा नेत्रों में स्निग्धता आ जाती है। द्वितीय यौवन में मनोहर आँखों वाली अपने आशय को जानने वाली सखियों के प्रति स्निग्ध हो जाती है। प्राय: मानिनी (मान करने वाली) हो जाती है। अनुनय करने पर भी प्रसन्न नहीं होती। सपत्नियों के प्रति ईर्ष्या करती है। प्रियतम के दूसरी नायिका के साथ सम्भोग करने के अपराध को सहन नहीं करती। प्रणय की ईर्ष्या में लाल (क्रोधित) हो जाती है। रतिक्रीडाओं में गुप्त (प्रच्छन्न) रहती हुई चेष्टा करती हैं। सम्भोग में गर्विता रहती है।।१६९उ.-१७३।।

यथा (मेघदूते २.१९)-

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्यैव धातुः ।।73।।

जैसे (मेघदूत में २/१९)-

दुबली-पतलीं युवती, नुकीले दाँतों वाली, पके हुए बिम्बफल के समान निचले ओठ वाली, कमर से पतली, डरी हुई हरिणी के समान (चञ्चल) नेत्रों वाली, गहरी नाभी वाली, नितम्ब के भार के कारण अलसायी चाल वाली, ऊँचे, (उन्नत) पयोधरों से थोड़ी झुकी हुई- (इस प्रकार) स्त्रियों में ब्रह्मा की सबसे पहली रचना सी जो ~~स्त्री~~ वहाँ हो (उसे तुम मेरी प्रियतमा समझ लेना)।।73।।

अथ तृतीययौवनम्–

अस्निग्धता नयनयोर्गण्डयोर्म्लानकान्तिता ।
विच्छायता खरस्पर्शोऽप्यङ्गानां श्लथता मनाक् ।।१७४।।
अधरे मसृणो रागस्तृतीये यौवने भवेत् ।
तत्र स्त्रीणामियं चेष्टा रतितन्त्रविदग्धता ।।१७५।।
वल्लभस्यापरित्यागस्तदाकर्षणकौशलम् ।
अनादरोऽपराधेषु सपत्नीष्वप्यमत्सरः ।।१७६।।

(इ) तृतीय यौवन– तृतीय यौवन में दोनों नेत्र अस्निग्ध हो जाते हैं। दोनों गालों की कान्ति मलिन हो जाती है। अङ्गों में निष्प्रभता, कठोरस्पर्श और थोड़ी शिथिलता आ जाती है। ओठ में स्निग्ध लालिमा होती है। रतिक्रिया में निपुणता, प्रियतम का अपरित्याग, उस (प्रियतम) को आकृष्ट करने की कुशलता, (प्रियतम के) अपराधों के प्रति उपेक्षा तथा सपत्नियों के प्रति ईर्ष्या रहित होना इस यौवन में चेष्टाएँ होती हैं।।१७४-१७६।।

यथा आनन्दकोशप्रहसने–

वक्त्रैः प्रयत्नविकचैर्वलिभैश्च गण्डै-
र्मध्यैश्च मांसलतरैः शिथिलैरुरोजैः ।
घण्टापथे रतिपतेरपि नूनमेता
वृन्तश्लथानि कुसुमानि विडम्बयन्ति ।।74।।

जैसे आनन्दकोशप्रहसन में—

प्रयत्न-पूर्वक विकसित मुख, झुर्री युक्त गालों, मांसलतर (स्थूल) मध्यभाग (कमर) और शिथिल स्तनों के द्वारा कामदेव के राजमार्ग पर (ये नायिकाएँ) निश्चित रूप से डालियों से (टूट कर) गिरे हुए फूलों का भी उपहास करतीं हैं।।74।।

अथ चतुर्थयौवनम्–

जर्जरत्वं स्तनश्रोणिगण्डोरुजघनादिषु ।
निर्मांसता च भवति चतुर्थे यौवने स्त्रियाः ।।१७७।।
तत्र चेष्टा रतिविधावनुत्साहोऽसमर्थता ।
सपत्नीष्वानुकूल्यं च कान्तेनाविरहस्थिति ।।१७८।।

(ई) चतुर्थ यौवन– चतुर्थ यौवन में स्त्रियों के स्तन, कूल्हा, गालों, जङ्घाओं, नितम्ब इत्यादि में निर्मांसता हो जाती है। रतिक्रिया के प्रति अनुत्साह तथा असमर्थता, सपत्नियों के प्रति अनुकूलता, प्रियतम से विरह की स्थिति न होना इस अवस्था में चेष्टाएँ होती हैं।।१७७-१७८।।

यथा आनन्दकोशप्रहसने–

क्षामैश्च गण्डफलकैर्विरलैश्च दन्तै-
र्लम्बैः कुचैर्गतकथाप्रसङ्गैः ।
अङ्गैरयत्नशिथिलैश्च सदाप्यसेवा
भर्तुः पणानभिलषन्त्यहहालसाङ्ग्यः ।।75।।

जैसे आनन्दकोशप्रहसन में–

क्षीण (दुर्बल) कपोलमण्डलों, विरल दाँतों, लम्बे स्तनों, कथा-प्रसङ्ग में प्रेम, प्रयत्न के बिना ही शिथिल अङ्गों के कारण पति से असेवित (समागम से रहित) तथा अलसाये हुए अङ्गों वाली (वेश्याएँ) धन वालों लोगों की अभिलाषा रखती है, यह आश्चर्य है।।75।।

तत्र शृङ्गारयोग्यत्वं रताह्लादनकारणम् ।
आद्यद्वितीययोरेव न तृतीयचतुर्थयोः ।।१७९।।

शृङ्गार-योग्य यौवन– उन (यौवनों) में आदि वाले प्रथम और द्वितीय यौवन में ही रतिक्रिया में आह्लाद (प्रसन्नता) का कारण होने से शृङ्गार (रस) की योग्यता होती है, तृतीय और चतुर्थ नहीं।।१७९।।

अथ रूपम्–

अङ्गान्यभूषितान्येव प्रक्षेपाद्यैर्विभूषणैः ।
येन भूषितवद् भाति तद्रूपमिति कथ्यते ।।१८०।।

२. रूप– (उतार दिए गए आभूषणों के कारण) आभूषणरहित भी अङ्ग जिस कारण से आभूषित (अलङ्कृत) के समान सुशोभित होते हैं, उसे रूप कहा जाता है।।१८०।।

यथा–

स्नातुं विमुक्ताभरणा विमाल्या
भूयोऽसहा भूषयितुं शरीरम् ।
अगाद् बहिः कचिदुदाररूपा
यां वीक्ष्य लज्जा दधिरे सभूषाः ।।76।।

जैसे–

स्नान करने के लिए आभूषणों को उतार देने वाली तथा मालाओं से रहित शरीर वाली (स्नान के पश्चात्) पुनः शरीर को सजाने में असमर्थ कोई अनुपम रूप वाली (तरुणी) (जल से) बाहर निकली जिस को देखकर आभूषित (आभूषण इत्यादि से सुसज्जित तरुणियाँ) लजा गयीं।।76।।

अथ लावण्यम्–

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते ।।१८१।।

३. लावण्य– अङ्गों में छिपी हुई जो मोतियों की छाया के समान चमचमाहट प्रतिभाषित होती है, उसे लावण्य कहा जाता हैं।।१८१।।

यथा–

अङ्गेषु स्फटिकादर्शदर्शनीयेषु जृम्भते ।
अमला कोमला कान्तिर्ज्योत्स्नेव प्रतिबिम्बिता ।।77।।

जैसे–

(नायिका के) स्फटिक (मणि) के दर्पण में दर्शनीय (देखने योग्य) अङ्गों में चाँदनी के समान स्वच्छ और कोमल प्रतिबिम्बित कान्ति खिल रही है।।77।।

अथ सौन्दर्यम्–

अङ्गप्रत्यङ्गकानां य सन्निवेशो यथोचितम् ।
सुश्लिष्टः सन्धिभेदः स्यात् तत् सौन्दर्यमुदीर्यते ।।१८२।।

४. सौन्दर्य– अङ्गों-प्रत्यङ्गों का जो यथोचित सुश्लिष्ट (अच्छी प्रकार से मिला हुआ) सन्धिभेद (स्पष्ट होता हुआ जोड़ वाला) का सन्निवेश है, वह सौन्दर्य कहलाता है।।१८२।।

यथा (मालविकाग्निमित्रे २.३)–

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकन्तिवदनं बाहू नतावंसयोः
संक्षिप्तं `निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।
मध्ये पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालाङ्गुली
छन्दो नर्तयतुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः ।।78।।

जैसे (मालविकाग्निमित्र २.३में)–

इस (मालविका) का बड़ी-बड़ी आँखों वाला तथा शरत्कालीन चन्द्रमा की कान्ति से युक्त मुख, कन्धों पर से कुछ झुकी हुई भुजाएँ, उन्नत एवं कठोर स्तनों से जकड़ी हुई छाती, पार्श्व परिमार्जन के समान मुट्ठीभर कमर, मोटी जङ्घाएँ, झुकी हुई अङ्गुलियों वाले पैर हैं। इससे ज्ञात होता है कि मानों इसका सम्पूर्ण शरीर इसके नाट्यगुरु (गणदासजी) के कहने पर गढ़ा गया होगा।।78।।

अथाभिरूपता–

यदात्मीयगुणोत्कर्षैर्वस्त्वन्यन्निकटस्थितम् ।
सारूप्यं नयति प्राज्ञैराभिरूप्यं तदुच्यते ।।१८३।।

५. **अभिरूपता**– जिस अपने गुणोत्कर्ष के कारण समीप में स्थिति वस्तु अन्य वस्तु के समान रूपता को प्राप्त करती हैं उसे प्राज्ञों ने अभिरूपता कहा है॥१८३॥

यथा (भोजचरिते)–

एकोऽपि त्रय इव भाति कन्दुकोऽयं
कान्तायाः करतलरागरक्तरक्तः ।
भूमौ तच्चरणनखांशुगौरगौरः
खस्थः सन् नयनमरीचिनीलनीलः ।।79।।

जैसे (भोजचरित में)–

एक ही गेंद प्रियतमा के (हाथ में होने पर) हथेलियों की रक्तिमा से युक्त होने के कारण रक्तिम, पृथ्वी पर होने पर उसको पैरों के नखों की किरणों के गोरे होने के कारण गौरवर्णवाला (शुभ्र) और आकाश में (होने पर) (उसके) नेत्रों की किरणों की नीलिमा से युक्त (होने के कारण) नीला दिखलायी पड़ता है। (इस प्रकार एक ही गेंद) तीन (गेंद) के समान आभासित होता है।।79।।

अथ मार्दवम्–

स्पृष्टं यच्चाङ्गमस्पृष्टमिव स्यान्मार्दवं हि तत् ।

६. मादर्व (मृदुता)– जिसमें स्पर्श किया गया अङ्ग भी न छुए गये के समान रहता है, वह मृदुता कहलाती है॥१८४पू.॥

यथा–

याभ्यां दुकूलान्तरलक्षिताभ्यां
विस्रंसते स्नैग्धगुणेन दृष्टिः ।
निर्माणकालेऽपि ततस्तदूर्वोः
संस्पर्शशङ्का न विधेः कराभ्याम् ।।80।।

अत्र अमूर्तापि दृष्टि विस्रंसते मूर्तौ करौ किमुतेति श्लक्ष्णत्वातिशयकथ-नान्मादर्वम्।

जैसे–

(नायिका के) दुपट्टे के भीतर से दिखलायी पड़ने वाले जिन दोनों जङ्घाओं से चिकनाहट के गुण के कारण दृष्टि फिसल जा रही है (इन जंघाओं) को बनाते समय भी ब्रह्मा के हाथों के द्वारा संस्पर्श (स्पर्श करके बनाए जाने) की शङ्का नहीं है।।80।।

यहाँ अमूर्त दृष्टि फिसल जा रही है फिर मूर्त हाथों का क्या! इस कोमलता के अतिशय कथन से मार्दव है।

अथ सौकुमार्यम्–

या स्पर्शासहताङ्गेषु कोमलस्यापि वस्तुनः ।।१८४।।

तत्सौकुमार्यं त्रेधा स्यान्मुख्यमध्याधमक्रमात् ।

७. सौकुमार्य– अङ्गों में कोमल वस्तु के भी स्पर्श को सहन न करने की क्षमता सौकुमार्य कहलाती है। यह सौकुमार्य उत्तम (मुख्य), मध्यम और अधम-तीन प्रकार का होता है।।१८४उ.-१८५पू.।।

अथोत्तमसौकुमार्यम्–

अङ्गं पुष्पादिसंस्पर्शासह येन तदुत्तमम् ।।१८५।।

उत्तम सौकुमार्य– जिस (सुकुमारता) के कारण अङ्ग पुष्प इत्यादि के स्पर्श को भी सहन करने में असमर्थ होते हैं, वह उत्तम सौकुमार्य है।।१८५उ.।।

यथा (कुमारसम्भवे ५/१२)–

महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः
स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी
निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ।।81।।

अत्र यद्यपि उत्तरार्धे स्थण्डिलसहत्वमुक्तं, तथापि तेन स्थिराग्रहस्यैव मनसः क्लेशसहिष्णुत्वं प्रतीयते, न पुनः शरीरस्येत्यत्रोत्तमसौकुमार्यमुपपद्यते।

जैसे (कुमारसम्भव ५.७२ में)–

बहुमूल्य शय्या पर करवटे बदलते समय अपने ही बालों से गिरे हुए फूलों से भी जिस पार्वती को कष्ट होता था वही पार्वती अब केवल भूमि पर (बिना बिछौना बिछाये) अपनी बाहों की तकिया लगा कर बैठे ही बैठे सोने लगी।।81।।

यहाँ यद्यपि उत्तरार्ध में तकिया के स्पर्श से सहने की क्षमता को कहा गया है तथापि उसके द्वारा स्थिर आग्रह वाले मन की क्लेश सहन कहने की क्षमता प्रतीत होती हैं न कि शरीर के (क्लेश सहने की)। इसलिए यहाँ उत्तम सौकुमार्य है।

अथ मध्यमसौकुमार्यम्–

न सहेत करस्पर्शं येनाङ्गं मध्यमं हि तत् ।

मध्यम सौकुमार्य– जिस सुकुमारता के कारण अङ्ग हाथों के स्पर्श को सहन नहीं कर सकते, वह मध्यम सौकुमार्य है।।१८६पू.।।

यथा (उत्प्रेक्षावल्भस्य)–

लाक्षां विधातुमवलम्बितमात्रमेव
सख्याः करेण तरुणाम्बुजकोमलेन ।
कस्याचिदग्रपदमाशु बभूव रक्तं

लाक्षारसः पुनरभून्न तु भूषणाय ।।82।।

जैसे उत्प्रेक्षावल्लभ का–

अलक्तक लगाने के लिए सखी के तरुण कमल के समान कोमल हाथ से केवल उठाया गया किसी (तरुणी) के पैरों का अग्रभाग (हाथ से स्पर्श के कारण) लाल हो गया फिर अलक्तक (उसके) सजाने के लिए (उपयोगी) नहीं हुआ।।82।।

अथाधमसौकुमार्यम्–

येनाङ्गमातपादीनामसहं तदिहाधमम् ।।१८६।।

अधमसौकुमार्य– जिस सौकुमार्य के कारण अङ्ग धूप इत्यादि का स्पर्श सहने में समर्थ नहीं होते, वह अधम सौकुमार्य होता है।।१८६उ.।।

यथा–

आमोदमामोदनमादधानं
निलीननीलालकचञ्चरीकम् ।
पद्मालयाया मुखपद्मस्या
निरूढरागं कृतमातपेन ।।83।।

जैसे–

प्रसन्न करने वाली सुगन्ध को धारण करने वाले और नीले (काले) घुँघराले बालों रूपी भ्रमरों से युक्त इस लक्ष्मी के मुख रूपी कमल को आतप (धूप) ने लालिमा से युक्त कर दिया है।।83।।

तच्चेष्टा लीलाविलासादयः । तेप्यनुभावप्रकरणे वक्ष्यन्ते ।

इस सौकुमार्य में लीला, विलास इत्यादि चेष्टाएँ होती हैं। उन्हें (द्वितीय विलास के) अनुभाव प्रकरण में निरूपित किया जाएगा।

अथालङ्कृतिः–

चतुर्धालङ्कृतिर्वासोभूषामाल्यानुलेपनैः ।

३. अलंकृति– वस्त्र, भूषा, माल्य और अनुलेपन भेद से अलङ्कृति चार प्रकार की होती है।

तत्र वस्त्रालङ्कारो यथा (कुमारसम्भवे ७.२६)–

क्षीरोदवेलेव सफेनपुञ्जा
पर्याप्तचन्द्रेव शरत्त्रियामा ।
नवं नवक्षौमनिवासिनी सा
भूयो बभौ दर्पणमादधाना ।।84।।

वस्त्रालङ्कार जैसे (कुमारसम्भव ७.२६ में)-

नूतन रेशमी वस्त्र पहन कर और दर्पण हाथ में लेकर पार्वती इस प्रकार सुशोभित हुई मानों फेन में ढकी हुई क्षीरसागर की तटभूमि हो अथवा पूर्णचन्द्रमा से सुशोभित शरत्कालीन रात्रि हो।।84।।

भूषालङ्कारो यथा (कुमारसम्भवे ७/२१)-

सा सम्भवद्भिः कुसुमैर्लतेव
ज्योतिभिरुद्यद्भिरिव त्रियामा ।
सरिद्विहङ्गैरिव लीयमानै-
रामुच्यमानाभरणा चकाशे ।।85।।

भूषालङ्कार जैसे (कुमारसम्भव ६.२१ में)-

जिस प्रकार फूलों से भरी हुई लता अथवा तारों से जगमगाती हुई रात अथवा रंगबिरंगे पक्षियों के आ जाने से नदी अत्यधिक सुहावनी लगने लगती है उसी प्रकार विभिन्न आभूषणों को धारण करने पर पार्वती की शोभा और खिल उठी।।85।।

माल्यानुलेपनालङ्कारो यथा-

आलोलैरनुमीयते मधुकरैः केशेषु माल्यग्रहः
कान्तिः कापि कपोलयोः प्रथयते ताम्बूलमन्तर्गतम् ।
अङ्गानामवगम्यते परिमलैरालेपनप्रक्रिया
वेषः कोऽपि विदग्ध एष सुदृशः सूते सुखं चाक्षुषोः ।।86।।

माल्य और अनुलेपन अलङ्कार जैसे-

उड़ते हुए भ्रमरों के कारण (इस नायिका के) बालों में माला लगी होने का अनुमान होता है। दोनों गालों की कान्ति ताम्बूल के भीतर विस्तृत होती है। सुगंध के कारण अङ्गों पर (सुगन्धित-द्रव्यों) के अवलेप लगाने का बोध होता है। इस प्रकार किसी सुन्दर दृष्टि वाले निपुण प्रसाधक ने नायिका का यह वेष बनाया है जो (देखने वाले की) आँखों के लिए आनन्द उत्पन्न कर रहा है।।86।।

अथ तटस्था-

तटस्थाश्चन्द्रिका धारागृहचन्द्रोदयावपि ।।१८७।।
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदाः ।
लतामण्डपभूगेहदीर्घिकाजलदारवाः ।।१८८।।
प्रासादगर्भसङ्गीतक्रीडाद्रिसरिदादयः ।
एवमूह्या यथाकालमुपभोगोपयोगिनः ।।१८९।।

४. तटस्था- चन्द्रिका, धारागृह, चन्द्रोदय, कोकिलालाप, माकन्द, मन्दमरुत्,

षटपद, लतामण्डप, भूगेह, दीर्घिका, जलदारव, प्रासादगर्भ, सङ्गीत, क्रीडाद्रि, सरिता इत्यादि समयानुसार उपभोग के लिए उपयोगी वस्तुएँ तटस्था कहलाती है॥१८७उ.-१८९॥

तत्र चन्द्रिकायामुद्दीपनत्वं यथा–

दुरासदे चन्द्रिकयां सखीजनै-
र्लतानिकुञ्जे ललना निगूहिता ।
चकोरचञ्चुच्युतचन्द्रिकाकणं
कुतोऽपि दृष्ट्वा भजति स्म मूर्च्छनाम् ।।87।।

चन्द्रिका (चाँदनी) से उद्दीपनता जैसे–

चाँदनी के लिए भी दुर्गम लताओं के झुरमुट में सखियों के द्वारा ललना (स्वेच्छाचारिणी तरुणी) छिपा दी गयी। वहाँ भी कहीं से आयी हुई चकोर (नामक पक्षी) के चोंचों से निकल कर बचे हुए चाँदनी के कण (टुकड़े) को देखकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गयी।।87।।

धारागृहस्य यथा–

सा चन्द्रकान्तामपि चन्द्रकान्त-
वेदीमधिष्ठातुमपारयन्ती ।
धारागृहं प्राप्य तदप्यनङ्ग-
घोरासिधारागृहमन्वमंस्त ।।88।।

धारागृह की उद्दीपनता जैसे–

रमणीय तथा चन्द्रकान्त (मणि) से निर्मित चबूतरे पर बैठने में असमर्थ भी उसने धारागृह में प्रवेश करके कामदेव के तीव्र धार वाले घर को प्राप्त किया।।88।।

चन्द्रोदयस्य यथा–

चन्द्रबिम्बमुदयाद्रिमागतं
वञ्चकेन सखि! वञ्चिता वयम् ।
अत्र किं निजगृहं न नयस्व मां
तत्र वा किमिति विव्यथे वधूः ।।89।।

चन्द्रोदय का जैसे–

'हे सखी! चन्द्रबिम्ब उदयाचल पर आ गया है और सङ्केत करके इस स्थान पर न आने वाले (नायक) ने हम लोगों को धोखा दिया है। (अब) यहाँ रहने से क्या लाभ? मुझे अपने घर ले चलो अथवा वहाँ भी चलने क्या लाभ- इस प्रकार वधू व्यथित होती है।।89।।

कोकिलालापस्य यथा (कुमारसम्भवे ३/३२)–

चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः

पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ।
मनस्विनीमानविघातदक्षं
तदेव जातं वचनं स्मरस्य ।।90।।

कोकिलालाप का जैसे (कुमारसम्भव ३.३२ में)-

आम्रमञ्जरियों के खा लेने से कषैले कंठ वाली कोकिल की मधुर कूक ही मानिनी नायिकाओं का मानभङ्ग कराने में निपुण कामदेव की वाणी जैसी प्रतीत हो रही थी।।90।।

माकन्दस्य यथा-

चिरलालित एष बालचूतः
स्वकरावर्जितवारिसेकैः ।
कुसुमायुधसायकान् प्रसूते
पयसा पन्नगवर्धनं तदेतत् ।।91।।

माकन्द इत्यशोकादीनामप्युपलक्षणम् ।

माकन्द का जैसे-

बहुत दिनों तक अपने हाथों द्वारा गिराये गये पानी के सेचन से (अब बड़ा हो गया) यह छोटा आम्र का वृक्ष उसी प्रकार (अपनी) मञ्जरी के रूप में कामदेव के बाणों को उत्पन्न कर रहा है जैसे दूध पिलाए गये साँप में विष ही बढ़ता है।।91।।

यहाँ माकन्द शब्द अशोक आदि का भी उपलक्षण है।

मन्दमारुतस्य यथा-

भृशं निपीतो भुजगाङ्गनाभि-
र्विनिर्गतस्तद्गरलेन साकम्
तदन्यथा चेत् कथमक्षिणोत् ता-
मदक्षिणो दक्षिणमातरिश्वा ।।92।।

मन्द वायु का जैसे-

सर्पिणियों द्वारा पूर्ण रूप से पान किया गया पुनः (उनके) विष के साथ निकला हुआ नहीं होता तो दक्षिण से बहने वाला मूर्ख वायु कैसे इस नायिका को क्षीण करता।।92।।

षट्पदस्वरूपस्य यथा-

मधुव्रतानां मदमन्थराणां मन्त्रैरपूर्वैरिव मञ्जुनादैः ।
मधुश्रियो मानवतीजनानां मानग्रहोच्चाटनमाचरन्ति ।।93।।

भ्रमर स्वरूप का जैसे-

मधु पीने का व्रत धारण करने वाले (मधुपान में तल्लीन) अत एव मन्द गति वाले

भ्रमरों के अपूर्व मन्त्र के समान मनोहर गुञ्जार से युक्त (वसन्त की) मधुर कान्ति मानशालिनी (युवती) लोगों को मान-धारण से विरक्त करने के लिए आचरण करती है।।93।।

लतामण्डपस्य यथा-

एषा पूगवती प्रफुल्लकुहलिः पर्यन्तचूतद्रुमा
तन्मध्येऽपि सरोवरं निधुवनान्तानन्दमन्दानिलम् ।
तत्तीरे कदलीगृहं विलसितं तस्यान्तरे मल्लिका-
वल्लीमण्डपमत्र सा सुनयना त्वन्मार्गमेवेक्षते ।।94।।

लतामण्डप का जैसे-

यह विकसित कोढ़ियों (कलियों) वाली सुपाड़ी है। यहाँ तक फैले हुए ये आम के वृक्ष हैं। उसके मध्य में सम्भोग के अन्त में आनन्द देने वाले मन्द वायु से युक्त सरोवर है। उस सरोवर के किनारे कदलीगृह शोभायमान है। उस (कदलीगृह) के भीतर चमेली की लताओं वाला मण्डप है। वहीं वह सुन्दर नेत्रों वाली रमणी तुम्हारा रास्ता देख रही है।।94।।

भूगेहस्य यथा-

कालागरूद्गारसुगन्धिगन्ध-
धूपाधिवासाश्रयभूगृहेषु ।
न तत्रसुर्माघसमीरणेभ्यः
श्यामाकुचोष्माश्रयिणः पुमांसः ।।95।।

भूगेह का जैसे-

काले अगरु से निकलने वाली सुगन्ध से सुगन्धित गन्धद्रव्यों से युक्त भूगृहों में षोडशी रमणी के स्तनों की ऊष्मा के आश्रित रहने वाले पुरुष माघ महीने की (शीतल) वायु के लिए सुलभ नहीं होते।।95।।

दीर्घिकाया यथा (उत्तररामचरिते १/३१)-

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः ।
बाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले
सन्दृष्टा कुवलयिनो मया विभागाः ।।96।।

दीर्घिका का जैसे (उत्तररामचरित १.३१में)-

यहाँ पर मद से मधुर शब्द वाले मल्लिकाक्ष नामक हंसविशेषों के पंखों से कम्पित और शोभित बड़े नालदण्डों वाले श्वेतकमलों से युक्त पम्पासरोवर के प्रदेशों को मैंने आँसुओं के गिरने और निकलने के मध्य समय में देखा।।96।।

जलदारवस्य यथा–

मनस्विनीनां मनसोऽपि मान-
स्तथापनीतो घनगर्जितेन ।
यथोपगूढाः प्रथितागसोऽपि
क्षणं विदग्धाः कुपिता इवासन् ।।97।।

अत्र जलदारवग्रहणं विद्युदादीनामप्युपलक्षणम् ।

मेघगर्जन से जैसे–

उदार मन वाली तरुणियों के मन का मान बादलों की गर्जना से उसी प्रकार दूर हो गया जैसे— (परनायिका के साथ समागम करने से) अपराधी नायक की कुपिता चतुर (रमणियाँ) छिपकर (दूर हो) जाती हैं।।97।।

यहाँ जलदारव (मेघगर्जन) विद्युत चमकने इत्यादि का भी उपलक्षण है।

विद्युतो यथा–

वर्षासु तासु क्षणरुक्प्रकाशात्
त्रस्ता रमा शार्ङ्गिणमालिलिङ्ग ।
विद्युच्च सा वीक्ष्य तदङ्गशोभां
ह्रीणेव तूर्णं जलदं जगाहे ।।98।।

विद्युत् का जैसे–

उस बरसात में विद्युत के प्रकाश से भयभीत लक्ष्मी ने शार्ङ्गधारी (नारायण) का आलिङ्गन किया और वह विद्युत् उस (लक्ष्मी) के शरीर की शोभा को देख कर लज्जा के समान बादलों में छिप गयी।।98।।

प्रासादगर्भस्य यथा–

गोपानसीसंश्रितबर्हिणेषु कपोलशिञ्जानकपोतकेषु ।
प्रासादगर्भेषु रमाद्वितीयो रेमे पयोदानिलदुर्गमेषु ।।99।।

प्रासादगर्भ का जैसे–

(उद्यानों की) बावलियों पर आश्रय लिए हुए मयूरों वाले तथा बुर्जों पर घोसलों में रहने वाले कबूतरों से युक्त महल के कोष्ठों के गर्भ में रमा के साथ विष्णु ने रमण किया।।99।।

सङ्गीतस्य यथा–

माधवो मधुरमाधवीलतामण्डपे पटुरटन्मधुव्रते ।
सञ्जगौ श्रवणचारु गोपिकामानमीनबडिशेन वेणुना ।।100।।

सङ्गीत का जैसे-

माधव (श्रीकृष्ण) भ्रमरों के गुञ्जार से पूरित रमणीय माधवी लता वाले मण्डप (झुरमुट) में सुनने में मधुर तथा गोपिकाओं के मानरूपी मछली को फसाने के लिए काँटे का कार्य करने वाली बाँसुरी से जुड़ गये (अर्थात् बाँसुरी बजाने लगे।।100।।

क्रीडाद्रेर्यथा (मेघदूते १.२५)-

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ।।101।।

क्रीड़ाद्रि का जैसे (मेघदूत में १.२५)-

वहाँ विदिशा के समीप विश्राम के लिए पूर्ण विकसित फूलों वाले कदम्ब-वृक्षों से तुम्हारे सम्बन्ध के कारण रोमाञ्चित 'नीच' नामक पर्वत पर ठहरना, जो पर्वत वेश्याओं की सुरत-क्रीडाओं में (प्रयुक्त) सुगन्ध को फैलाने वाले शिलागृहों से नागरिकों के उद्दाम यौवन को प्रकट कर रहा है।।101।।

सरितो यथा (रघुवंशे के १६.६४)-

अथोर्मिमालोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सरय्वाः ।
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव ।।102।।

इत्याद्यन्यदप्युदाहार्यम् ।

सरित् का जैसे (रघुवंश के १६.५४ में)-

इसके बाद एक दिन राजा शुक की इच्छा हुई कि लहरों के लहराने से चञ्चल एवं मतवाले बने हुए हंस वाले तटवर्ती लताओं के पुष्पों को बहाने वाले, ग्रीष्म-काल से सुखप्रद सरयू के जल में अपनी रानियों के साथ विहार करें।।102।।

इत्यादि अन्य भी उदाहरण दर्शनीय हैं।

अथानुभावाः-

भावं मनोगतं साक्षात् स्वहेतुं व्यञ्जयन्ति ये ।
तेऽनुभावा इति ख्याता भ्रूविक्षेपस्मितादयः ।।१९०।।

अनुभाव- वे मनोगत भाव जो साक्षात् रूप से अपने हेतु (प्रयोजन) को व्यञ्जित करते हैं वे भ्रूविक्षेप, स्मित इत्यादि अनुभाव कहलाते हैं।।१९०।।

ते चतुर्धा चित्तगात्रवाग्बुद्ध्यारम्भसम्भवाः ।

अनुभावों के प्रकार- वे (अनुभाव) चार प्रकार के होते हैं— **१.** चित्तज

(चित्तारम्भ), २. गात्रज (गात्रारम्भ), ३. वाग्ज (वागारम्भ), ४. बुद्धिज (बुद्ध्यारम्भ।।१९१पू.।।

(अथ चित्तजाः)-

तत्र च भावो हावो हेला शोभा च कान्तिदीप्ती च ।।१९१।।
प्रागल्भ्यं माधुर्यं धैर्योदार्ये च चित्तजा भावाः ।

१. चित्तज अनुभाव- १. भाव, २. हाव, ३. हेला, ४. शोभा, ५. कान्ति, ६. दीप्ति, ७. प्रागल्भ्य, ८. माधुर्य, ९. धैर्य और १०. उदारता- ये चित्तज अनुभाव हैं।।१९१उ.-१९२पू.।।

तत्र भावः-

निर्विकारस्य चित्तस्य भावः स्यादादिविक्रिया ।।१९२।।

यथोक्तं हि प्राक्तनैरपि-

चित्तस्याविकृतिः सत्त्वं विकृते कारणे सति ।
ततोऽल्पा विकृतिर्भावो बीजस्यादिविकारवत् ।। इति

१. भाव- निर्विकार चित्त का प्रारम्भिक विकार भाव कहलाता है।।१९२उ.।।

जैसा पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा भी कहा गया है-

'विकृति का कारण उपस्थित होने पर भी चित्त का विकृत न होना सत्त्व कहलाता है। बीज के प्रारम्भिक विकार के समान उस सत्त्व से थोड़ा विकृत हो जाना भाव कहलाता है।

भावो यथा ममैव-

बाला प्रसाधनविधौ विदधाति चित्तं
दत्तादरा परिणये मणिपुत्रिकाणाम् ।
सा शङ्कते निजसखीमन्दहासै-
रालक्ष्यते तदिह भावनवावतारः ।।103।।

अत्र पूर्वं शैशवेन रसानभिज्ञस्य चित्तस्य सम्भूतत्वाद् भावः ।

भाव जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

षोडशी (रमणी) प्रसाधन (सजावट) के कार्यों में मन लगाती है, मणिपुत्रिकाओं (गुड्डे-गुड्डी) के विवाह (के खेल) में आदर देती (रुचि लेती) है, अपनी सखियों की मन्द हँसी से लज्जित हो जाती है, इस प्रकार उसमें (कामविषयक) नये भाव का अवतरण (उदय) हो रहा है।।103।।

यहाँ पहले शैशव के कारण रस से अनभिज्ञ चित्त के उत्पन्न होने से भाव है।

अथ हावः-

ग्रीवारेचकसंयुक्तो भ्रूनेत्रादिविलासकृत् ।
भाव ईषत्प्रकाशो यः स हाव इति कथ्यते ।।१९३।।

(२) हाव– ग्रीवा और निःश्वास से युक्त भ्रूनेत्र इत्यादि द्वारा थोड़ा प्रकाशित होने वाला भाव ही हाव कहलाता है॥१९३॥

यथा–

धात्रीवचोभिर्ध्वनिमर्मगर्भैः
क्षणं सरोषस्मितमात्तलज्जा ।
पाञ्चालिकाद्वन्द्वमयोजयत् सा
सम्बन्धिनी स्वस्य सखीजनस्य ॥104॥

अत्र चित्तविकाराणां रोषहर्षलज्जादीनां कुटिलेक्षणस्मितनताननत्वादिभिरीषत्प्रकाशनादयं हावः।

जैसे–

सेविका (या धाय) की रहस्यपूर्ण (गूढ़ार्थ वाली) वाणी को सुन कर रोष और मुस्कान से युक्त लज्जा को प्राप्त करके अपनी सखी लोगों से सम्बन्ध रखने वाली उस नायिका ने दो पाञ्चालिकाओं (गुड्डे और गुड्डी) को मिला दिया॥104॥

यहाँ रोमाञ्च, हर्ष, लज्जा, इत्यादि चित्तविकारों का तिरछी आँखों से देखना, मुस्कान, मुख का नीचे कर लेना इत्यादि द्वारा थोड़ा प्रकाशन होने के कारण हाव है।

अथ हेला–

नानाविकारैः सुव्यक्तः शृङ्गाराकृतिसूचकैः ।
हाव एव भवेद्धेला ललिताभिनयात्मिका ॥१९४॥

३. हेला–

शृङ्गार की आकृति के सूचक अनेक विकारों से सुव्यक्त हाव ही हेला होता है। वह ललित और अभिनयात्मक होता है॥१९४॥

यथा (कुमारसम्भवे ३/६८)–

विवृण्वती शैलसुतापि भाव-
मङ्गैः स्फुटद्बालकदम्बकल्पैः ।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ
मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥105॥

अत्र रोमाञ्चमुखसाचीकरणपर्यस्तविलोचनत्वादिविकारैश्चित्तव्यापारस्यातिप्रकाशत्वेन हेला।

जैसे (कुमारसम्भव ३.६८ में)–

शङ्करजी की दृष्टि पड़ते ही पार्वती का सम्पूर्ण अङ्ग प्रफुल्लित कोमल कदम्ब के पुष्प

के समान रोमाञ्चित हो उठा, जिससे उनके हृदय का (शङ्कर के प्रति) मधुर-भाव छिपा न रह सका। उनकी आँखे लज्जा से झुक गयी और वह थोड़ी तिरछी सी होकर खड़ी रह गयी। उस समय उनका मुख और भी सुन्दर लगने लगा।।105।।

यहाँ रोमाञ्च, मुख नीचा करने, आँखों के तिरछा होने इत्यादि विकारों के द्वारा चित्त-व्यापार के अधिक प्रकाशन से हेला है।

अथ शोभा–

सा शोभा रूपभोगाद्यैर्यत् स्यादङ्गविभूषणम् ।

४. शोभा– रूप-भोग इत्यादि द्वारा अङ्गों का सजाना शोभा है।।१९५पू.।।

यथा–

अशिथिलपरिरम्भादर्धशिष्टाङ्गरागा-
मविरतरतवेगादंसलम्बोरुजूटिम् ।
उषसि शयनगेहादुच्चलन्तीं स्खलन्तीं
करतलधृतनीवीं कातराक्षीं भजामः ।।106।।

जैसे–

गाढ़ आलिङ्गन के कारण (आधे मिट जाने से) आधे अवशिष्ट अङ्गराग (अङ्गों के अनुलेप) वाली, सुरत में लगे रहने से होने वाले वेग के कारण कन्धों पर लटकती हुई लम्बी चोटी वाली, प्रातःकाल शयनगृह से लड़खड़ा कर चलती हुई तथा हथेलियों से नीवी को पकड़ी हुई (अपनी) कातर नेत्रों वाली (प्रियतमा) को याद कर रहा हूँ।।106।।

अथ कान्तिः–

शोभेव कान्तिराख्याता मन्मथाप्यायनोज्जवला ।।१९५।।

५- कान्ति– काम से आप्यायित (भरे हुए) नैसर्गिक मनोभाव से उद्दीप्त शोभा ही कान्ति होती है।।१९५।।

यथा–

उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा
धृत्वा चान्येन वासः शिथिलितकबरीभारमंसे वहन्त्याः ।
भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः
शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याः पुनातु ।।107।।

अत्र पूर्वरतान्तजनितायाः वपुकान्तेरुत्तररतारम्भहेतुत्वान्मन्मथाप्यायितत्वम्।

जैसे–

सुरत के अन्त में एक हाथ से (शय्यास्वरूप) शेषनाग पर भार डाल कर उठती हुई,

दूसरे हाथ से वस्त्र को पकड़कर शिथिल हुए जूड़े (चोटी) के भार को कन्धे पर ढोती हुई, पुनः उस समय की कान्ति के कारण दूने हुए सुरत-प्रेम वाले विष्णु के द्वारा आलिङ्गन करके पुनः पलङ्ग पर लाए गये शरीर वाली लक्ष्मी की आलस्य से शोभायमान भुजा तुम लोगों को पवित्र करे।।107।।

यहाँ पहली बार के सुरत के अन्त में उत्पन्न शरीर की कान्ति से तत्पश्चात् पुनः सुरत के आरम्भ होने से काम से भरा होना स्पष्ट है।

अथ दीप्तिः-

कान्तिरेव वयोभोगदेशकालगुणादिभिः ।
उद्दीपितातिविस्तारं याता चेद् दीप्तिरुच्यते ।।१९६।।

६. दीप्ति- वय, भोग, देशकाल, गुण इत्यादि के द्वारा उद्दीप्त तथा अति-विस्तार को प्राप्त कान्ति ही दीप्ति कहलाती है।।१९६।।

यथा (मेघदूते २.६)-

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गिताना-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां जालमार्गप्रविष्टैः ।
तत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुपन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चचन्द्रकान्ताः ।।108।।

अत्र प्रियतमालिङ्गनसौधज्योत्स्नादिगुणैः सुरतग्लानिव्यालोपनादुत्तरसुरतोत्साहरूपा दीप्तिः प्रतीयते।

जैसे (मेघदूत २.६ में)-

जिस अलका में अर्धरात्रि के समय तुम्हारी रूकावट हट जाने से निर्मल चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से स्वच्छ जल-बिन्दुओं को टपकाने वाली, चँदोवे की जाली से लटक रही चन्द्रकान्त मणियाँ प्रियतम की बाहुओं के (द्वारा कस कर किये गये) आलिङ्गन के कारण श्रान्त-स्त्रियों की रतिक्रीड़ा से उत्पन्न शारीरिक थकान को दूर करती है।।108।।

यहाँ प्रियतम के आलिङ्गन, शुभ्र चाँदनी इत्यादि गुणों द्वारा सुरत की थकान के दूर हो जाने के कारण पुनः उत्तरवर्ती सुरत के लिए उत्साह रूप दीप्ति प्रतीत होती है।

अथ प्रागल्भ्यम्-

निःशङ्कत्वं प्रयोगेषु प्रगल्भत्वं प्रचक्षते ।

७. प्रागल्भ्य- सम्भोग-कार्य में निःशङ्कता प्रगल्भता कहलाती है।।१९७पू.।।

यथा (कुमारसम्भवे ८/१६)-

शिष्यतां निधुवनोपदेशिनः

शङ्करस्य रहसि प्रपन्नया ।
शिक्षितं युवतिनैपुणं तया यत्
तदेव गुरुदक्षिणीकृतम् ।।109।।

अत्र गुरुदक्षिणीकृतमित्यनेन प्रतिकरणरूपं प्रागल्भ्यं प्रतीयते।

जैसे (कुमारसम्भव ८.१७ में)-

पार्वती जी ने एकान्त में रतिकाल की शिक्षा देने वाले शिव जी से युवतियों के योग्य हावों-भावों की शिक्षा पायी थी, सम्भोग करते समय उन्होंने उन सबका व्यवहार करके मानों गुरुदक्षिणा के रूप में उन्हीं रतिगुरु को समर्पित कर दिया।।109।।

यहाँ गुरुदक्षिणा के रूप में समर्पित कर दिया— इससे प्रतिकर (क्षतिपूर्ति) रूपी प्रगल्भता प्रतीत होती है।

अथ माधुर्यम्-

माधुर्यं नाम चेष्टानां सर्वावस्थासु मार्दवम् ।।१९७।।

८. माधुर्य- सभी अवस्थाओं में चेष्टाओं की मृदुता (कोमलता) माधुर्य कहलाती है।।१९७उ.।।

यथा (मालविकाग्निमित्रे २.६)-

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम् ।
पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम् ।।110।।

अत्र पादाङ्गुष्ठेन कुसुमलोलनादिक्रियायां नितान्तपरिश्रान्तावपि चारुत्वान्माधुर्यम्।

जैसे (मालविकग्निमित्र २.६ में)-

इसने अपना बाँया हाथ अपने नितम्ब पर रख लिया है अत एव हाथ का कड़ा पहुँचे पर रुक कर चुप हो गया है। दूसरा हाथ श्यामा की डाली के समान ढीला लटका हुआ है। आँखे नीची करके पैर के अङ्गूठे से धरती पर बिखरे हुए फूलों को सरका रही है। इस प्रकार खड़ी होने से ऊपर का शरीर लम्बा और सीधा हो गया है। नाचने के समय भी यह ऐसी सुन्दर नहीं लगती थी जैसी अब लग रही है।।110।।

यहाँ पैरों के अङ्गूठे से पुष्पचयन इत्यादि कार्यों में अत्यधिक थकान होने पर भी सुन्दरता के कारण माधुर्य है।

अथ धैर्यम्-

स्थिरा चित्तोन्नतिर्या तु तद् धैर्यमिति संज्ञितम् ।

९. धैर्य–
चित्त की स्थिर उन्नति धैर्य कहलाती है॥१९८पू.॥

यथा (कुमारसम्भवे ६.१)–

अथ विश्वात्मने गौरी सन्दिदेश मिथः सखीम् ।
दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति ॥111॥

जैसे (कुमारसम्भव ६.१ में)–
इसके पश्चात् पार्वती ने अपनी सखी द्वारा एकान्त में विश्वात्मा शङ्कर जी से कहलाया कि मेरे पिता पर्वतराज हिमालय ही मुझे आप को दे सकते हैं अतः इसके लिए उन्हीं से अनुरोध कीजिए॥111॥

अथौदार्यम्–

औदार्यं विनयं प्राहुः सर्वास्वस्थानुगं बुधा ॥१९८॥

१०. औदार्य– सभी अवस्थाओं होने वाला विनय औदार्य कहलाता है॥१९८उ.॥

यथा (रघुवंशे १४.६२)–

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥112॥

अत्र अनपराधेऽपि निष्कासयतो रामस्यानुपालम्भात् सीताया औदार्यं प्रतीयते। सर्वावस्थासमत्वाविदितेङ्गिताकारत्वरूपयोर्लक्षयोः चित्तधैर्य एवान्तर्भूतत्वाद् भोजराजलक्षितौ स्थैर्यगाम्भीर्यरूपावन्यौ द्वौ चित्तारम्भौ चास्मदुक्ते धैर्य एवान्तर्भूताविति दशैव चित्तारम्भाः।

जैसे (रघुवंश १४.६२ में)–
अथवा आप तो सबकी भलाई करने वाले हैं आप अपने मन से मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते, यह सब मेरे पूर्वजन्म के पापों का ही फल है जो वज्रपात के समान असह्य है॥112॥

यहाँ सीता के निरपराध होने पर भी निकालते हुए राम का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने से सीता की उदारता प्रतीत होती है।

सभी अवस्थाओं में समान रूप से और अज्ञात सङ्केतित आकारता रूप लक्षणों का चित्तधैर्य में ही अन्तर्भाव होने के कारण भोजराज द्वारा लक्षित धैर्य और गाम्भीर्य रूपी दो अन्य चित्तज अनुभावों का धैर्य में ही अन्तर्भाव हो जाता है, अतः दस ही चित्तज अनुभाव हैं।

अथ गात्रारम्भाः–

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम् ।
मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोको ललितं तथा ॥१९९॥

विहृतं चेति विज्ञेया योषितां दश गात्रजा ।

२. गात्रज अनुभाव– **१.** लीला, **२.** विलास, **३.** विच्छित्ति, **४.** विभ्रम, **५.** किलकिञ्चित, **६.** मोट्टायित, **७.** कुट्टमित, **८.** विब्बोक, **९.** ललित और **१०.** विहृत– ये स्त्रियों के दश गात्रज अनुभाव हैं।।१९९-२००पू.।।

तत्र लीला–

प्रियानुकरणं यत्तु मधुरालापपूर्वकैः ।।२००।।
चेष्टितैर्गतिभिर्वा स्यात् सा लीला निगद्यते ।

१. लीला– मधुर आलाप, चेष्टा अथवा गति द्वारा जो प्रिय का अनुकरण किया जाता है वह लीला कहलाता है।।२००उ.-२०१पू.।।

यथा–

दुष्टकालीय सर्पोऽत्र कृष्णोऽहमिति चापरा ।
बाहुमास्फोट्य कृष्णस्य लीलासर्वस्वमाददे ।।113।।

जैसे–

'यहाँ यह दूसरी (गोपिका) दुष्ट कालीय नामक सर्प है और (यह) मैं कृष्ण हूँ' इस प्रकार बाहों को फैला कर (राधिका ने कृष्ण की) सभी लीलाओं को किया।।113।।

अथ विलासः–

प्रियसम्प्राप्तिसमये भ्रूनेत्राननकर्मणाम् ।।२०१।।
तात्कालिको विशेषो यः स विलास इतीरितः ।

२. विलास– प्रियतम की प्राप्ति के समय भौंहों, नेत्रों और मुख के कार्यों में जो तात्कालिक वैशिष्ट्य होता है वह विलास कहलाता है।।२०१उ.-२०२पू.।।

यथा–

बाला सखीतनुलतान्तरिता भवन्त-
मालोक्य मुग्धमधुरैरलसैरपाङ्गैः ।
शिङ्गक्ष्मारमणः! चित्तजमोहनास्त्रै-
र्लक्ष्मीरभित्तिलिखितेव चिरं चकास्ति ।।114।।

हे शिङ्गभूमि पर रमण करने वाले (शिङ्गभूपाल)! (अपनी) सखी की शरीर-रूपी लता में छिपी हुई तरुणी आप को देखकर जड़भूत, आकर्षक तथा अलसाए हुए नेत्र के कोनों के कारण दीवार पर अचित्रित चित्तज (चित्त से उत्पन्न) सम्मोहक अस्त्रों से युक्त लक्ष्मी की भाँति सुशोभित हो रही है।।114।।

अथ विच्छितिः–

आकल्पकल्पनाल्पापि विच्छित्तिरतिकान्तिकृत् ।।२०२।।

३. विच्छिति– अधिक निपुणता से अल्प वेशभूषा बनाना विच्छिति कहलाता है।।२०२उ.।।

यथा–

आलोलैरभिगम्यते मधुकरैः केशेषु माल्यग्रहः
कान्तिः कापि कपोलयोः प्रथयते ताम्बूलमन्तर्गतम् ।
अङ्गानामनुमीयते परिमलैरालेपनप्रक्रिया
वेषः कोऽपि विदग्ध एष सुदृशः सूते सुखं चक्षुषोः ।।115।।

जैसे–

(अत्यन्त निपुणता से सजावट के कारण) चञ्चल (उड़ते हुए) भ्रमरों से (रमणी के) बालों (जूड़े) में माला धारण का बोध होता है, दोनों गालों की कोई (अनुपम) कान्ति (लालिमा) ताम्बूल के अन्तर्गत बढ़ी हुई है। सुगन्ध से अङ्गों पर (सुगन्धित द्रव्यों का) आलेप होने के कार्य का अनुमान होता है (इस प्रकार इस रमणी का) यह कोई (अनुपम) परिपुष्ट वेष आखों में सुख उत्पन्न कर रहा है।।115।।

अथ विभ्रमः–

प्रियागमनवेलायां मदनावेशसम्भ्रात् ।
विभ्रमोऽङ्गदहारादिभूषास्थानविपर्ययः ।।२०३।।

४. विभ्रम– प्रियतम के आगमन के समय कामावेश के कारण जल्दीबाजी में बाजूबन्द, हार इत्यादि को यथोचित स्थान पर न धारण करके अन्य स्थान पर धारण कर लेना विभ्रम कहलाता है।।२०३।।

यथा–

चकार काचित् सितचन्दनाङ्के
काञ्चीकलापं स्तनभारयुग्मे ।
प्रियं प्रति प्रेषितदृष्टिरन्या
नितम्बबिम्बे च बबन्ध हारम् ।।116।।

जैसे–

(प्रियतम के आगमन के समय कामावेग से जल्दबाजी में) किसी (नायिका) ने सफेद चन्दन का लेप लगे हुए दोनों स्तनों पर करधनी को पहन लिया और प्रियतम की ओर दृष्टि डालती हुई (नायिका) ने नितम्बफलक (चूतड़ों के घेरे पर) हार बाँध लिया।।116।।

अथ किलकिञ्चितम्-

शोकरोषाश्रुहर्षादेः सङ्करः किलिकिञ्चितम् ।

५. किलकिञ्चित- शोक, रोष, अश्रुपात, हर्ष इत्यादि का मेल किलकिञ्चित कहलाता है।।२०४पू.।।

यथा-

दत्तं श्रुतं द्यूतपणं सखीभ्यो विवक्षति प्रेयसि कुञ्चितभ्रूः ।
कण्ठं कराभ्यामवलम्ब्य तस्य मुखं पिधत्ते स्म कपोलकेन ।।117।।

जैसे-

जुए के पासे पर दी गयी हूँ, इस प्रकार सखियों द्वारा कहे गये वचन को सुनने पर प्रियतमा की कुछ कहने की इच्छा होने पर (अपनी) भौहों को सिकोड़ कर और उस (जुवाड़ी नायक के) गले का सहारा लेकर (उसके) मुख को अपने गालों से चिपका लिया।।117।।

यथा वा (दशरूपकेऽप्युद्धृतम्)-

रतिक्रीडाद्यूते कथमपि समासाद्य समयं
मया लब्धे तस्याः क्वणितकलकण्ठार्धमधरे ।
कृतभ्रूभङ्गासौ प्रकटितविलक्षार्धरुदितं
स्मितक्रोधोद्भ्रान्तं पुनरपि निदध्यान्मयि मुखम् ।।118।।

अथवा जैसे (दशरूपक में भी उद्धृत)-

रतिक्रीडा के द्यूत में किसी प्रकार दाव (समय) पाकर मैनें उसके अधर को पा लिया जबकि उसका कण्ठ अस्फुट और मधुर ध्वनि कर रहा था। फिर भौहें टेढ़ी करती हुई और लज्जा प्रकट करती हुई उस (नायिका) ने अपना मुख कुछ रोदन, मुस्कराहट तथा क्रोध से युक्त कर लिया। अच्छा हो कि वह फिर मेरे प्रति ऐसा मुख करे।।118।।

अथ मोट्टायितम्

स्वाभिलाषप्रकटनं मोट्टायितमितीरितम् ।।२०४।।

६. मोट्टायित- अपनी इच्छा को प्रकट करना मोट्टायित कहलाता है।।२०४उ.।।

यथा ममैव-

आकर्ण्य कर्णयुगलैकरसायनानि
तन्व्या प्रियस्य गदितानि सखीकथासु ।
आलोलकङ्कणझणत्करणाभिरामा-
मावेल्लिते भुजलते ललिताङ्गभङ्गम् ।।119।।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

सखियों के साथ बातचीत करते समय दोनों कानों के लिए अकेले ही रसायन स्वरूप प्रियतम की कही गयी बातों को सुनकर तन्वी (प्रियतमा) द्वारा चञ्चल कङ्कनों की झनकार के कारण मनोहर ध्वनि (की गयी), भुजा रूपी लताएँ हिलायी गयीं और अङ्गों में मनोहर भङ्गिमा प्रदर्शित की गयी।।119।।

अथ कुट्टमितम्–

केशाधरादिग्रहणे मोदमानेऽपि मानसे ।
दुःखितेव बहिः कुप्येद् यत्र कुट्टमितं हि तत् ।।२०५।।

७. कुट्टमित– बालों, होठों इत्यादि के पकड़ने पर (नायिका का) भीतर से मन प्रसन्न होने पर भी दुःखिता के समान बाहर से क्रोधित होना कुट्टमित कहलाता है।।२०५।।

यथा–

पाणिपल्लवविधूननमन्तस्सीत्कृतानि नयनार्धनिमेषाः ।
योषितां रहसि गद्गदवाचामस्त्रतामुपययुर्मदनस्य ।।120।।

जैसे–

रमणियों का एकान्त में (सुरतकाल में) हाथ रूपी पल्लवों का हिलाना (चलाना), भीतर से सीत्कार करना, नेत्रों का आधा बन्द कर लेना और गद्गद् वाणी (नायक के लिए) कामदेव का अस्त्र हो गया।।120।।

अत्र रहसीति सामान्यसूचितानां केशाधरग्रहणादीनां कार्यभूतैः पाणिपल्लव-विधूननसीत्कृतादिभिर्बहिरेव कोपस्य प्रतीयमानत्वात् कुट्टमितम् ।

यहाँ 'एकान्त में' इससे सूचित बाल, होठ इत्यादि के पकड़ने से हाथरूपी हाथों का धूनना, सीत्कार इत्यादि द्वारा बाहर से (दिखावे के लिए) कोप की प्रतीति होने से कुट्टमित है।

अथ विब्बोकम्–

इष्टेऽप्यनादरो गर्वाद्मानाद् विब्बोक ईरितः ।

८. विब्बोक– गर्व अथवा मान के कारण इष्ट (नायक) के प्रति (नायिका द्वारा) किया गया अनादर विब्बोक कहलाता है।।२०६पू.।।

गर्वाद् यथा–

पुंसानुनीता शतसामवादै-
र्हालां निरीहैव चुचुम्ब काचित् ।
अर्थानभीष्टानपि वामशीलाः
स्त्रियः परार्थानिव कल्पयन्ति ।।121।।

गर्व से विब्बोक जैसे–

सैकड़ों समझाने वाली बातों से पुरुष द्वारा अनुनय की जाती हुई किसी (रमणी) ने निराश्रित (रमणी) के समान मदिरा को चुम्बन कर लिया (मदिरा को पी लिया)। वामशीला (कुटिल) स्त्रियाँ अपने अभीष्ट अर्थों को भी परार्थ (दूसरी स्त्री के लिए उपयोगी) के समान मान लेती हैं।।121।।

मानाद् यथा (कुमारसम्भवे ८/४९)–

निर्विभुज्य दशनच्छदं ततो वाचि भर्त्तुरवधीरणापरा ।
शैलराजतनया समीपगामाललाप विजयामहेतुकम् ।।122।।

अत्र सन्ध्यानिमित्तमनादरेण विब्बोकः।

मान से विब्बोक जैसे (कुमारसम्भव ८.४९ में)–

शङ्कर जी की बात सुनकर पार्वती जी ने जैसे उसकी ओर बिल्कुल ध्यान ही नहीं दिया और अनिच्छा के कारण अपने होठों को विचका दिया तथा वही बैठी हुई अपनी सखी विजया से इधर-उधर की निरर्थक बातों में लग गयीं।।122।।

यहाँ सन्ध्या के निमित्त अनादर के कारण विब्बोक है।

अथ ललितम्–

विन्यासभङ्गिरङ्गानां भ्रूविलासमनोहरा ।।२०६।।
सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तमुदीरितम् ।

९. ललित– अङ्गों, भ्रूविलास से मनोहर सुकुमार विन्यासभङ्गिमा ललित कहलाती है।।२०६उ.-२०७पू.।।

यथा–

चरणकमलकान्त्या देहलीमर्चयन्ती
कनकमयकपाटं पाणिना कम्पयन्ती ।
कुवलयमयमक्ष्णा तोरणं पूरयन्ती
वरतनुरियमास्ते मन्दिरस्येव लक्ष्मीः ।।123।।

जैसे–

(अपने) चरण रूपी कमल (की कान्ति) से ड्यौढ़ी (दरवाजे के चौखट) की अर्चना करती हुई, हाथों से सुवर्णनिर्मित कपाट को कँपाती (हिलाती) हुई, कमल के समान नेत्रों से तोरण (के स्थान) को पूरा करती हुई यह अति सुन्दर शरीर वाली (रमणी) मन्दिर (घर) की लक्ष्मी (शोभा) के समान है।।123।।

अथ विहृतम्

ईर्ष्यया मानलज्जाभ्यामादन्तं योग्यमुत्तरम् ।।२०७।।

क्रियया व्यज्यते तत्र विहृतं तदुदीरितम् ।।

१०. विहृत- ईर्ष्या, मान और लज्जा के कारण जिस क्रिया (चेष्टा) से उचित उत्तर व्यञ्जित होता है, वह विहृत कहलाता है।।२०७उ.-२०८पू.।।

ईर्ष्यया यथा (रघुवंशे ६.८२)-

तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदावभाषे ।
आर्ये! व्रजावोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूया कुटिलं ददर्श ।।124।।

व्रजाव इत्यत्रोत्तरस्य कुटिलदर्शनेनैव व्यञ्जनाद् विहृतम् ।

ईर्ष्या से जैसे (रघुवंशे ६.८२में)-

अज में इन्दुमती को इस प्रकार अनुरक्त जान कर द्वारपालिका इन्दुमती से परिहास की दृष्टि से कहने लगी हे आर्ये! आगे बढ़िए। दूसरे राजा के पास चलें, इस पर उस राजकुमारी ने उसे असूया-पूर्वक कुटिल दृष्टि से देखा।।124।।

'आगे बढ़िए' यहाँ इसके उत्तर का कुटिलता-पूर्वक देखने से ही व्यञ्जित होने के कारण विहृत है।

मानेन यथा (चौरपञ्चाशिकायाम्११)-

अद्यापि तन्मनसि सम्परिवर्तते मे
रात्रौ मयि श्रुतवति क्षितिपालपुत्र्या ।
जीवेति मङ्गलवचः परिहृत्य रोषात्
कर्णेऽर्पितं कनकपत्रमनालपन्त्या ।।125।।

मान के कारण जैसे (चौरपञ्चाशिका ११ में)-

आज भी वह दृश्य मेरे मन में घूम रहा है जब रात में मेरे छींकने पर राजकुमारी ने 'जीव' इस मङ्गल वचन का क्रोध के कारण उच्चारण न करके बिना कुछ बोले कानों में सुवर्णपत्र लगा लिया।।125।।

लज्जया यथा (कुमारसम्भवे ८.६)-

अप्यवस्तूनि कथाप्रवृत्तये प्रश्नतत्परमनङ्गशासनम् ।
वीक्षितेन परिगृह्य पार्वती मूर्धकम्पमयमुत्तरं ददौ ।।126।।

लज्जा के कारण जैसे (कुमारसम्भव ८.६ में)-

जब कभी शङ्कर जी बात-चीत के प्रसङ्ग में कामुक चेष्टाओं से भरी हुई कुछ अटपटी बातें करते हुए उसके विषय में उनका उत्तर चाहते थे तो वे पार्वती लज्जा के कारण मुँह से कुछ भी न कह कर टेढ़ी चितवन से उनकी ओर देख कर सिर हिलाते हुए उनके प्रश्नों का उत्तर दे देती थी।।126।।

इत्थं श्री शिङ्गभूपेन सत्त्वालङ्कारशालिना ।।२०८।।
कथिताः सत्त्वजाः स्त्रीणामलङ्कारास्तु विंशतिः ।

स्त्रियों के बीस सात्त्विक भावों की स्थापना– इस प्रकार सात्त्विक अलङ्कारों के ज्ञाता शिङ्गभूपाल ने स्त्रियों के बीस अलङ्कारों को कहा है।।२०८उ.-२०९पू.।।

सत्त्वाद्वशैव भावाद्या जाता लीलादयस्तु न ।।२०९।।
अतो हि विंशतिर्भावा सात्त्विका इति नोचितम् ।

शङ्का– सत्त्व से दस ही भाव इत्यादि अनुभाव उत्पन्न होते हैं, लीला इत्यादि नहीं। इसलिए बीस सात्विक भाव होते हैं यह कहना उचित नहीं है।।२०९उ.-२१०पू.।।

युज्यते सात्त्विकत्वं च भावादिसहचारिणः ।।२१०।।
लीलादिदशकस्यापि छत्रिन्यायबलात् स्फुटम् ।

समाधान– भाव इत्यादि के सहचारी लीला इत्यादि दस अनुभावों की सात्त्विकता छत्रिन्याय के बल से होती हैं। अर्थात् जिस प्रकार किसी समुदाय में यदि कुछ लोग छाता लिए रहते हैं तो उनके सहचारियों को भी छाता वालों में गिन लिया जाता है उसी प्रकार भाव इत्यादि सत्त्विक अनुभावों के सहयोगी लीला इत्यादि को भी सत्त्विक भावों में गिन लिया गया है।।२१०उ.-२११पू.।।

भोजेन क्रीडितं केलिरित्यन्यौ गात्रजौ स्मृतौ ।।२११।।
अतो विंशतिरित्यत्र सङ्ख्येयं नोपपद्यते ।

गात्रज अनुभाव के विषय में भोज का मत– भोज ने क्रीडित और केलि-इन दो और गात्रज अनुभावों को कहा है। उनके मत में गात्रज अनुभावों की संख्या बीस नहीं है।।२११उ.-२१२पू.।।

तथाभिहितमनेनैव च–

"कीडितं केलिरित्यन्यौ गात्रारम्भावुदाहृतौ ।
बालयौवनकौमारसाधारणविहारभाक् ।।
विशेषः क्रीडितं केलिस्तदेव दयिताश्रयम्" ।।इति।।

जैसा उनका कथन है–

'क्रीडित और केलि ये दो गात्रज अनुभाव कहे गये हैं जो बाल, यौवन, कौमार्य की अवस्था में विहार करने के भाग हैं। विशेष रूप से क्रीडित और केलि ये दो गात्रज रमणी के आश्रित होते है। उन्होंने उदाहरण भी दिया है—

उदाहृतञ्च क्रीडितं यथा (कुमारसम्भवे१.२९)–

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः

सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां
क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ।।127।।

क्रीडित जैसे (कुमारसम्भव के १.२९ में)-

वह पार्वती बाल्य-सुलभ क्रीडारस में निमग्न होकर मन्दाकिनी के किनारे कभी बालुकामय मण्डपों (बालू से बनाए गए घरौदों) से, कभी गेंद से, कभी गुड़ियों से, सखियों के साथ निरन्तर खेल रही थी।।127।।

केलिर्यथा (किरातार्जुनीये ८.१९)-

व्यपोहितुं लोचनतो मुखानिलै-
रपायन्त्यं किल पुष्पजं रजः ।
पयोधरेणोरसि काचिन्नुमनाः
प्रियं जघनोन्नतपीवरस्तनी ।।128।।इति।।

केलि जैसे (किरातार्जुनीय ८.१९ में)-

उन्नत और स्थूल पयोधरों वाली किसी दूसरी देवाङ्गना ने आँख से पुष्पराग को फूँककर निकाल सकने में असमर्थ अपने प्रियतम के वक्षःस्थल में मुँह ऊँचा करके (पराग निकालने के बहाने) अपने स्तन से चोट किया।।128।।

अत्रोच्यते भावतत्त्ववेदिना शिङ्गभूभुजा ।।२१२।।
आद्यः प्रागेव भावादिसमुत्पत्तेश्च शैशवे ।
कन्याविनोदमात्रत्वादनुभावेषु नेष्यते ।।२१३।।
प्रेमविस्रम्भमात्रत्वान्नान्यस्याप्यनुभावता ।
अतो विंशतिरित्येषा सङ्ख्या सङ्ख्यावतां मता ।।२१४।।

शिङ्गभूपाल का मतः-

इस विषय में भाव-तत्त्वों के ज्ञाता शिङ्गभूपाल कहते हैं- पहले वाला क्रीडित शैशव (अवस्था) में भाव इत्यादि के उत्पन्न होने से पहले कन्याओं का विनोद मात्र होने से भावों में उनकी गणना अभीष्ट नहीं है। प्रेम की दुर्बलता होने के कारण अन्य (केलि) भी अनुभाव नहीं हो सकता। इस लिए अनुभावों की संख्या निर्धारित करने वाले बीस संख्या का ही निर्धारण करते हैं।।२१२उ.-२१४।।

अथ पौरुषसात्त्विकाः-

शोभा विलासो माधुर्यं धैर्यं गाम्भीर्यमेव च ।
ललितौदार्यतेजांसि सत्त्वभेदास्तु पौरुषाः ।।२१५।।

पुरुष के सात्त्विक भाव– पुरुष के सात्त्विकभाव आठ प्रकार के होते हैं— १. शोभा, २. विलास, ३. माधुर्य, ४. धैर्य, ५. गाम्भीर्य, ६. लालित्य, ७. औदार्य और ८. तेज ॥२१५॥

तत्र शोभा–

नीचे दयाधिके स्पर्धा शौर्योत्साहौ च दक्षता ।
यत्र प्रकटतां यान्ति सा शोभेति प्रकीर्तिता ।।२१६।।

१. शोभा– अपने से नीच (व्यक्ति) के प्रति दया और ऊँचे (व्यक्ति) के प्रति स्पर्धा, शौर्य, उत्साह, दक्षता जिसमें प्रकट होते हैं, वह शोभा कहलाता है।।२१६।।

नीचे दयाधिके स्पर्धा यथा (हनुमन्नाटके १२.२)–

क्षुद्रा सन्त्रासमेनं विजहति हरयोः भिन्नशक्रेभकुम्भा
युष्मद्गात्रेषु लज्जां दधति परममी सायकाः सम्पतन्तः ।।
सौमित्रे! तिष्ठ पात्रं त्वमसि न हि रुषां नन्वहं मेघनादः
किञ्चिभ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ।।129।।

अत्र प्रथमार्धे क्षुद्रकपिविषया दया उत्तरार्धे रामविषया स्पर्धा चेन्द्रजितः प्रतीयते। शौर्यं सत्त्वसारः। उत्साहः स्थैर्यम्। दक्षता क्षिप्रकारित्वम् । एषां नायकगुणनिरूपणावसर एवोदाहरणानि दर्शितानि।

नीच के प्रति दया और ऊँचे (व्यक्ति) के प्रतिस्पर्धा जैसे (हनुमन्नाटक १२.२ में)–

ये तुच्छ छोटे-छोटे वानर भय छोड़ दें, क्योंकि इन्द्र के ऐरावत हाथी के गण्डस्थल को फोड़ने वाले मेरे ये बाण तुम्हारे शरीर पर गिरते हुए परम लज्जित- से हो रहे हैं। अरे लक्ष्मण, तुम भी आराम करो, क्योंकि तुम मेरे क्रोध के पात्र नहीं हो। मैं मेघनाद हूँ, तनिक भ्रूविलास से समुद्र को बाँधने वाले राम को खोज रहा हूँ।।129।।

यहाँ श्लोक के पूर्वार्ध में मेघनाद की नीच वानरों के प्रति दया और उत्तरार्ध में रामविषयक स्पर्धा प्रतीत होती है। शौर्य=सत्व-सम्पन्नता। उत्साह=स्थिरता। दक्षता=कार्य करने में क्षिप्रता (जल्दीबाजी) । इनके उदाहरणों को नायक के गुण के निरूपण करने के स्थान पर में देख लेना चाहिए।

अथ विलासः–

वृषभस्येव गम्भीरा गतिर्धीरं च दर्शनम् ।
सस्मितं च वचो यत्र स विलास इतीरितः ।।२१७।।

२. विलास– जिसमें साड़ के समान गम्भीर गमन, धैर्य से देखना, मुस्कराहट युक्त वचन होता है, वह विलास कहलाता है।।२१७।।

गभीरगमनं यथा (कुमारसम्भवे ६/५०)-

तानर्घ्यानर्घ्यमादाय दूरं प्रत्युद्ययौ गिरिः ।
नमयन् सारगुरुभिः पादन्यासैर्वसुन्धराम् ।।130।।

गम्भीर गमन जैसे (कुमारसम्भव ६.५० में)-

उन पूज्य ऋषियों के लिए अर्घ्य लेकर हिमालय ने दूर तक आकर उनका स्वागत किया। उस समय उसके ठोस एवं भारयुक्त पैरों के बोझ से धरती पग-पग पर धँसने सी लगी।।130।।

धीरदृष्टिर्यथा-

ततो गभीरं विनिवर्तितेन प्रभातपङ्केरुहबन्धुरेण ।
अपश्यदक्ष्णा मधुमात्मजन्मा प्रत्याबभाषे स च दैत्यदूतम् ।।131।।

धीरदृष्टि जैसे-

तब आत्मजन्मा उस भगवान् ने विनिवारित तथा प्रभातकालीन कमल के समान विनत नेत्र से गम्भीर मधु को देखा और दैत्यदूत से फिर कहा।।131।।

सस्मितं वचो यथा (शिशुपालवधे २.७)-

द्योतितान्तस्सभैः कुन्दकुड्मलाग्रदतः स्मितैः ।
स्नपितेनाभवत् तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती ।।132।।

सस्मित वचन जैसे (शिशुपालवध २.७ में)-

कुन्दकलिकाग्र के समान दाँतों वाले उन (श्रीकृष्ण भगवान्) की वाणी सभामध्य को प्रकाशित करने वाले स्मितों से नहलायी गयी के समान शुद्ध वर्ण (स्पष्ट अक्षर-समुदायवाली) अथवा-स्नान करने से अति शुभ्र (रंगवाली) हुई।।132।।

अथ माधुर्यम्-

तन्माधुर्यं यत्र चेष्टादृष्ट्यादेः स्पृहणीयता ।

३. माधुर्य- जहाँ चेष्टा और दृष्टि इत्यादि में कामनाशून्यता (लापरवाही) होती है, वह माधुर्य कहलाता है।।२१८पू.।।

यथा (कुमारसम्भवे ४.२३)-

ऋजुतां नयतः स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिषण्णधन्वनः ।
मधुना सह सस्मितां कथां नयनोपान्तविलोकितं च तत् ।।133।।

जैसे (कुमारसम्भव के ४.२३ में)-

तुम धनुष को गोद में रखकर बाणों को सीधा करते हुए वसन्त से वार्तालाप के समय भी बीच-बीच में जो तिरछी निगाहों से मुझे देख लिया करते थे, वह दृश्य मैं किसी प्रकार से भुला नहीं पा रही हूँ।।133।।

धैर्यगाम्भीर्ये तु नायकवर्णनावसर एवोक्ते ।

४. धैर्य और **५. गम्भीरता** का उदाहरण नायक के गुण निरूपण के अवसर पर देख लेना चाहिए।

अथ ललितम्

शृङ्गारप्रचुरा चेष्टा यत्र तल्ललितं भवेत् ।।२१८।।

६. लालित्य– जिसमें शृङ्गार की अधिकता वाली चेष्टा होती है, वह लालित्य है।।२१८उ.।।

यथा (हनुमन्नाटके १.१९)–

कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि
स्मरस्मेरं गण्डोड्डमरपुलकं वक्त्रकमलम् ।
मुहुः पश्यञ्शृण्वम् रजनिचरसेनाकलकलं
जटाजूटग्रन्थिं द्रढयति रघूणां परिवृढः ।।134।।

जैसे (हनुमन्नाटक १.१९ में)–

रंगभूमि में एक तरफ अनमनी सी बैठी जानकी के हस्तिदन्तवत्स्वच्छ कपोलगण्डस्थल में अपने स्मरविकसित एवं पुलक-पूर्ण मुख-कमल के प्रतिबिम्ब को बार-बार देखते हुए तथा उस ओर राक्षसों की कल-कल ध्वनि सुनते हुए रघुवंश श्रेष्ठ राम अपने जटाजूट की गाँठ ठीक करने लगे-धनुष आरोपण के लिए उद्यत हुए।।134।।

औदार्यतेजसोरपि नायकप्रसङ्ग एव लक्षणोदाहरणे प्रोक्ते ।

७. औदार्य और **८. तेज** का लक्षण और उदाहरण नायक निरूपण के प्रसङ्ग कहा जा चुका है।

अत्र गाम्भीर्यधैर्ये द्वे चित्तजे गात्रजाः परे ।
एके साधारणानेतान्मेमिरे चित्तगात्रयोः ।।२१९।।

यहाँ गाम्भीर्य और धैर्य ये दोनों चित्तज भाव हैं। अन्य (कुछ आचार्य) इसको गात्रज-भाव तथा कुछ लोग इनको चित्त और गात्र दोनों से सम्बन्धित मानते हैं।।२१९।।

अथ वागारम्भाः–

आलापश्च विलापश्च संल्लापश्च प्रलापकः ।
अनुलापापलापौ च सन्देशश्चातिदेशकः ।।२२०।।
निर्देशश्चोपदेशश्चापदेशो व्यपदेशकः ।
एवं द्वादशधा प्रोक्ता वागारम्भा विचक्षणैः ।।२२१।।

३. वाग्ज अनुभाव– १. आलाप, २. विलाप, ३. संल्लाप, ४. प्रलाप, ५. अनुलाप, ६. अपलाप, ७. सन्देश, ८. अतिदेश, ९. निर्देश, १०. उपदेश, ११. अपदेश तथा १२. व्यपदेश— ये बारह प्रकार के वाग्ज अनुभाव आचार्यों द्वारा कहे गये हैं॥२२०-२२१॥

तत्रालापः–

चाटुप्रायोक्तिरालापः

१. आलाप– चाटुकारिता से पूर्ण कथन आलाप कहलाता है।

यथा ममैव–

कस्ते वाक्यामृतं त्यक्त्वा शृणोत्यन्यगिरं बुधः ।
सहकारफलं त्यक्त्वा निम्बं चुम्बति किं शुकः ॥135॥

जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

कौन बुद्धिमान् तुम्हारे वचनामृत को छोड़कर अन्य बात को सुनता है। क्या आम के फल को छोड़कर शुक नीम (नीबकौड़ी) को चुँगता (खाता है), कभी नहीं ॥135॥

यथा वा–

धत्से धातुर्मधुप! कमले सौख्यमर्धासिकायां
मुग्धाक्षीणां वहसि मृदुना कुन्तलेनोपमानम् ।
चापे किञ्च व्रजसि गुणतां शम्बरारेः किमन्यैः
पूजापुष्पं भवति भवतो भुक्तशेषः सुराणाम् ॥136॥

अथवा जैसे–

हे भ्रमर! कमल में जो तुम सुख (आनन्द) को धारण करते हो इसीलिए मुग्धनेत्रों वाली (रमणी) के होठों पर कोमल केशों के उपमान (तुलनीय वस्तु) को धारण करते हो। और क्या? कामदेव के धनुष में कुछ विशेष महत्त्व को प्राप्त करते हो, अधिक क्या कहना! देवताओं के पूजा का पुष्प तुम्हारे रसपान से बचा हुआ (जूठा) होता है॥136॥

अथ विलापः–

विलापो दुःखजं वचः।

२. विलाप– कष्ट में उत्पन्न कथन विलाप कहलाता है॥२२२पू.॥

यथा (हनुमन्नाटके १४/११)–

आर्यामरण्ये विजने विमोक्तुं
श्रोतुं च तस्याः परिदेवितानि ।
सुखेन लङ्कासमरे मृतं मा-

मजीवयन्मारुतिरात्तवैरः ।।137।।

जैसे हनुमन्नाटक १४.९१ में)-

(लक्ष्मण कहते हैं-) पूज्या (सीता) को निर्जन जङ्गल में छोड़ने के लिए और उनकी रूलायी सुनने के लिए (मैं अभी जीवित हूँ) लङ्का के युद्ध में सुखपूर्वक मरे हुए मुझे जीवित करके मानो हनुमान् ने मेरे साथ दुश्मनी साधा है।।137।।

अथ संलापः-

उक्तिप्रत्युक्तिमद् वाक्यं संलाप इति कीर्तितम् ।।२२२।

३. संल्लाप – कथनोपकथन से युक्त वाक्य संल्लाप कहलाता है॥२२२उ.॥

यथा-

भिक्षां प्रदेहि ललितोत्पलनेत्रे!
पुष्पिण्यहं खलु सुरासुरवन्दनीय! ।
बाले ! तथा यदि फलं त्वयि विद्यते मे
वाक्यैरलं फलभुजीश! परोऽस्ति याहि ।।138।।

जैसे-

(नायक—) हे मनोहर कमल के समान नेत्रों वाली! मुझे भिक्षा दो। (नायिका-) हे सुरासुर द्वारा वन्दनीय! (इस समय) मैं पुष्पिणी (ऋतुमती) हूँ। (नायक-) हे! बाले यदि ऐसा है तो तुम्हारे प्रति मेरी याचना (तुम पुष्पवती हो तो फल के लिए मेरी कामना है)। (नायिका—) हे फल (भोगने की कामना करने) के स्वामी! अधिक कहने से क्या लाभ! (फल का उपभोग करने वाला) दूसरा है। अतः तुम (यहाँ से) जाओ।।138।।

अथ प्रलापः-

व्यर्थालापः प्रलापः स्यात् ।

४. प्रलाप- व्यर्थ (निरर्थक) कथन प्रलाप कहलाता है।

यथा-

मुखं तु चन्द्रप्रतिमं तिमं तिमं
स्तनौ च पीनौ कठिनौ ठिनौ ठिनौ ।
कटिर्विशाला रभसा भसा भसा
अहो विचित्रं तरुणी रुणी रुणी ।।139।।

जैसे-

मुख चन्द्रमा के समान है, दोनों स्तन हृष्टपुष्ट तथा कठोर हैं और कमर विशाल और प्रचण्ड है, अहा! यह विचित्र युवती है।।139।।

विमर्श– यहाँ 'तिमं तिमं' 'ठिनौ-ठिनौ' और 'भसा भसा' का कथन निरर्थक हुआ है अत: प्रलाप है।

अथानुलापः–

अनुलापो मुहुर्वचः।

५. अनुलाप– बार-बार कहना अनुलाप कहलाता है॥२२३पू.॥

यथा–

तमस्तमो नहि नहि मेचका कचाः
शशी शशी नहि नहि दृक्सुखं मुखम् ।
लते लते नहि नहि सुन्दरौ करौ
नभो नभो नहि नहि चारु मध्यमम् ।।140।।

जैसे–

यह अन्धकार है, अन्धकार है, नहीं-नहीं ये तो घुँघराले बाल हैं। यह चन्द्रमा है, चन्द्रमा है, नहीं-नहीं यह तो मुख है। ये लताएँ हैं, ये लताएँ है, नहीं नहीं ये तो दोनों सुन्दर भुजाएँ है। यह आकाश है, आकाश है, नहीं-नहीं यह तो कमर है।।140।।

विमर्श– यहाँ 'तमः-तमः' इत्यादि का दो-दो बार कथन अनुलाप है।

अथापलापः–

अपलापस्तु पूर्वोक्तस्यान्यथायोजनं भवेत् ।।२२३।।

६. अपलाप– पूर्वोक्त कथन का दूसरी बात से जोड़ना (अन्यथा- योजन) अपलाप होता है॥२२३उ.॥

यथा–

त्वं रुक्मिणी त्वं खलु सत्यभामा
किमत्र गोत्रस्खलनं ममेति ।
प्रसादयन् व्याजपदेन राधां
पुनातु देवः पुरुषोत्तमो वः ।।141।।

जैसे–

तुम रुक्मिणी हो, अरे नहीं। तुम तो सत्यभामा हो! अरे यह क्या मेरे गोत्र (नाम लेने) में स्खलन (भूल) हो गया है। इस प्रकार व्याजपद से (बहाना बना कर) राधा को प्रसन्न करते हुए देव पुरुषोतम (श्री कृष्ण) तुम्हारी रक्षा करें।।141।।

अत्र नायिकावाचकयोः रुक्मिणीसत्यभामापदयोः पूर्वोक्तयोः सुवर्णवत्त्वसत्यकोपत्वलक्षणेनार्थेन योजनादपलापः।

यहाँ पूर्वोक्त नायिका-वाचक रुक्मिणी और सत्यभामा इन दोनों पदों के पूर्वोक्त सुवर्णता और सत्यकोपता लक्षण वाले अर्थ से जोड़ने के कारण अपलाप है।

अथ सन्देशः

सन्देशस्तु प्रोषितस्य स्ववार्ताप्रेषणं भवेत् ।

७. सन्देश- परदेश गये (प्रियतम) द्वारा अपना समाचार भेजना सन्देश कहलाता है।।२२४पू.।।

यथा (मेघदूते २/४९)-

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद् विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने! मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे हासिनस्ते ह्यभोगा-
दिष्टे वस्तून्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ।।142।।

जैसे (मेघदूत २.४ में)-

(यक्ष मेघ के द्वारा अपनी प्रियतमा को सन्देश भेजते हुए कहता है)- हे काली काली आखों वाली! पहचान के इस चिह्न के देने से मुझे सकुशल जान कर लोकापवाद के कारण मेरे ऊपर अविश्वास मत करना। (कुछ लोगों ने) प्रेम को विरह में किसी कारण से नष्ट होने वाला कहा है। किन्तु (विरह का) वह स्नेह, उपभोग न होने से अभिलषित पदार्थ के विषय में बढ़े हुए आस्वाद से युक्त होते हुए प्रेमपुञ्ज के रूप में परिणत हो जाता है।।142।।

अथातिदेशः-

सोऽतिदेशा मदुक्तानि तदुक्तानीति तद्वचः ।।२२४।।

८. अतिदेश मेरा कहना, तुम्हारा कहना इत्यादि से युक्त कथन अतिदेश कहलाता है।।२२४उ.।।

यथा-

तनया तव याचते हरिर्जगदात्मा पुरुषोत्तमः स्वयम् ।
गिरिगह्वरशब्दसन्निभां गिरमस्माकमवेहि वारिधे ।।143।।

जैसे-

जगत् की आत्मा स्वरूप भगवान् पुरुषोत्तम तुम्हारी पुत्री (लक्ष्मी) को (पत्नी रूप में) माँग रहे हैं। हे समुद्र! पर्वत की कन्दरा में कही गयी ध्वनि के समान (गम्भीर) मेरी वाणी पर ध्यान दो।।143।।

अथ निर्देशः-

निर्देशस्तु भवेत् सोऽयमहमित्यादिभाषणम् ।

९. निर्देश- 'वह यह मैं' इत्यादि कथन निर्देश कहलाता है।।२२५पू.।।

यथा (दशरूपके उद्धृतम् १०२)-

एते वयममी दारा कन्येयं कुलजीवितम् ।
ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु ।।144।।

जैसे (दशरूपक में उद्घृत १०२)-

सज्जनों की आराधना यह है, जैसे ये हम हैं ये स्त्रियाँ हैं, कुल का जीवन यह लड़की है, इनमें से जिससे तुम्हारा प्रयोजन (सिद्ध) हो बतलाओ। बाह्य वस्तुओं में हमारी आस्था नहीं है।।144।।

अथोपदेशः-

यत्र शिक्षार्थवचनमुपदेशः स उच्यते ।।२२५।।

१०. उपदेश- शिक्षा देने के लिए कहा गया वचन उपदेश कहलाता है।।२२५उ.।।

यथा-

अनुभवत दत्त वित्तं मान्यं मानयत सज्जनं भजत ।
अतिपरुषपवनविलुलितदीपशिखाचञ्चला लक्ष्मीः ।।145।।

जैसे-

अनुभवशील लोगों को धन दो, आदरणीय लोगों का सम्मान करो, सज्जन लोगों की सेवा करो (क्योंकि) अत्यधिक तीव्र वायु के झोकों से हिलती हुई दीपशिखा के समान लक्ष्मी चञ्चल होती हैं।।145।।

अथापदेशः-

अन्यार्थकथनं यत्र सोऽपदेश इतीरितः ।

११. अपदेश- अन्यार्थ कथन (अन्योक्ति) अपदेश कहलाता है।

यथा (सुभाषितावल्याम् १३.५६)-

कोशद्वन्द्वमियं दधाति नलिनी कादम्बचञ्चुक्षतं
धत्ते चूतलता नवं किसलयं पुँस्कोकिलास्वादितम् ।
इत्याकर्ण्य मिथः सखीजनवचः सा दीर्घिकायास्तटे
चेलान्तेन सिरोदधे स्तनतटं बिम्बाधरं पाणिना ।।146।।

जैसे (सुभाषितावली १३.५६ में)-

यह कमलिनी हंसों के चोचों से क्षत (आस्वादित) दो कलियों को धारण किये हुए है, यह आम्रलता (आम की आश्रित लता) पुँस्कोकिलों द्वारा स्वाद ले लिये जाने वाले नये पत्ते को धारण कर रही है- इस प्रकार की सखियों की परस्पर बात को सुन कर जलाशय के किनारे पर उस नायिका ने वस्त्र के छोर से स्तनतट (चुचुक) को तथा हाथों से बिम्ब के समान लाल होठों को छिपा लिया।।146।।

विमर्श– यहाँ कमलिनी की दो कलियों द्वारा नायिका के दोनों चुचुकों, नव-पल्लव द्वारा नायिका के लाल होठों का, हंसों के चोचों द्वारा आस्वादित तथा पुंस्कोकिलों द्वारा आस्वादित से नायक द्वारा उपभुक्त-इस अन्यार्थ का कथन होने अपदेश है।

अथ व्यपदेशः–

व्याजेनात्माभिलाषोक्तिर्यत्रायं व्यपदेशकः ।।२२६।।

१२. व्यपदेश– जहाँ बहाने (व्याजोक्ति) द्वारा अपनी अभिलाषा का कथन होता है, वह व्यपदेश कहलाता है।।२२६उ.।।

यथा (अभिज्ञानशाकुन्तले ५/१)–

अहिणवमहुलोलुवो तुमं तह परिचुम्बिअ चूदमंजरि ।
कमलसवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर! विम्हरिदो सि णं कहं ।।147।।
(अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर! विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।।)

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल ५.१ में–

(हे) भौंरे, तुम नये (पुष्प) रस के प्रति लालसा युक्त होकर उस प्रकार आम्र-मञ्जरी को चूम कर (अब) केवल कमल के आवास से तृप्त होकर इसे कैसे भूल गये?।।147।।

अथ बुद्ध्यारम्भाः–

बुध्यारम्भास्तथा प्रोक्ता रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ।

४. बुद्धिज अनुभाव– १. रीति २. वृत्ति और ३. प्रवृत्ति ये बुद्धिज अनुभाव कहलाते हैं।।२२७पू.।।

तत्र रीतिः–

रीतिः स्यात् पदविन्यासभङ्गी सा तु त्रिधा मता ।।२२७।।
कोमला कठिना मिश्रा

१. रीति– पदविन्यास (पदसंघटना) की शैली रीति कहलाती है। वह रीति तीन प्रकार की कही गयी है- **(अ)** कोमला **(आ)** कठिना और **(इ)** मिश्रा।

चेति स्यात् तत्र कोमला ।
द्वितीयतुर्यवर्णैर्या स्वल्पैर्वर्गेषु निर्मिता ।।२२८।।
अल्पप्राणाक्षरप्राया दशप्राणसमन्विता ।
समासरहिता स्वल्पैः समासैर्वा विभूषिता ।।२२९।।
विदर्भजनहृद्यत्वात् सा वैदर्भीति कथ्यते ।

(अ) कोमला रीति– कोमला रीति वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ (महाप्राण) स्पर्श

वर्णों की स्वल्पता वाली, अल्पप्राण (अर्थात्) वर्गों के प्रथम और तृतीय (स्पर्श) वाले अक्षरों की अधिकता से युक्त, दश प्राणों से समन्वित और समास-रहित या छोटे समास वाले पदों से विभूषित होती है। यह रीति विदर्भदेश के लोगों के लिए हृदयग्राही होने के कारण वैदर्भी रीति भी कहलाती है॥२२७उ.-२३०पू.॥

महाप्राणवर्णाल्पत्वमल्पप्राणाक्षरप्रायत्वं च यथा ममैव (कुवलयावल्याम् २.४)–

उत्फुल्लगण्डयुगमुद्गतमन्दहास-
मुद्वेलरागमुररीकृतकामतन्त्रम् ।
हस्तेन हस्तमवलम्ब्य कदानु सेवे
संल्लापरूपममृतं सरसीरुहाक्ष्याः ॥148॥

महाप्राण वर्णों की अल्पता तथा अल्पप्राण वर्णों की अधिकता वाली कोमला रीति जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

कमल के समान नेत्रों वाली (इस नायिका) के पुलकित दोनों कपोलों वाले, निकलते हुए मन्द हास से युक्त, उमड़े हुए अनुराग वाले, हृदय में स्वीकृत (उत्पन्न) काम-क्रिया वाले संल्लाप रूपी अमृत को अपने हाथों से उसके हाथ को सहारा देकर कब सुनूँगा॥148॥

समासराहित्यं यथा– (रघुवंशे १/५४)–

अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान् विश्रामयेति सः ।
तामारोपयत् पत्नीं रथादवततार च ॥149॥

समासरहित कोमला रीति जैसे (रघुवंश १.५४ में)–

महाराज रघु 'घोडों की थकावट दूर करो' सारथी को ऐसी आज्ञा देकर उस सुदक्षिणा को रथ से उतारा और स्वयं उतरे ॥149॥

दशप्राणास्तु–

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता ॥२३०॥
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः ।
एते वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दश गुणाः स्मृताः ॥२३१॥

दश प्राण– वैदर्भी रीति के प्राणस्वरूप ये दश गुण है— १. श्लेष, २. प्रसाद, ३. समता, ४. माधुर्य, ५. सुकुमारता, ६. अर्थव्यक्ति, ७. उदारता, ८. ओज, ९. कान्ति और १०. समाधि॥२३०उ.-२३१॥

तत्र श्लेषः–

केवलाल्पप्राणवर्णपदसन्दर्भलक्षणम् ।
शैथिल्यं यत्र न स्पष्टं स श्लेषः समुदाहृतः ॥२३२॥

१. श्लेष– वह पदसंघटन श्लेष कहलाता है जिसमें अल्पप्राण वर्णों की प्रचुरता होती है तथा (बन्ध की) शिथिलता स्पष्ट नहीं दिखलायी पड़ती॥२३२॥

यथा ममैव 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यादौ श्लिष्टवर्णमिश्रित-बन्धनत्वाच्छ्लेषः।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही– 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यादि में श्लिष्ट वर्ण से मिश्रित बन्ध होने के कारण श्लेष है।

अथ प्रसादः–

प्रसिद्धार्थपदत्वं यत् स प्रसादो निगद्यते ।

२. प्रसाद– प्रसिद्ध अर्थ वाले पदों का प्रयोग प्रसाद कहलाता है॥२३३पू.॥

यथा 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यत्र पदानामक्लशेनैवार्थबोधनसामर्थ्यात् प्रसादः।

जैसे– 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इस उदाहरण में पदों में सरलता से अर्थबोध कराने की सामर्थ्य के कारण प्रसाद गुण है।

अथ समता–

वर्णवैषम्यराहित्यं समता पदगुम्फनम् ॥२३३॥
बन्धो मृदुः स्फुटो मिश्रः इति त्रेधा स भिद्यते ।

३. समता– विषम वर्णों से रहित पदों का गुम्फन (प्रयोग, बन्ध) समता कहलाता है। मृदु, स्फुट और मिश्र भेद से वह बन्ध तीन प्रकार का होता है॥२३३उ.-२३४पू.॥

तत्र मृदुबन्धस्य समता यथा–

चरणकमलकान्त्या देहलीमर्चयन्ती
कनकमयकपाटं पाणिना कम्पयन्ती ।
कुवलयमयमक्ष्णा तोरणं पूरयन्ती
वरतनुरियमास्ते मन्दिरस्येव लक्ष्मी ॥150॥

अत्र मृदुवर्णप्रायबन्धस्य निर्व्यूढत्वान्मृदुबन्धसमता ।

मृदुबन्ध की समता जैसे–

(अपने) चरण रूपी कमल की कान्ति से ड्योढ़ी (दरवाजे के चौखट की अर्चना करती हुई, हाथों से सुवर्ण से निर्मित कपाट को कँपाती (हिलाती) हुई तथा कमल के समान नेत्रों से तोरण के स्थान को पूरा करती हुई यह अतिसुन्दर शरीर वाली (रमणी) मन्दिर (घर) की लक्ष्मी (शोभा) के समान है॥150॥

यहाँ मृदु वर्णों की अधिकता वाले बन्ध की पूर्णता के कारण मृदुबन्ध समता है।

स्फुटबन्धसमता यथा (शिशुपालवधे ६.२०)–

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।

मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृतानिभृताक्षरमुज्जगे ।।151।।

अत्र स्फुटवर्णप्रायबन्धस्य निर्व्यूढत्वात् समता ।

मिश्रबन्धसमता यथा 'उत्फुलमगण्डयुगमुद्गतमन्दहासम्' इत्यत्र मिश्रीभूत-मृदुस्फुटवर्णबन्धस्य निर्व्यूढत्वान्मिश्रबन्धसमता।

स्फुटबन्ध की समता जैसे(शिशुपालवध ६.२० में)-

वसन्त के द्वारा विकसित माधवी पुष्पों की मकरन्द-समृद्धि से सम्बधित प्रतिभा वाली (अत एव) मतवाली ध्वनि से भरपूर तथा मनोहर भ्रमरियों के द्वारा मृदु अक्षरों वाला गान (गुञ्जार) ऊँची ध्वनि में गाया गया ।।151।।

यहाँ स्फुटवर्णों की अधिकता वाले बन्ध की पूर्णता के कारण समता है।

मिश्रबन्धसमता जैसे- 'उत्फुल्लगण्डयुगमुद्गतमन्दहासम्' यहाँ मिश्रीतभूत मृदु स्फुट वर्ण की संघटना की पूर्णता के कारण मिश्रबन्ध समता है।

अथ माधुर्यम्-

तन्माधुर्यं भवेद्यत्र शब्देऽर्थे च स्फुटो रसः ।।२३४।।

४. माधुर्य- शब्द और अर्थ में जहाँ रस स्पष्ट होता है, वह माधुर्य कहलाता है।।२३४उ.।।

यथा 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यत्र शब्दार्थयोः शृङ्गाररसपरिवाहित्येन माधुर्यम्।

जैसे- 'उत्फुल्लगण्डयुगम् ' यहाँ शब्द और अर्थ दोनों में शृङ्गार रस के झलकने के कारण माधुर्य है।

अथ सुकुमारत्वम्-

यदनिष्ठुरवर्णत्वं सौकुमार्यं तदुच्यते ।

५. सुकुमारता- अनिष्ठुर वर्णों (कोमलवर्णों) का प्रयोग सौकुमार्य कहलाता है।।२३५पू.।।

यथा 'उत्फुल्लगण्डयुगमुद्गतमन्दहासम्' इत्यत्र संयुक्ताक्षरसद्भावेऽप्य-निष्ठुरत्वात् सौकुमार्यम् ।

जैसे- 'उत्फुल्लगण्डयुगमुद्गतमन्दहासम्' यहाँ संयुक्ताक्षर होने पर भी निष्ठुर वर्णों के अभाव के कारण सुकुमारता है।

अथार्थव्यक्तिः-

श्रूयमाणस्य वाक्यस्य बिना शब्दान्तरस्पृहाम् ।।२३५।।
अर्थावगमकत्वं यदर्थव्यक्तिरियं मता ।

६. अर्थव्यक्ति- सुने हुए वाक्य का दूसरे शब्दों की इच्छा के बिना ही अर्थ का

अवबोध हो जाना अर्थव्यक्ति कहलाता है।।२३५उ.-२३६पू.।।

यथा– 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यत्र सर्वेषां पदानामध्याहार्य-पदनिराकाङ्क्ष-तयार्थव्यक्तिः।

जैसे– 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' यहाँ सभी पदों को अध्याहार योग्य पदों की आकांक्षा के बिना अर्थव्यक्ति है।

अथोदारत्वम्–

उक्ते वाक्ये गुणोत्कर्षभानमुदारता ।।२३६।।

७. उदारता– कहे गये वाक्य में गुणोत्कर्ष का प्रकट होना उदारता कहलाता है।।२३६उ.।।

यथा 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यत्रान्योन्यानुरागोत्कर्षप्रतिभानादुदारत्वम् ।

जैसे– 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' यहाँ (नायिका-नायक के) परस्पर अनुराग के उत्कर्ष के प्रकट होने से उदारता है।

अथौजः–

समासबहुलत्वं यत् तदोजः इति गीयते ।

८. ओज– समास की बहुलता होना ओज कहलाता है।।२३७पू.।।

यथा 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यत्र यथोचितसमासबाहुल्यादोजः ।

जैसे– उत्फुल्लगण्डयुगम्' यहाँ यथोचित समास की बहुलता के कारण ओज है।

अथ कान्तिः–

लोकस्थितिमनुलङ्घ्य हृद्यार्थप्रतिपादनम् ।।२३७।।
कान्तिः स्याद् द्विविधा ख्याता वार्त्तायां वर्णनासु च ।
वार्त्ता नाम कुशलप्रश्नपूर्विका सङ्कथा ।

९. कान्ति– लोकस्थिति का उल्लङ्घन न करके हृदयग्राही अर्थ का प्रतिपादन करना कान्ति कहलाता है। यह दो प्रकार की होती है— **१.** वार्ता में तथा **२.** वर्णन में ।।२३७उ.-२३८पू.।।

वार्त्ता का तात्पर्य है— कुशल-प्रश्न पूर्वक कथन।

तत्र यथा–

परिधौतभवत्पादाम्बुना नवचन्द्रातपशीतलेन मे ।
अपि सन्तप्तमर्मकृन्तनः कृतनिर्वाण इवौर्वपावकः ।।152।।

कुशल–प्रश्नपूर्वक जैसे–

नूतन चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल, आप के पैरों को धोये हुए जल से निरन्तर

मेरे अन्तस्थल को पीड़ित करने वाला पाप उसी प्रकार शान्त (विनष्ट) हो गया है जैसे जल से अग्नि शान्त हो जाता है।।152।।

अत्र ब्राह्मणपादोदकस्य सन्तापशमनरूपा लौकिकीं स्थितिमनुलङ्घ्यैव समुद्रेण मुनीनां पुरतः सङ्कथनात् कान्तिः।

यहाँ ब्राह्मण के पादोदक (पैर धोने के जल) का सन्ताप-शान्ति रूप लौकिक स्थिति का उलङ्घन न करके ही समुद्र का मुनियों के सामने कथन होने से कान्ति है।

वर्णनायां यथा ममैव-

उत्तुङ्गौ स्तनकलशौ रम्भास्तम्भोपमानमूरुयुगम् ।
तरले दृशौ च तस्या सृजता धात्रा किमाहितं सुकृतम् ।।153।।

अत्र विशिष्टवस्तुनिर्माणमपुण्यकृतां न सम्भवतीति लोकस्थित्यनुरोधेनैव वर्णनात् कान्तिः।

वर्णन में जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

उस (नायिका) के ऊपर उभड़े हुए दोनों स्तन रूपी कलश हैं, कदली के खम्भे के समान दोनों जङ्घाएँ हैं और स्नेह युक्त दोनों आँखे हैं- इस प्रकार उसको बनाने वाले ब्रह्मा के द्वारा कौन सा पुण्य सन्निविष्ट नहीं कर दिया गया है।।153।।

यहाँ विशिष्ट वस्तु का निर्माण अपुण्यकार्य से सम्भव नहीं है इस प्रकार लोकस्थिति का उल्लङ्न होने के वर्णन के कारण कान्ति है।

अथ समाधिः-

समाधिः सोऽन्यधर्माणां यदन्यत्राधिरोपणम् ।।२३८।।

१०. समाधि- अन्य गुणों को अन्यत्र आरोपित करना समाधि कहलाता है। २३८उ.।।

यथा 'उत्फुल्लगण्डयुगम्' इत्यत्रोत्फुल्लोद्गतोद्वेलत्वरूपाणां पुष्पप्राणिसमुद्रधर्माणां गण्डस्थलमन्दहासरागेषु समारोपितत्वात् समाधिः।

जैसे- 'उत्फुल्लगण्डयुगम् ' यहाँ, उत्फुल्ल, उद्गत और उद्वेलता रूपी क्रमशः पुष्प, प्राणि और समुद्र के गुणों का कपोल, मन्दहास और अनुराग में समारोपण करने के कारण समाधि है।

अथ कठिना-

अतिदीर्घसमासयुता बहुलैर्वर्णैर्युता महाप्राणैः ।
कठिना सा गौडीयेत्युक्ता तद्देशबुधमनोज्ञत्वात् ।।२३९।।

११. कठिना रीति- अत्यधिक लम्बे समास (वाले पदों) से युक्त तथा महाप्राण

वर्णों की अधिकता वाली पदसङ्घटना कठिना रीति होती है। यह उस (गौड देश) के लोगों के मनोनुकूल होने के कारण गौड़ीया (या गौड़ी) रीति भी कहलाती है।।२३९।।

यथा–

गण्डग्रावगरिष्ठगैरिकगिरिक्रीडत्सुधान्धोवधू-
बाधालम्पटबाहुसम्पदुदयद्दुर्वारगर्वाशयम् ।
मर्त्यामर्त्यविरावणं बलगृहीतैरावणं रावणं
बाणैर्दाशरथी रथी रथगतं विव्याध दिव्यायुधः ।।154।।

अत्र दीर्घसमासत्वं महाप्राणाक्षरप्रायत्वं च स्पष्टम्।

जैसे–

बड़ी-बड़ी चट्टानों वाले घने गेरु के पर्वत पर क्रीड़ा करती हुई और सुधारस (देवताओं का एक प्रकार का पेय) से मत्त (देवताओं की) रमणियों को उत्पीड़ित करने की अभिलाषी भुजाओं की प्रसन्नता के अभ्युदय से दुर्निवार्य गौरव की अधिकता वाले, मनुष्य और देवताओं को (अपने अत्याचार) से रूलाने वाले, (उड़ने के भय से अपने दुपट्टे को) बलपूर्वक पकड़े हुए तथा रथ पर सवार रावण को दिव्यास्त्र वाले रथी (रथ पर सवार) राम ने (अपने) बाणों से मार डाला।।154।।

अत्र दीर्घसमासत्वं महाप्राणाक्षरप्रायत्वं च स्पष्टम्।

यहाँ लम्बे समास और महाप्राणवर्णों की अधिकता स्पष्ट है।

अथ मिश्रा–

यत्रोभयगुणग्रामसन्निवेशस्तुलाधृतः ।
सा मिश्रा सैव पाञ्चाली तद्देशजप्रिया ।।२४०।।

३. मिश्रा रीति– जहाँ (कोमला तथा कठिना) दोनों रीतियों के गुणों का बराबर-बराबर (तुलाधृत) सन्निवेश होता है, वह मिश्रा रीति कहलाती है।।२४०।।,

यथा (रत्नावल्याम् २/१३)–

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-
स्तनोर्मध्यस्यान्तःपरिमिलनमप्राप्य हरितम् ।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति बिसिनीपत्रशयनम् ।।155।।

जैसे (रत्नावली २.१३ में)–

मोटे-मोटे स्तनों और जाँघों के सम्पर्क से दोनों ओर से म्लान (मुरझाई हुई) क्षीण मध्य (कटिभाग) के सम्पर्क को न पाकर बीच में हरी और शिथिल बाहुलताओं के इधर-उधर प्रक्षेप

की चञ्चलता से अस्त-व्यस्त यह कमलिनीदल की शय्या, कृशाङ्गी (दुर्बल शरीर वाली) सुन्दरी के सन्ताप को प्रकट करती है।।155।।

अत्राल्पसमासत्वदीर्घसमासत्वरूपयोः प्रसादस्फुटबन्धत्वरूपयोरनिष्ठुर निष्ठुराक्षर-प्रायत्वरूपयोः पृथक्पदत्वग्रन्थिलत्वयोश्चोभयरीतिधर्मयोस्तुलाधृतवत् सन्निवेशान्मिश्रेयं रीतिः।

यहाँ समासरहितता और दीर्घसमासता रूपी, प्रसाद और स्पष्ट बन्धता रूपी अनिष्ठुर (कोमल) और निष्ठुर अक्षरों का आधिक्य तथा पृथक्पदता और ग्रन्थिलता (जटिलता) रूप वाली (कोमला तथा कठिना) दोनों रीतियों के गुणों का बराबर-बराबर सन्निवेश (मिश्रण) होने के कारण यह मिश्रा रीति है।

आन्ध्री लाटी च सौराष्ट्रीत्यादयो मिश्ररीतयः ।
सन्ति तद्देशविद्वत्प्रियमिश्रभेदतः ।।२४१।।
त एव पदसङ्घातास्ता एवार्थविभूतयः ।
तथापि नव्यं भवति काव्यं ग्रथनकौशलात् ।।२४२।।
तासां ग्रन्थगडुत्वेन लक्षणं नोच्यते मया ।
भोजादिग्रन्थबन्धेषु तदाकाङ्क्षिभिरीक्ष्यताम् ।।२४३।।

तत्तत् देश के विद्वानों के लिए प्रिय तथा देश-भेद के कारण पृथक्- पृथक् आन्ध्री, लाटी और सौराष्ट्री इत्यादि रीतियाँ मिश्र रीतियाँ हैं।।२४१।।

वे ही पद के सङ्घटन तथा अर्थ की विभूतियाँ है तथापि काव्य ग्रथन की निपुणता के कारण नूतन हो जाती हैं। ग्रन्थ विस्तार न हो— इस कारण उनका लक्षण मेरे (शिङ्गभूपाल के) द्वारा नहीं किया गया है। उसके जानने की इच्छा रखने वालों को भोजराज इत्यादि लोगो के लक्षण-ग्रन्थों में देख लेना चाहिए।।२४१-२४३।।

अथ वृत्तयः-

भारती सात्त्वती च कैशिक्यारभटीति च ।
चतस्रो वृत्तयस्तासामुत्पत्तिर्वक्ष्यते स्फुटम् ।।२४४।।

२. वृत्तियाँ- **१.** भारती, **२.** सात्त्वती, **३.** कैशिकी और **४.** आरभटी— ये चार वृत्तियाँ होती है। इनकी उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट रूप से कहा जा रहा है।।२४४।।

जगत्येकार्णवे जाते भगवानव्ययः पुमान् ।
भोगिभोगमधिष्ठाय योगनिद्रापरोऽभवत् ।।२४५।।

वृत्तियों की उत्पत्ति-कथा- (प्रलय काल में) संसार के समुद्र में समाहित हो जाने पर अविनाशी भगवान् पुरुष योगनिद्रा में संलग्न (समाधिष्ठ) हो गये।।२४५।।

तदा वीर्यमदोन्मत्तौ दैत्येन्द्रौ मधुकैटभौ ।

तरसा देवदेवेशमागतौ रणकाङ्क्षिणौ ।।२४६।।

उसी समय बल और मद से उन्मत्त हुए तथा युद्ध की अभिलाषा करने वाले दैत्येन्द्र मधु और कैटभ देवदेवेश (भगवान्) के पास आये।।२४६।।

विविधैः परुषैर्वाक्यैरधिक्षेपविधायिनौ ।
मुष्टिजानुप्रहारैश्च योधयामासतुर्हरिम् ।।२४७।।

दोषारोपण करने वाले अपशब्दों का प्रयोग करने वाले (राक्षसों) ने अनेक कठोर शब्दों से तथा मुष्टिका और पैरों के द्वारा प्रहार से भगवान् से युद्ध की इच्छा किया।।२४७।।

तन्नाभिकमलोत्पन्नः प्रजापतिरभाषत् ।
किमेतद्भारती वृत्तिरधुनापि प्रवर्तते ।।२४८।।

तब उनके नाभिकमल से उत्पन्न प्रजापति (ब्रह्मा) ने कहा— अब भी यह भारती वृत्ति चल रही है।।२४८।।

तदिमौ नयदुर्धर्षौ निधनं त्वरया विभो!
इति तस्य वचः श्रुत्वा निजगाद जनार्दनः ।।२४९।।

हे भगवन्! शीघ्रता से इन दोनों भयङ्कर राक्षसों का निधन कर दीजिए। उस (ब्रह्मा) के इस वचन को सुनकर जनार्दन (भगवान्) ने कहा।।२४९।।

इदं काव्यक्रियाहेतोर्भारती निर्मिता ध्रुवम् ।
भाषणाद् वाक्यबहुलाद् भारतीयं भविष्यति ।।२५०।।

निश्चित् रूप से यह काव्यसृजन के लिए भारती बना दी गयी है। वाक्य की बहुलता के साथ भाषण करने के कारण यह भारती (वृत्ति) होगी।।२५०।।

अधुनैव निषूद्येतामित्याभाष्य वचो हरिः ।
निर्मलैर्निर्विकारैश्च साङ्गहारैर्मनोहरैः ।।२५१।।
अङ्गैस्तौ योधयामास दैत्येन्द्रौ बलशालिनौ ।

'अब विनष्ट किये जाँय' इस वचन को कह कर निर्मल, निर्विकार तथा अङ्गों के हावभाव के कारण मनोहर अङ्गों से भगवान् ने बलशाली दोनों दैत्येन्द्रों (मधु और कैटभ) से युद्ध किया ।।२५१-२५२पू.।।

भूमिस्थानकसंय्योगैः पदक्षेपैस्तथा हरिः ।।२५२।।
भूमिस्तदाभवद् भारस्तद्वशादपि भारती ।
वलितैः शार्ङ्गिणस्तत्र दीप्तैः सम्भ्रमवर्जितैः ।।२५२।।
सत्वाधिकैर्बाहुदण्डैः सात्त्वती वृत्तिरुद्गता ।

भूमि और अवस्था के संयोग से तथा भगवान् के पादविन्यास से उस समय भूमि भारवती हो गयी। इस कारण से भी भारती हुई।।२५२उ.-२५३पू.।।

वहाँ शार्ङ्गधनुष को धारण करने वाले भगवान् के आवर्तन-रहित उत्तेजित तथा नचाएँ गये सत्त्व (गुण) की अधिकता वाली भुजाओं से सात्त्वती वृत्ति उत्पन्न हुई।।२५३उ.-२५४पू.।।

विचित्रैरङ्गहारैश्च हेलया च तदा हरिः ।।२५४।।
यत् तौ बबन्ध केशेषु, जाता सा कैशिकी ततः ।

उस समय विचित्र अङ्गों के हावभाव तथा तिरस्कार के साथ भगवान् ने उन दोनों को केशों (बालों) में बाँध दिया। उससे वह कैशिकी (वृत्ति) उत्पन्न हुई।।२५४उ.-२५५पू.।।

ससंरम्भैः सवेगैश्च चित्रचारीसमुत्थितैः ।।२५५।।
नियुद्धकरणैर्जाता चित्रैरारभटी ततः ।

तब विक्षोभ करने वाले, तीव्रगति वाले और विचित्र रूप से घटित घमासान युद्ध करने की विचित्रता से आरभटी (वृत्ति) उत्पन्न हुई।।२५५उ.-२५६पू.।।

तस्माच्चित्रैरङ्गहारैः कृतं दानवमर्दनम् ।।२५६।।

इसी कारण अङ्गों के विचित्र हावभाव से दैत्यों (मधु और कैटभ) का मर्दन किया।।२५६उ.।।

तस्मादब्जभुवा लोके नियुद्धसमयक्रमः ।
यः शास्त्रादिमोक्षेषु न्यायः परिभाषितः ।।२५७।।
नाट्यकाव्यक्रियायोगरसभावसमन्वितः ।
स एव समयो धात्रा वृत्तिरित्येव संज्ञितः ।।२५८।।

उस समय कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) के द्वारा घमासान युद्ध के क्रमानुसार शास्त्रादिमोक्ष के लिए जो सिद्धान्त परिभाषित किया गया, वह ही रसों और भावों से युक्त नाट्य-काव्य की रचना के निमित्त 'वृत्ति' नाम से अभिहित किया।।२५७-२५८।।

हरिणा तेन यद्वस्तु वल्गितैर्यादृशं कृतम् ।
तद्वदेव कृता वृत्तिर्धात्रा तस्याङ्गसम्भवा ।।२५९।।

भगवान् के द्वारा उत्तेजना से जो कार्य जिस प्रकार किया गया उसी प्रकार ही उनके अङ्ग से उत्पन्न विधाता (ब्रह्मा) द्वारा वृत्ति बनायी गयी।।२५९।।

ऋग्वेदाच्च यजुर्वेदात् सामवेदादथर्वणः ।
भारत्याद्याः क्रमाज्जाता इत्यन्ये तु प्रचक्षते ।।२६०।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से क्रमशः भारती इत्यादि (भारती, सात्वती, कैशिकी तथा अरभटी) उत्पन्न हुई-ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं।।२६०।।

तत्र भारती–

प्रयुक्तत्वेन भरतैर्भारतीति निगद्यते ।
प्रस्तावनोपयोगित्वात् साङ्गं तत्रैव लक्ष्यते ।।२६१।।

१. भारती वृत्ति– आचार्य भरत के द्वारा प्रयुक्त किये जाने के कारण (यह) भारती (वृत्ति) कहलाती है। प्रस्तावना के लिए उपयोगी होने के कारण वहीं (प्रस्तावना के विवेचन के समय तृतीय विलास में) अङ्गों-सहित उसका लक्षण दिया जाएगा।।२६१।।

अथ सात्त्वती–

सात्विकेन गुणेनापि त्यागशौर्यादिना युता ।
हर्षप्रधाना सन्त्यक्तशोकभावा च या भवेत् ।।२६२।।
सात्वती नाम सा वृत्तिः प्रोक्ता लक्षणकोविदैः ।

२. सात्त्वती वृत्ति– जो त्याग, शौर्य आदि सात्त्विक गुणों से युक्त, हर्ष की प्रधानता वाली तथा शोकभाव से रहित होती है, वह लक्षणविज्ञों द्वारा सात्त्वती नाम वाली (वृत्ति) कही गयी है।।२६२-२६३पू.।।

अङ्गान्यस्यास्तु चत्वारि संल्लापोत्थापकावपि ।।२६३।।
सङ्घात्य परिवर्त्तश्चेत्येषां लक्षणमुच्यते ।

सात्त्वती वृत्ति के अङ्ग–

इस (वृत्ति) के चार अङ्ग होते है- १. संल्लाप, २. उत्थापक, ३. सङ्घात्य और ४. परिवर्त्तक। इनका लक्षण कहा जा रहा है।।२६३उ.-२६४पू.।।

(अथ संल्लापः)–

ईर्ष्याक्रोधादिर्भावै रसैर्वीराद्भुतादिभिः ।।२६४।।
परस्परं गभीरोक्तिः संल्लाप इति शब्द्यते ।

१. संल्लाप– वीर, अद्भुत इत्यादि रसों वाला और ईर्ष्या, क्रोध इत्यादि भावों से युक्त परस्पर गम्भीरोक्ति संल्लाप कहलाता है।।२६४उ.-२६५पू.।।

यथानर्घराघवे (५.४४-४५)–

रामः–

बन्दीकृत्य जगद्विजित्वरभुजस्तम्भौघदुस्सञ्चरं
रक्षोराजमपि त्वया विदधता सन्ध्यासमाधिव्रतम् ।
प्रत्यक्षीकृतकार्त्तवीर्यचरितामुन्मुच्य रेवां समं

सर्वाभिर्महिषीभिरभिरम्बुनिधयो विश्वेऽपि विस्मापिताः ।।156।।

वाली (विहस्य)-

चिराय रात्रिञ्चरवीरचक्र-
माराङ्कवैज्ञानिकः पश्यतस्त्वाम् ।
सुधासधर्माणमिमां च वाचं
न शृण्वतस्तृप्यति मानसं मे ।।157।।

अत्र धीरोदात्तधीरोद्धतयोरामवालिनोः परस्परं युद्धचिकीर्षाभिप्राययोगादन्योन्यपराक्रमोत्कर्षवर्णनात् संल्लापः।

जैसे (अनर्घराघव ५.४४-४५ में)-

राम- (वाली से कहते हैं-) विश्वविजयी रावण को भी अपने भुजास्तम्भों में बन्दी बना कर तुमने सन्ध्यावन्दन- काल में समाधि लगाया, कार्त्तवीर्य के चरित को प्रत्यक्ष देखने वाली रेवा को छोड़ कर समुद्र की सभी स्त्री नदियाँ तथा सम्पूर्ण संसार तुम्हारे द्वारा किये गये उस सन्ध्या-समाधि के दर्शन से विस्मित हो गया ।।156।।

वाली- (हंसकर) बहुत देर तक राक्षस-मण्डली के वीर समुदाय को मारने की कला में निपुण तुम को देख कर तथा अमृतोपम तुम्हारी बातों को सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है।।157।।

यहाँ धीरोदात्त राम और धीरोद्धत वाली का परस्पर युद्ध की अभिलाषा के अभिप्राय के योग के कारण एक दूसरे के पराक्रम के उत्कर्ष का वर्णन होने से संल्लाप है।

अथोत्थापकः-

प्रेरणं यत्परस्यादौ युद्धायोत्थापकस्तु सः ।।२६५।।

२. **उत्थापक-** (युद्ध के) प्रारम्भ में युद्ध के लिए दूसरे (शत्रु) को प्रेरित करना उत्थापक कहलाता है।।२६५उ.।।

यथानर्घराघवे (४.५३)-

रामः-

नृपानप्रत्यक्षान् किमपवदसे नन्वयमहं
शिशुक्रीडाभग्नत्रिपुरहरधन्वा तव पुरः ।
अहङ्कारक्रूरार्जुनभुजवनव्रश्चनकला-
निसृष्टार्थो बाहुः कथय कतरस्ते प्रहरतु ।।158।।

अत्र रामभद्रेण प्राक्प्रहाराय जामदग्न्यः प्रेरित इत्युत्थापकः।

जैसे अनर्घराघव (४.५३ में)-

राम परशुराम से कहते हैं— जो सामने नहीं है उन नृपों की निन्दा क्यों करते हो?

बालक्रीड़ा में त्रिपुरारि के धनुष को तोड़ देने वाला मैं तेरे आगे खड़ा हूँ। आज्ञा दो कि अहङ्कार भरे अर्जुन के बाहुओं के खण्डन की कला में निपुण तुम्हारा कौन-सा हाथ पहले मुझ पर प्रहार करेगा?॥१५८॥

यहाँ रामभद्र के द्वारा पहले प्रहार के लिए परशुराम प्रेरित किये गये हैं, अतः (यहाँ) उत्थापक है।

अथ सङ्घात्यः-

मन्त्रशक्त्यार्थशक्त्या वा दैवशक्त्याथ पौरुषात् ।
सङ्घस्य भेदनं यत्तु सङ्घात्यः स उदाहृतः ।।२६६।।

३. **सङ्घात्य**- मन्त्र के बल से, अर्थ के बल से, दैव बल (दैवशक्ति) से अथवा पौरुष से (शत्रु के) संघ का भेदन (भङ्ग करना) सङ्घात्य कहलाता है॥२६६॥

मन्त्रो नयप्रयोगः। तस्य शक्त्या यथा मुद्राराक्षसे चाणक्येन शत्रुसहायानां भेदनात्सङ्घात्यः। अर्थशक्त्या यथा महाभारते आदिपर्वणि दैवैस्तिलोत्तमालक्षणेनार्थेन सुन्दोपसुन्दयोरतिस्निग्धयोर्भेदनात् सङ्घात्यः।

मन्त्र का अर्थ है— राजनीतिज्ञता का प्रयोग। उस राजनीतिज्ञता के प्रयोग से जैसे मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य द्वारा शत्रु के सहायकों में भेद उत्पन्न करने के कारण सङ्घात्य है। अर्थ के बल से जैसे महाभारत के आदिपर्व में देवताओं द्वारा तिलोत्तमा रूपी अर्थ के द्वारा अत्यन्त प्रिय सुन्द और उपसुन्द में भेद उत्पन्न कर देने से सङ्घात्य है।

दैवशक्त्या यथा महावीरचरिते (४.११)-

माल्यवान्-

हा वत्साः खरदूषणप्रभृतयो वध्याः स्थ पापस्य मे
हा हा वत्स विभीषण त्वमपि मे कार्येण हेयः स्थितः ।
हा मद्वत्सल वत्स रावण महत्पश्यामि ते सङ्कटं
वत्से केकसि हा हतासि न चिरात् त्रीन् पुत्रकान् पश्यसि ।।159।।

अत्र राघवानुकूलदैवमोहितेन माल्यवता खरदूषणत्रिशिरसां भेदः संविहित इति सङ्घात्यः।

दैवशक्ति से जैसे महावीरचरित (४.११) में-

माल्यवान्-

हा वत्स खरदूषण आदि! मैं पापी तुम्हारे मरण की ही बात सोचा करता हूँ, हा वत्स विभीषण! कार्यवश तुम्हें भी छोड़ देना पड़ रहा है। हा मेरे स्नेही रावण! तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा सङ्कट देख रहा हूँ। बेटी केकसि! तुम थोड़े ही दिनों में अपने तीन पुत्रों से हाथ धो बैठोगी।।159।।

यहाँ राघव (राम) के अनुकूल दैवबल से मोहित माल्यवान् द्वारा खरदूषण और

त्रिशिरा में भेद अभिहित है, अतः सङ्घात्य है।

पौरुषाद् यथा (किरातार्जुनीये १५.१)-

अथ भूतानि कर्णघ्नशरेभ्यस्तत्र तत्रसुः ।
भेजे दिशः परित्यक्तमहेष्वासा च सा चमूः ।।160।।

अत्रार्जुनपराक्रमेण प्रमथपलायनकथनात् सङ्घात्यः ।

पौरुषबल से जैसे (किरातार्जुनीय १५.१ में)-

इसके बाद रणभूमि में सारे प्राणी अर्जुन के बाणों से डर गये और वह शबराकृति प्रमथ-सेना भी बड़े-बड़े अपने शस्त्रों को त्याग कर दिशाओं में भाग गयी।।160।।

यहाँ अर्जुन के पराक्रम से शङ्करजी को भाग जाने का कथन होने से सङ्घात्य है।

अथ परिवर्त्तकः-

पूर्वोक्तस्य च कार्यस्य परित्यागेन यद्भवेत् ।
कार्यान्तरस्वीकरणं ज्ञेयः स परिवर्त्तकः ।।२६७।।

४. परिवर्त्तक- पूर्वोक्त कार्य के परित्याग के कारण दूसरे कार्य को स्वीकार करने को परिवर्त्तक जानना चाहिए।।२६७।।

यथोत्तररामचरिते पञ्चमाङ्के (१६)-

कुमारौ- (अन्योऽन्यं प्रति) अहो प्रियदर्शनः कुमारः। (सस्नेहानुरागं निर्वण्य)-

यदृच्छासंवादः किमु गुणगणानामतिशयः
पुराणो वा जन्मान्तरनिबिडबन्धः परिचयः ।
निजो वा सम्बन्धः किमु विधिवशात् कोऽप्यविदितो
ममैतस्मिन् दृष्टे हृदयमवधानं रचयति ।।171।।

अत्र लवस्य चन्द्रकेतोः परस्पराकारावशेषसन्दर्शनेन रणसरम्भौद्धत्यपरि-हारेण विनयार्जवस्वीकारकथनात् परिवर्त्तकः।

जैसे उत्तररामचरित के ५.१६ में-

दोनों कुमार— (एक दूसरे को) अहो! कुमार प्रियदर्शन हैं। (स्नेह और अनुराग के साथ देखकर)-

इनको देखने पर भाग्य-समागम वा शौर्य आदि गुणों का उत्कर्ष अथवा जन्मान्तरीण दृढ़ आरुढ प्राचीन परिचय, किंवा भाग्यवश अज्ञात कोई निजी सम्बन्ध मेरे चित्त को एकाग्र कर रहा है।।171।।

यहाँ लव और चन्द्रकेतु का परस्पर सम्पूर्ण आकार को देखने से युद्ध प्रारम्भ करने की उद्धतता को छोड़ देने के कारण विनय की सरलता को स्वीकार करने का कथन होने से

परिवर्तक है।

अथ कैशिकी–

नृत्तगीतविलासादिमृदुशृङ्गारचेष्टितैः ।
समन्विता भवेद्वृत्तिः कैशिकी श्लक्ष्णभूषणा ।।२६८।।

३. **कौशिकी वृत्ति–** क्रैशिकी वृत्ति नृत्त, गीत, मनोरञ्जन (विलास) इत्यादि के कारण कोमल शृङ्गार की चेष्टा से युक्त सुकुमार शोभा वाली होती है।।२६८।।

अङ्गान्यस्यास्तु चत्वारि नर्म तत्पूर्वका इमे ।
स्फञ्जस्फोटौ च गर्भश्चेत्येषां लक्षणमुच्यते ।।२६९।।

कैशिकी वृत्ति के अङ्ग– इसके चार अङ्ग होते हैं- १. नर्म, २. नर्मस्फञ्ज, ३. नर्मस्फोट और ४. नर्मगर्भ। इनका लक्षण कहा जा रहा है।।२६९।।

तत्र नर्म–

शृङ्गाररसभूयिष्ठः प्रियचित्तानुरञ्जकः ।
अग्राम्यः परिहासस्तु नर्म स्यात् तत् त्रिधा मतम् ।।२७०।।
शृङ्गारहास्यजं शुद्धहास्यजं भयहास्यजम् ।

१. **नर्म–** शृङ्गार रस की प्रचुरता वाला और प्रिय के चित्त को प्रसन्न करने वाला शिष्ट (अग्राम्य) परिहास नर्म कहलाता है। वह तीन प्रकार का कहा गया है- **(अ)** शृङ्गारहास्यज **(आ)** शुद्धहास्यज तथा **(इ)** भयहास्यज ।।२७०-२७१पू.।।

शृङ्गारहास्यजं नर्म त्रिविधं परिकीर्तितम् ।।२७१।।
सम्भोगेच्छाप्रकटनादनुरागनिवेदनात् ।
तथा कृतापराधस्य प्रियस्य प्रतिभेदनात् ।।२७२।।

(अ) शृङ्गारहास्यज– शृङ्गारहास्यज नर्म तीन प्रकार का कहा गया है- सम्भोगेच्छा प्रकटन से, अनुराग निवेदन से तथा प्रियापराधनिर्भेद (प्रियतम द्वारा किये गये अपराध को प्रकट करने) से ।।२७१उ.-२७२पू.।।

सम्भोगेच्छाप्रकटनं त्रिधा वाग्वेषचेष्टितैः ।

सम्भोगेच्छाप्रकटन– सम्भोगेच्छाप्रकटन तीन प्रकार से होता है— वाणी द्वारा, वेष द्वारा तथा चेष्टा द्वारा।।२७३।।

तत्र वाचा सम्भोगेच्छाप्रकटनाद् यथा (काव्यप्रकाशे उद्धृतम् १२६)–

गच्छाम्यच्युत दर्शनेन भवतः किं तृप्तिरुत्पद्यते
किन्त्वेवं विजनस्थयोर्हतजनः सम्भावयत्यन्यथा ।
इत्यामन्त्रणभङ्गिसूचितवृथावस्थानखेदालसा-

माश्लिष्यन् पुलकोत्कराङ्कितततनुं गोपीं हरिः पातु वः ।।172।।

वाणी द्वारा सम्भोगेच्छा प्रकट करने से जैसे (काव्यप्रकाश में उद्धृत १२६)-

हे अच्युत (सम्भोग द्वारा स्खलित होकर तृप्त न करने वाले कृष्ण)! क्या आपके दर्शन मात्र से (सम्भोगेच्छा की) तृप्ति हो सकती है? उल्टे एकान्त स्थान में स्थित हम दोनों को देख कर दुष्ट पुरुष कुछ और ही प्रकार की (हमारे सम्भोगादि की) कल्पना करने लगते हैं। (पर यहाँ मिला कुछ भी नहीं)। इसलिए मैं जाती हूँ, इस प्रकार (अच्युत' अर्थात् स्खलित न होने वाले) इस सम्बोधन की शैली से (अपनी इच्छापूर्ति की ओर से निराश और कृष्ण के पास) व्यर्थ बैठने के खेद से अलसायी हुई गोपी का आलिङ्गन कर रोमाञ्चित शरीर वाले कृष्ण तुम्हारी रक्षा करें।।172।।

अत्र निजावस्थानविलम्बनस्य व्यर्थत्वं धीरत्वादिसूचकैरच्युतादिपदैर्वदन्त्या तयापि गोपिकया वाचा सम्भोगेच्छा प्रकटितेति नर्म।

यहाँ अपने रुकने में विलम्ब करने की व्यर्थता धैर्यसूचक 'अच्युत' इत्यादि पदों के द्वारा कहने वाली उस गोपिका के द्वारा वाणी से सम्भोगेच्छा प्रकट की गयी, अतः नर्म है।

वेषेण सम्भोगेच्छाप्रकटनाद् यथा-

अभ्युद्गते शशिनि पेशलकान्तदूती-
संल्लापसंवलितलोचनमानसाभिः ।
अग्राहि मण्डनविधिविपरीतभूषा-
विन्यासहसितसखीजनमङ्गनाभिः ।।173।।

अत्र विपरीतन्यस्तलक्षणभूषणेन वेषेण जनितैः सखीजनहासैः कामिनीनां सम्भोगेच्छा प्रकटितेति नर्म।

वेष के द्वारा सम्भोगेच्छा प्रकट करने से जैसे-

चन्द्रमा के उदित हो जाने पर कोमल तथा प्रिय दूती की बातचीत से सिक्त नेत्रों और मन वाली स्त्रियों ने प्रसाधन- कार्य में विपरीत आभूषणों के पहनने के कारण हँसी की पात्र हुई अपनी सखी को पकड़ लिया।।173।।

यहाँ विपरीत आभूषणों को पहनने के कारण वेष से उत्पन्न सखियों की हँसी से कामिनियों की सम्भोगेच्छा प्रकट हो रही है अतः नर्म है।

चेष्टया सम्भोगेच्छा प्रकटनाद् यथा-

आलोसच्चिअ सूरे घरणी घरसमिअस्स घेत्तूण ।
णेच्छन्तस्स वि चलणे धावइ हसन्ती हसन्तस्स ।।174।।
(आलोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा।
नेच्छन्तोऽपि चरणौ धावति हसन्ती हसतः।।)

चेष्टा द्वारा सम्भोगेच्छा प्रकटन से जैसे–

(सूर्यास्त से पहले) सूर्य के प्रकाश में ही पति को पकड़ कर (पति के) न चाहने पर भी हँसते हुए उसके पैरों को हँसती हुई पत्नी धोने लगी ।।174।।

अत्र सूर्यास्तमयात् प्रागेव चरणप्रक्षालनलक्षणया क्रिययानिष्क्रमणनिवारण-जानितेन हासेन सम्भोगेच्छाप्रकटनान्नर्म।

यहाँ सूर्यास्त से पहले ही चरण धोने रूपी क्रिया से (घर से) बाहर जाने से रोकने के कारण उत्पन्न हास के द्वारा सम्भोगेच्छा प्रकटित करने से नर्म है।

अनुरागप्रकाशोऽपि भोगेच्छानर्मवत् त्रिधा ।।२७३।।

अनुरागप्रकटन–

अनुराग का प्रकाशन भी संभोगेच्छा नर्म के समान तीन प्रकार का होता है-। (वाणी द्वारा, वेष द्वारा तथा चेष्टा द्वारा)।।२७३उ.।।

वाचानुरागनिवेदनाद् यथा (मालतीमाधवे ७.१)–

वयं तथा नाम यथात्थ किं वदा
म्ययं त्वकस्मात् कलुषः कथान्तरे ।
कदम्बगोलाकृतिमाश्रितः कथं
विशुद्धमुग्धः कुलकन्यकाजनः ।।175।।

अत्र लवङ्गिकया विशुद्धमुग्धः कुलकन्यकाजनः इति परिहासेन मदयन्तिकानुरागनिवेदनान्नर्म।

वाणी द्वारा अनुराग निवेदन से जैसे (मालतीमाधव ७.१में)–

(लवङ्गिका मुस्करा कर मदयन्तिका से कहती है-) आप जैसा कहती हैं, हम वैसे ही हैं। किन्तु क्या कहूँ? विशुद्ध और मूढ इस कुमारी ने किस कारण से पुरुष-विषयक वार्तालाप के बीच में ही विह्वल होकर कदम्ब पुष्प के सदृश आकार का आश्रय लिया ।।175।।

यहाँ लवङ्गिका के द्वारा 'विशुद्धमुग्धः कुलकन्यकाजन' इस परिहास से मदयन्तिका के अनुराग का निवेदन करने से नर्म है।

वेषेणानुरागनिवेदनाद् यथा (रत्नावल्याम् १.२)–

औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।
दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे
संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायास्तु वः ।।176।।

अत्र पुलकरोमहर्षणलक्षणवेषजनितेन शिवस्य हसनेन गौरीहृदयानुरागस्य प्रकाशनान्नर्म।

वेष द्वारा अनुरागनिवेदन से जैसे (रत्नावली १.२) में–

परिणयोपरान्त नव (प्रथम) समागम में उत्सुकता से शीघ्रता करने वाली स्वाभाविक रूप से लज्जा के कारण वापस लौटने का उपक्रम किये हुये, प्रियजन (भौजाई आदि) के अनेक प्रकार के वचनों से पुनः सम्मुख ले जायी गयी, सामने पति (शिवजी) को देखकर भयभीत तथा रोमाञ्चयुक्त, हँसते हुए शिवजी द्वारा आलिङ्गन की गयी पार्वती जी तुम सब सामाजिकों के कल्याण के लिए होवे अर्थात् तुम सब का कल्याण करें।।176।।

यहाँ शिव के रोमाञ्चयुक्त वेष वाले हास से पार्वती के हृदय में अनुराग प्रकट होने से नर्म है।

चेष्टयानुरागनिवेदनाद्यथा (कुमारसम्भवे ८.३)–

कैतवेन शयिते कुतूहलात्पार्वती प्रतिमुखं निपातितम् ।
चक्षुरुन्मिषति सस्मितं प्रिये विद्युदाहतमिव न्यमीलयत् ।।177।।

अत्र पतिमुखदर्शनक्रियाजनितेन शिवस्य हासेन गौरीहृदयानुरागनिवेदनान्नर्म।

चेष्टा के द्वारा अनुराग निवेदन से जैसे (कुमारसम्भव ८.३ में)–

पार्वती जी की एकान्त चेष्टाओं के जानने की इच्छा से जब शंकर जी नींद का बहाना बनाकर अपनी आँखे मूँद लेते थे तो पार्वती जी उनकी ओर मुँह फेर कर एकटक देखने लगती थीं, किन्तु ज्यों ही शंकर जी मुस्कराते हुए अपनी आँखे खोल देते थे त्यों ही वह अपनी आँखे सहसा इस प्रकार मूँद लेती थीं मानो बिजली की चकाचौंध से वह अपने आप मिंच गई हों।।177।।

यहाँ पति के मुख को देखने की क्रिया से उत्पन्न शिव के हास से पार्वती के हृदय में अनुराग-निवेदन के कारण नर्म है।

प्रियापराधनिर्भेदोऽप्युक्ता स्त्रेधा तथा बुधैः ।

प्रियापराध निर्भेद– प्रियापराधनिर्भेद भी आचार्यों द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है (वाणी द्वारा, वेष द्वारा तथा चेष्टा द्वारा)।।२७४पू.।।

वाचा प्रियापराधनिर्भेदाद्यथा मालविकाग्निमित्रे प्रथमाङ्के (अन्ते)–

देवी– (राजानं विलोक्य सस्मितम्) 'जइ राजकज्जेसु इरिसी जिउणता अय्यउत्तस्स, तदा सोहणं भवे'। (यदि राजकार्येष्वीदृशी निपुणतार्यपुत्रस्य तदा शोभनं भवेत्।)

अत्र ईदृशी निपुणता यदीति, चतुरोक्तिपरिहासेन त्वयैव मालविकादर्शनेन नाट्याचार्ययोर्विवादः संविहित इति प्रियापराधोद्घटनान्नर्म।

वाणी द्वारा प्रियापराधनिर्भेद जैसे मालविकाग्निमित्र के प्रथम अङ्क में (अन्त में)–

देवी– (राजा को देखकर मुस्कराते हुए) यदि आर्यपुत्र अपने राज्य के प्रशासन में

इतनी कुशलता व्यक्त करते तो अतिसुन्दर होता।

यहाँ तुम्हारे द्वारा मालविका को देखने से 'इस प्रकार की (इतनी) कुशलता यदि होती' इस निपुणता- पूर्वक परिहास से युक्त कथन नाट्याचार्यों का विवाद अभिहित है अत: प्रियापराध का उद्घाटन होने से नर्म है।

वेषेण प्रियापराधनिर्भेदाद् यथा-

आलेपः क्रियतामयं द्रुतगतिस्वेदैरिवार्द्रं वपु-
स्तन्माल्यं व्यपनीयतां रविकरस्पर्शैरिवामर्दितम् ।
इत्युक्तान्यतिधीरया दयितया स्मेराननाम्भोरुहं
चाटूक्तानि भवन्ति हन्त कृतिनां मोदाय भोगादपि ।।178।।

अत्र स्वेदोद्गममाल्यम्लानत्वयोर्द्रुतगमनरविकरस्पर्शरूपकारणासत्यत्व-कथनरूपेण परिहसनेन सपत्नीसम्भोगरूपप्रियापराधनिर्भेदनान्नर्म।

वेष द्वारा प्रियापराधनिर्भेद से जैसे-

'द्रुतगति के कारण उत्पन्न पसीने से भींगे हुए- से शरीर पर यह (शीतल) आलेप लगा लिया जाय और सूर्य-किरणों के स्पर्श से मसली हुई-सी वह माला हटा दी जाय अतिधीर प्रियतमा के द्वारा इस प्रकार की (कही) गयी उक्तियाँ और हँसी से युक्त मुखरूपी कमल सुकृत वाले (पुरुषों) के लिए सम्भोग से भी अधिक आनन्द देने के लिए चाटुकरिता युक्त वचन हो जाती है।।178।।

यहाँ पसीने के निकलने और माला के मलिन हो जाने का द्रुततर- गमन और सूर्य के किरण से स्पर्श रूप कारण का असत्यरूप से कथन तथा परिहसन से सपत्नी के साथ सम्भोग-रूप प्रियापराध के निर्भेद के कारण नर्म है।

चेष्टया प्रियापराधनिर्भेदाद् यथा (अमरुशतके ८३)-

लोलभ्रूलतया विपक्षदिगुपन्यासे विधूतं शिर-
स्तद्वृत्तस्य निशामने कृतनमस्कारं विलक्षस्मितम् ।
रोषात् ताम्रकपोलकान्तिनि मुखे दृष्ट्या नतं पादयो-
रुत्सृष्टे गुरुसन्निधावपि विधिर्द्वाभ्यां न कालोचितः ।।179।।

अत्र विलक्षस्मितशिरोधूननचेष्टया प्रियापराधनिर्भेदान्नर्म।

चेष्टा द्वारा प्रियापराधनिर्भेद से जैसे (अमरुशतक ८३ में)-

(सखी सखी से कह रही है) नायिका के चंचल भौंहों से अन्य स्त्री के (जिसके यहाँ नायक गया था) घर की ओर संकेत करके अपना सिर हिलाया अर्थात् उसने इस क्रिया से यह व्यक्त कर दिया कि मैं तुम्हारी सारी बातें जान गयी हूँ। इसे देख कर नायक नमस्कारपूर्वक हाथ जोड़े व्याकुल होकर मुस्करा दिया अर्थात् उसने यह व्यक्त कर दिया कि मेरे जैसे निरपराध पर

ऐसा आरोप करने वाली तुम्हारी बुद्धि को नमस्कार है। इस पर नायिका को क्रोध आ गया और उसके कपोल लाल हो उठे। तब नायक ने उसके चरणों की ओर दृष्टि डाल कर अपनी प्रणति सूचित कर दी इस प्रकार गुरुजनों के बीच में भी दोनों ने समयोचित कोप और प्रसादन विधि का परित्याग नहीं किया।।179।।

यहाँ नायक के व्याकुलतापूर्वक मुस्कराने और नायिका के सिर हिलाने की चेष्टा द्वारा प्रियापराधनिर्भेद होने से नर्म है।

शुद्धहास्यजमप्युक्तं तद्वदेव त्रिधा बुधैः ।।२७४।।

२. शुद्ध हास्यज– शुद्ध हास्यज (नर्म) भी तीन प्रकार का कहा गया है- वाणी द्वारा, वेष द्वारा तथा चेष्टा द्वारा ।।२७४उ.।।

तत्र वाचा शुद्धहास्यजं यथा (दशरूपके उद्धृतम् २२५)–

अर्चिष्मन्ति विदार्य वक्त्रकुहराण्यासृक्वतो वासुके-
स्तर्जन्या विषकर्बुकान् गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान् ।
एकं त्रीणि नवाष्टसप्त षडिति व्यत्यस्तसङ्ख्याक्रमा
वाचः क्रौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि पुष्णन्तु वः ।।180।।

वाणी द्वारा शुद्धहास्यज जैसे (दशरूपक में उद्धृत २०२ बाण की सूक्ति मुक्तावली से)–

(यहाँ बालक कार्त्तिकेय की बाललीला का स्वाभाविक असम्बद्ध प्रलाप वर्णित है)

'वासुकि के प्रकाशमय मुख-छिद्रों को ओष्ठ के कोनों से फाड़कर, विष के कारण रंग-बिरंगे दाँतो के अङ्कुरों को अङ्गुलि से छूकर एक, तीन, नौ, आठ, सात, छह, इस प्रकार संख्या के क्रम से रहित गिनते हुए, क्रौञ्च के शत्रु कार्त्तिकेय की शिशुता के कारण टूटी-फूटी बातें तुम्हारे कल्याण की वृद्धि करें।।180।।

वेषेण शुद्धहास्यजं यथा (बालरामायणे २.१)–

स्नायुन्यासनिबद्धकीकसतनुं नृत्यन्तमालोक्य मां
चामुण्डाकरतालकुट्टितलयं वृत्ते विवाहोत्सवे ।
ह्रीमुद्रामपनुद्य यद् विहसितं देव्याः समं शम्भुना
तेनाद्यापि मयि प्रभुः स जगतामास्ते प्रसादोन्मुखः ।।181।।

अत्र भृङ्गिरिटिवेषेण शिवयोर्हसिताविर्भावाच्छुद्धहास्यजम् ।

वेष द्वारा शुद्ध हास्यज जैसे– (बालरामायण २.१ में)–

विवाह के अवसर पर स्नायु-बहुल हड्डियों के मेरे शरीर पर लगे रहते हुए मुझे नाचते हुए देख कर जिस नाच में चामुण्डा करताल दे रही थी, (अर्थात ताली बजा रही थी) देवी पार्वती

लज्जा को छोड़ कर भगवान् शङ्कर के साथ हँस पड़ी थीं उससे आज भी वे जगन्नाथ शङ्कर जी मुझ पर प्रसन्न रहते हैं।।181।।

यहाँ भृङ्गिरिटि के वेष से शिव और पार्वती के हास्य की उत्पत्ति के कारण शुद्धहास्यज है।

चेष्टया शुद्ध हास्यजं यथा–

देव्या लीलालपितमधुरं लास्यमुल्लासयन्त्या
यः शृङ्गारो रहसि पुरतः पत्युराविष्कृतोऽभूत् ।
युष्मानव्यात् तदुपजनितं हास्यमम्बानुकारी
क्रीडानृत्यैविकटगतिभिर्व्यञ्जयन् कुञ्जरास्यः ।।182।।

चेष्टा द्वारा शुद्धहास्यज जैसे–

लीला-पूर्वक कहे जाने से मधुर लास्य को प्रकट करती हुई देवी (पार्वती) के द्वारा एकान्त में पति (शङ्कर) के सामने जो शृङ्गार अभिव्यक्त किया गया, उससे उत्पन्न हास्य को क्रीडानृत्य के कारण विकट गति से अभिव्यञ्जित (प्रकट) करते हुए माता (पार्वती) का अनुकरण (अनुसरण) करने वाले गणेश आप लोगों की रक्षा करें।।182।।

अथ भयहास्यम्–

हास्याद्भयेन सहिताज्जनितं भयहास्यजम् ।
तद्विधा मुख्यमङ्गं च तद्वयं पूर्ववत् त्रिधा ।।२७५।।

(इ) भयहास्यज– भय के सहित हास्य से उत्पन्न भयहास्यज कहलाता है। वह भयहास्यज दो प्रकार का होता है- मुख्य और अङ्ग। ये (मुख्य और अङ्ग) दोनों पहले के समान (वाणी द्वारा, वेष द्वारा तथा चेष्टा द्वारा) तीन-तीन प्रकार के होते हैं।।२७५।।

मुख्यं भयहास्यजं यथा–

क्षेत्राधीशशुना नवेन विदिताकारैकविद्वेषिणा
घोरारावमभिद्रुतस्य विकटैः पश्चात्पदैर्गच्छतः ।
पा पा पाहि हि हीति सत्वरतरं व्यक्ताक्षरं जल्पतो
दृष्ट्वा भृङ्गिरिटेर्दशा पशुपतिः स्मेराननः पातु वः ।।183।।

अत्र भृङ्गिरिटेर्विकृताकारेण विकटपश्चाद्गमनेन पाहिपाहि पाहीत्यत्र वर्णत्रय-व्यत्यासेन भाषणेन च जनितस्य पशुपतिहासस्यान्यरसानङ्गतया मुख्यं भयहास्यजम्।

मुख्य भयहास्यज जैसे–

आकार (आकृति) जानने (पहचानने) के कारण शत्रुता रखने वाले तथा नये खेत के स्वामी के कुत्ते द्वारा तेज गर्जना करने पर शीघ्रता करने वाले, विस्तृत (बडे-बड़े) पदों (डगों) से

पीछे जाते हुए तथा शीघ्रता के कारण 'पा पा पाहि हि हि' इस प्रकार अस्पष्ट अक्षरों को बोलते हुए भृङ्गिरिटि की दशा को देख कर मुस्कराते हुए पशुपति (भगवान् शङ्कर) तुम लोगों की रक्षा करें।।183।।

यहाँ भृङ्गिरिटि के विकृत आकार; बड़े-बड़े डगों से पीछे जाने और 'पाहि-पाहि पाहिं (के स्थान पर पा पा पाहि हि हि) इस प्रकार तीन वर्ण के विपरीत क्रम से कहने से उत्पन्न पशुपति के हास का अन्य रस का अङ्ग न होने के कारण मुख्य भयहास्यज है।

वाचान्यरसाङ्गं भयहास्यजं यथा रत्नावल्याम् (३.१४ पद्यादन्तरम्)-

विदूषकः- कहं ण किदो पसादो देवीए, जं अज्ज वि अक्खदसरीरा चिट्ठह्म। (कथं न कृतो प्रसादः देव्याः, यदद्याप्यक्षरशरीरास्तिष्ठामः)।

राजा- (सस्मितम्) मूर्ख ! किं परिहससि। त्वत्कृत एवापतितोऽयमस्माकं महाननर्थः।

इत्यादौ विदूषकवाक्यजनितस्य महाभयस्य शृङ्गाराङ्गतया कथितत्वादिदमङ्गं भयहास्यजम्।

वाणी द्वारा अन्यरसाङ्ग-भयहास्यज जैसे रत्नावली में।(३.१४ पद्य से बाद में)

विदूषक– (महारानी वासवदत्ता की) क्या यह की गयी कृपा नहीं हैं (अर्थात् महारानी ने अवश्य कृपा किया है) जो कि अब भी हम दोनों ज्यों के त्यों शरीर वाले बने हुए हैं (अर्थात् सुरक्षित हैं)।

राजा– (मुस्करा कर) अरे मूर्ख! धिक्कार है। इस प्रकार मेरा मजाक क्यों उड़ा रहे हो! वास्तव में, तुम्हारे कारण ही हमारे ऊपर यह महान् अनर्थ आ पड़ा है।

इत्यादि में विदूषक के कथन से उत्पन्न महाभय का शृङ्गार के अङ्ग के रूप में कथन होने के कारण अङ्गभयहास्यज है।

वेषेण यथा–

कल्याणदायि भवतोऽस्तु पिनाकपाणि-
परिग्रहे भुजगकङ्कणभीषितायाः ।
सम्भ्रान्तदृष्टिः सहसैव नमः शिवाये-
त्यर्धोक्तिसस्मितनतं मुखमम्बिकायाः ।।184।।

अत्र भुजङ्गकङ्कणलक्षणेन वेषेण जनितस्य पार्वतीभयहास्यस्य शृङ्गाराङ्गतया कथनात् तदिदमङ्गं भयहास्यजम् ।

वेष द्वारा (अन्यरसाङ्गभयहास्यज) जैसे–

शङ्कर जी के विवाह में (उनके) सर्प रूपी कङ्गन से भयभीत पार्वती का व्याकुल नेत्रों

वाला (अत एव) सहसा '**नमः शिवाय**' इस अर्धोक्ति के साथ प्रफुल्लित और झुका हुआ मुख आप का कल्याण करे।।184।।

यहाँ सर्परूपी कङ्कन लक्षण वाले वेष से उत्पन्न पार्वती के भयहास्य का शृङ्गार के अङ्ग रूप से कथन होने के कारण यह अङ्ग-भयहास्यज है।

चेष्टया यथा–

प्रह्लादवत्सल! वयं बिभिमो विहारा-
दस्मादिति ध्वनितनर्मसु गोपिकानाम्।
लीलामृदुस्तनतटेषु नखाङ्कुराणि
व्यापारयन्नवतु मामनृपं मुकुन्दः ।।185।।

अत्र नखाङ्कुरव्यापारेण जनितस्य गोपिकाहसितस्य प्रह्लादवत्सलेति चतुरोक्तिरूपस्य शृङ्गाराङ्गभयहास्यजत्वम्।

चेष्टा द्वारा अन्यरसाङ्ग भयहास्यज जैसे–

हे प्रह्लाद वत्सल (कृष्ण)! हम लोग इस विहार से डर रही हैं- इस प्रकार गोपियों की ध्वनित कामकेलि में लीला के कारण कोमल स्तनों के घेरे पर नख के चिह्नों को बनाते हुए श्रीकृष्ण मुझ दीन की रक्षा करें।।185।

यहाँ नख के चिह्न बनाने के कार्य से उत्पन्न तथा 'प्रह्लादवत्सल' इस चतुरतापूर्वक कहे गये हास्य का शृङ्गार के अङ्गभूत होने से भयहास्यजत्व है।

अग्राम्यनर्मनिर्माणवेदिना शिङ्गभूभुजा।
नर्माष्टादशधा भिन्नमेवं स्फुटमुदाहृतम् ।।२७६।।

शिष्ट नर्मनिर्माण के ज्ञाता शिङ्गभूपाल के द्वारा अठ्ठारह प्रकार के पृथक्-पृथक् नर्म को उदाहरण सहित स्पष्ट किया गया है।।२७६।।

अथ नर्मस्फञ्ज–

नर्मस्फञ्जः सुखोद्योगः भयान्तो नवसङ्गमे।

२. **नर्मस्फञ्ज–** नूतन समागम में यदि प्रारम्भ में सुख हो और अन्त में भय 'कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है' उसे नर्मस्फञ्ज कहते हैं।।२७७पू.।।

यथा (सरस्वतीकण्ठाभरणे उद्धृतम्)–

अपेतव्याहारं धुतविविधशिल्पव्यतिकरं
करस्पर्शारम्भप्रगलितदूकुलान्तशयनम्।
मुहुर्बद्धोत्कम्पं दिशि दिशि मुहुर्प्रेरितदृशो-
रहल्यासुत्राम्णोः क्षणिकमिव तत्सङ्गमनमभूत् ।।186।।

जैसे (सरस्वती-कण्ठाभरण में भी उद्धृत)-

अहिल्या और इन्द्र का शब्द (ध्वनि) से रहित, अनेक प्रकार की (काम- विषयक) कलाओं के मिश्रण से भड़काया हुआ, हाथों के स्पर्श के कार्य से शय्या के अन्तिम भाग तक हटे हुए दुपट्टे वाला, बार-बार कम्पन से बँधा हुआ और (भय के कारण) बार-बार इधर-उधर प्रेरित दृष्टि वाला वह नया सम्भोग मानो क्षणमात्र के लिए ही हुआ।।186।।

अथ नर्मस्फोटः-

नर्मस्फोटस्तु भावांशैः सूचितोऽल्परसो भवेत् ।।२७७।।
अन्यैस्त्वकाण्डे सम्भोगविच्छेद इति गीयते ।

३. नर्मस्फोट- जहाँ थोड़े भाव (भावांश) से अल्प रस सूचित होता है वह नर्मस्फोट कहलाता है।।२७७उ.।।

अन्य आचार्यों के अनुसार अप्रत्याशित (एकाएक) सम्भोग का विच्छेद हो जाना (नर्मस्फोट) कहलाता है।।२७८पू.।।

आद्यो यथा (अभिज्ञानशाकुन्तले २/२)-

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव ।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ।।187।।

अत्र सर्वं किलेत्यनिश्चयेनानुरागस्य स्वल्पमात्रसूचनया नर्मस्फोटत्वम् ।

आदिवाला (भावांश से सूचित जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल २/२ में)-

(दुष्यन्त विदूषक से कहता है-) दूसरी ओर भी आँखे लगाती हुई उस (शकुन्तला) ने जो स्नेह-पूर्वक निहारा, नितम्बों के भारीपन के कारण वह विलास से जो धीरे-धीरे चली, "मत जाओ" यह कहकर रोकी जाने पर उसने जो झिड़ककर सहेली से वह बात कहा, वह सब, लगता है, मुझे उद्देश्य करके हुआ था। आश्चर्य की बात है कि काम (परविषयक व्यापार में भी) आत्मीयता देखता है।।187।।

यहाँ सब कुछ (सर्वं किल) इस अनिश्चय से अनुराग के स्वल्पमात्र सूचित होने से नर्मस्फोट है।

द्वितीयो यथा रत्नावल्याम् (२/१९)-

प्राप्तां कथमपि दैवात् कण्ठमनीतैव सा प्रकटरागा ।
रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताद् भ्रंशिता भवता ।।188।।

अत्र विदूषकवाक्यसूचितदेवीशङ्काविसृष्टसागरिकाहस्तेन राज्ञाकाण्डे त्वया सम्भोगभङ्गः कृतः इत्युक्तत्वाद् नर्मस्फोटः।

द्वितीय (अप्रत्याशित सम्भोगविच्छेद जैसे रत्नावली २.१) में-

(राजा विदूषक से कहता है)— जैसे-तैसे दैवयोग से प्राप्त अनुराग को प्रकट करने वाली (पक्ष में- रङ्ग फैलाने वाली) प्रिया (कान्तिमती) वह (सागरिका) रत्नावली-सी गले में पड़ने से पूर्व (गले लगने से पूर्व) आपही द्वारा मेरे हाथ से दूर कर दी (गिरा दी) गयी।।188।।

यहाँ विदूषक के राजा द्वारा पूछे जाने पर कि वासवदत्ता कहाँ है? 'अरे! नहीं मालूम कहाँ है? मैंने तो यह दूसरी 'वासवदत्ता' अत्यधिक क्रोध के कारण कह दिया- इस वाक्य द्वारा सूचित देवी (वासवदत्ता) के आने की शङ्का से छोड़ दिये गये सागरिका के कारण राजा का यह कहना कि एकाएक तुमने (मेरा सागरिका के साथ) सम्भोग का विच्छेद करा दिया नर्मस्फोट है।

अथ नर्मगर्भ-

नेतुर्वा नायिकाया वा व्यापारः स्वार्थसिद्धये ।।२७८।।
प्रच्छादनपरो यस्तु नर्मगर्भः स कीर्तितः ।

४. नर्मगर्भ- अपने कार्य की सिद्धि के लिए प्रच्छन्न (छिपे) रूप से नायक अथवा नायिका का जो व्यापार (कार्य) होता है, वह नर्मगर्भ कहलाता है।।२७८उ.-२७९पू.)

यथा-

श्रियो मानग्लानेरनुशयविकल्पैः स्मितमुखे
सखीवर्गे गूढं कृतवसतिरुत्थाय सहसा ।
समानेष्ये धूर्त्तं तमहमिति जल्पन् नतमुखीं
प्रियां तामालिङ्गन् हरिररतिखेदं हरतु वः ।।189।।

अत्र कुपितायाः श्रियः प्रसादनार्थं सखीमध्ये पुरुषोत्तमेन प्रच्छन्नस्थित्यादिरूपो व्यापारः कृत इत्ययं नर्मगर्भः।

जैसे-

लक्ष्मी के मान की ग्लानि की अधिकता से उत्पन्न होने के कारण मुस्कराने वाली सखियों के समूह में छिपकर बैठे हुए (विष्णु) के अकस्मात् उठा कर तथा 'उस धूर्त को मैं यहाँ ले आऊँगी' कहती हुई नतमुखी प्रिया (लक्ष्मी) का आलिङ्गन करते हुए भगवान् (हरि) तुम लोगों के सम्भोग से रहित खेद को दूर करें।।189।।

यहाँ कुपित लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए सखियों के बीच में पुरुषोत्तम (विष्णु) द्वारा प्रच्छन्नस्थिति इत्यादि रूप व्यापार किया गया— यह नर्मगर्भ है।

पूर्वस्थितो विपद्येत नायको यत्र वा परतिष्ठेत् ।।२७९।।
तमपीह नर्मगर्भं प्रवदति भरतो हि नाट्यवेदगुरुः ।

नाट्य वेद के गुरु आचार्य भरत पूर्वस्थित नायक के विपत्ति में पड़ने पर (मर जाने पर)

उसके स्थान पर दूसरे (नायक) के प्रतिष्ठित होने पर भी यहाँ नर्मगर्भ कहते हैं।।२७९उ.-२८०पू.।।

यथा (सरस्वतीकण्ठाभरणेऽपि उद्धृतम्)-

मयेन निर्मितां लङ्कां लब्ध्वा मन्दोदरीमपि ।
रेमे मूर्तां दशग्रीवलक्ष्मीमिव विभीषणः ।।190।।

अत्र रावणे विपन्ने तत्पदाभिषिक्तेन विभीषणेन मन्दोदर्यादिषु तदुचितं कर्म नियमितमिति नर्मगर्भः। केचित्वेतदारभटीभेदं संक्षिप्तमाहुः। तत्र मूलं न जानीमः।

जैसे (सरस्वतीकण्ठाभरण में उद्धृत)-

मय (राक्षस) द्वारा बनायी गयी लङ्का को और (रावण की पत्नी) मन्दोदरी को प्राप्त करके विभीषण ने साक्षात् रावण की लक्ष्मी के समान (यथोचित) व्यवहार किया।।190।।

यहाँ रावण की मृत्यु हो जाने पर तथा (राजा) पद पर अभिषिक्त विभीषण द्वारा मन्दोदरी इत्यादि के प्रति उचित व्यवहार (कर्म) किया। यह नर्मगर्भ है। कुछ आचार्य इसमें संक्षिप्त नामक आरभटी के भेद को कहते हैं। उसका मूल मुझे पता नहीं है।

अथारभटी-

मायेन्द्रजालप्रचुरां चित्रयुद्धक्रियामयीम् ।।२८०।।
छेद्यैर्भेद्यैः प्लुतैः युक्ता वृत्तिमारभटीं विदुः ।

४. आरभटी वृत्ति- जिसमें माया, इन्द्रजाल की अधिकता है, विचित्र सङ्ग्राम कार्य की युक्तता होती है, काटने-मारने तथा उछल कूद से युक्त होती है, वह आरभटी वृत्ति कहलाती है।।२८०उ.-२८१पू.।।

अङ्गान्यस्यास्तु चत्वारि संक्षिप्तिरवपातनम् ।।२८१।।
वस्तूत्थापनसम्फेटाविति पूर्वे बभाषिरे ।

आरभटीवृत्ति के अङ्ग- पूर्ववर्ती आचार्यों ने इसके चार अङ्गों को बतलाया है- **(अ)** संक्षिप्ति, **(आ)** अवपातन, **(इ)** वस्तूत्थापन और **(ई)** सम्फेट।

तत्र संक्षिप्तिः-

संक्षिप्तवस्तुविषया या माया शिल्पयोजिता ।।२८२।।
सा सङ्क्षिप्तिरिति प्रोक्ता भरतेन महात्मना ।

(अ) संक्षिप्ति- जो माया काव्यकला के द्वारा संयोजित संक्षिप्त विषयवस्तु वाली होती है, उसे महात्मा भरत ने संक्षिप्ति कहा है।।२८२उ.-२८३पू.।।

यथानर्घराघवे (५.७)-

नीतो दूरं कनकहरिणच्छद्मना रामभद्रः
पश्चादेनं द्रुतमनुसरत्येष वत्सः कनिष्ठः ।

विभ्यद् विभ्यत् प्रविशति ततः पर्णशालां च भिक्षुः
धिग् धिक् कष्टं प्रथयति निजामाकृतिं रावणोऽयम् ।।191।।

अत्र बहुविधानां मायानां सङ्क्षेपेण कथनात्सङ्क्षिप्तिः ।

जैसे अनर्घराघव (५.७) में-

कनकमृग की प्रीति से प्रभु बहुत दूर ले जाये गये, पीछे से उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी उनका अनुसरण कर रहे हैं, एक साधु डरते-डरते उनकी पर्णशाला में प्रवेश कर रहा है, हाय-हाय, यह तो रावण है जो अपनी आकृति प्रकट कर रहा है।।191।।

यहाँ अनेक प्रकार की माया का सङ्क्षेप में कथन होने के कारण सङ्क्षिप्ति है।

वदन्त्यन्ये तु तां नेतुरवस्थान्तरसङ्गतिम् ।।२८३।।

अन्य आचार्य नेता की अवस्था के परिवर्तन को संक्षिप्ति कहते हैं।।२८३उ.।।

यथा (अनर्घराघवे ४.५९)-

यदर्थमस्माभिरसि प्रकोपित-
स्तदद्य दृष्ट्वा तव धाम वैष्णवम् ।
विशीर्णगर्वामयमस्मदान्तरं
चिरस्य कश्चिल्लघिमानमश्नुते ।।192।।

अत्र रामभद्रसहवासेन परिहृतधीरोद्धतविकारस्य जामदग्नस्य धीरशान्तावस्थापरिग्रहात् सङ्क्षिप्तिरिति। परिवर्तितभेदत्वात् तदुपेक्षामहे वयम् ।

जैसे (अनर्घराघव ४.५९ में)-

मैंने आप को जिस लिए कुपित किया था, आप के उस वैष्णव तेज को देख कर हमारे हृदय का सारा रोग दूर हो गया, हमारे हृदय का भार हल्का हो गया है।।192।।

यहाँ रामभद्र के सहवास के कारण धीरोद्धत विकार को छोड़कर परशुराम के धीरप्रशान्त अवस्था में परिवर्तित होने के कारण संक्षिप्ति है।

यहाँ भेद में परिवर्तन होने के कारण हम उसकी उपेक्षा करते हैं।।२८४पू.।।

अथावपातनम्-

विभ्रान्तिरवपातस्तु स्यात् प्रवेशद्रावविद्रवैः ।।२८४।।

(आ) अवपातन- प्रवेश के कारण भगदड़ मच जाने और भय से भाग जाने से उतावला होना अवपातन कहलाता है।।२८४उ.।।

यथा (धनञ्जयविजये ६७)-

हत्वा शान्तनुनन्दनस्य तुरगान् सूतं कुरूणां गुरो-
श्छित्वा द्रोणसुतस्य कार्मुकलतां कृत्वा विसंज्ञं कृपम् ।

कर्णस्यापि रथं विदार्य कणशो विद्राव्य चान्यद्बलं
त्वत्पुत्रो भयविद्रवत्कुरुपते! पन्थानमन्वेत्ययम् ।।193।।

अत्र कुरुबलानां भयविभ्रान्तिकथनादवपातनम् ।

जैसे (धनञ्जयविजय ६७में)-

शान्तनुपुत्र (भीष्म पितामह) और कुरुगुरु (द्रोणाचार्य) के सारथी को मार कर द्रोणपुत्र (अश्वत्थामा) की धनुष की डोरी (प्रत्यञ्चा) को काट कर, कृपाचार्य को मूर्च्छित करके, कर्ण के रथ को तोड़कर और छोटी-छोटी टुकड़ियों में बटे अन्य सैनिकों को खदेड़ कर हे कुरुपति (धृतराष्ट्र)! तुम्हारा यह पुत्र (दुर्योधन) रास्ते में आ रहा है।।193।।

यहाँ कौरव सैनिकों में भय के कारण हड़बड़ी मचने का कथन होने से अवपातन है।

अथ वस्तूत्थापनम्-

तद्वस्तूत्थापनं यत्तु वस्तु मायोपकल्पितम् ।

(इ) वस्तूत्थापन- माया द्वारा संरचित (उपस्थापित) वस्तु वस्तुस्थापन कहलाती है।।२८५पू.।।

यथा-

मायाचुञ्चुरथेन्द्रजिद्गणमुखे खड्गेन दीनाननां
सौमित्रे द्रुतमार्यपुत्र चकितां मां पाहि पाहीति च ।
क्रोशन्तीं व्यथिताशयां हनुमता मा मेति सन्तर्जितः
कण्ठे कैतवमैथिलीं कुपितधीश्छिच्छेद तुच्छाशयः ।।194।।

अत्र निकुम्भिलायामभिचारं चिकीर्षुणेन्द्रजिता राघवादिबुद्धिप्रमोषार्थमाया-कल्पितमैथिलीकण्ठखण्डनं कृतमिति वस्तूत्थापनम् ।

जैसे-

हनुमान के द्वारा 'मत मत' (मारो)- इस प्रकार डाटे जाते हुए कुपित बुद्धिवाले तथा तुच्छ आशय वाले माया में प्रख्यात इन्द्रजित (मेघनाद) ने खड्ग से भयभीत, 'हे लक्ष्मण! हे आर्यपुत्र (राम)! मेरी रक्षा करो रक्षा करो' इस प्रकार कहती हुई, थरथराती हुई और भय से चिल्लाती हुई माया के द्वारा बनायी गयी सीता को कण्ठ (गले) गले से काट दिया।।194।।

यहाँ नीच कार्यों के प्रति जादू के मन्त्रों के प्रयोग करने की इच्छा वाले मेघनाद द्वारा राम इत्यादि की बुद्धि को भ्रमित करने के लिए माया द्वारा बनायी गयी सीता के गले का खण्डन किया- यह वस्तूत्थापन है।

अथ सम्फेटः-

सम्फेटः स्यात्समाघातः कृतसंरम्भयोर्द्वयोः ।।२८५।।

(ई) सम्फेट- युद्ध करने वाले दो (व्यक्तियों) का (एक दूसरे पर आघात (प्रहार)

करने को सम्फेट कहा जाता है॥२८५उ.॥

यथा (रघुवंशे ७/५२)-

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां
तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित् ।
व्यश्वौ गदाव्यायतसम्प्रहारौ
भग्नायुधौ बाहुर्विमर्दनिष्ठौ ॥195॥

जैसे (रघुवंश ७.५२ में)-

कोई दो योद्धा अपने दो सारथियों के मारे जाने पर स्वयं रथ को हाँकते हुए युद्ध करने लगे पर जब उनके घोड़े भी कट गये तब वे योद्धा गदा युद्ध करने लगे, बाद में गदा के भी टूट जाने पर मल्ल युद्ध करने लगे॥195॥

आसां च मध्ये वृत्तिनां शब्दवृत्तीस्तु भारती ।
तिस्रोऽर्थवृत्तयः शेषास्तच्चतस्रो हि वृत्तयः ॥२८६॥

इन वृत्तियों में भारती वृत्ति शब्दवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त शेष (कैशिकी, सात्त्वती और आरभटी) तीन वृत्तियाँ अर्थवृत्तियाँ हैं। इस प्रकार चार वृत्तियाँ होती है॥२८६॥

अन्योऽन्यमिश्रणादासां वृत्तिं च पञ्चमीम् ।
अशेषरससामान्यां मन्यते लक्षयन्ति च ॥२८७॥

सभी रसों के लिए सामान्य इन वृत्तियों में एक दूसरे के मिश्रण के कारण पञ्चम वृत्ति मानी जाती है और लक्षण भी किया जाता है॥२८७॥

यथा (शृङ्गारप्रकाशे)-

'यत्रारभट्यादिगणाः समस्ताः
मिश्रत्वमाश्रित्य मिथः प्रथन्ते ।
मिश्रेति तां वृत्तिमुशन्ति धीराः
साधारणीं वृत्तिचतुष्टयस्य ॥इति॥

जैसा कि शृङ्गारप्रकाश में कहा गया है-

जहाँ आरभटी इत्यादि (वृत्तियों) के सभी गुण परस्पर मिश्रित होकर विस्तार को प्राप्त होते हैं चारों वृत्तियों में साधारण उस (वृत्ति) को आचार्य लोग मिश्रा वृत्ति कहते हैं।

तत्रविचारसहम् । कुतः तत् किं वृत्तिधर्मणां मिश्रणमैकरूपेण, न्यूनाधिकभावेन वा। न प्रथमः, अवैषम्येन मिश्रणाभावात्। तथा मिश्रणे तु मिश्रवृत्तिव्यङ्ग्यो रसोऽपि मिश्रो न्यूनाधिकः प्रसज्येत। वृत्तीनां च रसविशेषनियमस्य वक्ष्यमाणत्वात्। ननु मिश्रा वृत्तिः सर्वरस-साधरणीति चेद् । न। भारतीप्रभृतीनां नियतविषयत्वात्। मूलप्रमाणाभावेन स्वोक्तिमात्रत्वाच्च।

नापि द्वितीयः। वैषम्येण वृत्तिगुणानां मिश्रणे यत्र यद्वृत्तिप्रत्यभिज्ञाहेतुभूता बहवो गुणा लक्ष्यन्ते, तत्र सैव वृत्तिरिति निश्चयात्। ननु तत्र प्रकरणादिवशेनरसविशेष-व्यक्तिरिति चेत्, तर्हि प्रस्तुतरसानुरोधेनैव वृत्तिविशेषनिर्धारणमप्यङ्गीकर्त्तव्यमेव।

तथा च भरतः (नाट्यशास्त्रे)-

किन्तु (शृङ्गारप्रकाश के कर्त्ता का) यह विचार सहन करने (मानने) योग्य नहीं है क्योंकि इन वृत्तियों के धर्मों का मिश्रण १. समान रूप से बराबर बराबर होगा या २. न्यूनाधिक भाव से। इनमें से बराबर-बराबर मिश्रण का अभाव होने से प्रथम (समानरूप से मिश्रण की) बात प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि वृत्तियों का रस-विशेष में प्रयोग के नियम का कथन हुआ है और मिश्र वृत्तियों से व्यञ्जित होने वाला रस भी न्यूनाधिक्य भाव से मिश्रित होकर प्राप्त होता है। **शङ्का-** यहाँ यह प्रश्न हो सकता कि मिश्रा वृत्ति सभी (रसों) में सामान्य रूप से प्रयुक्त होती है अतः समान मिश्रण हो सकता है। **(समाधान)-** ऐसी बात नहीं है। भारती इत्यादि वृत्तियों का (रस विशेष से) नियमित होने के कारण मिश्रावृत्ति का सभी रसों में सामान्य रूप से प्रयुक्त होने का कथन मूलप्रमाण के अभाव होने से स्वोक्तिमात्र (केवल अपना कथन) हो सकता है। (न्यूनाधिकभाव से वृत्तियों के मिश्रण की) द्वितीय बात भी नहीं हो सकती क्योंकि न्यूनाधिक्य की विषमता से वृत्ति के गुणों के मिश्रण में जिस वृत्ति का अभिज्ञान के हेतुभूत अनेक गुण दिखलायी पड़ते हैं, वहाँ वहीं वृत्ति निश्चित होती है। **(शङ्का)** यदि वहाँ प्रकरणवश रस-विशेष की अभिव्यक्ति हो तो (वहाँ क्या करना चाहिए)। **(समाधान)** वहाँ विशेष निर्धारण को स्वीकार कर लेना चाहिए। जैसा कि भरत ने कहा है-

भावो वापि रसो वापि प्रवृत्तिर्वृत्तिरेव वा।
सर्वेषां समवेतानां यस्य रूपं भवेद् बहु ।।
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषा सञ्चारिणो मताः ।।इति।।

"भाव, रस, प्रवृत्ति अथवा वृत्ति, इन सभी के इकट्ठा होने पर जिसके अनेक रूप हो जाते हैं, उसे स्थायी रस मानना चाहिए। इससे अन्य शेष सभी भाव सञ्चारीभाव कहे गये हैं।"

एतच्च शृङ्गारग्रहणं तज्जन्यानां हास्यादीनामुपलक्षणार्थम्। अतश्च शृङ्गारहास्ययोः कैशिकी वीराद्भुतयोः सात्त्वती। रौद्रबीभत्सभयानकानां चारभटीति नियमः प्रतीयते।

शृङ्गार इत्यादि का ग्रहण उस (शृङ्गार) से उत्पन्न हास्य इत्यादि का उपलक्षण (द्योतित करने वाला) है। अतः शृङ्गार और हास्य रस में कैशिकी, वीर और अद्भुत रस में सात्त्वती तथा रौद्र, बीभत्स और भयानक रस में आरभटी वृत्ति के होने का नियम प्रतीत होता है।

तथा च भरतः (नाट्यशास्त्रे (२०.७३,७४))-

शृङ्गारं चैव हास्यं च वृत्तिः स्यात्कैशिकी श्रिता ।
सात्त्वती नाम विज्ञेया रौद्रवीराद्भुताश्रया ।।

भयानके च बीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत् ।
भरती चापि विज्ञेया करुणाद्भुतसंश्रया ।।इति।।

अत्र सात्त्वत्या रौद्रानुप्रवेशकथनं रौद्रप्रतिभटस्य युद्धवीरस्यैव संल्लापादिभिः सात्त्वतीभेदैः परिपोषणं, न तु दानवीरदयावीरयोरिति ज्ञापनार्थम्। तस्मान्न नियमविरोधः। भारत्याश्च करुणाद्भुतविषयत्वकथनं तयोः प्रायेण वागारम्भमुखेन परितोष इति ज्ञापनार्थम्। तेन भारत्याः सर्वसाधारण्यमुपपन्नमेव।

जैसा कि भरत ने (नाट्यशास्त्र में) कहा है-

शृङ्गार और हास्य (रस) में कैशिकी वृत्ति समाश्रित होती है। वीर और अद्भुत (रस) सात्त्वती नामक वृत्ति समाश्रित होती है। भयानक बीभत्स और रौद्र (रस) में आरभटी वृत्ति तथा करुण और अद्भुत (रस) में भारती (वृत्ति) समाश्रित होती है।

यहाँ सात्त्वती (वृत्ति) का रौद्र (रस) में अनुप्रवेश का कथन रौद्र योद्धाओं का युद्धवीर के ही संल्लाप इत्यादि सात्त्वती के भेद से परिपुष्ट होता है, न कि दानवीर और दयावीर के ज्ञापन के लिए। इस कथन के कारण रस-विषयक वृत्तियों के नियम का विरोध नहीं है। भारती वृत्ति का करुण और अद्भुत (रस)-विषयक कथन उन (करुण और अद्भुत) दोनों की वाणी से उत्पन्न होने से परिपुष्ट होने को सूचित करने के लिए हुआ है। अत: भारती वृत्ति का सभी रसों के लिए सामान्य होना प्राप्त हो ही जाता है।

केचित्तु तमिमं श्लोकं भारतीयं नियामकम् ।।२८९।।
प्राधिकाभिप्रायतया व्याचक्षाणा विचक्षणाः ।।
आसां रसे तु वृत्तीनां नियमं नानुमन्यते ।।२९०।।

कुछ विद्वान् (भरत) के इस श्लोक को भरत का नियामक (नियमन करने वाला) मानते हैं।।२८९उ.।।

किन्तु कुछ अत्यधिक तात्पर्य-पूर्वक व्याख्या करने वाले विचक्षण (विद्वान्) इन वृत्तियों के रस-नियम को नहीं मानते।।२९०।।

अथैतासां रसनियमः-

कैशिकी स्यात्तु शृङ्गारे रसे वीरे तु सात्त्वती ।
रौद्रबीभत्सयोवृत्तिर्नियतारभटी पुनः ।।२८८।।
शृङ्गारादिषु सर्वेषु रसेष्वष्टैव भारती ।

इन वृत्तियों का रसनियम- शृङ्गार रस में कैशिकी, वीर रस में सात्त्वती तथा रौद्र, और बीभत्स रस में आरभटी वृत्ति होती है- ऐसा निश्चय किया गया है। शृङ्गार इत्यादि सभी रसों में भारती वृत्ति होती है।।२८८-२८९पू.।।

तथा च–

कैशिकीत्यनुवृतौ रुद्रटः (शृङ्गारतिलके ३.५४)–

शृङ्गारहास्यकरुणरसातिशयसिद्धये ।
एषा वृत्तिः प्रयत्नेन प्रयोज्या रसकोविदैः ।।इति।।

जैसा कि–

कैशिकी वृत्ति के प्रयोग के विषय में (शृङ्गारतिलक में) रुद्रट का मत– शृङ्गार, हास्य तथा करुण (रस) की अतिशयता की सिद्धि के लिए रस के विशेषज्ञों को इस कैशिकी वृत्ति का प्रयोग सप्रयत्न करना चाहिए।

विचारसुन्दरो नैष मार्गो स्यादित्युदास्महे ।

शिङ्गभूपाल का मत– किन्तु यह रुद्रट का विचार समुचित नहीं है इसलिए शिङ्गभूपाल इस विषय में उदासीन है।।२९१पू.।।

कैशिकीवृत्तिभेदानां नर्मादीनां प्रकल्पनम् ।।२९१।।
यतः करुणमाश्रित्य रसाभासत्ववारणम् ।
रसाभासप्रकरणे वक्ष्यते तदिदं स्फुटम् ।।२९२।।

नर्म इत्यादि कैशिकी वृत्ति के भेदों की प्रकल्पना यहाँ की गयी है क्योंकि करुण का आश्रय लेकर (इससे) रसाभास का विरोध करने वाला है। इसीलिए रसाभास के प्रसङ्ग में यह स्पष्ट रूप से कहा जाएगा।।२९१उ.-२९२।।

तत्तन्यायप्रवीणेन न्यायमार्गानुवर्तिना ।
दर्शितं शिङ्गभूपेन स्पष्टं वृत्तिचतुष्टयम् ।।२९३।।

इस प्रकार (नाट्य) मार्ग के प्रवीण (विशेषज्ञ) (नाट्य) मार्ग का अनुवर्तन करने वाले शिङ्गभूपाल द्वारा स्पष्ट रूप से चार वृत्तियों को दिखाया गया है।।२९३।।

अथ प्रवृत्तयः–

तत्तद्देशोचिता भाषा क्रिया वेषा प्रवृत्तयः ।

३. प्रवृत्तियाँ– स्थान विशेष के लिए उचित भाषा, क्रिया, और वेष प्रवृत्तियाँ कहलाती है।।२९४उ.।।

तत्र भाषा द्विधा भाषा विभाषा चेति भेदतः ।।२९४।।

भाषा– भाषा और विभाषा भेद से भाषा दो प्रकार की होती है।।२९४पू.।।

तत्र भाषा सप्तविधा प्राच्यावन्त्या च मागधी ।
बाल्हिका दाक्षिणात्या च शौरसेनी च मालवी ।।२९५।।

(अ) भाषा के भेद– भाषा सात प्रकार की होती है- प्राच्या, अवन्त्या, मागधी, बाल्हिका, दक्षिणात्या, शौरसेनी और मालवी॥२९५॥

सप्तधा स्याद् विभाषापि शबरद्रमिडान्ध्रजाः ।
शकाराभीरचण्डालवनेचरभवा इति ॥२९६॥

(आ) विभाषा के भेद– विभाषा भी सात प्रकार की होती है- शबर, द्रमिल, आन्ध्री, शकारी, आभीर, चाण्डाल और वनेचरी॥२९६॥

भाषा विभाषाः सन्त्यन्यास्तत्तद्देशजनोचिताः ।
तासामनुपयोगित्वान्नात्र लक्षणमिष्यते ॥२९७॥
तत्तद्देशोचिता वेषाः क्रियाश्चातिस्फुटान्तरा ।

इनके अतिरिक्त अन्य भी तत्तत् स्थान-विशेष में बोली जाने वाली भाषाएँ और विभाषाएँ है। उनकी उपयोगिता न होने के कारण उनका यहाँ लक्षण नहीं कहा जा रहा है॥२९७॥

तत्तत् स्थान के यथोचित वेष और क्रियाओं में तो अन्तर स्पष्ट है॥२९८पू.॥

अथ सात्त्विकाः–

अन्येषां सुखदुःखादिभावनाकृत भावनम् ॥२९८॥
आनुकूल्येन यच्चित्तं भावकानां प्रवर्त्तते ।
सत्वं तदिति विज्ञेयं प्राज्ञैः सत्त्वोद्भवानिमान् ॥२९९॥
सात्विका इति जानन्ति भरतादिमहर्षयः ।
सर्वेषामपि भावानां यैः सत्त्वं परिभाव्यते ॥३००॥
ते भावा भावतत्त्वज्ञैः सत्त्विकाः समुदीरिताः ।

सात्त्विक भाव– दूसरों के सुख और दुःख इत्यादि की भावना से किया गया भाव जो अनुकूलता से भावक के चित्त को प्रवर्तित (भावित करता है) वह सत्त्व कहलाता है। सत्त्व से उत्पन्न उस भाव को भरत इत्यादि महर्षि सात्त्विक भाव समझते हैं। जिनके द्वारा सभी भावों का सत्त्व सम्यक् रूप से प्रकट होता है, वे भाव भावतत्त्वज्ञों द्वारा सात्त्विक भाव कहे गये हैं॥२९८उ.-३०१पू.॥

ते स्तम्भस्वेदरोमाञ्चः स्वरभेदश्चवेपथुः ॥३०१॥
वैवर्ण्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ परिकीर्त्तिताः ।

आठ सात्त्विक भाव– १.स्तम्भ, २.स्वेद, ३.रोमाञ्च, ४.स्वरभेद, ५.वेपथु (कम्पन), ६.वैवर्ण्य, ७.अश्रु और ८.प्रलय (चेतना विहीनता)— ये आठ सात्त्विक भाव कहे गये हैं॥३०१उ.-३०२पू.॥

विमर्श- दूसरे के सुख-दुःख इत्यादि में अपने अन्तःकरण को उसके अनुकूल अर्थात् तन्मय बना लेने का नाम सत्त्व है। जैसा आचार्य भरत ने कहा है— मन से उत्पन्न होने वाले भाव सत्त्व कहलाते हैं और वह सत्त्व मन के समाहित (एकाग्र) होने पर उत्पन्न होता है। इस मन का सत्त्व यही है कि इसके द्वारा दूसरे के सुख या दुःख में हर्षित या खिन्न होकर भावक में रोमाञ्च तथा अश्रु आदि स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। उस सत्त्व से उत्पन्न होने के कारण ये सात्त्विक होते हैं और उनसे उत्पन्न होने के कारण ये भाव सात्त्विक भाव कहलाते हैं।

तत्र स्तम्भः-

स्तम्भो हर्षभयामर्षविषादाद्भुतसम्भवः ।।३०२।।
अनुभावाः भवन्त्येते स्तम्भस्य मुनिसम्मताः ।
संज्ञाविरहितत्वं च शून्यता निष्प्रकम्पता ।।३०३।।

१. स्तम्भ- हर्ष, भय, अमर्ष, विषाद, अद्भुत से उत्पन्न सात्त्विकभाव स्तम्भ कहलाता है। संज्ञा से रहितता और शून्यता स्तम्भ के अनुभाव हैं- ऐसा मुनियों का मत है।।३०२उ.-३०३।।

हर्षाद् यथा (नैषधचरिते १४/५६)-

स्तम्भस्तथालम्भितमां नलेन
भैमीकरस्पर्शमुदः प्रसादः ।
कन्दर्पलक्षीकरणार्पितस्य
स्तम्भस्य दम्भं स चिरं यथापत् ।।196।।

अत्र नलस्य दमयन्तीकरस्पर्शहर्षेण स्तम्भः।

हर्ष से स्तम्भ जैसे (नैषधचरित १४.५६ में)-

नल द्वारा भीमसुता (दमयन्ती) के कर-स्पर्श से उत्पन्न हर्ष का प्रसाद स्तम्भ (सात्त्विकभाव की निश्चलता) उस रूप में प्राप्त किया गया जिस रूप से वे नल काम की लक्ष्य-सिद्धि के अभ्यास-काल में बाणों के लक्ष्य रूप में स्थापित खम्भे की समानता को चिरकाल तक प्राप्त होते रहे।।196।।

यहाँ नल का दमयन्ती की भुजा के स्पर्श से हुए हर्ष के कारण स्तम्भ है।

भयाद् यथा-

इन्द्रजिद्बाणसम्भीतास्तथा तस्थु वलीमुखाः ।
यथायं रणसंरम्भाद् विरतो मृतशङ्कया ।।197।।

अत्र मृतशङ्कयेति निष्प्रकम्पत्वद्योतनात् स्तम्भः ।

भय से स्तम्भ जैसे-

मेघनाथ के बाण से डरे हुए (राम के) प्रमुख सैनिक उसी प्रकार स्थित (खड़े) हो गये

जैसे ये मरने की शङ्का के कारण युद्ध की भीषणता से विरत (अलग) हो गये हों।।197।।

यहाँ मरने की शङ्का के कारण निष्प्रकम्प (स्थिरता) द्योतित होने से स्तम्भ है।

अमर्षाद् यथा–

आलोक्य दुःशासनमग्रतोऽपि
प्रवृद्धरोषातिभरान्धचेताः ।
भीमः क्षणं शून्य इवावतस्थे
चित्तं निरुन्धे हि महान् विकारः ।।198।।

अत्र दुश्शासनविलोकनप्रवृद्धेनामर्षोत्कर्षेण भीमस्यात्मविस्मरणकथनादयममर्षेण स्तम्भः।

अमर्ष से स्तम्भ जैसे–

दुःशासन को सामने देख कर बढ़े हुए रोष के कारण अन्धकार-युक्त चित्त वाले भीम क्षण भर के लिए शून्य के समान (निश्चल) हो गये और मन को रोक लिया क्योंकि (उनमें) महान् विकार (उत्पन्न) हो गया।।198।।

यहाँ दुःशासन के देखने से बढ़े हुए अमर्ष के उत्कर्ष से भीम के आत्मविस्मरण का कथन होने के कारण यह अमर्ष से स्तम्भ है।

विषादाद् यथा–

यदत्र चिन्ताततिपाशजालैर्मुकुन्दगन्धद्विरदो बबन्धे ।
तेनारविन्दोदरमन्दिराया दशां तनुः स्तम्भमयीमवाप ।।199।।

अत्र पुरुषोत्तममानवाप्तिजनितेन विषादेन लक्ष्म्याः स्तम्भः।

विषाद से स्तम्भ जैसे–

यहाँ जो चिन्ता की सन्तान (समूह) रूपी पाशजाल के द्वारा विष्णु रूपी मतवाली हाथी बँध गया उस कारण से कमल का उदर (अन्तर्भाग) है घर जिसका ऐसी (लक्ष्मी) का शरीर जड़ता युक्त दशा को प्राप्त हो गया ।।199।।

यहाँ पुरुषोत्तम (विष्णु) के मान प्राप्त होने से उत्पन्न विषाद के कारण लक्ष्मी का स्तम्भ है।

अद्भुताद् यथा (रघुवंशे १५/६६)–

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली ।।200।।

अत्र कुशलवगीतमाधुर्यातिशयेन श्रवणैकाग्रतारूपविस्मयेन स्तम्भः।

अद्भुत से स्तम्भ जैसे (रघुवंश १५.६६ में) –

सारी सभा मौन होकर उनका गीत सुनती जा रही थी और सीता-स्मरण से आँखों से आँसू बहाती जा रही थी। उस समय वह सभा प्रातःकाल की उस वनस्थली के समान दिखाई देने

लगी, जिसमें वृक्षों से टप-टप ओस की बूँदे गिर रही हों।।200।।

यहाँ लव और कुश की गीत के आतिशय माधुर्य से सुनने में एकाग्रतारूपी विस्मय के कारण स्तम्भ है।

अथ स्वेदः-

निदाघहर्षव्यायामश्रमक्रोधभयादिभिः ।
स्वेदः सञ्जायते तत्र त्वनुभावाभवन्त्यमी ।।३०४।।
स्वेदापनयवातेच्छाव्यजनग्रहणादयः ।

२. **स्वेद-** धूप, हर्ष, व्यायाम, श्रम, क्रोध, भय इत्यादि के कारण स्वेद (पसीना) उत्पन्न होता है (निकलता है)। उसमें पसीने का पोछना, हवा की इच्छा करना, पंखा लेना इत्यादि अनुभाव होते हैं।।३०४-३०५पू.।।

निदाघाद् यथा-

करैरुपात्तान् कमलोत्करेभ्यो
निजैर्विवस्वान् विकचोदरेभ्यः ।
तस्याः निचिक्षेप मुखारविन्दे
स्वेदापदेशान्मकरन्दबिदून् ।।201।।

धूप से स्वेद जैसे-

सूर्य ने उस (नायिका के) मुखरूपी कमल पर पसीनों की बूँदों के रूप में मानों विकसित पंखुड़ियों वाले कमलों के समूह से अपनी किरणों द्वारा बटोरे गये पराग कणों को डाल दिया।।201।।

हर्षाद् यथा-

सख्या कृतानुज्ञमुपेत्य पश्चाद्
धून्वन् शिरोजान् करजैः प्रियायाः ।
अनार्द्रयन्नाननवायुनापि
स्विन्नान्तरानेव चकार कश्चित् ।।202।।

अत्रोभयोरन्योऽन्यस्पर्शहर्षेण स्वेदः।

हर्ष से स्वेद जैसे-

सखी के द्वारा अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् कोई (नायक) समीप में जाकर अपने हाथों के नाखूनों से प्रिया के सिर के बालों के धूनता हुआ तथा (अपने) मुख की हवा से (उसके पसीने को) सुखाता हुआ पसीने से रहित ही कर दिया।।202।।

यहाँ (नायक और नायिका) दोनों के परस्पर स्पर्श के हर्ष के कारण स्वेद है।

व्यायामाद् यथा (शिशुपालवधे ७/७४)-

गत्वोद्रेकं जघनपुलिने रुद्धमध्यप्रदेशः
क्रामन्नूरुद्रुमभुजलताः पूर्णनाभिह्रदान्तः ।
उल्लङ्घ्योच्चैः कुचतटभुवं प्लावयन्रोमकूपान्
स्वेदापूरो युवतिसरितां प्राप गण्डस्थलानि ।।203।।

अत्र कुसुमापचयपर्यटनेन व्यायामेन स्वेदः ।

व्यायाम से स्वेद जैसे (शिशुपालवध ७/७४ में)-

युवतिरूपिणी नदियों का स्वेद-प्रवाह जघनरूपी तटप्रदेश में बढ़कर, मध्यप्रदेश (युवतियों का कटिभाग, पक्षान्तर-जल बहने का स्थान) को रोककर नाभिरूपी तडाग के मध्यभाग को पूर्ण कर ऊँचे-ऊँचे स्तनरूपी दोनों तटों की भूमि को लाँघकर रोमच्छिद्रों (पक्षान्तर कूपों) को प्लावित करता हुआ गण्डस्थलों (पक्षन्तार ऊँचे भूमि प्रदेशों) पर फैल गया।।203।।

श्रमोरत्यादिपरिश्रान्तिः।

श्रम का अर्थ है— रति इत्यादि से उत्पन्न थकावट।

तस्माद् यथा-

मञ्चेषु पञ्चेषु समाकुलानां
वाताय वातायनसंश्रितानाम् ।
स्विन्नानि खिन्नानि मुखान्यशंसन्
सम्भोगमम्भोरुहलोचनानाम् ।।204।।

उस थकावट से स्वेद जैसे-

शय्या पर काम-क्रीडा से व्याकुल (अत एव) हवा खाने के लिए खिडकियों पर शरण (आश्रय) लेने वाली नेत्र रूपी कमल से युक्त (कमलनयनी तरुणियों) के पसीने से तर खिन्न मुख सम्भोग की प्रशंसा करने लगे।।204।।

आदिशब्दाद् गीतनृत्तश्रान्त्यादयः ।

रति इत्यादि में प्रयुक्त इत्यादि शब्द से नृत्य, गीत इत्यादि से भी स्वेद को समझना चाहिए।

गीतश्रान्त्या यथा (कुमारसम्भवे ३/३८)-

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः
किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम् ।
पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभं
प्रियामुखं किम्पुरुषश्चुचुम्ब ।।205।।

गीतश्रान्ति जैसे (कुमारसम्भव ३.३८ में)-

किन्नर लोग गाते-गाते बीच ही में रुककर पसीने के कारण कुछ-कुछ बिगड़ी हुई पत्र-रचना से युक्त तथा मद्यपान के कारण लाल नेत्रों से और भी सुशोभित होने वाली अपनी प्रियतमा (किन्नरियों) का मुख चूमने लगे।।205।।

नृत्तश्रान्त्या यथा (रघुवंशे १९/१५)-

चारुनृत्तविगमे च तन्मुखं स्वेदभिन्नतिलकं परिश्रमात् ।
प्रेमदत्तवदनानिलं पिबन्नत्यजीवदमरालकेश्वरौ ।।206।।

नृत्य की थकान से स्वेद जैसे (रघुवंश १९.१५ में)-

जब नृत्य समाप्त हो जाता था और नाचने के परिश्रम से नर्तकियों के मुख पर पसीने की बूँदे छा जाती थीं तब राजा अग्निवर्ण प्रेमपूर्वक मुख से फूँक लगा कर उनके मुख को चूमने लगता था, उस समय वह अपने को इन्द्र एवं कुबेर से भी बढ़ कर सुखी तथा भाग्यवान् समझता था।।206।।

क्रोधाद् यथा (शिशुपालवधे २.१८)-

दधत्सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः ।
द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः ।।207।।

क्रोध से स्वेद जैसे (शिशुपालवध २.१८ में)-

सायंकालीन लाल आकाश में नक्षत्रों का अनुकरण करने वाली, शत्रु के विषय में उत्पन्न क्रोध से लाल वर्ण वाले, शरीर से उत्पन्न पसीने की बूँदों को धारण करते हुए बलराम जी बोले।।207।।

भयाद् यथा ममैव (रसार्णवसुधाकरे १.१३)-

कृतान्तजिह्वाकुटिलां कृपाणीं
दृष्ट्वा यदीयां त्रसतामरीणाम् ।
स्वेदोदयश्चेतसि सञ्चितानां
मानोष्मणामातनुते प्रशान्तिम् ।।208।।

भय से स्वेद जैसे शिङ्गभूपाल का ही (रसार्णवसुधाकर १.१३)-

यमराज की जिह्वा के समान कुटिल भुजाली को देखकर भयभीत शत्रुओं के चित्त में सञ्चित अत एव उत्पन्न पसीना मान रूपी ताप को शान्त करता था।।208।।

अथ रोमाञ्चः-

रोमाञ्चो विस्मयोत्साहहर्षाद्यैस्तत्र विक्रिया ।।३०५।।
रोमोद्गमोल्लासघनगात्रसंस्पर्शनादयः ।

३. **रोमाञ्च–** विस्मय, उत्साह, हर्ष इत्यादि से रोमाञ्च होता है। उसमें रोएँ का खड़ा हो जाना, उल्लास, गात्र का गाढ़ स्पर्श इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं॥३०५उ.-३०६पू.॥

विस्मयेन यथा–

राघवस्य गुरुसारनिर्भरप्रौढिमाजगवभञ्जनोद्भटम् ।
दोर्बलं श्रुतवतः सभान्तरे रोमहर्षणमभूत् पिनाकिनः ।।209।।

विस्मय से रोमाञ्च जैसे–

सभी के बीच में श्रीराम के श्रेष्ठ बलसम्पन्न और आजगव धनुष के भञ्जन से उत्कृष्ट भुजबल (भुजाओं के बल) को सुनते हुए शङ्कर जी को (विस्मय के कारण) रोमाञ्च हो गया।।209।।

उत्साहेन यथा–

अन्त्रैः स्वैरपि संयताग्रचरणो मूर्च्छाविरामक्षणे
स्वाधीनव्रणिताङ्गशस्त्रविवरे रोमोद्गमं वर्मयन् ।
भग्नानुद्बलयन्निजान् परभटानातर्जयन्निष्ठुरं
धन्यो धाम जयश्रियः पृथुरणस्तम्भे पताकायते ।।210।।

अत्रोत्साहेन रोमाञ्चः।

उत्साह से रोमाञ्च जैसे–

(युद्ध स्थल पर) मूर्च्छा के कारण विश्राम के समय में अपनी बाहर निकली हुई अँतड़ियों के कारण अपने पैरों को आगे से स्थिर करके और शस्त्र घूसने के कारण बने हुए छिद्र से रक्त बहते हुए अङ्गों को अपने वश में करते हुए रोमाञ्च को कवच बनाता हुआ तथा अपने घायल योद्धाओं को घेरते हुए और निष्ठुरतापूर्वक डाँटता हुआ (वह) विजय-लक्ष्मी का घर (रूपी योद्धा) धन्य है (जो) भीषण युद्धरूपी खम्भे पर पताका (ध्वजा) के समान लहरा रहा है।।210।।

यहाँ उत्साह के कारण रोमाञ्च है।

हर्षेण यथा (नैषधचरिते १४/५०)–

रोमाणि सर्वाण्यपि बालभावा-
द्वरश्रियं वीक्षितुमुत्सुकानि ।
तस्यास्तदा कोरकिताङ्गयष्टे-
रुद्ग्रीविकादानमिवान्वभूवन् ।।211।।

हर्ष से जैसे (नैषधचरित १४/५० में)–

उस समय पुलकित देहयष्टि वाली उस (दमयन्ती) के बालभाव (अर्थात् शिशु होने और केश होने) के कारण दूल्हा (नल) की शोभा देखने के लिए उत्सुक सम्पूर्ण ही रोम उद्ग्रीवता के आदान (अर्थात् ऊँची गर्दन कर उचकने की स्थिति) का अनुभव- सा कर रहे थे।।211।।

अथ स्वरभेदः-

वैस्वर्यं सुखदुःखाद्यैस्तत्र स्युर्गद्गदादयः ।।३०६।।

४. स्वरभेद- सुख,दुःख इत्यादि के कारण गद्गदादि विस्वरता होती है।।३०६उ.।।

सुखेन यथा-

पश्येम तं भूय इति ब्रुवाणां
सखीं वचोभिः किल सा ततर्ज ।
न प्रीतिकर्णेजपतां गतानि
भूयो बभूवुः स्वरवैकृतानि ।।212।।

अत्र प्रियसंस्मरणजनितेन हर्षेण भूयो वैस्वर्यम् ।

सुख से स्वरभेद जैसे-

"उस (नायक) को मैं फिर देखूँगी" इस प्रकार कहती हुई सखी को उस (नायिका) ने अपने वचनों से डाँट दिया और फिर स्वर में हुए विकार (भेद) कर्णों को प्रिय लगने वाले जपत्व को प्राप्त हुए (अर्थात् जिस प्रकार देवताओं को तत् -सम्बन्धी जप प्रिय होता है उसी प्रकार उस नायिका के स्वर में हुआ विकार प्रियता को प्राप्त किया)।।212।।

यहाँ प्रियतम के संस्मरण से उत्पन्न हर्ष से विस्वरता है।

दुःखेन यथा (रघुवंशे ८/४३)-

विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ।।213।।
यहाँ प्रियतम के स्मरण से उत्पन्न हर्ष के कारण स्वर भेद है।

दुःख से स्वरभेद जैसे (रघुवंश ८.४३ में)-

वे अज अपने स्वाभाविक धैर्य को छोड़कर आँसू से गद्गद होकर विलाप करने लगे, जब अचेतन लोहा भी अग्नि में तपाये जाने पर पिघल जाता है तब शोक से सन्तप्त प्राणियों का क्या कहना है?।।213।।

अथ वेपथुः-

वेपथुर्हर्षसन्त्रासजराक्रोधादिभिर्भवेत् ।
तत्रानुभावाः स्फुरणगात्रकम्पादयो मताः ।।३०७।।

५. वेपथु (कम्पन)- वेपथु (कम्पन) हर्ष, भय, बुढ़ापा, क्रोध इत्यादि से उत्पन्न होता है। उसमें अङ्गों का फड़कना तथा काँपना इत्यादि अनुभाव कहे गये हैं।।३०७।।

हर्षेण त्रासेन यथा-

तदङ्गमानन्दजडेन दोष्णा

पिता सबाणव्रणमामर्श ।
निःश्वस्य निःश्वस्य मुहुश्च दीर्घं
प्रसूः कराभ्यां भयकम्पिताभ्याम् ।।214।।

हर्ष और भय से कम्पन जैसे-

आनन्द के कारण जड़ीभूत भुजाओं के अग्रभाग से पिताजी ने बाण के घाव वाले उस अङ्ग का स्पर्श किया और बार-बार लम्बी श्वाँस ले लेकर माताजी ने भय के कारण काँपती हुई अपनी भुजाओं से (स्पर्श किया)।।214।।

जरया यथा (कुवलयावल्याम् ३.१)-

रुद्धानया बहुमुखी गतिरिन्द्रियाणां
बद्धेव गाढमनया जरयोपगूढः ।
अङ्गेन वेपथुमता जडतायुजाहं
गन्तुं पदादपि पदं गदितुं च नालम् ।।215।।

बुढ़ापा से कम्पन जैसे (कुवलयावली ३.१ में)-

मानो बुढ़ापा के साथ गूढ़ आलिङ्गन से युक्त (अर्थात् अत्यधिक वृद्ध हो गया हूँ) और इस (बुढ़ापा) के द्वारा मेरी इन्द्रियों की अनेक प्रकार वाली बहुमुखी=अनेक विषयों की ओर दौड़ने वाली) गति अवरुद्ध हो गयी है (इसलिए) जड़ता से युक्त काँपते हुए अङ्ग के कारण मैं एक पग से दूसरे पग तक चलने में और कुछ कहने में समर्थ नहीं हूँ।।215।।

क्रोधेन यथा-

रुषा समाध्मातमृगेन्द्रतुङ्गं
न केवलं तस्य वपुश्चकम्पे ।
ससिन्धुभूभृद्गगनाच पृथ्वी
निपातितोल्का च सतारका द्यौः ।।216।।

क्रोध से कम्पन जैसे-

उसके क्रोध से युक्त केवल (उसका) सिंह के समान उन्नत शरीर ही नहीं काँपने लगा प्रत्युत समुद्र, पहाड़ और आकाश के साथ पूरी पृथ्वी तथा उल्कापात और तारों के सहित द्युलोक (भी काँपने लगे)।।216।।

अथ वैवर्ण्यम्-

विषादातपरोषाद्यैर्वैवर्ण्यमुपजायते ।
मुखवर्णपरावृत्तिकार्श्याद्यास्तत्र विक्रियाः ।।३०८।।

६. **विवर्णता-** विषाद, धूप, रोष इत्यादि के कारण विवर्णता उत्पन्न होती है।

उसमें मुख का पीछे घुमाना, कृशता इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।३०८।।

विषादेन यथा (मालविकाग्निमित्रे ४/१६)-

शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलीयमाभाति परिमिताभरणा ।
माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता ।।217।।

विषाद से विवर्णता जैसे (मालकाविग्निमित्र ४.१६ में)-

इसका शरकाण्ड के समान पीतवर्ण कपोल, स्वल्पालङ्कारों से विभूषित शरीर ऐसा ज्ञात होता है मानो वसन्त ऋतु में पीले पत्तों वाली तथा कतिपय पुष्पों से युक्त कुन्दलता हो।।217।।

आतपेन यथा (किरातार्जुनीये ६.३)-

धूतानामभिमुखपातिभिः समीरै-
रायासादविशदलोचनोत्पलानाम् ।
आनिन्ये मदजनितां श्रियं वधूना-
मुष्णांशुद्युतिजनितः कपोलरागः ।।218।।

आतप (धूप) से विवर्णता जैसे (किरातार्जुनीय ६.३ में)-

मार्ग में प्रतिकूल वायु से अप्सराओं के अङ्ग शिथिल हो गए थे। थक जाने के कारण उनके कमलनयन मुरझा गये थे और गालों की अरुणिमा भी मिट गयी थी। धूप से व्याकुल होने के कारण उनके गाल पुनः लाल हो गये जिससे उनकी मदजनित शोभा फिर से वापस लौट आई।।218।।

रोषेण यथा (मालविकाग्निमित्रे ४.१६)-

कदा मुखं वरतनु कारणादृते
तवागतं क्षणमपि कोपपात्रताम् ।
अपर्वणि ग्रहकलुषेन्दुमण्डला
विभावरी कथय कथं भविष्यति ।।219।।

रोष से विवर्णता जैसे (मालविकाग्निमित्र ४.१६ में)-

अवसरशून्य अयोग्य स्थान में क्रोध करना तुम्हें शोभा नहीं देता। हे रमणीय गात्रि! बिना कारण के तुमने कब क्रोध का प्रकाशन किया? अर्थात् कदापि नहीं। पूर्णिमा के बिना ही राहु ग्रहण से चन्द्रमण्डल कलुषित हो जाय, ऐसी बात किस रात्रि में भला होती है? ।।219।।

अथाश्रु-

विषादरोषसन्तोषधूमाद्यैरश्रु तत्क्रियाः ।।
बाष्पबिन्दुपरिक्षेपनेत्रसम्मार्जनादयः ।।३०९।।

७. अश्रु- विषाद, रोष, सन्तोष, धूम (धुँआ) इत्यादि के कारण अश्रु (आँसू) निकलता है। उसमें आँसू की बूँदों का निकलना, आँखें पोछना इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।३०९।।

विषादेन यथा (मेघदूते २.३८)-

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ।।220।।

विषाद से अश्रु जैसे (मेघदूत १.४२ में)-

(हे प्रिये), प्रणय में कुपित तुम्हें गेरू आदि धातुओं के रंगों से प्रस्तर-खंड पर चित्रित करके जब भी तुम्हारे चरणों पर पड़ना चाहता हूँ तभी बार-बार उमड़ते हुए आँसुओं से मेरी आँखे डबडबा आती हैं। निर्दय दैव उस चित्र में भी हम दोनों के मिलन को नहीं बर्दाश्त करता।।220।।

रोषेण च यथा ममैव-

कान्ते कृतागासि पुरः परिवर्त्तमाने
सख्यं सरोजशशिनोः सहसा बभूव ।
रोषाक्षरं सुदृशि वक्तुमपारयन्त्या-
मिन्दीवरद्वयमवाप तुषारधाराम् ।।221।।

अत्र सापराधप्रियदर्शनजनितेन रोषेण मुग्धाया बाष्पोद्गमः।

रोष से अश्रु जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

(दूसरी नायिका के साथ सम्भोग करके) अपराध किये हुए (प्रियतम) के पास में आने पर प्रियतमा का (गोरा मुख) उसी प्रकार लाल हो गया जैसे कमलिनी और चन्द्रमा का साथ होने पर सफेद कमलिनी लाल वर्ण की हो जाती है। वह सुन्दर नेत्रों वाली अपनी क्रोधपूर्ण बात को न कह पाने के कारण उसकी दोनों कमल के समान आँखें आसुओं की धारा से भर गयी।।221।।

यहाँ (परनायिका के समागम का) अपराध करने वाले प्रिय को देखने से उत्पन्न रोष के कारण मुग्धा (नायिका) के आँसुओं का निकलना स्पष्ट है।

सन्तोषेण यथा (रघुवंशे १४.५३)-

आनन्दजः शोकजमश्रुबाष्प-
स्तयोरशीतं शिशिरो विभेद ।
गङ्गासरय्वोर्जलमुष्णतप्तं
हिमाद्रिनिष्यन्द इवावतीर्णः ।।222।।

अत्र चिरप्रोषितप्रत्यागतरामलक्ष्मणदर्शनानन्देन कौसल्यासुमित्रयोर्बाष्पः।

सन्तोष से अश्रु जैसे (रघुवंश १४.५३ में)–

जैसे गर्मी के दिनों में हिमालय का शीतल जल गङ्गा और सरयू के गर्म जल को ठण्डा कर देता है वैसे ही उन कौशल्या और सुमित्रा दोनों की आँखों से बहते हुए आनन्द के शीतल आँसुओं ने शोक के उष्ण आँसुओं को ठण्डा कर दिया।।222।।

यहाँ बहुत दिनों से दूर गये पुनः लौटने वाले राम और लक्ष्मण को देखने के आनन्द से कौशल्या और सुमित्रा का अश्रुपात हो रहा है।

धूमेन यथा–

अस्मिन्क्षणे कान्तमलक्ष्यत् सा
धूमाविलैरुद्गतबाष्पलेशैः ।
अन्तर्दलैरम्बुरुहामिवाद्रै-
रयत्नकर्णाभरणैरपाङ्गैः ।।223।।

अत्र विवाहधूमेन लक्ष्म्याः बाष्पोद्गमः।

धूम से अश्रु जैसे–

उस (लक्ष्मी) ने इस (विवाह के) समय (हवन की जाने वाली अग्नि के) धूएँ से पङ्किल (गन्दे) निकलते हुए बाष्पकणों वाले तथा कमल की पंखुड़ियों के समान बिना प्रयत्न के कानों तक गीले हुए आँखों के कोनों से प्रियतम (विष्णु) को देखा।।223।।

यहाँ विवाह में (हवन की जाने वाली अग्नि के) धूँऐ से लक्ष्मी का बाष्पोत्पत्ति (आँसू निकलना) वर्णित है।

अथ प्रलयः–

प्रलयो दुःखघाताद्यैश्चेष्टा तत्र विसंज्ञता ।

८. प्रलय– दुःख, घात इत्यादि से प्रलय (चेतनाविहीनता) होता है।।३१०पू.।।

दुःखेन यथा (रघुवंशे ८/३८)–

वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ।।224।।

अत्रेन्दुमतीविपत्तिजनितेन दुःखेनाजस्य प्रलयः।

दुःख से प्रलय जैसे (रघुवंश ८.३८ में)–

प्राणहीन होकर शरीर से गिरती हुई उस इन्दुमती ने अपने पति अज को भी गिरा दिया अर्थात् इन्दुमती के गिरते ही अज भी बेहोश होकर गिर गये। क्योंकि गिरते हुए तेल की बूँदों के साथ क्या दीपक की लौ पृथ्वी पर नहीं गिर पड़ती है।।224।।

यहाँ इन्दुमती (की मृत्यु) रूपी विपत्ति से उत्पन्न दुःख के कारण अज का प्रलय है।

घातेन यथा (रघुवंशे ७/४७)-

पूर्वं प्रहर्त्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी ।
तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकांक्ष ।।225।।

अत्र प्रतिभटप्रहारेणाऽश्वसादिनो मूर्च्छा।

घात से प्रलय जैसे (रघुवंश ७.४७ में)-

एक घुड़सवार ने अपने शत्रु घुड़सवार पर प्रहार किया जिससे वह घोड़े के कन्धे से झूल गया, उसमें अपना शिर उठाने की भी शक्ति नहीं रही। पहले प्रहार करने वाले घुड़सवार ने मूर्छित होने के कारण अपने ऊपर अस्त्र चलाने में असमर्थ उस शत्रु पर पुनः प्रहार नहीं किया प्रत्युत उसके जीने की इच्छा की (क्योंकि ऐसे शत्रुओं पर प्रहार करना निन्दित माना गया है।)।।225।।

यहाँ योद्धा के प्रहार से घुड़सवार-शत्रु की मूर्च्छा स्पष्ट है।

सर्वेऽपि सत्त्वमूलत्वाद्भावा यद्यपि सात्त्विकाः ।।३१०।।
तथाप्यमीषां सत्त्वैकमूलत्वात् सात्त्विकप्रथा ।

यद्यपि सत्त्वमूलक सत्त्व से उत्पन्न होने के कारण वे सभी भाव सात्त्विक हैं तथापि इनकी सत्त्वमूलकता के कारण ये सात्त्विक (भाव) कहलाते हैं।।३१०उ.-३११पू.।।

अनुभावाश्च कथ्यन्ते भावसंसूचनादमी ।।३११।।
एवं द्वैरूप्यमेतेषां कथितं भावकोविदैः ।

भाव की सूचना देने के कारण ये अनुभाव भी कहे जाते हैं। इसप्रकार भाव के ज्ञाताओं ने इनका दो रूप बतलाया है।।३११उ./३१२।।

अनुभावैकनिधिना सुखानुभवशालिना ।।३१२।।
श्रीशिङ्गभुभूजा साङ्गमनुभावा निरूपिता ।

इस प्रकार शिङ्गभूपाल ने अङ्गों के सहित अनुभावों का निरूपण किया है।

अस्मत्कल्पलतादलानि गिलति त्वत्कामगौर्वार्यता-
मच्चिन्तामणिवेदिभिः परिणमेद् दूरान्नयोच्चैर्गजम् ।
इत्यारूढवितर्दिका प्रतिपथं जल्पन्ति भूदेवताः
शिङ्गक्ष्माभुजि कल्पवृक्षसुरभी हस्त्यादिदानोद्यते ।।३१३।।

अनुभाव के अद्वितीय ज्ञाता और सुखानुभवशाली कल्पवृक्ष के समान (दान देने में) प्रसिद्ध शिङ्गभूपाल के हाथी इत्यादि के दान देने के लिए उद्यत (तैयार) हो जाने पर (हे देवो!) आप लोगों की कामधेनु हमारे कल्पलता (रूपी शिङ्गभूपाल) के पत्तों (रूपी दान) को

ग्रहण कर ले रही है, (अतः उसे) रोका जाय (अर्थात् शिङ्गभूपाल के दान की तुलना में कामधेनु भी तुच्छ है) तथा हमारे (शिङ्गभूपाल के) चिन्तामणि (नामक मणि) से निर्मित चबूतरों से उच्चैश्रवा (नामक इन्द्र का हाथी) झुक (न्यून) हो जा रहा है, (अतः उसे) दूर से ही ले जाइए। इस प्रकार प्रत्येक रास्तों के चौराहों पर बैठे हुए ब्राह्मण लोग कहते हैं॥३१३॥

रक्षायां राक्षसारिं प्रबलविमतविद्रावणे वीरभद्रं
कारुण्ये रामभद्रं भुजबलविभवारोहणे रौहिणेयम् ।
पाञ्चालं चञ्चलाक्षीपरिचरणविधौ पूर्णचन्द्र प्रसादे
कन्दर्पं रूपदर्पे तुलयति नितरां शिङ्गभूपालचन्द्रः ।।३१४।।

।।इति श्रीमदान्ध्रमण्डलाधीश्वरप्रतिगण्डभैरवश्रामदन्नपोतनरेन्द्रनन्दन भुजबलभीमश्रीशिङ्गभूपालविरचिते रसार्णवसुधाकरनाम्नि नाट्यालङ्कारे रञ्जकोल्लासो नाम प्रथमो विलासः।।

जो शिङ्गभूपाल रक्षा करने में राक्षसों के शत्रु विष्णु, प्रबल शत्रुओं को खदेड़ने में वीरभद्र, करुणा में रामभद्र, भुजाओं के बल वाले उत्कर्ष में बलराम, चञ्चल नेत्रों वाली (रमणियों) के सेवा कार्य द्वारा (मुखरूपी) पूर्ण चन्द्रमा को प्रसन्न करने में पाञ्चाल (देश के लोगों), (अपने) रूप पर दर्प करने वालों में कामदेव के समान हैं॥३१४॥

।।आन्ध्र देश के भीषणयुद्ध में प्रचण्डभैरव की कान्ति वाले राजा श्री अनपोतराज को आनन्दित करने वाले (पुत्र), भुजाओं के बल में भीम के समान श्रीशिङ्गभूपाल द्वारा विरचित रसार्णवसुधाकर नामक नाट्यालङ्कार में रञ्जकोल्लास नामक प्रथम विलास समाप्त हुआ ।।

+++

द्वितीयो विलासः

अथ व्यभिचारिभावाः-

व्यभी इत्युपसर्गौ द्वौ विशेषाभिमुखत्वयोः ।
विशेषणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति ।।१।।
वागङ्गसत्त्वयुक्ता ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः ।
सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं सञ्चारिणोऽपि ते ।।२।।
उन्मज्जन्तो निमज्जतः स्थायिविन्याम्बुनिधाविव ।
ऊर्मिवद् वर्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपतां च ते ।।३।।

व्याभिचारी भाव- विशेष रूप अभिमुखता अर्थ वाले वि और अभि ये दो उपसर्ग हैं। जो वाणी (कथन), अङ्ग और सत्त्व से युक्त होकर स्थायी भाव के प्रति विशेष रूप से अभिमुख होते हैं वे व्यभिचारी (भाव) कहे जाते हैं।

सञ्चारी शब्द की व्युत्पति- ये भांव की गति को सञ्चारित करते हैं, इसलिए ये सञ्चारी भाव भी कहलाते हैं।

(सञ्चारी भाव) स्थायी भाव में प्रकट तथा विलीन होकर उसी प्रकार स्थायी भाव को बढ़ाते हैं तथा (पुनः) तद्रूपता को प्राप्त हो जाते हैं जैसे समुद्र में तरङ्गें।

अर्थात् जिस प्रकार समुद्र के होने पर ही तरङ्गें उत्पन्न होती हैं और विलीन होती है उसी प्रकार रति आदि स्थायी भाव के होने पर ही उसको लक्ष्य करके (उनके पोषण के लिए) जिनका आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है, वे सञ्चारी भाव कहलाते हैं।।१-३।।

निर्वेदोऽथ विषादो दैन्यं ग्लानिश्रमौ च मदगर्वौ ।
शङ्कात्रासावेगा उन्मादापस्मृती तथा व्याधिः ।।४।।
मोहो मृतिरालस्यं जाड्यं व्रीडावहित्था च ।
स्मृतिरथ वितर्क चिन्तामतिधृतयो हर्ष उत्सुकत्वं च ।।५।।
औग्र्यममर्षासूयाश्चापल्यं चैव निद्रा च ।
सुप्तिर्बोध इतीमे ख्याता व्यभिचारिणस्त्रयत्रिंशत् ।।६।।

व्यभिचारी भावों की संख्या- तैंतीस व्यभिचारी भाव कहे गये हैं, जो ये हैं— (१) निर्वेद (२) विषाद (३) दीनता (४) ग्लानि (५) श्रम (६) मद (७) गर्व (८) शङ्का (९) त्रास (१०) आवेग (११) उन्माद (१२) अपस्मृति (१३) व्याधि (१४) मोह (१५)

मृति (१६) आलस्य (१७) जड़ता (१८) व्रीडा (१९) अवहित्था (२०) स्मृति (२१) वितर्क (२२) चिन्ता (२३) मति (२४) धृति (२५) हर्ष (२६) उत्सुकता (२७) उग्रता (२८) अमर्ष (२९) असूया (३०) चपलता (३१) निद्रा (३२) सुप्ति (३३) बोध ।।४-६।।

तत्र निर्वेदः-

तत्त्वज्ञानाच्च दौर्गत्यादापदो विप्रयोगतः ।
ईर्ष्यादेरपि नैष्फल्यमतिर्निर्वेद उच्यते ।।७।।

(१) निर्वेद- तत्व-ज्ञान दुर्गति आपत्ति वियोग ईर्ष्या इत्यादि से मति का निरर्थक (निष्फल) होना निर्वेद कहलाता है।।७।।

तत्र तत्त्वज्ञानाद् यथा (वैराग्यशतके ७१)-

प्राप्ता श्रियः सकलकामदुधास्ततः किं
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
सम्मानिता प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थिता तनुभृता तनुभिस्ततः किम् ।।226।।

तत्त्वज्ञान से (निर्वेद) जैसे (वैराग्यशतक ७१ में)-

सकल मनोरथ प्रदान करने वाली सम्पदाएँ प्राप्त कर ली तो क्या? शत्रुओं के सिर पर पैर रख दिया तो क्या? मित्र आदि प्रियजनों को धन सम्पत्ति से तृप्त कर दिया तो क्या? शरीरधारियों के शरीर कल्प-पर्यन्त स्थित रहे तो क्या ? ।।226।।

दौर्गत्याद् यथा-

किं विद्यासु विशारदैरपि सुतैः प्राप्ताधिकप्रश्रयैः
किं दारैरनुरूपचरितैरात्मानुकूलैरपि ।
किं कार्यं चिरजीवितेन विगतव्याधिप्रचारेण वा
द्रारिद्र्योपहतं यदेतदखिलं दुःखाय मे केवलम् ।।227।।

दुर्गति से निर्वेद जैसे-

विद्या में विज्ञ (निपुण) तथा अधिक सम्मान-प्राप्त पुत्र से, अपने अनुरूप आचरण करने वाली तथा अनुकूल पत्नी से और रोग से रहित बहुत समय तक जीवित रहने से क्या लाभ? जब कि दरिद्रता से युक्त यह (पुत्रादि) सभी केवल मेरे दुःख के लिए (कारण) ही हैं।।227।।

आपदो यथा (रघुवंशे ८.५८)-

सुरतश्रमसम्भृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते ।
अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम् ।।228।।

आपत्ति से (निर्वेद) जैसे (रघुवंश ८.५१ में)-

(मरी हुई इन्दुमती के प्रति अज कहते है-) सुरत के परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदे तुम्हारे मुख पर अभी भी मौजूद हैं पर तुम चल बसी, देहधारियों की इस निःसारता को धिक्कार है।।228।।

विप्रयोगाद् यथा (उत्तररामचरिते २.२९)-

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्सम्बद्धकथाभिरेव नियतं दीर्घाभिरस्थीयत ।
एकः सम्प्रति नाशितप्रियतमस्तास्तामेव पापः कथं
रामः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य वा ।।229।।

अत्र सीताविप्रयुक्तस्य रामस्य वागारम्भसूचितेनावमानेन निर्वेदः प्रतीयते।

वियोग से (निर्वेद) जैसे (उत्तररामचरित १.२८ में)-

(सीता निर्वासन के पश्चात् पञ्चवटी को देख कर राम कहते हैं)- जिस पञ्चवटी में मैंने उस (सीता) के साथ अपने घर की तरह उन दिनों को बिताया। निरन्तर जिस पञ्चवटी -विषयक बड़ी-बड़ी कथाओं से ही हम अयोध्या में रहते थे। इस समय प्रियतमा (सीता) को नष्ट करने वाला, अत एव अकेला पापी राम, उसी पञ्चवटी को कैसे देखे? अथवा उसका अनादर करके कैसे जाए?।।229।।

यहाँ सीता के वियोग का राम की वाणी द्वारा सूचित तिरस्कार के कारण निर्वेद प्रतीत होता है।

ईर्ष्यया यथा (यथानर्घराघवे ४/४४)-

कुर्युः शस्त्रकथाममी यदि मनोर्वंशे मनुष्याङ्कुराः
स्याच्चेद् ब्रह्मगणोऽयमाकृतिगणस्तत्रेष्यते चेद्भवान् ।
सम्राजां समिधां च साधकतमं धत्ते छिदाकारणं
धिङ् मौर्वीकुशकर्षणोल्बणकिणग्रन्थिर्ममायं करः ।।230।।

अत्र रामचन्द्रशतानन्दविषयेर्ष्याजनितेन धिगिति वागारम्भसूचितेन स्वात्मावमाने जामदग्नस्य निर्वेदः।

ईर्ष्या से निर्वेद जैसे (अनर्घराघव ४/४४ में)-

(नेपथ्य में परशुराम कहते हैं-) यदि मनुष्य के अङ्कुर (शिशु) शस्त्र की बातें करने लगे और यदि ब्राह्मण को आकृतिगण मानकर तुम्हारा भी उसी में समावेश कर दिया जाय, तब राजाओं तथा समिधाओं को समान भाव से काटने वाले इस कुठार को धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) के द्वारा घर्षण से उत्पन्न व्रण (घाव) के चिह्न वाला हमारा हाथ व्यर्थ धारण करता है, इसे धिक्कार है।।230।।

यहाँ रामचन्द्र और शतानन्द विषयक ईर्ष्या से उत्पन्न 'धिक्कार है' इस कथन से सूचित अपने कुठार-धारण की निष्फलता में परशुराम का निर्वेद है।

अथ विषादः-

प्रारब्धकार्यानिर्वाहादिष्टानाप्तेर्विपत्तितः ।
अपराधपरिज्ञानादनुतापस्तु यो भवेत् ।।८।।
विषादः स त्रिधा ज्येष्ठमध्यनीचसमाश्रयात् ।
सहायान्वेषणोपायचिन्ताद्या उत्तमे स्मृताः ।।९।।
अनुत्साहश्च वैचित्त्यमित्याद्या मध्यमे मताः ।
अधमस्यानुभावाः स्युर्वैवर्ण्यमवलोकनम् ।।१०।।
रोदनश्वसितध्यानमुखगोपादयोऽपि च ।

(२) **विषाद-** प्रारम्भ किये हुए कार्य के निर्वाह न होने से, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न होने से, विपत्ति से और (किये हुए) अपराध के ज्ञान से जो पश्चात्ताप होता है, वह विषाद कहलाता है।

विषाद के प्रकार- वह उत्तम (ज्येष्ठ) मध्यम तथा नीच व्यक्ति के आश्रित होने से तीन प्रकार का होता है।

उत्तम विषाद के अनुभाव- उत्तम व्यक्ति (के आश्रित विषाद में) सहायक को खोजने का उपाय, चिन्ता आदि, अनुभाव कहे गये हैं।

मध्यम विषाद के अनुभाव- मध्यम में अनुत्साह, मानसिक विकलता इत्यादि अनुभाव होते हैं।

अधम विषाद के अनुभाव- अधम में विवर्णता, अवलोकन, रोदन, निःश्वास, ध्यान, मुख को छिपाना इत्यादि अनुभाव होते है।।८-११ पू.।।

प्रारब्धकार्यानिर्वाहाद् यथा (मालतीमाधवे १.३६)-

वारं वारं तिरयति दृशावुद्गतौ बाष्पपूर-
स्तत्सङ्कल्पोपहितजडिम स्तम्भमभ्येति गात्रम् ।
सद्यः स्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलाङ्गुलीकः
पाणिलेखाविधिषु नितरां वर्तते किं करोमि ।।231।।

अत्र प्रस्तुत-चित्रलेखानिवार्हान्माधवस्य किं करोमीति वागारम्भसूचितया तद्दर्शनोपायचिन्तया विषादो व्यज्यते।

प्रारम्भ कार्य के निर्वाह न होने से विषाद जैसे (मालतीमाधव १.३६ में)-

(माधव मकरन्द से कहता है-) उत्पन्न अश्रुप्रवाह नेत्रों को बार-बार आवृत्त कर देता है। प्रिया (मालती) की चिन्ता से (उसके चित्र लिखने वाले) कार्य में असामर्थ्य को प्राप्त करने वाला शरीर स्तब्ध हो जाता है। यह हाथ चित्र लिखने की क्रियाओं में तत्क्षण पसीना आने और निरन्तर

काँपने से चञ्चल अङ्गुलियों से युक्त हो जाता है। अतः मैं क्या करूँ।।231।।

यहाँ (मालती का) चित्र बनाने के लिए प्रस्तुत कार्य का निर्वाह न कर पाने के कारण माधव के 'क्या करूँ' इस कथन से सूचित उस (मालती) के दर्शन के उपाय की चिन्ता से विषाद व्यञ्जित होता है।

इष्टानाप्तेर्यथा (रघुवंशे ६-६७)-

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।232।।

अत्रेन्दुमतीमाकाङ्क्षतां भूमिपतीनां तदनवाप्त्या मुखवैवर्ण्येन विषादः।

अभीष्ट (वस्तु) की प्राप्ति न होने से (विषाद) जैसे (रघुवंश ६-६७ में)-

जिस प्रकार रात में आगे बढ़ने वाली दीपशिखा राजमार्ग पर बने हुए जिस महल को पार कर जब आगे बढ़ जाती है तब वह महल अंधेरे से व्याप्त हो जाने के कारण शोभारहित हो जाता है उसी प्रकार पति को स्वयं वरण करने वाली वह इन्दुमती जिस जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ती जाती थी वह राजा उदासीन होता जाता था।।232।।

यहाँ इन्दुमती की अभिलाषा करने वाले राजाओं के उसे न पाने पर मुख की विवर्णता के कारण विषाद है।

विपत्तितो यथा (उत्तरामचरिते १.४०)-

हा हा धिक् परवासगर्हणं यद्
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः ।
एतत् तत् पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दालर्कविषमिव सर्वतः प्रविष्टम् ।।233।।

अत्र सीतापवादरूपाया विपत्तेः हा हा धिगिति वागारम्भेण रामस्य विषादो गम्यते।

विपत्ति से विषाद जैसे (उत्तररामचरित में)-

(राम कहते हैं-) हाय! हाय! धिक्कार है!! सीता का दूसरे के घर में रहने का जो दोष अनूठे उपायों से हटाया गया था, भाग्य के दुष्परिणाम से वही दोष पागल कुत्ते के विष की तरह फिर सब जगह फैल गया।233।।

यहाँ सीता विषयक अपवाद रूपी विपत्ति के कारण 'हाय हाय धिक्कार है' इस कथन से राम का विषाद स्पष्ट होता है।

दुर्निर्मित्ताद्यथा (रघुवंशे १४.५०)-

सा दुर्निमित्तोपगताद् विषादात्
सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा ।
राज्ञः शुभं सावरजस्य भूया-
दित्याशंसे करणैरबाह्यैः ।।234।।

अत्र दुर्निमित्तानुमितायाः विपतेर्मुखशोषणलक्षणेनानुभावेन वैदेह्याः विषादः।

दुर्निमित्त से विषाद जैसे (रघुवंश १४.५० में)-

यह अपशकुन होते ही सीता का मुँह उदास हो गया और वे मन ही मन मनाने लगी कि भाइयों के साथ राजा सुख से रहें उन पर आँच न आवे।।234।।

यहाँ अपशकुन से अनुमान की जाने वाली विपत्ति के कारण से मुँह को सूखने (उदास होने) से लक्षित अनुभाव से सीता का विषाद है।

अपराधपरिज्ञानाद् यथा (रघुवंशे ९/७५)-

हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्ण-
स्तस्यान्विष्यन् वेतसगूढं प्रभवं सः ।
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं
तापादन्तश्शल्य इवासीत् क्षितिपोऽपि ।।235।।

अपराध-परिज्ञान से विषाद जैसे (रघुवंश ९-७५ में)-

हा पिताजी! इस प्रकार श्रवणकुमार का करुण क्रन्दन सुनकर दुःखी होकर बेतों के कुञ्जों में छिपे हुए उस करुण ध्वनि की उत्पत्ति- स्थान को ढूढँते हुए राजा दशरथ ने देखा कि बेंत की झाड़ियों में बाणों से विद्ध घड़े पर झुका हुआ कोई मुनिकुमार पड़ा हुआ है उसे देखकर उनको ऐसा कष्ट हुआ मानो इन्हें ही बाण लग गया हो।।235।।

अथ दैन्यम्-

हृत्तापदुर्गतित्वाद्यै नैश्चित्यं हृदि दीनता ।।११।।
अत्रानुभावा मालिन्यगात्रस्तम्भादयो मताः ।

(३) दीनता- हृदय की वेदना, दुर्गति इत्यादि से हृदय की स्थिरता दीनता कहलाती है। मलिनता, शरीर की जड़ता इत्यादि (इसके) अनुभाव कहे गये हैं।।११उ.-१२पू.।।

हृत्तापाद् यथा (मेघदूते २.५२)-

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्त्मनो मे
सौहार्दाद् वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।
इष्टान् देशान् विचर जलद! प्रावृषा सम्भृतश्री-

मर्भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ।।236।।

हृदय की वेदना से (दीनता) जैसे (मेघदूत उ. ५२ में)–

हे मेघ, चाहे मित्रता के कारण अथवा यह यक्ष बेचारा प्रिया से बिछुड़ा हुआ है इस विचार से मेरे ऊपर दया की भावना से, अनुचित प्रार्थना करने वाले अथवा मेरे इस प्रिय कार्य को करके वर्षा ऋतु के कारण अतिशय शोभा से सम्पन्न होते हुए (तुम) अपने मनचाहे देशों में विचरण करना और क्षण भर भी तुम्हारा (अपनी प्यारी पत्नी) विद्युत् से ऐसा (अर्थात् मेरे समान कभी) वियोग न हो।।236।।

दौर्गत्याद् यथा–

दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्ट जीर्णाम्बरा
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा नेक्ष्येत चेद् गेहिनी ।
याञ्चादैन्यभयेन गद्गलत्त्रुट्याद्विलीनाक्षरं
को देहीति वदेत् स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान् ।।237।।

दुर्गति से (दीनता) जैसे–

दुःखी, दीनमुख, भूखे तथा चिल्लाते हुए बच्चों द्वारा खीचे जाते हुए पुराने वस्त्र वाली, निरन्न से चिन्तित यदि पत्नी नहीं देखती है तो याचना की दीनता के भय से गद्गद् और टूटी फूटी होने के कारण अस्पष्ट अक्षर 'कौन मनस्वी पुरुष अपने जलते हुए पेट के दे रहा है' को कहना चाहिए।।237।।

अथ ग्लानिः–

आधिव्याधिजरातृष्णाव्यायामसुरतादिभिः ।।१२।।
निष्प्राणताग्लानिस्तत्र क्षामाङ्गवचनक्रिया ।
तापानुत्साहवैवर्ण्यनयनभ्रमणादयः ।।१३।।

(४) ग्लानि– मानसिक पीड़ा, रोग, बुढ़ापा, तृष्णा, व्यायाम, सुरत इत्यादि के द्वारा निष्प्राण (मलिन) होना ग्लानि कहलाता है। इसमें शरीर, वचन और क्रिया में क्षीणता, कष्ट, अनुत्साह, वैवर्ण्य (मुख की मलिनता), नेत्रों का घुमाना इत्यादि (अनुभाव होते हैं)।।१२उ.-१३।।

आधिना यथा (उत्तररामचरिते ३.५)–

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं
हृदयकुसुमशोषी दारुणो दीर्घशोकः ।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव घर्मः केतकीपत्रगर्भम् ।।238।।

मानसिकपीड़ा से (ग्लानि) जैसे (उत्तररामचरित ३/५ में)-

जैसे शरद ऋतु की धूप केतकी के फूल के भीतरी पत्ते को मलिन कर देती है, उसी तरह हृदय-कमल को सुखाने वाला, कठोर, बहुत बड़ा शोक, वृन्त (डंठल) से टूटे हुए सुन्दर पल्लव की तरह पीली और दुर्बल सीता के शरीर को मलिन करता है।।238।।

व्यधिना यथा (रघुवंशे १९.५०)-

तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना ।
राजयक्ष्मपरिहाणिरराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम् ।।239।।

रोग से (ग्लानि) जैसे (रघुवंश १९/५० में)-

राजयक्ष्मा से पीड़ित उस (अग्निवर्ण) का शरीर धीरे-धीरे पीला पड़ गया, दुर्बलता के कारण उसने आभूषण पहनना भी छोड़ दिया, वह नौकरों का सहारा लेकर चलने लगा, उसकी बोली धीमी पड़ गयी और सूखकर विरहियों के समान दीखने लगा।।239।।

जरया यथा (रत्नावल्याम् ४/१३)-

विवृद्धिं कम्पस्य प्रथयतितरां साध्वसवशा-
दविस्पष्टां दृष्टिं तिरयतितरां बाष्पसलिलैः ।
स्खलद्वर्णां वाणीं जनयतितरां गद्गदादिकया
जरायाः साहाय्यं मम हि परितोषोऽकुरुते ।।240।।

अत्र हर्षस्य जरासहकारित्वकथनादुभयानुभावैः कम्पादिभिर्जराग्लानेरेव प्राधान्यं गम्यते।

वृद्धावस्था से ग्लानि जैसे (रत्नावली ४/१३ में)-

(ब्राभव्य विदूषक से कहता है-) आज मेरा सन्तोष भयवश शरीर कम्पन को और भी बढ़ा रहा है, अश्रु-प्रवाह से धुँधली बनी हुई दृष्टि और भी अधिक धुँधली बन रही है। हृदय गद्-गद् होने को कारण लड़खड़ाती हुई वाणी और भी अधिक जड़वत् बना रही है। वास्तव में यह सब कम्पन, दृष्टि-वैषम्य, वाणी का लड़खड़ाना आदि सब कुछ बुढ़ापे की सहायता ही कर रहे हैं अर्थात् जो क्रियाएँ बुढ़ापे में होती है कम्पनादि से उनमें वृद्धि ही हो रही है।।240।।

यहाँ हर्ष का वृद्धावस्था के कारण कथन होने से कम्पन इत्यादि के द्वारा ग्लानि का ही प्राधान्य स्पष्ट होता है।

तृष्णया यथा (बालरामायणे ६.५०)-

विन्ध्याध्वानो विरलसलिलास्तर्षिणी तत्र सीता
यावन्मूर्च्छां कलयति किल व्याकुले रामभद्रे ।
द्राक् सौमित्रिः पुटजकलशैर्मालुधानीदलानां
तावत्प्राप्तो दधदतिभृतां वारिधानीं करेण ।।241।।

तृष्णा से ग्लानि जैसे-

कम जलाशयों वाला विन्ध्य का रास्ता है। वहाँ प्यासी सीता जब मूर्छित हो जाती है तब उसी समय रामचन्द्र के व्याकुल हो जाने पर लक्ष्मण मालुधानी (नामक वनस्पति) के पत्तों के दोने वाले कलशों के साथ खाली (जल से रहित) जलपात्र को हाथ में पकड़े हुए आये।।241।।

व्यायामेन यथा (शिशुपालवधे ७/६६)-

अतनुकुचभरानतेन भूयः
क्लमजनितानतिना शरीरकेण ।
अनुचितगतिसादनिस्सहत्वं
कलभकरोरुभिरूरुभिर्दधानैः ।।242।।

व्यायाम से ग्लानि जैसे (शिशुपालवध ७/६६में)-

विस्तृत स्तनों के भार से झुकने, थकान से उत्पन्न अनत (झुकाव विहीन) सुकोमल शरीर तथा हाथी के बच्चे की सूड़ के समान (भारी) जङ्घाओं को धारण करने के कारण अभ्यास-रहित गति (गमन) को नहीं सहन कर सकीं।।242।

सुरतेन यथा-

अतिप्रयत्नेन नितान्ततान्ता
कान्तेन तल्पादवरोपिता सा ।
आलम्ब्य तस्यैव करं करेण
ज्योत्स्नाकृतानन्दमलिन्दमाप ।।243।।

सुरत से ग्लानि जैसे-

(सुरतक्रिया के पश्चात्) अत्यन्त थकी हुई वह (नायिका) प्रियतम के द्वारा अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक शय्या से उतारी (उठायी) गयी और उस (प्रियतम) के ही हाथों का (अपने) हाथों से सहारा लेकर चाँदनी के द्वारा आनन्दमय बनाये गये बरामदे को प्राप्त किया अर्थात् बरामदे में ले जायी गयी।।243।।

अथ श्रमः-

श्रमो मानसखेदः स्यादध्वनृत्तरतादिभिः ।
अङ्गमर्दननिश्वासौ पादसंवाहनं तथा ।।१४।।
जृम्भणं मन्दयानं च मुखनेत्रविकूणनम् ।
सीत्कृतिश्चेति विज्ञेया अनुभावाः श्रमोद्भवाः ।।१५।।

(५) श्रम- मार्ग चलने, नृत्य, रति इत्यादि के कारण मन का अवसाद (थकान) श्रम कहलाता है। अङ्ग की मालिश, निःश्वास, पैर का दबाना, जँभाई लेना, धीरे-धीरे चलना,

मुख और नेत्र का सिकोड़ना, सीत्कार— ये श्रम से उत्पन्न अनुभाव हैं।।१४-१५।।

अध्वना यथा (बालरामायणे ६/३४)-

सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीशमृद्वी
सीता जवात् त्रिचतुराणि पदानि गत्वा ।
गन्तव्यमद्य कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ।।244।।

मार्ग चलने से श्रम जैसे (बालरामायण ६.३४ में)-

शिरीश के फूल के समान कोमल सीता नगर के परिसर में ही तीन-चार कदम चल कर तुरन्त बार-बार पूछने लगी की आज अभी और कितनी दूर जाना है (ऐसा सुनकर) पहली बार राम के आँसू गिरने लगे।।244।।

नृत्तेन यथा-

स्वेदक्लेदितकङ्कणां भुजलतां कृत्वा मृदङ्गाश्रयां
चेटिहस्तसमर्पितैकचरणा मञ्जीरसन्धित्सया ।
सा भूयः स्तनकम्पसूचितरयं निःश्वासमामुञ्चती
रङ्गस्थानमनङ्गसात्कृतवती तालावधौ तस्थुषी ।।245।।

नृत्य से श्रम जैसे- पसीने से आर्द्र कङ्गनों वाली भुजा रूपी लताओं को मृदङ्ग (की ध्वनि) पर आश्रित करके, नुपूर (घुघुरु की ध्वनि) की मेल से चेटी के हाथों में एक पैर को समर्पित कर देने वाली, पुनः स्तनों के कम्पन से सूचित वेग वाले निःश्वास (लंबी लंबी साँस) को छोड़ती हुई वह नृत्यांगना रंगमंच को काममय बनाती हुई करतल (की ध्वनि) के समय स्थिर हो गयी।।245।।

रत्या यथा ममैव-

नितान्तसुरतक्लान्तां चेलान्तकृतवीजनाम् ।
कान्तां लुलितनेत्रान्तां कलये कलभाषिणीम् ।।246।।

रति से श्रम जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

सुरत (के श्रम) से थकी हुई,कपड़े (साड़ी) के एक छोर (पल्लू) से हवा करती हुई, चञ्चल नेत्रप्रान्त वाली तथा मधुर बोलने वाली प्रिया के प्रति मैं आसक्त हूँ (या आदर करता हूँ)।।246।।

अथ मदः-

मदस्त्वानन्दसम्मोहसम्भेदो मदिराकृतः ।
स त्रिधा तरुणो मध्योऽपकृष्टश्चेति भेदतः ।।१६।।

(६) **मद**– मदिरा से उत्पन्न आनन्द व घबराहट (मूर्छा, बेहोशी) का मिश्रण ही मद कहलाता है। यह तरुण, मध्यम और अपकृष्ट (नीच) भेद से तीन प्रकार का होता है।।१६।।

अथ तरुणः–

दृष्टिः स्मेरा मुखे रागः सस्मिताकुलितं वचः ।
ललिताविद्धगत्याद्याश्चेष्टाः स्युस्तरुणे मदे ।।१७।।

(१) **तरुण मद की चेष्टाएँ**– तरुण मद में प्रफुल्लित दृष्टि, मुख में रक्तिमा, मुस्कराहट-युक्त वचन, लालित्ययुक्त गति आदि चेष्टाएँ होती है।।१७।।

यथा (शिशुपालवधे १०/१३)–

हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृष्टिविकारविशेषाः ।
चक्रिरे भृशमृजोरपि वध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ।।247।।

जैसे (शिशुपालवध १०/१३ में)–

कामी युवक के समान मद ने भोली (मुग्धा) वधू में भी हाव से मनोहर हँसी, वचनों का कौशल तथा दृष्टि में विशेष प्रकार के विकार अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न कर दिये।।247।।

अथ मध्यमः

मध्यमे तु मदे वाचि स्खलनं दृशि घूर्णता
गमने विकृतिर्बाहोर्विक्षेपस्त्रस्ततादयः ।।१८।।

(२) **मध्यम मद की चेष्टाएँ**– मध्यम मद में वाणी में स्खलन, नेत्रों में चञ्चलता, गमन में विकार, भुजाओं को इधर-उधर हिलाना, भयभीत होना इत्यादि (चेष्टाएँ होती है)।।१८।।

यथा (किरातार्जुनीये ९/६७)–

रुन्धती नयनवाक्यविकासं सादितोभयकरा परिरम्भे ।
व्रीडितस्य ललितं युवतीनां क्षीबता बहुगुणैरनुजह्रे ।।248।।

जैसे किरातार्जुनीय ९/६७ में)–

नेत्रों और वाक्यों के विकास को रोकती हुई तथा आलिङ्गन में दोनों हाथों को स्तब्ध (निश्चल) बनाने वाली युवतियों की मदिरा की मत्त ताने, नेत्र-संकोच आदि बहुत से गुणों से लज्जा के विकास का अनुकरण कर लिया।।248।।

अथ नीचः–

अपकृष्टे तु चेष्टा स्युर्गतिभङ्गो विसंज्ञता ।
निष्ठीवनं मुहुःश्वासो हिक्का छर्द्यादयो मताः ।।१९।।

(३) **अपकृष्ट मद की चेष्टाएँ**– नीच मद में गति में लड़खड़ाहट, निश्चेष्टता, थूकना,बार-बार श्वास लेना, अस्पष्ट ध्वनि, उल्टी होना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।१९।।

यथा–

निष्ठीवन्त्यो मुखरितमुखं गौरवात् कन्धरायाः
प्रायो हिक्काविकलविकलं वाक्यमर्धं गृणन्त्यः ।
नैवापेक्षां गलितवसने नाप्युपेक्षामयन्ते
पायं पायं बहुविधमधून्येकवीथ्या कुमार्यः ।।249।।

जैसे– कन्धों की गुरुता से (बार-बार) थूकने वाली (वेश्या) का मुख मुखरित (उटपटाँग बोलने वाला) होता है। प्रायः हिचकी के कारण व्याकुल (वेश्या) का वाक्य (कथन) अधूरा रह जाता है। इस प्रकार अनेक प्रकार की मदिराओं को पी-पी कर वेश्या-कुमारियाँ न तो (अङ्गों से) खिसके हुए वस्त्र के प्रति अपेक्षा करती हैं और न तो उपेक्षा ही करती हैं।।249।।

तरुणस्तूत्तमादीनां मध्यमो मध्यनीचयोः ।
अपकृष्टतु नीचानां तत्तन्मदविवर्धने ।।२०।।

उत्तम इत्यादि (नायकों) में तरुण, मध्यम और नीच (नायक) में मध्यम, तथा नीच (नायकों) में अपकृष्ट (मद) उनके मद को बढ़ाने में कारण होता है।।२०।।

उत्तमप्रकृतिः शेते मध्यो हसति गायति ।
अधमप्रकृतिर्ग्राम्यं परुषं वक्ति रोदिति ।।२१।।

उत्तमादि पुरुष भेद से मद का विभाजन– उत्तम प्रकृति वाला नायक सो जाता है, मध्यम प्रकृति वाला हँसता और गाता है और नीच प्रकृति वाला नायक अशिष्ट कठोर वचन बोलता और रोता है।।२१।।

तरुणस्य मदवृद्धि (कुमारसम्भवे ८/७९)–

तत्क्षणं परिवर्तितह्रियोर्नेष्यतोः शयनमिद्धरागयोः ।
सा बभूव वशवर्तिनी तयोः प्रेयसः सुवदना मदनस्य च ।।250।।

उत्तम की मदवृद्धि जैसे (कुमारसम्भव ८/७९ में)–

मदिरा पीते ही सुमुखी पार्वती की सारी लज्जा जाती रही, काम का वेग भड़क उठा और वह शंकर जी की गोद में लुढ़क गयी। उन्हें इसी स्थिति में उठाकर शंकर जी शयनकक्ष में ले गये। इस प्रकार वह एक साथ ही मदिरा तथा शंकर जी के वशीभूत हो गयीं।।250।।

मध्यमस्य मदवृद्धिर्यथा–

विनापि हेतुं विकटं जहास पदेषु चस्खाल समेऽपि मार्गे ।
विघूर्णमानः स मदातिरेकादाकाशमालम्बनमाललम्बे ।।251।।

मध्यम की मदवृद्धि जैसे–

(मदिरा पीकर) अकारण ही अट्टहास करने लगा, समतल मार्ग में भी पैर लड़खड़ाने

लगे और आँखों को चारो ओर घुमाता हुआ वह मद की अधिकता के कारण आकाश का सहारा लेकर खड़ा हो गया।।251।।

अधमस्य मदवृद्धिर्यथा-

तह तह गामीणबहू
मदविवशा किंपि किंपि बाहरइ ।
जह-जह कुलवहुआओ
सोऊणसरति पिहिअकण्ठाओ ।।252।।
(तथा-तथा ग्रामीणवधू-
र्मदविवशा किमपि किमपि व्याहरति ।
यथा यथा कुलवध्वः
श्रुत्वा सरन्ति विहितकर्णाः ।।)

अधम की मदवृद्धि जैसे-

मद के कारण विवश हुई अशिष्ट स्त्री कुछ-कुछ ऐसा व्यवहार करती है जिसको सुन कर कुलीन स्त्रियाँ कानों को बन्द करके (वहाँ से) हट जाती हैं।।252।।

ऐश्वर्यादिकृतः कश्चिन्मानो मद इतीरतः ।
वक्ष्यमाणस्य गर्वस्य भेद एवेत्युदास्महे ।।२२।।

ऐश्वर्यादि से उत्पन्न मद का गर्व में अन्तर्भाव- ऐश्वर्य इत्यादि से उत्पन्न मान को भी कुछ लोग मद कहते हैं किन्तु वह आगे कहे जाने वाले गर्व का भेद है, अतः मैं (शिङ्गभूपाल) (उसके विवेचन के प्रति) उदासीन हो गया हूँ।।२२।।

अथ गर्वः-

ऐश्वर्यरूपतारुण्यकुलविद्याबलैरपि ।
इष्टलाभादिनान्येषामवज्ञा गर्व ईरितः ।।२३।।
अनुभावा भवन्त्यत्र गुर्वाद्याज्ञाव्यतिक्रमः ।
अनुत्तरप्रदानं च वैमुख्यं भाषणेऽपि च ।।२४।।
विभ्रमापह्नुती वाक्यपारुष्यमनवेक्षणम् ।
अवेक्षणं निजाङ्गानामङ्गभङ्गादयोऽपि च ।।२५।।

(७) **गर्व-** ऐश्वर्य, रूप, तारुण्य, कुल, (उच्चवंश), विद्या, बल, अभीष्ट-प्राप्ति इत्यादि के कारण दूसरे लोगों का तिरस्कार करना गर्व कहलाता है। गुरु (आदरणीय जन) की आज्ञा का उल्लंघन, कहे जाने पर उत्तर न देना और मुख फेर लेना, इधर-उधर टहलना, सत्य को छिपाना, वाणी में कठोरता, किसी की ओर न देखना अथवा अपनी ओर ही

देखना, अङ्गभङ्ग इत्यादि अनुभाव होते हैं।।२३-२५।।

ऐश्वर्यमाज्ञासिद्धि ।

तेन यथा (बालरामायणे ५/२२)-

राहो तर्जय भास्वरं वरुण हे निर्वाप्यतां पावकः
सर्वे वारिमुचः समेत्य कुरुत ग्रीष्मस्य दर्पच्छिदाम् ।
प्रालेयाचल चन्द्र दुग्धजलधे हेमन्तमन्दाकिनी
द्राग्देवस्य गृहानपेत भवतां सेवाक्षणो वर्तते ।।253।।

ऐश्वर्य का अर्थ है- आज्ञा का पालन होना।

उस आज्ञा पालन से गर्व जैसे (बालरामायण ५/२२ में)-

हे राहु सूर्य को डाट दो, हे वरुण अग्नि को बुझा दो, हे समस्त बादलो! तुम इकट्ठे होकर ग्रीष्म का दर्प भङ्ग कर दो, हे हिमालय! हे चन्द्र! हे क्षीरसागर! हे हेमन्त! हे मन्दाकिनी! आप सभी महाराज रावण के घर आइए इस समय सेवा का अवसर मिला है।।253।।

यथा वा (बालरामायणे १.३१)-

बह्ने! निह्नोतुमर्चिः परिचिनु पुरतः सिञ्चतो वारिवाहान्
हेमन्तस्यान्तिके स्याः प्रथयति दवथुं येन ते ग्रीष्म नोष्मा ।
मार्त्तण्डाश्चण्डतापप्रशमनविषये धत्त सन्ध्या जलार्द्रां
देवोऽन्यत् प्रतापं त्रिभुवनविजयी मृष्यते श्रीदशास्यः ।।254।।

अथवा जैसे (बालरामायण १/३१ में)-

हे अग्नि! अपनी शिखाओं को छिपाने के लिए आगे से वर्षा करते हुए मेघों का सङ्ग्रह कर लो, हे ग्रीष्म! तुम भी हेमन्त के समीप हो जाओ जिससे तुम्हारी ऊष्मा से ताप न उत्पन्न हो, हे आदित्यों! अपने भीषण ताप को शान्त करने के लिए जलार्द्र प्रभा को धारण कर लो क्योंकि त्रिभुवन विजयी महाराज रावण दूसरे के प्रताप को सहन नहीं करते।।254।।

रूपतारुण्याभ्यां यथा-

वाटीषु वाटीषु विलासिनीनां चरन् युवा चारुतयातिदृप्तः ।
तृणाय नामन्यत् पुष्पचापं करेण लीलाकलितारविन्दः ।।255।।

रूपता और तारुण्य से गर्व जैसे-

रमणियों के उपवनों में रमणीयता पूर्वक विचरण करते हुए मदोन्मत्त युवक विनोद में हाथ से कमल को पकड़े हुए अत एव कामदेव को भी तृण के समान समझा।।255।।

कुलेन यथा (प्रबोधचन्द्रोदये २/७)-

गौडं राष्ट्रमनुत्तमं निरुपमा तत्रापि राधापुरी

भूरिश्रेष्ठकनाम धाम परमं तत्रोत्तमो नः पिता ।
तत्पुत्राश्च महाकुला न विदिताः कस्यात्र तेषामपि
प्रज्ञाशीलविवेकधैर्यविनयाचारैरहं चोत्तमः ।।256।।

कुल से गर्व जैसे–

गौड़ राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ है। उसमें भी अनुपम राधापुरी (नामक नगरी) है। उस (नगरी) में भी भूरिश्रेष्ठक नामक महल है। उसमें मेरे परम पूज्य (उत्तम) पिता (निवास करते) हैं और उनके पुत्र महान् कुलीन हैं जिनको कौन नहीं जानता (जिनको सभी लोग जानते हैं।) उन (पुत्रों) में भी प्रज्ञा, शील, विवेक, धैर्य, विनय आदि सदाचारों से युक्त मैं (सबसे) उत्तम हूँ।।256।।

विद्यया यथा (बिल्हणस्य कर्णसुन्दर्याम् १/३)–

बिन्दुद्वन्द्वतरङ्गिताग्रसरणिः कर्त्ता शिरोबिन्दुकं
कर्मेति क्रमशिक्षितान्वयकला ये केऽपि तेभ्यो नमः ।
ये तु ग्रन्थसहस्रशाणकषणत्रुट्यत्कलङ्कैर्गिरा-
मुल्लेखैः कवयन्ति बिल्हणकविस्तेष्वेव सन्नह्यति ।।257।।

विद्या से गर्व जैसे (बिल्हण की कर्णसुन्दरी १.३ में)–

'शिरस्थ बिन्दु के समान (परम) कर्त्तव्य है' इस प्रकार (मानकर) जो भी लोग क्रमानुसार कुलपरम्परा से प्राप्त कला में शिक्षित हैं, उनके लिए नमस्कार है। तरङ्गित दो (काव्य रूपी जल की) बूँदों की शृङ्खला में विद्यमान तथा कर्णसुन्दरी (नामक ग्रन्थ के) प्रणेता विल्हण कवि उन कवियों के प्रति सहमत रहते हैं जो अनेकों (हजारों) ग्रन्थ रूपी शाण (कसौटी) पर कसे जाने के कारण काव्यकलङ्कों (काव्य-दोषों) से रहित वर्णनों द्वारा देववाणी (संस्कृत) में रचना करते हैं।।257।।

बलेन यथा (बालरामायणे १/५१)–

रुद्रादेस्तुलनं स्वकण्ठविपिनच्छेदो हरेर्वासनं
कारावेश्मनि पुष्पकस्य हरणं यस्योर्जिता केलयः ।
सोऽहं दुर्दमबाहुदण्डसचिवो लङ्केश्वरस्तस्य मे
का श्लाघा घुणजर्जरेण धनुषाकृष्टेन भग्नेन वा ।।258।।

बल से गर्व जैसे (बालरामायण १/५१ में)–

कैलास का उठाना, अपने कण्ठ रूपी वन का काटना, इन्द्र को कारागार में रखना, पुष्पक विमान का अपहरण-जिसकी ऐसी क्रियाएँ हैं वहीं मैं दुर्मद बाँहों रूपी मन्त्री वाला रावण हूँ उस मेरी (रावण की) घुनों द्वारा जर्जर धनुष को चढ़ाने या तोड़ देने से ही क्या प्रतिष्ठा है!।।258।।

इष्टप्राप्त्या यथा–

आस्तां तावदनङ्गचापविभवः का नाम सा कौमुदी
दूरे तिष्ठतु मत्तकोकिलरुतं संवान्तु मन्दानिलाः ।
हासोल्लासतरङ्गितैरसकलैर्नेत्राञ्चलैश्चञ्चलैः
साकूतैरुररीकरोति तरुणी सेयं प्रणामाञ्जलिम् ।।259।।

अभीष्ट प्राप्ति से गर्व जैसे–

भले ही कामदेव के धनुष की शक्ति बनी रहे अथवा उस चाँदनी से क्या? मतवाली कोयल की कूजन (कोलाहल) दूर रहे, अथवा मन्द वायु बहती रहे (इन सबका मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि) हास और प्रसन्नता से लहराते हुए, चञ्चल, आधे (असम्पूर्ण) और साभिप्राय नेत्राञ्चलों से वह यह तरुणी (मेरी) प्रणामाञ्जलि को हृदयस्थ (स्वीकार) कर रही है।।259।।

अथ शङ्का–

शङ्का चौर्यापराधादेः स्वानिष्टोत्प्रेक्षणं मतम् ।
तत्र चेष्टा मुहुः पार्श्वदर्शनं मुखशोषणम् ।।२६।।
अवकुण्ठनवैवर्ण्यकण्ठसादादयोऽपि च ।

(८) **शङ्का–** चोरी इत्यादि अपराध के कारण अपने अनिष्ट का अनुमान करना शङ्का कहलाती है। बार-बार समीप में देखना, मुख का सूख जाना, कुण्ठित होना, विवर्णता, गला रूँध जाना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।२६-२७पू.।।

शङ्का द्विधेयमात्मोत्था परोत्था चेति भेदतः ।।२७।।

शङ्का के भेद– आत्मोत्था (स्वोत्था) और परोत्था भेद से शङ्का दो प्रकार की होती है।।२७उ.।।

स्वकार्यजनिता स्वोत्था प्रायो व्यङ्ग्येयमिङ्गितैः ।
इङ्गितानि तु पक्ष्मभ्रूतारकादृष्टिविक्रियाः ।।२८।।

स्वोत्था शङ्का– स्वोत्था शङ्का अपने कार्य से उत्पन्न होती है जो प्राय: आन्तरिक चेष्टाओं द्वारा ध्वनित होती है। (इस शङ्का में) आँख की बरौनियों, भौहों, पुतलियों और देखने की क्रिया में विकार-चेष्टाएँ होती है।।२८।।

अपराधात् स्वोत्था यथा–

तत्सख्या मरुताथ वा प्रचलिता वल्लीति मुह्यद्भियो
दृष्ट्वा व्याकुलतारया निगदतो मिथ्याप्रसादं मुखे ।
गङ्गानूतनसङ्गिनः पशुपतेरन्तःपुरं गच्छतो
नूत्ना सैव दशा स्वयं पिशुनता देवीसखीनां गता ।।260।।

अपराध से स्वोत्था जैसे-

अपने मित्र वायु के द्वारा चञ्चल की गयी गङ्गा की लहरों को व्याकुल पुतलियों (नेत्रों) से देख कर जड़ी-भूत बुद्धि वाले और मुख पर बनावटी प्रसन्नता को प्रकट करते हुए गङ्गा के साथ नूतन मैत्री वाले तथा अन्तःपुर में प्रवेश करते हुए शिव की (उस समय की) नूतन दशा देवी (पार्वती) के सखियों में निकृष्टता को प्राप्त हुई।।260।।

चौर्येण स्वोत्था यथा-

मृद्नन् क्षीरादिचौर्यान्मसृणसुरभिणी सृक्वणी पाणिघर्षै-
राधायाघ्राय हस्तं सपदि परुषयन् किङ्किणीमेखलायाम् ।
वारं वारं विशालं दिशि दिशि विकिरंल्लोचने लोलतारे
मन्दं मन्दं जनन्याः परिसरमयते कूटगोपालबालः ।।261।।

चोरी से स्वोत्था जैसे-

दुग्ध इत्यादि चुराने के कारण (अपने) स्निग्ध (गीले और सुगन्धित) मुख के किनारे को हाथों के घर्षण से पोछते हुए, हाथ को पकड़कर और सूँघकर करधनी में लगे छोटे-छोटे घुँघरुओं को कठोर बनाते हुए, बार-बार प्रत्येक दिशाओं में चञ्चल पुतलियों वाली आँखों को डालते हुए (चारों ओर देखते हुए) धोखा देने वाले (चोरी के अपराध को छिपाने की इच्छा वाले) बालक गोपाल (श्री कृष्ण) धीरे-धीरे माता (यशोदा) के समीप आते हैं।।261।।

परोत्था तु निजस्यैव परस्याकार्यतो भवेत् ।
प्रायेणाकारचेष्टाभ्यां तामिमामनुभावयेत् ।।२९।।

परोत्था शङ्का- परोत्था शङ्का अपने अथवा दूसरे के अकार्य से उत्पन्न होती है। उस परोत्था शङ्का को बहुधा, आकार और चेष्टा के द्वारा समझ लेना चाहिए।।२९।।

आकारः सात्त्विकश्चेष्टा त्वङ्गप्रत्यङ्गजा क्रियाः ।

आकार का अर्थ है- अङ्ग- प्रत्यङ्गों से उत्पन्न क्रियाओं वाली सात्त्विक चेष्टा।

अपराधात्परोत्था यथा (अनर्घराघवे ४-९)-

प्रीते पुरा पुररिपौ परिभूय मर्त्यान्
वव्रेऽन्यतो यदभयं स भवानहंयुः ।
तन्मर्मणि स्पृशति माममतिमात्रमद्य
हा वत्स! शान्तमथवा दशकन्धरोऽसि ।।262।।

अपराध से परोत्था जैसे (अनर्घराघव ४-९ में)-

(ब्रह्मा के) प्रसन्न होने पर मर्त्यों के प्रति आस्था नहीं रखने वाले उस अहङ्कारी रावण ने जो मर्त्येतर जन से अभय याचना की वह बात आज हमारे हृदय में चुभ रही है, अथवा जाने दो इस बात को, क्योंकि तुम रावण हो।।262।।

अत्र गर्वितरावणकृतेन मर्त्यनिराकरणाभयवरणेन जाता माल्यवतःशङ्का मर्मणि स्पृशतीत्यादिना वागारम्भेण प्रतीयते।

यहाँ गर्वित रावण द्वारा माँगे गये मृत्युनिराकरण के अभय से उत्पन्न माल्यवान् की शङ्का 'हमारे हृदय में चुभ रही है' इस कथन से सूचित हो रही है।

अथ त्रासः-

त्रासस्तु चित्तचाञ्चल्यं विद्युत्क्रव्यादगर्जितैः ।।३०।।
तथा भूतभुजङ्गाद्यैर्विज्ञेयास्तत्र विक्रियाः ।
उत्कम्पगात्रसङ्कोचरोमाञ्चस्तम्भगद्गदा ।।३१।।
मुहुर्निमेषविभ्रान्तिपार्श्वस्थालम्बनादयः ।

(९) त्रास- विद्युत, हिंसक पशुओं की गर्जना तथा भूत, हिंसकजीव (सर्प इत्यादि) से चित्त की चञ्चलता ही त्रास कहलाती है। इसमें कम्पन, शरीर का सिकोड़ना, रोमाञ्चित हो जाना, जड़वत हो जाना, हकलाहट, बार-बार देखना, भ्रमित हो जाना, समीपवर्ती का सहारा लेना इत्यादि क्रियाएँ होती हैं।।३०उ.-३२पू.।।

विद्युतो यथा-

वर्षासु तासु क्षणरुक्प्रकाशात्
त्रस्ता रमा शार्ङ्गिणमालिलिङ्ग ।
विद्युच्च सा वीक्ष्य तदङ्गशोभां
ह्रीणेव तूर्णं जलदं जगाहे ।।263।।

विद्युत से त्रास जैसे-

उस वर्षाकाल में विद्युत् के प्रकाश से भयभीत लक्ष्मी ने शार्ङ्ग (धनुष) को धारण करने वाले (विष्णु) का आलिङ्गन कर लिया और वह विद्युत् उस (लक्ष्मी के) अङ्गों की सुन्दरता को देख कर लज्जा के समान शीघ्रता से बादल में छिप गयी।।263।।

क्रव्यादो हिंस्रसत्त्वम् ।

तस्माद्यथा-

स्वविक्रियादर्शितसाध्वसेन प्रियाभिरालिङ्गितकन्धराणाम् ।
अकारि भल्लूककुलेन यत्र विद्याधराणामनिमित्तमैत्री ।।264।।

क्रव्याद=हिंसक पशु।

उस (हिंसक पशु) से त्रास जैसे-

जहाँ (हिमालय पर) अपनी क्रिया से भय दिखाने वाले भालुओं के समूह ने प्रियाओं द्वारा आलिङ्गन किये गये कन्धों वाले विद्याधरों की अकारण मित्रता करवा दिया।।264।।

गर्जितेन यथा (शिशुपालवधे ६.३८)-

प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः सपदि वारिधरारवभीरवः ।
प्रणयिनः परिरब्धुमनन्तरं ववलिरे वलिरेचितमध्यमाः ।।265।।

गर्जना से त्रास जैसे (शिशुपालवध ६.३८ में)-

प्रणयकलहयुक्त (अत एव रति से) विमुख भी अङ्गनाएँ तत्काल मेघ के गरजने से भयभीत होकर इसके बाद अर्थात् मेघ के गरजने पर भयभीत होने के उपरान्त त्रिवली- रहित उदर से युक्त होकर प्रियों का आलिङ्गन करने के लिए प्रवृत्त हुई।।265।।

गार्जितं महारवोपलक्षणम् । तेन भेर्यादिध्वनिरपि भवति।

भेरीध्वनिना यथा-

ननन्द निद्रारसभञ्जनैरपि प्रयाणतूर्यध्वनिभिर्धरापतेः ।
अतर्कितातङ्कविलोलपद्मजापयोधरद्वन्द्वनिपीडितो हरिः ।।266।।

गर्जना (भयानक) महाध्वनि का द्योतक है। उस (गर्जना) से दुन्दुभि (नगाड़ा) इत्यादि की ध्वनि भी उपलक्षित है।

मेरी ध्वनि से त्रास जैसे-

विष्णु के निद्रा के रस में बाधा पहुँचाने वाली प्रस्थान के लिए तुरही (एक प्रकार का वाद्य) की ध्वनि से (उत्पन्न) अप्रत्याशित आतंक के कारण चञ्चल (काँपती हुई) लक्ष्मी के दोनों स्तनों का मर्दन करते हुए हरि (विष्णु) आनन्दित हुए।।266।।

भूतदर्शनाद्यथा-

सा पत्युः परिवारेण पिशाचैरपि वेष्टिता ।
उत्कम्पमानहृदया सखिभिः समबोध्यत ।।267।।

भूतदर्शन से त्रास जैसे-

वह पति के परिवार से और पिशाचों से घिरी हुई अत एव कम्पित हृदय वाली (नायिका) सखियों द्वारा सम्बोधित की गयी।।267।।

भुजङ्गमाद् यथा (रसकलिकायाम् १२२)-

कल्याणदायि! भवतोऽस्तु पिनाकपाणि-
पाणिग्रहे भुजङ्गकङ्कणभीषितायाः ।
संभ्रान्तदृष्टि सहसैव नमः शिवाये-
त्यर्धोक्तिसस्मितनतं मुखमम्बिकायाः ।।268।।

सर्प से त्रास जैसे-

शंकर के विवाह में (उनके) सर्प रूपी कङ्गन से भयभीत पार्वती का व्याकुल नेत्रों वाला

(अत एव) सहसा "नमः शिवाय" इस अर्धोक्ति के साथ प्रफुल्लित और झुका मुख आप का कल्याण करे।।268।।

अथावेगः-

चित्तस्य सम्भ्रमो यः स्यादावेगोऽयं स अष्टधा ।।३२।।
उत्पातवातवर्षाग्निमत्तकुञ्जरदर्शनात् ।
प्रियाप्रियश्रुतेश्चापि शात्रवव्यसनादपि ।।३३।।

(१०) आवेग- चित्त का सम्भ्रम (विक्षोभ) आवेग कहलाता है। वह आठ प्रकार का होता है- (१) उत्पात से (२) वात से, (३) वर्षा से (४) अग्नि से (५) मत्त हाथी से (६) प्रिय श्रवण से (७) अप्रिय श्रवण से (८) शत्रुव्यसन से ।।३२उ.-३३।।

अथोत्पातावेगः-

तत्रोत्पातास्तु शैलादिकम्पकेतूदयादयः ।
तज्जा सर्वाङ्गविस्रंसा वैमुख्यमपसर्पणम् ।।३४।।
विषादमुखवैवर्ण्यविस्मयाद्यास्तु विक्रियाः ।

(१) उत्पातावेग- शैल इत्यादि का कम्पन, केतु का उदय होना इत्यादि उत्पात होते हैं। उस (आवेग) से उत्पन्न सभी अङ्गों में भय (त्रांस), विमुखता, पीछे हटना, विषाद (नैराश्य) से मुख की निष्प्रभता, विस्मयता इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।३४-३५पू.।।

शैलप्रकम्पनाद् यथा (प्रियदर्शिकायाम् १.२)-

कैलासाद्रवुदस्ते परिचलति गणेषूल्लसत्कौतुकेषु
क्रोडं मातुः कुमारे विशति विषमुचि प्रेक्षमाणे सरोषम् ।
पादावष्टम्भसीदद्वपुषि दशमुखे याति पातालमूलं
क्रुद्धोऽप्याश्लिष्टमूर्तिर्घनतरमुमया पातु हृष्ट शिवो वः ।।269।।

अत्र कैलासकम्पजनितप्रमथगणविस्मयकार्तिकेयापसर्पणकात्यायनी-साध्वसादिभिरनुभावैस्तद्गतसम्भ्रमातिशयरूप आवेगो व्यज्यते।

शैल (पर्वत) के कम्पन से जैसे (प्रियदर्शिका १.२ में)-

(रावण द्वारा) उठाने के कारण कैलास पर्वत के कम्पित होने पर (फलतः शिव के) गणों के आश्चर्ययुक्त होने पर, माता की गोद में (डर से) कुमार (कार्तिकेय) के प्रविष्ट हो जाने पर, (शंकर के भूषण-भूत) सर्प के सरोष फुफकार कर देखने पर, पैरों को पृथ्वी पर दृढ़ता से सहारा लेने से शिथिल शरीर वाले रावण के पाताल लोक में चले जाने पर- ऐसी स्थिति में रावण की उद्दण्डता से क्रोधित होने पर भी (भयभीत) पार्वती के द्वारा दृढ़ता से आलिङ्गन की गयी मूर्ति वाले (अत एव) प्रसन्न शंकर तुम लोगों की रक्षा करें।।269।।

यहाँ कैलास के कम्पन से उत्पन्न शिव-गणों का विस्मित होना, कार्तिकेय का (माता की गोद की ओर) पीछे हटना, पार्वती का भयभीत होना इत्यादि अनुभावों द्वारा उनमें उत्पन्न भय का आधिक्यरूपी आवेग व्यञ्जित होता है।

केतूदयाद्यथा-

हन्तालोक्य कुटुम्बिनो दिविषदां धूमग्रहं दिङ्मुखे
त्रस्ताङ्गास्त्वरितं परस्परगृहानभ्येत्य चिन्तापराः ।
धान्यानामनतिव्ययाय गृहिणीराज्ञापयन्तो मुहु-
र्निध्यायन्ति विनिःश्वसन्ति गणशो रथ्यामुखेष्वासते ।।270।।

केतु के उदय से जैसे-

यह खेद है, कुटुम्बी लोग देवताओं के पुच्छल तारा को सामने देख कर भयभीत शरीर वाले, चिन्ता से ग्रस्त और परस्पर घर को जाकर गृहिणियों को स्वल्प अन्न व्यय करने के लिए आदेश देते हुए कुटुम्बी जन बार-बार पुच्छल तारे को देखते हैं, लम्बी-लम्बी श्वाँस लेते हैं और समूह में होकर रास्ते की ओर मुख करके बैठ जाते हैं।।270।।

अथ वातावेगः-

त्वरयागमनं वस्त्रग्रहणं चावकुण्ठनम् ।।३५।।
नेत्रावमार्जनाद्याश्च वातावेगभवाः क्रियाः ।

(२) वातावेग-

शीघ्रगमन और वस्त्रों को कसकर पकड़ना, कुण्ठित नेत्रों को पोछना इत्यादि वातावेग से उत्पन्न क्रियाएँ होती है।।३५—३६पू.।।

यथा (वेणीसंहारे २/१९)-

दिक्षु क्षिप्ताङ्घ्रिपौधस्तृणजटिलचलत्पांसुदिग्धान्तरिक्षः
शात्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः ।
प्रासादानां निकुंजेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर-
श्चण्डारम्भःसमीरो वहति परिदिशं भीरु! किं सम्भ्रमेण ।।271।।

अत्र वातकृतसंरम्भो वागारम्भेण प्रतिपाद्यते ।

जैसे (वेणीसंहार २/१९ में)-

हे डरपोक! भयभीत होने से क्या लाभ? (इस समय) महलों के उद्यानों में नये बादलों की गर्जना से युक्त गम्भीर धीर प्रचण्ड वायु (आँधी) चारों दिशाओं में बह रही है (जिससे) सभी दिशाओं में उखड़ी हुई जड़ों वाले पौधों और तृणों से मिश्रित उड़ती हुई धूल से अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया है, मार्गों पर पेड़ों की डालियों की रगड़ से कंकरीला (किरकिरा) शात्कारी धूमयुक्त हो

गया है।।271।।

यहाँ वायु द्वारा किया गया विक्षोभ वाणी (कथन) के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

अथ वर्षावेगः-

छत्रग्रहोऽङ्गसङ्कोचो बाहुस्वस्तिकधावने ।।३६।।
छत्रश्रवणमित्याद्या वर्षावेगभवाः क्रियाः ।

(३) **वर्षावेग-** छत्रग्रहण, अङ्गसङ्कोच, भुजाओं को व्यत्यस्त रूप से छाती पर रखना (जिससे कि एक व्यत्यस्त (×) चिह्न बने), दौड़ना, छत्र श्रवण इत्यादि वर्षावेग से उत्पन्न होने वाली क्रियाएँ है।।३६उ.-३७पू.।।

यथा (कुमारसम्भवे १/५)-

आमेखलं सञ्चरतां घनानां
छायामधस्सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते
शृङ्गाणि यस्या तपवन्ति सिद्धा ।।272।।

अत्र सिद्धानामग्रशिखरधावनेन सम्भ्रमः सूचितः।

जैसे- (कुमारसम्भव के १/५ में)-

(हिमालय के ऊपरी शिखरों पर रहने वाले विश्ववसु-प्रभृति) सिद्ध लोग (पहले धूप की कड़ी गर्मी के कारण कुछ देर के लिए) शिखर के मध्य भाग में छाये हुए बादलों के नीचे शिलाओं पर पड़ने वाली छाया का सेवन करते हैं किन्तु फिर मेघ की वृष्टि से व्याकुल होकर घाम वाले ऊपरी शिखरों पर ही चले जाते हैं।।272।।

यहाँ सिद्ध लोगों का ऊपरी शिखर पर जाने से सम्भ्रम सूचित होता है।

अथाग्न्यवेगः-

अग्न्यावेगभवा चेष्टा वीजनं चाङ्गधूननम् ।।३७।।
व्यत्यस्तपदविक्षेपनेत्रसङ्कोचनादयः ।

(४) **अग्न्यावेग-** पङ्खा झलना, अङ्गों का हिलाना,विपर्यस्त पदविक्षेप, नेत्रों का सिकोड़ना आदि अग्न्यावेग में चेष्टाएँ होती हैं।।३७उ.-३८पू.।।

यथा (धनञ्जयविजये ६१)-

दूरप्रोत्सार्यमाणाम्बरचरनिकरोत्तालकीलाभिघातः
प्रभ्रश्यद्वाजिवर्गभ्रमणनियमनव्याकुलब्रघ्नसूतः ।
लेढि प्रौढ़ो हुताशः कृतलयसमयाशङ्कमाकाशवीथीं
गङ्गासूनुप्रयुक्तप्रथितहुतवहास्त्रानुभावप्रसूतः ।।273।।

जैसे (धनञ्जयविजय ६१ में)–

गंगापुत्र (भीष्म) के द्वारा प्रयुक्त तथा बढ़ी हुई अग्नि वाले अस्त्र के वैभव से उत्पन्न प्रौढ़ (प्रवृद्ध) अग्नि दूर भागते हुए आकाशचारी (प्राणियों) के समूह को अपनी ऊँची ज्वालाओं से समूल विनष्ट करता हुआ तथा अनियमित अश्वों के समूह के घूमने के मार्ग में नियमन के लिए सूर्य के सारथी (अरुण) को व्याकुल करता हुआ और प्रलय की आशंका को उत्पन्न करता हुआ आकाशवीथी (आकाशमार्ग) को चाट (विनष्ट कर) रहा है।।273।।

अथ कुञ्जरावेगः–

आवेगे कुञ्जरोद्भूते सत्वरं चापसर्पणम् ।।३८।।
विलोकनं मुहुः पश्चात् त्रासकम्पादयो मताः ।

(५) कुञ्जरावेग – कुञ्जर से उत्पन्न आवेग में शीघ्रता से भागना, बार-बार पीछे देखना, भय से काँपना इत्यादि चेष्टाएँ कही गयी हैं।।३८उ.-३९पू.।।

यथा (शिशुपालवधे ३.६७)–

निरन्तरालेऽपि विमुच्यमाने दूरं पथि प्राणभृतां गणेन ।
तेजोमहद्भिस्तमसेव दीपैर्द्विपैरसम्बाधमयाम्बभूव ।।274।।

जैसे (शिशुपालवध ३/६७ में)–

सघन अन्धकार होने पर भी जैसे दीपक सामने आने पर अन्धकार दूर होकर मार्ग साफ हो जाता है इसी प्रकार प्राणिसमूह से मार्ग अत्यधिक भरा रहने पर भी विशाल हाथियों के आने पर लोग डरकर मार्ग छोड़ देते थे जिससे हाथी सुखपूर्वक आगे चले जाते थे।।274।।

अत्र कुञ्जरग्रहणमश्वादीनामुपलक्षणम् ।

यहाँ कुञ्जर का ग्रहण अश्वादियों का भी द्योतक है।

अश्वेन यथा (शिशुपालवधे ५/५९)–

उत्पाट्य दर्पचलितेन सहैव रज्ज्वा
कीलं प्रयत्नपरमानवदुर्ग्रहेण ।
आकुल्यकारि कटकस्तुरगेण तूर्ण-
मश्वेति विद्रुतमनुद्रवताश्वमन्यम् ।।275।।

अश्व से आवेग जैसे (शिशुपालवध ५/५९ में)–

अभिमान से उछले हुए (अत एव) रस्सी (अगाड़ी-पिछाड़ी) के साथ ही खूँटे को उखाड़कर, शीघ्र भागते हुए दूसरे घोड़े के पीछे '(यह) घोड़ी है' ऐसा समझ कर दौड़ते हुए (अत एव पकड़ने के लिए) प्रयत्नशील लोगों से कठिनता से पकड़े जाने योग्य घोड़े ने शिविर को व्याकुल कर दिया।।275।।

अथ प्रियश्रवणात्–

प्रियश्रवणजे ह्यस्मिन्नभ्युत्थानोपगूहने ।।३९।।
प्रीतिदानं प्रियं वाक्यं रोमहर्षादयोऽपि च ।

(६) प्रियश्रवण से आवेग– इस प्रियश्रवण से उत्पन्न आवेग में सत्कार के लिए उठना, आलिङ्गन, प्रेमप्रदर्शन, प्रियकथन, रोमाञ्च इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।३९उ.-४०पू.।।

यथा (रघुवंशे (३/१६)–

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते
कुमारजन्मामृतसम्मिताक्षरम् ।
अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः
शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ।।276।।

जैसे (रघुवंश ३/१६ में)–

राजा दिलीप के लिए 'राजकुमार का जन्म हुआ' ऐसा अमृत के समान कहने वाले रनिवास के परिचारकों के लिए, चन्द्रिका के समान प्रभा वाले छत्र और दो राजचिह्न चामर ये तीन ही वस्तु न देने योग्य थी।।276।।

श्रवणं प्रियदर्शनस्याप्युपलक्षणम् ।

तेन यथा (शिशुपालवधे १३/७)–

अवलोक एव नृपतेः स्म दूरतो रभसाद् रथावतरीमिच्छतः ।
अवतीर्णवान् प्रथममात्मना हरिर्विनयं विशेषयति सम्भ्रमेण सः ।।277।।

यहाँ श्रवण प्रिय के दर्शन का भी उपलक्षण है।

जैसे (शिशुपालवधे १३/७)–

रथ से उतरने की इच्छा करते हुए राजा (युधिष्ठिर को) दूर से ही देखने पर हर्ष से भगवान् (कृष्ण), उनके (उतरने से) पहले ही (रथ से) उतर गये। इस प्रकार उस (कृष्ण) ने शीघ्रता (से उतरने) के कारण (अपने) विनयशीलता को विशिष्ट (उत्कृष्ट) बना दिया।।277।।

अथाप्रियश्रुतेः–

अप्रियश्रुतिजेऽप्यस्मिन् विलापः परिवर्तनम् ।।४०।।
आक्रन्दनं भूपतनं परितो भ्रमणादयः ।

(७) अप्रिय श्रवण से आवेग– इस अप्रिय श्रवण से उत्पन्न आवेग में विलाप, परिवर्तन, रोना, जमीन पर गिरना, इधर-उधर घूमना इत्यादि चेष्टाएँ होती हैं।।४०उ.-४१पू.।।

यथा (वेणीसंहारे ६.१८)-

स कीचकनिषूदनो बकहिडिम्बकिम्मीरहा
मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिबन्धाशनिः ।
गदापरिघमानिना भुजबलेन सम्मानितः
प्रियस्तस्य ममानुजोऽर्जुनगुरुर्गतोऽस्तं किल ।।278।।

जैसे (वेणीसंहार ६/१८ में)-

(युधिष्ठिर द्रौपदी से कहते हैं- हे द्रौपदी!) कीचक को मारने वाला, बकासुर, हिडिम्बासुर तथा किमीरासुर का वध करने वाला, परिध के सदृश गदा से शोभायमान, अद्वितीय बाहुबल से सम्मानित वह तुम्हारा प्रिय, मेरा छोटा भाई, अर्जुन का ज्येष्ठ भ्राता अस्त को प्राप्त हो गया है-ऐसा प्रवाद है।।278।।

शात्रवात्-

चेष्टा स्युः शात्रवावेगे वर्मशस्त्रादिधारणम् ।।४१।।
रथवाजिगजारोहसहसापक्रमादयः ।

(८) शत्रुव्यसन से आवेग- शत्रुव्यसन आवेग में कवच, शस्त्र इत्यादि को धारण करना, रथ, अश्व, हाथी पर आरोहण, सहसा पलायन इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।४१उ.-४२पू.।।

यथा (कृष्णकर्णामृते २.७१)-

रामो नाम बभूव हुं तदबला सीतेति हुं तां गुरो-
र्वाचा पञ्चवटीवने विहरतस्तस्याहरद् रावणः ।
कृष्णेनेति पुरातनीं निजकथामाकर्ण्य मात्रेरितां
सौमित्रे! क्व धनुर्धनुर्धनुरिति व्यग्रा गिरः पान्तु वः ।।279।।

जैसे (कृष्णकर्णामृत २.७१ में)-

राम नाम वाले (राजा हुए), सीता इस नाम वाली उनकी पत्नी थी, पिता की आज्ञा से पञ्चवटी वन में विचरण करते हुए उनकी उस (पत्नी) को रावण ने हर लिया। माता के द्वारा कही गयी अपनी इस कथा को सुन कर कृष्ण के द्वारा कही गयी "लक्ष्मण! धनुष धनुष धनुष कहाँ है" यह व्यग्र वाणी तुम लोगों की रक्षा करें।।279।।

एते स्युरुत्तमादीनामनुभावा यथोचितम् ।।४२।।

ये उत्तम इत्यादि नायकों के यथोचित अनुभाव हैं।।४२उ.।।

अथोन्मादः-

उन्मादश्चित्तविभ्रान्तिर्वियोगादिष्टानाशतः ।

(११) उन्माद– वियोग से अथवा इष्ट जन के विनाश से चित्त का उतावला हो जाना उन्माद कहलाता है।।४३पू.।।

वियोगात्–

वियोगजे तु चेष्टा स्युर्धावनं परिदेवनम् ।।४३।।
असम्बद्धप्रलपनं शयनं सहसोत्थितिः ।
अचेतनैः सहालापो निर्निमित्तस्मितादयः ।।४४।।

वियोग से उन्माद– वियोग से उत्पन्न उन्माद में दौड़ना, विलाप (विलखना), अर्थहीन प्रलाप, शयन, सहसा ऊपर उठना, (वृक्षादि) अचेतनों के साथ आलाप, बिना कारण मुस्कराना इत्यादि चेष्टाएँ होती हैं।।४३उ.-४४।।

यथा–

आशूत्थानं सदृशगणना चेतनाचेतनेषु
प्रौढोष्मार्चिः श्वसितमसकृन्निर्गतो बाष्पपूरः ।
निर्लक्ष्या वाग् गतिरविषया निर्निमित्तं स्मितं च
प्रायेणास्याः प्रथयतितरां भ्रान्तिधात्रीमवस्थाम् ।।280।।

जैसे–

शीघ्रता से उठना, चेतन और अचेतन को समान समझना, बढ़े हुए ताप की ज्वाला वाली निःश्वास, बार-बार निकलने वाले आँसू की बाढ़, अर्थहीन वाणी, निर्लक्ष्य गति और बिना कारण मुस्कराना प्रायेण इस (रमणी) की उद्विग्न दशा को अत्यधिक बढ़ा रहा है।।280।।

इष्टनाशात्–

इष्टनाशकृते त्वस्मिन् भस्मादिपरिलेपनम् ।
नृत्तगीतादिरचना तृणनिर्माल्यधारणम् ।।४५।।
चीवरावरणादीनि प्रागुक्ताश्चापि विक्रियाः ।

इष्ट नाश से उन्माद– इष्ट के नाश से उत्पन्न इस (उन्माद) में भस्म इत्यादि का लगाना, नृत्त-गीत इत्यादि की रचना करना, तृण और मुरझाएँ फूल को धारण करना, चीवर पहनना इत्यादि तथा पहले (वियोगजन्य उन्माद में) कहीं गयी चेष्टाएँ होती है।।४५-४६पू.।।

यथा करुणाकन्दले–

कीनाशोऽपि विभेति यादवकुलात् वृद्धस्य का मे गति-
र्भेदः स्यात् स्वजनेषु किन्नु शतधा सीदन्ति गात्राणि मे ।
सोऽयं बुद्धिविपर्ययो मम समं सर्वे हताः बान्धवा
न श्रद्धेयमिदं हि वाक्यमहहा मुत्त्यन्ति मर्माणि मे ।।281।।

जैसे करुणाकन्दल में-

यमराज भी यादव कुल से डरते हैं तो फिर मुझ वृद्ध की क्या गति! वह यह मेरी बुद्धि का विपर्यास ही है सभी बान्धव मार डाले गये यह कथन, विश्वास योग्य नहीं है। ओह! मेरा अन्तःस्थल घबरा रहा है।।281।।

अथापस्मृतिः-

धातुवैषम्यदोषेण भूतावेशादिना कृतः ।।४५।।
चित्तक्षोभस्त्वपस्मारस्तत्र चेष्टा प्रकम्पनम् ।
धावनं पतनं स्तम्भो भ्रमणं नेत्रविक्रिया ।।४७।।
स्वौष्ठदंशभुजास्फोटलालाफेनादयोऽपि च ।

(१२) अपस्मृति- धातु की विषमता के दोष से तथा भूत के प्रभाव इत्यादि से चित्त का उत्तेजित होना (संवेग) अपस्मृति कहलाता है। उसमें काँपना, दौड़ना, गिरना, जड़ हो जाना, भ्रमण करना, नेत्रविकार, अपना ओठ काटना, भुजा का चटकाना, (मुँह से) लार और फेन का निकलना इत्यादि चेष्टाएँ होती हैं।।४६उ.-४८पू.।।

यथा-

लालाफेनव्यतिकरपरिक्लेदि भुग्नोष्ठपार्श्वं
गायं गायं कलितरुदितं प्रोन्नमन्तं नमन्तम् ।
स्तब्धोद्धृततक्षुभितनयनं मण्डलेन भ्रमन्तं
भूताविष्टं कमपि पुरुषं तत्र वीथ्यामपश्यम् ।।282।।

जैसे-

मैने वहाँ गली में भूत से ग्रस्त किसी व्यक्ति को देखा जिसके लार और झाक के मिश्रण से गीले ओष्ठ नीचे झुके हुए थे, जिसका बार-बार गाना रोदन से युक्त था, जो (कभी) उपर उठता था (और कभी) नीचे झुकता था, जिसके जड़, उमड़ कर बहते हुए और काँपते हुए नेत्र चारों ओर भ्रमण कर रहे थे।।282।।

दोषवैषम्यजस्त्वेष व्याधिरेवेत्युदास्महे ।।४८।।

रोग की विषमता से उत्पन्न (अपस्मृति) तो व्याधि होती है, इसलिए उसके प्रति हम उदासीन हैं।।४८उ.।।

अथ व्याधिः-

दोषोद्रेकवियोगाद्यैर्ज्वरः स्याद् व्याधिरत्र तु ।
गात्रस्तम्भः श्लथाङ्गत्वं कूजनं मुखशोषणम् ।।४९।।
स्रस्ताक्षताङ्गनिक्षेपनिःश्वाद्यास्तु स द्विधा ।

(१३) व्याधि– दोषों की अधिकता तथा वियोग इत्यादि से जो ज्वर होता है, वह व्याधि कहलाता है। इसमें शरीर का स्तम्भित होना, अङ्गों की शिथिलता, कूँ कूँ की ध्वनि करना, मुख का सूखना, लुढ़कना, अङ्गों का झटकना, निःश्वास इत्यादि चेष्टाएँ होती हैं।।४९-५०पू.।।

सशीतो दाहयुक्तश्च सशीते तत्र विक्रियाः ।।५०।।
हनुसञ्चालनं बाष्पः सर्वाङ्गोत्कम्पकूजने ।
जानुकुञ्चनरोमाञ्चमुखशोषादयोऽपि च ।।५१।।

व्याधि के प्रकार– यह (व्याधि) दो प्रकार की होती है- (१) सशीत और (२) दाहयुक्त।

सशीत व्याधि– सशीत (व्याधि) में जबड़ों का सञ्चालन, अश्रुपात, सभी अङ्गों में कम्पन, कूँ कूँ की ध्वनि करना, घुटनों का सिकोड़ना, रोमाञ्चित होना, मुख का सूख जाना इत्यादि चेष्टाएँ होती हैं।।५०उ.-५१।।

यथा–

रोमाञ्चमङ्कुरयति प्रकामं स्पर्शेन सर्वाङ्गिकसङ्गतेन ।
दोःस्वस्तिकाश्लिष्टपयोधराणां शीतज्वरः कान्त इवाङ्गनानाम् ।।283।।

जैसे–

मङ्गलचिन्ह से युक्त स्तनों वाली अङ्गनाओं का शीतज्वर प्रियतम के समान सभी अङ्गों के स्पर्श से अत्यधिक रोमाञ्च को अङ्कुरित करता है।।283।।

दाहज्वरे तु चेष्टाः स्युः शीतमाल्यादिकाङ्क्षणम् ।
पाणिपादपरिक्षेपमुखशोषादयोऽपि च ।।५२।।

दाहयुक्त– दाहयुक्तज्वर में शीतल माला इत्यादि की अभिलाषा, हाथों और पैरों का इधर उधर फैलाना, मुख का सूखना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।५२।।

यथा–

शय्या पुष्पमयी परागमयतामङ्गार्पणादश्नुते
ताम्यन्त्यन्तिकतालवृन्तनलिनीपत्राणि देहोष्मणा ।
न्यस्तं च स्तनमण्डले मलयजं शीर्णान्तरं दृश्यते
क्वाथाशु भवन्ति फेनिलमुखा भूषामृणालाङ्कुरा ।।284।।

जैसे–

नायिका के शरीर की गर्मी से पुष्पयुक्त शय्या अङ्गों के रखने के कारण परागयुक्त हो गयी है। समीपवर्ती कमल के पत्तों के पंखे शान्ति प्रदान करते हैं। स्तनों के घेरे पर लगाया गया चन्दन फटा हुआ (चिरचिराया हुआ) दिखायी पड़ रहा है। काढ़े (क्वाथ) से शीघ्र ही मुख से

झाक निकलने लगती है और कमलदण्ड (मृणाल) के अङ्कुर आभूषण हो गये हैं।।284।।

अथ मोहः-

आपद्भीतिवियोगाद्यैर्मोहश्चित्तस्य मूढ़ता ।
विक्रियास्तत्र विज्ञेया इन्द्रियाणां च शून्यता ।।५३।।
निश्चेष्टाङ्गभ्रमणपतनाघूर्णनादयः ।

(१४) मोह- आपत्ति, भय, वियोग, इत्यादि के कारण चित्त की जड़ता मोह कहलाती है। उसमें इन्द्रियों की शून्यता, निश्चेष्टता, अङ्गभ्रमण, पतन, चक्कर खाना इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।५३-५४पू.।।

आपदो यथा (रघुवंशे १४/५४)-

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ।।285।।

आपत्ति से मोह- जैसे (रघुवंश १४/५४ में)-

जिस प्रकार लू लगने से लता के फूल झर जाते हैं और वह सूख कर पृथ्वी पर गिर पड़ती है, उसी प्रकार इस अपमान-जनक बात को सुन कर सीता के आभूषण भी गिर पड़े और वे भी अपनी माँ पृथ्वी की गोद में गिर पड़ी।।285।।

भीतेर्यथा (कुमारसम्भवे ३.५१)-

स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं पश्यन्नदूरान्मनसाप्यधृष्यम् ।
नालक्षयत् साध्वससन्नहस्तः स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात् ।।286।।

भय से मोह जैसे (कुमारसम्भव ३/५१ में)-

इस प्रकार समाधि में मग्न तथा मन से भी अगम्य त्रिनेत्र भगवान् शंकर जी को अति समीप से देख कर कामदेव इतना आतंकित हो उठा कि उसके काँपते हुए हाथ से धनुष-बाण छूटकर कब नीचे गिर पड़ा, इसे भी वह न जान सका।।286।।

वियोगाद् यथा (रसकलिकायाम् ३२)-

तद् वक्त्रं नयने च ते स्मितसुधामुग्धं च तद् वाचिकं
सा वेणी स भुजक्रमोऽतिसरलो लीलालसा सा गतिः!
तन्वी सेति च सेति सेति सततं तद्ध्यानबद्धात्मनो
निद्रा नो न रतिर्न चापि विरतिः शून्यं मनो वर्तते ।।287।।

वियोग से मोह जैसे-

(प्रियतमा का) वही मुख, वही आँखें, मुस्कान रूपी अमृत से युक्त वही मधुर वाणी, वही चोटी, वही अति सरल भुजाओं का विन्यास, वही लीला से अलसाया हुआ गमन, वही कोमलाङ्गी

है, वही है वही है, वही है इस प्रकार उसी के ध्यान में वशीभूत हुए मुझे न तो निद्रा आती है न रति होती है और न विरक्ति होती है (क्योंकि) मन चेतना से शून्य हो गया है।।287।।

अथ मृत्तिः-

वायोर्धनञ्जयाख्यस्य विप्रयोगो य आत्मना ।।५४।।
शरीरवच्छेदवता मरणं नाम तद्भवेत् ।

१५. मृत्ति- धनञ्जय नामक वायु का आत्मा से वियोग होता है वह शरीर का विच्छेद मृत्ति (मरण) कहलाता है।।५४उ.-५५पू.।।

एतच्च द्विविधं प्रोक्तं व्याधिजं चाभिघातजम् ।।५५।।

मृत्ति के भेद- यह (मृत्ति) दो प्रकार की होती है— (१) व्याधिज और (२) अभिघातज।।५५उ.।।

आद्यं त्वसाध्यहृच्छूलविषूच्यादिसमुद्भवम् ।
अमी तत्रानुभावाः स्युरव्यक्ताक्षरभाषणम् ।।५६।।
विवर्णगात्रता मन्दश्वासादि स्तम्भमीलने ।
हिक्कापरिजनापेक्षानिश्चेष्टेन्द्रियादयः ।।५७।।

(१) व्याधिज मृत्ति- प्रथम (व्याधिज मृत्ति) असाध्य (जिसकी चिकित्सा न हो सके), हृदयपीड़ा, हैजा इत्यादि से उत्पन्न होती है। इसमें अस्पष्ट बोलना, शरीर में निष्प्रभता, मन्द श्वास इत्यादि, जड़ता, (आँखों का) बन्द होना, हिचकी, परिजनों की अपेक्षा, इन्द्रियों में निश्चेष्टता इत्यादि ये अनुभाव होते हैं।।५६-५७।।

यथा-

काये सीदति कण्ठरोधिनि कफे कुण्ठे च वाणीपथे
जिह्मायां दृशि जीविते जिगमिषौ श्वासे शनैः शाम्यति ।
आगत्य स्वयमेव नः करुणया कात्यायनीवल्लभः
कर्णे वर्णयताद् भवार्णवभयादुत्तारकं तारकम् ।।288।।

जैसे-

शरीर के शिथिल हो जाने पर, कफ से गला रूध जाने पर, वाणी के मार्ग के कुंठित हो जाने पर, नेत्रों के टेढ़े हो जाने पर जीवन के नियन्त्रित हो जाने पर, धीरे-धीरे श्वासों के शमित हो जाने पर, भवानीप्रिय (शङ्कर जी) स्वयं ही करुणापूर्वक आकर संसारसागर से पार करने वाले तारक मन्त्र को मेरे कानों में कहें।।288।।

द्वितीयं घातपतनदाहोद्बन्ध्यविषादिजम् ।
तत्र घातादिजे भूमिपतनाक्रन्दनादयः ।।५८।।

(२) अभिघातज मृत्ति– चोट, गिरने, जलने, आत्महत्या, विष इत्यादि से होने वाली मृत्ति अभिघातज मृत्ति कहलाती है। उस घात से उत्पन्न मृत्ति में भूमि पर गिरना, रोना इत्यादि विक्रियाएँ होती है॥५८॥

यथाभिरामराघवे–

आर्यशरपातविवरादुद्बुद्रफेनिलास्रकर्दमिता ।
आपतन्न चलति किञ्चिद् विकृताकृतिरद्य वज्रनिहतेव ॥289॥

जैसे अभिरामराघव में–

आज आर्य द्वारा (छोड़े गये) बाण के गिरने से बने छिद्र (घाव) से निकलते हुए बुलबुले से युक्त तथा झागदार रक्त से सना हुआ शरीर वज्र द्वारा मारे जाने के समान हिल नहीं पाता था और गिर जाता था॥289॥

विषं तु वत्सनाभाद्यमष्टौ वेगास्तदुद्भवाः ।
कार्ष्ण्यं कम्पो दाहो हिक्का फेनश्च कन्धराभङ्गः ॥५९॥
जडता मृतिरिति कथिताः क्रमशः प्रथमादिवेगजाश्चेष्टाः ।

विष से उत्पन्न आठ वेग– वत्सनाभ इत्यादि आठ विष हैं। उन विषों से उत्पन्न कृष्णता (कालिमा), कम्पन, जलन, हिचकी, फेन (झाक) गिरना, कन्ध भङ्ग, जड़ता, मृत्ति ये आठ वेग होते हैं। इन विषों से क्रमशः प्रथम (कृष्णता) इत्यादि से उत्पन्न चेष्टाएँ होती हैं।

यथा प्रियदर्शिकायाम्(४.९)–

एषा मीलयतीदमक्षियुगलं जाता ममान्धा दिशः
कण्ठोऽस्या परिखिद्यते मम गिरो निर्यान्ति कृच्छ्रादिमाः ।
एतस्याः श्वसितं हृतं मम तनुर्निश्चेष्टतामागता
मन्येऽस्या विषवेग एव हि परं सर्वं तु दुःखं मयि ॥289॥

अत्राक्षिनिमिलनकण्ठरोधननिःश्वासायासादिभिरारण्यिकाया विषवेगजनिता मृतिरवगम्यते।

जैसे प्रियदर्शिका (४.९ में)–

राजा– (आँसू भर कर मन ही मन)— यह (प्रियदर्शिका) इन आँखों को मूँद रही है किन्तु मेरी दिशाएँ अन्धकार पूर्ण हो रही है। इसका कण्ठ अवरुद्ध हो रहा है किन्तु वह मेरी वाणी कष्ट से निकल रही है। इसकी साँस बन्द हो रही है और मेरा शरीर निश्चेष्ट हो रहा है मैं समझता हूँ कि इसे केवल विष का वेग है किन्तु सारा दुःख मुझे ही हो रहा है।॥289॥

यहाँ आँखों के मूँदने, कण्ठ के अवरुद्ध होने, निश्वास के बन्द होने से आरण्यिका की विषवेग से उत्पन्न मृति ज्ञात होती है।

अथालस्यम्-

स्वभावश्रमसौहित्यगर्भनिर्भरतादिभिः ॥६०॥
कृच्छ्रात् क्रियोन्मुखत्वं यत् तदालस्यमिह क्रियाः ।
अङ्गभङ्गः क्रियाद्वेषो जृम्भणाक्षिविमर्दने ॥६१॥
शय्यासनैकप्रियता निद्रातन्द्रादयोऽपि च ॥

(१६) आलस्य- स्वभाव, परिश्रम, तृप्ति (सन्तुष्टि) गर्भ-भार इत्यादि से कष्ट के कारण कार्य से उन्मुख होना आलस्य कहलाता है। इसमें अङ्गभङ्गता (का बहाना करना), कार्य से अरुचि (अनिच्छा), जमुहाई लेना, नेत्रों का मलना, शय्या और आसन के प्रति प्रेम होना, निद्रा, थकावट आदि विक्रियाएँ होती हैं॥६०उ.-६२पू.॥

स्वभावश्रमाभ्यां यथा (शिशुपालवधे ७/६८)-

मुहुरिति वनविभ्रमाभिषङ्गा-
दितमि तदा नितरां नितम्बिनीभिः ।
मृदुतरतनवोऽलसाः प्रकृत्या
चिरमपि ताः किमुत प्रयासभाजः ॥291॥

स्वभाव और परिश्रम से आलस्य जैसे (शिशुपालवधे ७/६८ में)-
नितम्बिनी स्त्रियाँ फिर इस प्रकार वन-विहार में आसक्त होने से अत्यन्त खिन्न हो गयी। (उनका ऐसा थक जाना उचित ही था, क्योंकि) अत्यन्त सुकुमार शरीर वाली अङ्गनाएँ स्वभाव से ही आलसी होती हैं, तब फिर बहुत देर तक परिश्रम करने पर वैसी (जड़ आलसयुक्त) हो गयी, इसमें कहना ही क्या है?॥291॥

सौहित्यं भोजनतृप्तिः।

तेन यथा (अनर्घराघवे१.२८)-

त्रैलोक्यभयलग्नकेन भवता वीरेण विस्मारित-
स्तज्जीमूतमुहूर्तमण्डनधनुःपण्डित्यमाखण्डलः ।
किञ्चाजस्रमखार्पितेन हविषा सम्फुल्लमांसोल्लस-
त्सर्वाङ्गीणवलीविलुप्तनयनव्यूहः कथं वर्तते ॥292॥

अत्र मेदोवृद्धया शक्रस्य सौहित्यम् । तत्कृतमालस्यं कथं वर्तत इत्यनेन वागारम्भेण व्यज्येते।

सौहित्य का तात्पर्य है भोजन से तृप्ति।

उस भोजनतृप्ति से जैसे (अनर्घराघव १.२८ में)-
त्रैलोक्य को अभयदान देने वाले आपने मेघरूप धनुष की पण्डितता से इन्द्र को सूना

कर दिया है, अनभ्यास हो जाने के कारण इन्द्र ने धनुर्विद्या- पाण्डित्य से सम्बन्ध छुड़ा लिया है, सतत् यज्ञ में समर्पित हव्यभाग से इन्द्र की देह में मांस बहुत बढ़ गया है, उसी में उनके सारे नयन छिप गये हैं, न जाने वह कैसे रहते हैं?।।292।।

यहाँ मेदवृद्धि के कारण इन्द्र का सौहित्य (भोजन से तृप्ति) है। उससे उत्पन्न आलस्य 'कैसे रहते है'' इस कथन से व्यञ्जित होता है।

गर्भनिर्भरतया यथा–

आसनैकप्रियस्यास्याः सखीगात्रावलम्बिनः ।
गर्भालसस्य वपुषो भारोऽभूत्स्वाङ्गधारणम् ।।293।।

गर्भभार से जैसे–

इस (नायिका) के केवल आसन से प्रेम करने वाले, सखियों के शरीर का सहारा लेने वाले तथा गर्भ (धारण) से अलसाये हुए शरीर के लिए (अपने) अङ्गों को धारण करना भी बोझ हो गया है।।293।।

अथ जाड्यम्–

जाड्यमप्रतिपत्तिः स्यादिष्टानिष्टार्थयोः श्रुतेः ।।६२।।
दृष्टेर्वा विरहादेश्च क्रियास्तत्रानिमेषता
अश्रुतिः पारवश्यं च तूष्णीभावादयोऽपि च ।।६३।।

(१७) जड़ता– अभीष्ट और अनिष्ट अर्थ के सुनने, देखने तथा वियोग इत्यादि से उपेक्षा का भाव होना जड़ता कहलाता है। उसमें अपलक देखना, सुनायी न पड़ना, परवशता, मौन रहना इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।६२उ.-६३।।

इष्टश्रुतेर्यथा (किरातार्जुनीये ८.१५)–

प्रियेऽपरा यच्छति वाचमुन्मुखी
निबद्धदृष्टिः शिथिलाकुलोच्चया ।
समादधे नांशुकमाहितं वृथा
न वेद पुष्पेषु च पाणिपल्लवम् ।।294।।

अत्र प्रियवाक्यश्रवणजनितजाड्यमनिमेषत्वादिना व्यज्यते।

अभीष्ट श्रवण से जड़ता जैसे (किरातार्जुनीय ८.१५ में)–

प्रियतम से बात (प्रेमालाप) करती हुई कोई दूसरी अप्सरा मुख ऊपर उठाकर एकटक दृष्टि से देखती ही रह गयी। उसका नीवी बंधन नीचे खिसक गया और प्रेमालाप में मुग्ध होने के कारण वह वस्त्र तक नहीं सुधार सकी अर्थात् नग्न हो गई। फूलों पर उसका पल्लव के समान कोमल हाथ भी नहीं पड़ रहा था।।294।।

यहाँ प्रियवचन सुनने से उत्पन्न जड़ता अपलक देखने इत्यादि से व्यञ्जित होती है।

प्रियदर्शनाद् यथा (गाथासप्तशत्याम् 1.17)-

एहइ सो अप्पोसिओ अहं च कुप्येअ सो वि अणुसेज्ज ।
इह चिन्तेती बहुआ दट्ठूण पिअं ण किम्पि सम्मरइ ।।295।।
(एष्यति स च प्रोषितोऽहं च सोऽप्यनुनेष्यति ।
इति चिन्तयन्ती वधूर्दृष्ट्वा प्रियं न किमपि संस्मरति।।)

अत्र प्रियदर्शनजनितं जाड्यं पूर्वचिन्तितक्रियाविस्मरेण व्यज्यते।

प्रियदर्शन से जड़ता जैसे (गाथासप्तशती १/१७ में)-

परदेश गया हुआ प्रिय आएगा, तब मैं मान करूँगी और फिर वह मेरा मनावन करेगा।' हे सखि, इस प्रकार की मनोरथों की माला किसी धन्या ही के भाग में फलवती होती है।।295।।

यहाँ पहले सोचे गये कार्य को प्रियतम को देखने के कारण भूल जाने से जड़ता व्यक्त होती है।

अप्रियश्रवणाद् यथा-

आपुच्छन्तस्स बहू गमिदुं दइअस्स सुणिअ अद्धोत्तिम् ।
अणुमण्णिदुं ण जाणइ णिवारेदुं अ परवसा उवह ।।296।।
(आपृच्छमाणस्य वधूर्गन्तुं दयितस्य श्रुत्वार्धोक्तिम् ।
अनुमन्तुं न जानाति निवारयितुं च परवशा पश्यत ।।)

अप्रिय श्रवण से जड़ता जैसे-

जाने के लिए पूछने वाले प्रियतम की आधी बात को सुनकर वधू न तो अनुमोदन करना जानती है और रोकने के लिए परवश दिखलायी पड़ती है।।296।।

अनिष्टदर्शनाद् यथा ममैव-

ससुरेण दज्जमाणे घरणिअडभवे निउंज्जपुञ्जम्मि ।
सुण्हा ण सुणइ सुण्णा बहुमो कहिदं वि ससुराणं ।।297।।
(श्वसुरेण दह्यमाने गृहनिकटभवे निकुञ्जपुञ्जे ।
स्नुषा न शृणोति शून्या बहुशः कथितमपि श्वश्र्वा।।)

अनिष्ट दर्शन से जड़ता जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

श्वसुर के द्वारा घर के समीप वाले लतागृह के जलाये जाने पर सास द्वारा अनेक प्रकार से कही गयी बात को शून्य पुत्रवधू नहीं सुनती है।।297।।

वियोगाद् यथा (अभिनन्दस्य रामचरिते १९.६१)-

पप्रच्छ पृष्टमपि गद्गदिकार्तकण्ठः

शुश्राव नोक्तमपि शून्यमनः स किञ्चित् ।
सस्मार न स्मृतमपि क्षणमात्मकृत्यं
श्रुत्वाहमित्युपगतोऽपि न संविवेद ।।298।।

अत्र सीताविरहजनितं रामस्य जाड्यं पुनःप्रश्नश्रुत्यादिभिरवगम्यते।

वियोग से जड़ता जैसे (अभिनन्द के रामचरित १९.६१ में)-

(सीता के विरह से उत्पन्न कष्ट) हकलाने वाले कण्ठ से युक्त (राम) ने पूछी गयी बात को फिर से पूछा, शून्य (जड़) मन हो जाने के कारण कहीं गयी बात को भी, कुछ नहीं सुना, अपने द्वारा किये गये कार्य को स्मरण करने पर भी तुरन्त स्मरण नहीं किया, 'मैं' इस शब्द को सुनकर भी अनुभूत (उद्बुद्ध) नहीं हुए।।298।।

यहाँ सीता के विरह से उत्पन्न राम की जड़ता पुन:प्रश्न (फिर से पूछने) और सुनने इत्यादि से ज्ञात होती है।

अथ व्रीडा-

अकार्यकारणावज्ञास्तुतिनूतनसङ्गमैः ।
प्रतीकाराक्रियाद्यैश्च व्रीडा त्वनतिधृष्टता ।।६४।।
तत्र चेष्टा निगूढोक्तिराधोमुख्यविचिन्तने ।
अनिर्गमो बहिः क्वापि दूरादेवावगुण्ठनम् ।।६५।।
नखानां कृन्तनं भूमिलेखनं चैवमादयः ।

(१८) व्रीडा- अकरणीय कार्य के करने, तिरस्कार, प्रशंसा (स्तुति), नवसङ्गम, प्रतीकार न कर पाने इत्यादि से अनिर्लज्जता व्रीडा कहलाती है। उसमें रहस्यमय कथन, अघोमुख होना, विचिन्तन, कहीं बाहर न निकलना, दूर से ही घूँघट निकालना, नखों का कुतरना, भूमि पर कुरेदना- ये चेष्टाएँ होती है।।६४-६६पू.।।

अकार्यकरणाद् यथा (अनर्घराघवे २.५९)-

गुर्वदिशादेव निर्मीयमाणो
नाधर्माय स्त्रीवधोऽपि स्थितोऽयम् ।।
अद्य स्थित्वा श्वो गमिष्यद्भिरल्पै-
र्लज्जास्माभिर्मीलिताक्षैर्जितैव ।।299।।

अकरणीय कार्य करने से व्रीडा जैसे (अनर्घराघव २.५/९ में)-

गुरुदेव की आज्ञा से किये गये इस स्त्री वध में भी अधर्म तो होगा नहीं, रही लाज की बात तो आज हम हैं कल चले जायेंगे, तब तक आँखे बन्द करके लज्जा को भी परास्त कर दे सकते हैं।।299।।

अवज्ञया यथा (किरातार्जुनीये ११/५८)-

अवधूयारिभिर्नीता हरिणैस्तुल्यवृत्तिताम् ।
अन्योऽन्यस्यापि जिह्रीमः प्रागेव सहवासिनाम् ।।300।।

तिरस्कार से व्रीडा जैसे (किरातार्जुनीय ११/५८ में)-

शत्रुओं से तिरस्कृत होकर हम लोग मृगों के समान जीवन वाले बनाये गये हैं, एक दूसरे से भी लज्जित होते हैं सहचारियों से मिलने पर फिर क्या कहना है?।।300।।

स्तुत्या यथा (रघुवंशे १५.२७)-

तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः ।
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयावनतं शिरः ।।301।।

स्तुति से व्रीडा जैसे (रघुवंश १५/२७ में)-

जब तपस्वियों का काम पूरा हो गया तब वे शत्रुघ्न की बड़ाई करने लगे पर अपनी प्रशंसा सुन कर शत्रुघ्न ने शील के मारे लजा कर अपना सिर नीचे कर लिया।।301।।

नवसङ्गमेन यथा (अमरुशतके,४१)-

पटालग्ने पत्यौ नमयति मुखं जातविनया
हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम् ।
न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना
ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिभोगे नववधूः ।।302।।

नवसङ्गम से व्रीडा जैसे (अमरुशतक ४१ में)-

(कवि नववधू की दशा का वर्णन कर रहा है) जब पति आँचल खींचता है तो वह विनययुक्त होकर मुख को नीचा कर लेती है, पति बलात् आलिङ्गन करना चाहता है तो वह चुपके से अपने अङ्ग हटा लेती है। इस प्रकार मुस्कराते हुए मुख वाली सखियों पर दृष्टि डालते हुए भी वह कुछ कह नहीं सकती, वह नववधू इस प्रथम परिहास के अवसर पर मन ही मन उद्विग्न होती है।।302।।

यहाँ नूतन समागम के कारण मुख के नीचा करने अङ्गों को हटाने, कुछ न कहने, और मन ही मन उद्विग्न होने से नववधू की व्रीडा ध्वनित होती है।

प्रतीकाराकरणाद् यथा (निशानारायणस्य शार्ङ्गधरपद्धतौ)-

उद्वृत्तारिकृताभिमन्युनिधनप्रोद्भूततीव्रक्रुधः
पार्थस्याकृतशात्रवप्रतिकृतेरन्तश्शुचा मुह्यतः ।
कीर्णा बाष्पकणैः पतन्ति धनुषि व्रीडाचला दृष्टयो
हा वत्सेति गिरः स्फुरन्ति न पुनर्निर्यान्ति कण्ठाद्बहिः ।।303।।

प्रतीकार न करने से व्रीडा जैसे–

दुर्वृत्त (दुराचारी) शत्रुओं द्वारा किये गये अभिमन्यु के वध से उत्पन्न भीषण क्रोध वाले तथा शत्रुओं का प्रतीकार न करने के कारण अन्तःकरण के शोक से उद्विग्न हुए अर्जुन के आँसुओं से पूरित तथा लज्जा के कारण जड़ दृष्टि धनुष पर टिकी हुई है और 'हा वत्स' यह वाणी (अन्तःकरण में) स्फुरित हो रही है किन्तु कण्ठ से बाहर नहीं निकल रही है।।303।।

यहाँ शत्रुओं का प्रतीकार न करने से अर्जुन की व्रीडा (लज्जा) का कथन हुआ है।

अथावहित्था–

अवहित्थाकारगुप्तिजैह्म्यप्राभवनीतिभिः ।।६६।।
लज्जासाध्वसदाक्षिण्यप्रागल्भ्यापजयादिभिः ।
अन्यथाकथनं मिथ्याधैर्यमन्यत्र वीक्षणम् ।।६७।।
कथाभङ्गादयोऽप्यस्यामनुभावा भवन्त्यमी ।

(१९) अवहित्था– कुटिलता, प्रभुता, नीति, लज्जा, भय, दक्षिण्य, प्रागल्भ्य, अपजय इत्यादि से आकृति का गोपन अवहित्था कहलाता है। अन्यथा कथन, मिथ्या धैर्य, अन्यत्र देखना, कथाभङ्ग इत्यादि इसके अनुभाव होते हैं।।६६उ.-६८पू.।।

जैह्म्याद् यथा (रघुवंशे ७.३०)–

लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते
ह्रदा प्रसन्ना इव गूढनक्राः ।
वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीया
प्रत्यर्प्य पूजामुदाच्छलेन ।।304।।

कुटिलता से अवहित्था जैसे (रघुवंश ७/३० में) –

जिस प्रकार भयङ्कर जल जन्तुवों से युक्त होते हुए भी गंभीर सरोवर ऊपर से स्वच्छ जल वाले मालूम पड़ते है उसी तरह अन्दर द्वेष रखने वाले राजा लोग अपने हृदयगत द्वेष हँसी आदि के कपट को छिपा कर बाहरी प्रसन्नता व्यक्त करते थे। वे सभी विदर्भराज से आज्ञा लेकर और उनकी दी हुई सामग्री को भेंट के व्याज (बहाने) से पुनः उन्हें लौटाकर विदा हुए।।304।।

प्राभवाद् यथा (उत्तररामचरिते ३.१)–

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ।।305।।

प्रभुता से अवहित्था जैसे (उत्तररामचरित ३/१ में)–

गम्भीरता से अव्यक्त भीतर छिपी हुई गाढ़ वेदना से युक्त राम का करुण रस (शोक) पुटपाक के सदृश है।।305।।

नीत्या यथा (मालतीमाधवे १/१५)-

बहिः सर्वाकारप्रवणरमणीयं व्यहरन्
पराभ्यूहस्थानान्यपि तदनुत्तराणि स्थगयति ।
जनं विद्वानेकः सकलमतिसन्धाय कपटै-
स्तटस्थः स्वानर्थान् घटयति च मौनं च भजते ।।306।।

नीति से अवहित्था जैसे (मालतीमाधव १/१५ में)-

अद्वितीय विद्वान् बाहर से संपूर्ण आकार की अनुकूलता से सुन्दर रूप से व्यवहार करता हुआ दूसरे के अत्यन्त सूक्ष्म भी तर्क स्थानों को छिपाता है, कपटों से सब लोगों को प्रताड़ित कर स्वयम् उदासीन सा होकर अपने प्रयोजनों को सिद्ध करता है और साथ-साथ मौन का भी अवलम्बन करता है।।306।।

लज्जया यथा (कन्दर्पसम्भवे)-

चिक्षेप लक्ष्मीर्निटिलान्नखाग्रैः प्रस्वेदवार्यातपमाक्षिपन्ती ।
जुगोप देवोऽपि स रोमहर्षं जडाब्धिवाताहतिकैतवेन ।।307।।

लज्जा से जैसे (कन्दर्पसम्भव में)-

लक्ष्मी ने अपने मस्तक से नख के कोरों द्वारा पसीने को निवारित करने वाली धूप को बार-बार दूर किया और जड़ समुद्र की हवा के आघात के बहाने से उस देव (विष्णु) ने अपने रोमाञ्च और हर्ष को छिपा लिया।।307।।

साध्वसेन यथा (अनर्घराघवे ४.८)-

श्रुत्वा दुश्श्रवमद्भुतं च मिथिलावृत्तान्तमन्तःपत-
च्चिन्तानिह्नावसावहित्थवदनतद्दिग्विप्रतीर्णस्मितः ।
हेलाकृष्टसुरावरोधरमणीसीमन्तसन्तानव-
स्रग्वासोज्ज्वलपाणिरप्यवति मां वत्सो न लङ्केश्वरः ।।308।।

भय से अवहित्था जैसे (अनर्घराघव ४.८ में)-

दुःश्रव तथा अद्भुत मिथिला वृत्तान्त को सुन कर हृदय में पैदा होने वाली चिन्ता से आकार- गोपनपूर्वक वदन पर जिसके हास विखर रहे हैं, अनायास आकृष्ट देवबाला रूप वन्दिनियों के शिरोमाल्यों से जिसके हाथ प्रकाशित हो रहे हैं ऐसा होकर भी रावण मुझे आज आनन्दित नहीं कर रहा है।।308।।

दाक्षिण्याद्यथा (अनर्घराघवे १.२९)-

त्वय्यर्धासनभाति किन्नरगणोद्गीतैर्भवद्विक्रमै-
रन्तस्सम्भृतमत्सरोऽपि भगवानाकारगुप्तौ कृती ।

उन्मीलन्भवदीयदक्षिणभुजारोमाञ्चविद्धोचल-
द्बाष्पैरेव विलोचनैरभिनयत्यानन्दमाखण्डलः ।।309।।

दाक्षिण्य से अवहित्था जैसे (अनर्घराघव १.२९ में)-

आप जब इन्द्र के साथ अर्धासन पर विराजमान रहते हैं, उस समय जब किन्नरगण आपकी कीर्तिका गान करते हैं, तब इन्द्र को मात्सर्य होता है परन्तु वह आकार गोपन में बहुत चतुर होने के कारण फड़कने वाले आप के दक्षिण बाहु में वर्तमान रोमाञ्च से विद्ध उनके नयनों से निर्गत बाष्पों द्वारा आनन्द का अभिनय करके रह जाते हैं।।309।।

प्रागल्भ्येन यथा (अमरुशतके १८)-

एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युदगमाद् दूरत-
स्ताम्बूलानयनच्छलेन रभसाश्लेषोऽपि संविघ्नितः ।
आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्यान्तिके
कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थीकृतः ।।310।।

प्रागल्भ्य से अवहित्था जैसे (अमरुशतक १८ में)-

नायक को देर से आते हुए देख कर अगवानी में उठते हुए एक आसन पर बैठने से बचा दिया, पान लाने के बहाने से (नायक द्वारा) वेगपूर्व किये जाते हुए आलिङ्गन में भी विघ्न कर दिया, नायक के पास सेवकों को काम में लगाती हुई उसने नायक से बात-चीत भी न की। इस प्रकार प्रियतम के प्रति औपचारिकता का प्रदर्शन करके उस प्रगल्भा (नायिका) ने अपना कोप सफल कर लिया।।310।।

अथ स्मृतिः-

स्वास्थ्यचिन्तादृढाभ्याससदृशालोकनादिभिः ।।६८।।
स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थप्रतीतिस्तत्र विक्रियाः ।
कम्पनोद्वहने मूर्ध्नो भ्रूविक्षेपादयोऽपि च ।।६९।।

(२०) **स्मृति-** स्वास्थ्य, चिन्ता, दृढ़भ्यास, समान दशा के अवलोकन इत्यादि से पहले अनुभव किये गये अर्थ की प्रतीति होना स्मृति कहलाता है। इसमें कम्पन, सहारा, शिर और नेत्रों का इधर-उधर घुमाना इत्यादि विकियाएँ होती है।।६८उ.-६९।।

स्वास्थ्येन यथा (अभिज्ञानशाकुन्तले ५/२)-

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिरणि जननान्तरसौहृदानि ।।311।।

स्वास्थ्य से स्मृति जैसे (अभिज्ञानशाकुन्तल ५/२ में)-

मनोहर दृश्य देखकर और मीठे शब्द सुनकर सुखी रहता हुआ भी प्राणी जो उत्कण्ठित हो जाता है उससे लगता है कि निश्चय ही वह पहले से अज्ञात रूप में भावों से स्थायी बन गये अन्य जन्मों के सौहार्दों का मन ही मन स्मरण करता है।।311।।

चिन्तया यथा (मालतीमाधवे ५.१०)-

लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च
प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघटितेवान्तर्निखातेव च ।
सः नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभि-
श्चिन्तासन्ततिजन्तुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया ।।312।।

चिन्ता से स्मृति जैसे (मालतीमाधव ५/१० में)-

यह प्रिया (मालती) लीन सी, प्रतिबिम्बित सी, खोद (उत्कीर्ण) कर बनायी सी, जड़ी गयी सी, वज्र- लेप से रची गयी सी, अन्तःकरण में गड़ी सी, कामदेव के पाँच बाणों के द्वारा कील दी गई सी चिन्तासन्दान रूपी तन्तुओं से मजबूती के साथ सिली सी हमारे चित्त में लगी है।।312।।

दृढाभ्यासेन यथा (रसकालिकायाम्)-

तद्वक्त्रं नयने च ते स्मितसुधामुग्धे च तद्वाचिकं
सा वेणी स भुजक्रमोऽतिसरलो लीलालसा सा गतिः ।
तन्वी सेति च सेति सेति सततं तद्ध्यानबद्धात्मनो
निद्रा नो न रतिर्न चापि विरतिः शून्यं मनो वर्तते ।।313।।

दृढ़ाभ्यास से स्मृति जैसे (रसकलिका में)-

(प्रियतमा का) वही मुख, वही आँखे, मुस्कान रूपी अमृत से युक्त वही मधुर वाणी, वही वेणी, वही अतिसरल भुजाओं का विन्यास, वही लीला से अलसाया हुआ गमन, वही कोमलाङ्गी है, वही है, वही है— इस प्रकार उसी के ध्यान में वशीभूत हुए मुझे न निद्रा आती है, न रति होती है, न विरक्ति होती है (क्योंकि) मन (चेतना से) शून्य हो गया है।।313।।

सदृशावलोकनेन यथा (विक्रमोर्वशीये ३.५)-

आरक्तराजिभिरयं कुसुमैर्नवकन्दलीसलिलगर्भैः ।
कोपादन्तर्बाष्पे स्मरयति मां लोचने तस्याः ।।314।।

समान दशा देखने से जैसे (विक्रमोर्वशीय ३/५ में)-

यह नूतन कन्दली, जलयुक्त मध्यभाग वाले तथा चारो ओर से लाल रेखाओं से युक्त पुष्पों के द्वारा, क्रोध के कारण जिनमें आँसू भर आए हैं, ऐसे उस प्रिया (उर्वशी) के नेत्रों का मुझे स्मरण दिलाते हैं।।314।।

अथ वितर्कः-

ऊहो वितर्कः सन्देहविमर्शप्रत्ययादिभिः ।
जनितो निर्णयान्तः स्यादसत्य सत्य एव वा ।।७०।।
तत्रानुभावाः स्युरमी भ्रूशिरःकम्पनादयः ।

(२१) वितर्क- सन्देह और विमर्श के प्रत्यय (धारणा) इत्यादि के द्वारा निर्णय के अन्त में 'यह असत्य है अथवा सत्य' यह ऊहापोह वितर्क कहलाता है। उस (वितर्क) में भौहों और शिर का हिलाना इत्यादि अनुभाव होते हैं।।७०-७१पू.।।

सन्देहप्रत्यायाद् यथा (विल्हणचरिते पूर्वपञ्चाशते ४६)-

अङ्कं केऽपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परेमेनिरे
सारङ्गं कतिचिच्च सञ्जगदिरे भूच्छायमैच्छन् परे ।
इन्दौ यद् दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते
तत् सान्द्रं निशि पीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमाचक्ष्महे ।।315।।

अत्र चन्द्रगतकलङ्कविषये बहुविधप्रतिपत्त्या सन्दिहानस्य चन्द्रगिलितान्धकारोऽयमित्यसत्यात्मको भवति।

सन्देहप्रत्यय से वितर्क जैसे (बिल्हणचरितपूर्वपञ्चाशत ४६ में)-

(चन्द्रमण्डल के मध्य कालिमायुक्त चिह्न को) कोई समुद्र के विकार की शङ्का करते हैं तो कोई कीचड़ मानते हैं, कुछ लोग, यह मृग है, ऐसा कहते हैं तो कुछ लोगों को पृथ्वी की छाया दिखायी पड़ी, किन्तु इन्द्रनीलमणि के टुकड़े के समान जो मध्य में श्यामता दिखायी पड़ रही है उसे हम रात्रि में भी पीत घने अंधकार की कालिमा कहते हैं।।315।।

यहाँ चन्द्रगत कलङ्क के विषय में अनेक प्रकार के तर्क से सन्देह का 'यह चन्द्र द्वारा निगलित अन्धकार है' यह असत्यात्मकता हो जाती है।

विमर्शो विचारः।

तेन यथा (मालतीमाधवे१.१८)-

गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं
श्वसितमधिकं किन्त्वेतत् स्यात् किमन्यदतोऽथ वा ।
भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं
ललितमधुरांस्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ।।316।।

अत्र माधवगतां चिन्तामुपलभ्य किमत्र कारणमिति विमृशता मकरन्देन मन्मथनिबन्धन एवायं भाव इति सम्यङ्निर्णयान्तो वितर्कः।

विमर्श=विचार।

उस विमर्श से जैसे (मालतीमाधव १.१८ में)-

इसका गमन आलस्य युक्त, दृष्टि सूनी, शरीर सौन्दर्यहीन, श्वास अधिक चलता हुआ है, यह क्या है? अथवा इससे भिन्न क्या हो सकता है? संसार में कामदेव की आज्ञा विचरण कर रही है और यौवन विकारशील है अतः नाना प्रकार के ललित एवं मधुर भाव धैर्य को नष्ट कर देते हैं।।316।।

यहाँ माधव में चिन्ता को पाकर (देखकर)' इसका कारण क्या है- यह विचार करते हुए मकरन्द द्वारा 'यह भाव कामदेव की आज्ञा से ही है' इस प्रकार सम्यक् निर्णय वाला वितर्क है।।

अथ चिन्ता-

इष्टवस्त्वपरिप्राप्तेरैश्वर्यभ्रशनादिभिः ।।७१।।
चिन्ता ध्यानात्मिका तस्यामनुभावा मता इमे ।
कर्श्याधोमुख्यसन्तापनिःश्वासोच्छ्वसनादयः ।।७२।।

(२२) **चिन्ता-** अभीष्ट की अप्राप्ति ऐश्वर्य नाश इत्यादि के कारण चिन्तन चिन्ता कहलाता है। दुबलापन, अधोमुख होना, सन्ताप, निःश्वास, गहरी श्वॉस लेना इत्यादि इसके अनुभाव कहे गये हैं।।७१उ.-७२।।

इष्टवस्त्वलाभेन यथा-

ईसिवलिआवणआ से कूणिअपक्खन्ततारअ त्थिमिआ ।
दिट्ठी कबोलपाली णिहिआ करपल्लवे मणो सुण्णं ।।317।।
(ईषद्वलितावनतास्या:कूणितपक्षान्ततारका स्तिमिता ।
दृष्टिः कपोलपाली निहिता करपल्लवे मनः शून्यम् ।।)

अभीष्ट की अप्राप्ति से चिन्ता जैसे-

थोड़ा गतिशील और झुके हुए मुख वाली (इस नायिका) के नेत्र की पुतलियाँ पलकों से बन्द हो गयीं है, हाथ रूपी पत्ते पर कानों के कोरों तक गाल को टिकाया गया है- इस प्रकार इसका मन शून्य हो गया है।।317।।

ऐश्वर्यनाशेन यथा (कुमारसम्भवे २/२३)-

यमोऽपि विलिखन् भूमिं दण्डेनास्तमितत्विषा ।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्वाणालातलाघवम् ।।318।।

ऐश्वर्यनाश से चिन्ता जैसे (कुमारसम्भव २/२३ में)-

यमराज भी अपने उस तेजहीन दण्ड से भूमि कुरेद रहे थे, जो अमोध होते हुए भी बुझी हुई उल्का के समान तुच्छ और व्यर्थ सा हो गया है।।318।।

अथ मतिः-

नानाशास्त्रार्थमथनादर्थनिर्धारणं मतिः ।
तत्र चेष्टास्तु कर्त्तव्यकरणं संशयच्छिदा ।।७३।।
शिष्योपदेशभ्रूक्षेपावूहापोहादयोऽपि च ।

(२३) मति- अनेक शास्त्रों का मन्थन करके अर्थ का निर्धारण करना मति कहलाता है। इसमें कर्त्तव्य-पालन, संशय का निराकरण, शिष्य को उपदेश देना, भ्रूविक्षेप, ऊहापोह इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।७३-७४पू.।।

यथा (अनर्घराघवे २.६२)-

दशरथकुले सम्भूतं मामवाप्य धनुर्धरं
दिनकरकुलास्कन्दी कोऽयं कलङ्कनवाङ्कुरः ।
इति वनितामेनां हन्तुं मनो विचिकित्सते
यदधिकरणं धर्मस्थेयं तवैव वचांसि नः ।।319।।

जैसे (अनर्घराघव २.६२ में)-

दशरथ के कुल में उत्पन्न तथा धनुर्धारी मुझ को प्राप्त करके सूर्य के वंश को स्त्रीवधरूपी यह नया कलङ्क लग रहा है, इसलिए मुझे हिचकिचाहट नहीं हो रही है क्योंकि धर्माधिकार में हमारे लिए आप के वचन ही प्रमाण है।।319।।

अथ धृतिः-

ज्ञानविज्ञानगुर्वादिभक्तिनानार्थसिद्धिभिः ।।७४।।
लज्जादिभिश्च चित्तस्य नैस्पृह्य धृतिरुच्यते ।
अत्रानुभावा विज्ञेया प्राप्तार्थानुभवस्तथा ।।७५।।
अप्राप्तातीतनष्टार्थानभिसंक्षोभणादयः ।

(२४) धृति- ज्ञान, विज्ञान, गुरुओं के प्रति भक्ति, अनेक कार्यों की सिद्धि, लज्जा इत्यादि से चित्त की निस्पृहता (अभिलाषा- रहितता) धृति कहलाता है। इसमें प्राप्तार्थ का अनुभव अप्राप्तार्थ का अभिक्षोभ होना इत्यादि अनुभाव जानना चाहिए।।७४उ.-७६पू.।।

ज्ञानाद् यथा (वैराग्यशतके ५५)-

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ।।320।।

ज्ञान से धृति जैसे (वैराग्यशतक ५५)-

हम लोग भिक्षा को (माँग कर) खाएँगे, दिग्वस्त्र को पहनेगें और भूतल पर सोयेगें। इस ऐश्वर्य की क्या आवश्यकता है।।320।।

विज्ञानाद् यथा–

अस्त्यद्यापि चतुस्समुद्रपरिधापर्यन्तमुर्वीतलं
सन्ति ज्ञानविदग्धगोष्ठिचतुराः केचित् क्वचिद् भूभुजः ।
तत्रैकोऽपि निरादरो यदि भवेदैको भवेत् सादरो
वाग्देवी वदनाम्बुजे वसति चेत् को नाम दीनो जनः ।।321।।

विज्ञान से धृति जैसे–

आज भी समुद्र की सीमा घिरा हुआ भूतल है। ज्ञानियों की सभा में कुशल कहीं -कहीं कुछ राजा लोग भी हैं। वहाँ (उन राजाओं के यहाँ) यदि कोई तिरस्कृत तथा कोई सम्मानित होता हो तो हो। यदि सरस्वती (जिसके) मुखकमल में निवास करती हैं तो (उनमें) कौन व्यक्ति गरीब हो सकता है— कोई नहीं।।321।।

गुरुभक्त्या यथा (नागानन्दे१.६)–

तिष्ठन् भाति पितुःपुरो भुवि या सिंहासने किं तथा
यत्संवाहयतः सुखानि चरणौ तातस्य किं राज्यके ।
किम्भुक्ते भुवनत्रये धृतिरसौ भुक्तोज्झिते या गुरो-
रायासः खलु राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद्गुणः ।।322।।

अत्र पितृभक्त्या राज्येऽपि नैःस्पृह्यं जीमूतवाहनस्य ।

गुरुभक्ति से धृति जैसे (नागानन्द १.७ में)–

पिता के सामने भूमि पर बैठा हुआ (व्यक्ति) जैसा शोभित होता है, क्या वैसा सिंहासन पर बैठा हुआ (शोभित) हो सकता है? पिता के चरण दबाते हुए को जो सुख मिलता है, क्या वह राज्य से मिल सकता है? पिता के खाने से बचे हुए पदार्थ को खाने से जो सन्तोष (धृति) मिलता है, क्या वह तीनों लोकों के भोग से भी मिल सकता है? पिता का परित्याग करने वाले के लिए राज्य तो केवल आयास मात्र है, क्या उससे कुछ भी लाभ है?।।322।।

यहाँ पितृभक्ति से राज्य के प्रति भी जीमूतवाहन की निस्पृहता स्पष्ट है।

नानार्थसिद्ध्या यथा (वेणीसंहारे ६.४५)–

क्रोधान्धं सकलं हतं रिपुबलं पञ्चाक्षताः पाण्डवाः
पाञ्चाल्या मम दुर्नयेन विहितस्तीर्णो निकारोदधिः ।
त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भाष से
किं नामान्यदतः परं भागवतो याचे प्रसन्नादहम् ।।323।।

अनेक कार्यों की सिद्धि से धृति जैसे (वेणीसंहार में ६/४५ में)–

(हम लोगों द्वारा) क्रोधान्ध सम्पूर्ण शत्रुसमूह मार डाला गया और (हम लोग) पाँच पाण्डव

अक्षत हैं मेरी दुर्नीति से उत्पन्न अपमान रूपी सागर द्रौपदी द्वारा पार कर लिया गया। देव पुरुषोत्तम आप मुझसे मङ्गलमय बात कर रहे हैं। प्रसन्न हुए भगवान् (आप) से इससे अधिक अन्य क्या मैं माँगू।।323।।

अथ हर्षः-

मनोरथस्य लाभेन सिद्ध्या योग्यस्य वस्तुनः ।।७६।।
मित्रसङ्गमदैवादिप्रसादादेश्च कल्पितः ।
मनःप्रसादो हर्षः स्यादत्र नेत्रास्यफुल्लता ।।७७।।
प्रियाभाषणमाश्लेषः पुलकानां प्ररोहणम् ।
स्वेदोद्गमश्च हस्तेन हस्तसम्पीडनादयः ।।७८।।

(२५) हर्ष- मनोरथ की पूर्णता, योग्य वस्तु की प्राप्ति, मित्र के मिलने, देवादि की प्रसन्नता से उत्पन्न मन की प्रसन्नता हर्ष कहलाता है। इसमें नेत्रों का विकास, प्रियभाषण, आलिङ्गन, रोमाञ्च, पसीने का निकलना, हाथ से हाथ को दबाना इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।७६पू.-७८।।

मनोरथस्य यथा (रघुवंशे ३/१७)-

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा
नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम् ।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद्
गुरुः प्रहर्ष प्रबभूव नात्मनि ।।324।।

मनोरथ (की प्राप्ति) से हर्ष जैसे (रघुवंश ३/१७)-

वायु-निर्निमेष रहित प्रदेश में स्थित कमल के समान दृष्टि से सुन्दर पुत्र के मुख को देखते राजा दिलीप का महान् हर्ष चन्द्र के दर्शन से समुद्र के ज्वर के समान उनके शरीर में नहीं समा सका।।324।।

योग्यवस्तुसिद्धया यथा-

स रागवानरुणतलेन पाणिना
पुलोमजापदतलयावकैरिव ।
हरिं हरिः स्तनितगभीरहेषितं
मुखे निरामिषकठिने ममार्ज तम् ।।324।।

अत्रोच्चैश्श्रवसो लाभेन देवेन्द्रस्य हर्षः ।

योग्य वस्तु की प्राप्ति से हर्ष जैसे-

उस हर्षित इन्द्र ने (अपनी) लाल हथेली वाले हाथ से इन्द्राणी के पैरों की महावर की लाली के समान उस गम्भीर हेषा ध्वनि करने वाले घोड़े (उच्चैश्श्रवस्) को शाकाहार करने से

कठोर मुख पर मार्जन (पोछना) किया।।325।।

यहाँ उच्चैश्रशवा की प्राप्ति होने से देवेन्द्र का हर्ष स्पष्ट है।

मित्रसङ्गमाद् यथा (शिशुपालवधे १३/१६)-

इभकुम्भतुङ्गकठिनेतरेतरस्तनभारदूरविनिवारितोदरा ।
परिफुल्लगण्डयुगलाःपरस्परं परिरेभिरे कुकुरकौरवस्त्रियः ।।326।।

मित्र-मिलन से हर्ष जैसे (शिशुपालवध १३.१६ में)-

हाथी के मस्तक के ललाट- स्थल के समान ऊँचे उठे एक दूसरे स्तन के भारों से निवारित अस्पष्ट रूप से दिखने वाले उदरों वाली तथा (हर्ष से) पुलकित गण्डस्थलीं (कपोलफलकों) वाली यादवों और पाण्डवों की स्त्रियाँ परस्पर आश्लिष्ट सी हुयीं (गले से मिलीं)।।326।।

मित्रसङ्गमः पूज्यादिसङ्गमादीनामुपलक्षणम् ।

मित्रमिलन सम्माननीय लोगों से मिलने इत्यादि को उपलक्षित करने वाला है।

पूज्यसङ्गमेन यथा (शिशुपालवधे १/२३)-

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो
जगन्ति यस्यां सविकासमासत् ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-
स्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः ।।326।।

पूज्य-समागम से हर्ष जैसे (शिशुपालवध १.२३ में)-

युगों की समाप्ति के समय (प्रलयकाल) में (समस्त) जीवों को अन्तर्भूत कर लेने वाले कैटभ नामक राक्षस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण के जिस शरीर में चौदहों भुवन विस्तार के साथ रहते थे उसी श्रीकृष्ण के शरीर में तपस्विश्रेष्ठ नारद के आगमन से उत्पन्न आनन्द न समा सका।।327।।

देवप्रसादाद् यथा (रघुवंशे २/६८)-

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं
गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै
शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ।।328।।

देवों की प्रसन्नता से हर्ष जैसे (रघुवंश १२/६८ में)-

निर्मल चन्द्रमा के समान मुख वाले, राजाओं में श्रेष्ठ दिलीप ने हर्ष के चिह्नों से अनुमित होने वाले नन्दिनी के वरदान रूपी अनुग्रह की दुबारा कही हुई के समान वाणी द्वारा गुरु से निवेदन कर रानी से कहा।।328।।

आदिशब्दाद् गुरुराजप्रसादादयः ।

गुरुप्रसादाद् यथा (अनर्घराघवे १.१८)-

अस्मद्गोत्रमहत्तरः क्रतुभुजामद्याय माद्यो रवि-
र्यज्वानो वयमद्य ते भगवती भूरद्य राजन्वती ।
अद्य स्वं बहुमन्यते सहचरैरस्माभिराखण्डलो
येनैतावरुन्धतीपतिरपि स्वेनानुगृह्णाति नः ।।329।।

कारिका में प्रयुक्त आदि शब्द से गुरु, राजा की प्रसन्नता को भी समझना चाहिए।

गुरु की प्रसन्नता से हर्ष जैसे (अनर्घराघव १.१८ में) -

आज यज्ञांश भोक्ताओं में प्रथम सूर्य हमारे वंश के प्रवर्त्तक सिद्ध हुए, आज हमारे यज्ञ सफल हुए, आज ही पृथ्वी ने सुराजा प्राप्त किया, आज इन्द्र हमारे समान मित्र को पाकर अपने को आदृत समझते है, जबकि स्वयं वसिष्ठ मुझ पर इतना अनुग्रह रखते हैं।।329।।

राजप्रसादाद् यथा (शिशुपालवधे १४.४१)-

प्रीतिरस्य ददतोऽभवत् तथा
येन तत्प्रियचिकीर्षवो नृपाः ।
स्पर्शितैरधिकमागमन्मुदं
नाधिवेश्मनिहितैरुपायनैः ।।330।।

राजा की प्रसन्नता से जैसे (शिशुपालवध १४.४१में)-

दान देते हुए इस राजा (युधिष्ठिर) को उसी प्रकार (याचकों के प्रति) प्रीति हुई जिस प्रकार उस (राजा) के प्रिय चाहने वाले राजा लोग दिये गये उपहारों से अधिक प्रसन्न होते हैं, घर में रखे गये (उपहारों) से नहीं।।330।।

अथौत्सुक्यम्-

कालाक्षमत्वमौत्सुक्यमिष्टस्तुवियोगतः ।
तद्दर्शनाद् रम्यवस्तुदिदृक्षादेश्च विक्रियाः ।।७९।।
त्वरानवस्थिति शय्यास्थितिरुत्थानचिन्तने ।
शरीरगौरवं निद्रातन्द्रा निःश्वसितादयः ।।८०।।

(२६) उत्सुकता- अभीष्ट वस्तु के वियोग से समय के व्यवधान का सहन न कर सकना उत्सुकता कहलाती है। उस अभीष्ट को देखने से, रमणीय वस्तु को देखने की इच्छा, शीघ्रता, अस्थिरता, शय्या पर पड़े रहना, उठना, चिन्तन, शरीर में भारीपन, निद्रा, तन्द्रा, निःश्वास इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।७९-८०।।

इष्टस्तुवियोगाद् यथा (मेघदूते २/४५)-

सङ्क्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा

सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभं प्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ।।331।।

अभीष्ट वियोग से उत्सुकता जैसे (मेघदूत २.४५)-

लम्बे पहरों वाली रात एक क्षण की तरह कैसे छोटी हो जाय? तथा दिन भी सभी अवस्थाओं में (सभी ऋतुओं में) किस तरह मंद-संताप वाला हो जाय? हे चञ्चलनेत्र वाली! इस प्रकार दुर्लभ अभिलाषा करने वाला मेरा मन अत्यधिक जलन भरी तुम्हारे वियोग की वेदनाओं से असहाय कर दिया गया है।।331।।

विमर्श- विरहियों के लिए रात बड़ी भयानक तथा कष्टदायिनी होती है। अत: वे चाहते हैं कि यदि रात क्षण भर की हो जाय तो किसी तरह जीवन-रक्षा हो सके। विरही का हृदय वियोग की धधकती ज्वाला से जलता रहता है। उस पर यदि दिन की गर्मी शरीर को झुलसाती रहे तो मर्मान्तक पीड़ा होती है। अत: यक्ष सभी ऋतुओं में दिन को कम गर्मी वाला होने की अभिलाषा करता है।

इष्टवस्तुदर्शनाद् यथा (अमरुशतके ६६)-

आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीत्वा कथञ्चिद्दिनं
वैवग्ध्यापगमाज्जडे परिजने दीर्घां कथां कुर्वति ।
दष्टास्मीत्यभिधाय सत्वरतरं व्याधूय चेलाञ्चलं
तन्वङ्ग्या रतिकातरेण मनसा दीपोऽपि निर्वापितः ।।332।।

अभीष्ट दर्शन से उत्सुकता जैसे (अमरुशतक ६६ में)-

(विरहोपरान्त संगमोत्कंठिता नायिका का वर्णन सखी सखी से कर रही है)- प्रिय के विदेश से लौटकर आ जाने पर उसने मिलन-विषयक विविध अभिलाषाओं में दिन तो जैसे तैसे काट लिया किन्तु (संध्याकाल मिलने में) मूर्ख रसहीन सखियों ने जो बातों का सिलसिला जारी किया तो उसे द्रोपदी का चीर ही बना डाला। यह देखकर रति के लिए व्याकुल मन वाली उस तन्वंगी ने 'डस लिया डस लिया' कहकर झटके से कूदकर अपने चीनांशुक को झाड़ने के बहाने दीपक बुझा दिया।।332।।

रम्यादिदृक्षया यथा-

कृतावशेषेण सविभ्रमेण निष्कीलितेनाध्वनि पूरितेन ।
प्रसाधनेनाच्युद्दर्शनाय पुरस्त्रियः शिश्रियिरे गवाक्षान् ।।333।।

रमणीय वस्तु दर्शन की इच्छा से उत्सुकता जैसे-

उतावलेपन (स्थिरता न होने) के कारण रास्ते में पूरा होने वाले अधूरे प्रसाधन (शृङ्गार) से युक्त नगर की स्त्रियों ने अच्युत (भगवान्) को देखने के लिए घर की खिड़कियों का आश्रय लिया।।333।।

अथौग्र्यम्–

अपराधावमानाभ्यां धैर्यादिग्रहणादिभिः ।
असत्प्रलापनाद्यैश्च कृतं चण्डत्वमुग्रता ।।८१।।
क्रियास्तत्रास्यनयनरागो बन्धनताडने ।
शिरसः कम्पनं स्वेदवधनिर्भर्त्सनादयः ।।८२।।

(२७) उग्रता– अपराध, तिरस्कार, धैर्यादिग्रहण, असत्य प्रलाप, इत्यादि से (दुष्ट के प्रति) प्रचण्डता (क्रोध) उग्रता कहलती है। नेत्रों का लाल हो जाना, बाँधना, पीटना, शिर हिलाना, पसीना होना, मार डालना, धमकाना (निर्भत्सन) इत्यादि अनुभाव होते है।।८१-८२।।

अपराधाद् यथा (मालतीमाधवे ५.३१)–

प्रणयिसखी सलीलपरिहासरसाधिगतै-
र्ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत् ।
वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपतः
पततु शिरस्यकाण्डयमदण्ड इवैष भुजः ।।334।

अत्र मालतीनिकाररूपादपराधान्माधवस्यौग्र्यम् ।

अपराध से उग्रता जैसे (मालतीमाधव ५.३१ में)–

(माधव अघोरकण्ठ से कहता है-रे रे पापीजन!) प्रणययुक्त सखीजनों के परिहास में राग से प्राप्त कोमल शिरीष पुष्पों के प्रहारों से भी जो (मालती का) शरीर म्लान हो जाता है, वैसे शरीर पर मारने के लिए शस्त्र गिराने वाले तुम्हारे शिर पर आकस्मिक रूप से पतनशील यमदण्ड के समान यह मेरा हाथ चले।।334।।

यहाँ मालती के वधरूपी अपराध से माधव की उग्रता का कथन हुआ है।।

अवमानाद् यथा–

अज्ञातपूर्वां द्विषतामवज्ञां
विज्ञापयन्तं प्रति रुष्टचेताः ।
आज्ञाहरं प्राज्ञविनिन्द्यकर्मा
यज्ञाशिवैरी गदया जघान ।।335।।

तिरस्कार से उग्रता जैसे–

शत्रु के तिरस्कार को पहले बिना जाने ही शत्रुओं के प्रति क्रुद्ध चित्त वाले, प्राज्ञों द्वारा निन्दित कर्म युक्त तथा देवताओं के शत्रु ने (आज्ञा को) विज्ञापित करते हुए (सुनाते हुए) आज्ञा ले जाने वाले (सेवक) को गदा से मार डाला।।335।।

धैर्यादिग्रहणाद् यथा(अनर्घराघवे ५.११)-

भुजविटपमदेन व्यर्थमन्धंभविष्णु-
र्धिगपसरसि चौरकारमाक्रुश्यमानः ।
त्वदुरसि विदधातु स्वामवस्कारकेलिं-
कुटिलकरजकोटिक्रूरकर्मा जटायुः ।।336।।

धैर्यादि ग्रहण से उग्रता जैसे (अनर्घराघव ५.११ में)-

अपने बाहुसमुदाय के मद में व्यर्थ गर्व करने वाला तू चोर की तरह ललकारे जाने पर भी भागा जा रहा है, धिक्कार है तुमकों, तुम्हारी छाती पर अपने कुटिलनखों से क्रूरकर्म करने वाला यह जटायु अपनी अयस्कार केलिपटुता प्रकट करेगा।।336।।

असत्प्रलापाद् यथा (वेणीसंहारे ३/४०)-

कथमपिं न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्थेन पित्रा ममाद्य ।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ।।337।।

असत्य प्रलाप से उग्रता जैसे (वणीसंहार ३-४० में)-

(अश्वत्थामा कर्ण से कहता है-) जिंस किसी प्रकार-दुःखी अथवा डरपोक- उन मेरे पिता जी द्वारा द्रुपद के पुत्र (धृष्टद्युम्न) का हाथ (अपने शिर को काटने से) नहीं रोका गया। किन्तु (आज) बाहुबल के घमण्ड से फूले हुए तुम्हारे शिर पर यह बायाँ पैर रखा जा रहा है (यदि ताकत हो तो) इसे रोको।।337।।

अथामर्षः-

अधिक्षेपावमानाद्यैः क्रोधोऽमर्ष इतीर्यते ।
तत्र स्वेदशिरःकम्पावाधोमुख्यविचिन्तने ।।८३।।
उपायान्वेषणोत्साहव्यवसायादयः क्रियाः ।

(२८) **अमर्ष-** दोषारोपण (गाली देना), अनादर इत्यादि से उत्पन्न क्रोध अमर्ष कहलाता है। इसमें पसीना निकलना, शिर हिलाना, नीचे मुह करना, चिन्तन, उपाय खोजना, उत्साह, प्रयत्न इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।८३-८४पू.।।

अधिक्षेपाद् यथा (शिशुपालवधे १५/४७)-

इति भीष्मभाषितवचोर्थमधिगतवतामिव क्षणात् ।
क्षोभमगमदतिमात्रमसौ शिशुपालपक्षपृथिवीभृतां गणः ।।338।।

दोषारोपण से अमर्ष जैसे (शिशुपालवध १५/४७ में)-

इस प्रकार भीष्म द्वारा कहे गये वचन के अर्थ (तात्पर्य) को जानने वाले शिशुपाल पक्ष के राजाओं का यह समूह अत्यधिक क्रोधित हो गया।।338।।

अवमानाद् यथा (किरातार्जुनीये ११.५७)-

ध्वंसेत हृदयं सद्यः परिभूतस्य मे परैः ।
यद्यमर्षः प्रतीकारं भुजालम्बं न लम्भयेत् ।।339।।

अनादर से अमर्ष जैसे (किरातार्जुनीय ११.५७ में)-

शत्रुओं से तिरस्कृत मेरा हृदय, क्रोध- प्रतीकार स्वरूप बाहु का अवलम्बन ग्रहण न कराता तो उसी क्षण ध्वस्त हो जाता।।339।।

अथासूया-

परसौभाग्यसम्पत्तिविद्याशौर्यादिहेतुभिः ।।८४।।
गुणेऽपि दोषारोपः स्यादसूया तत्र विक्रियाः ।
मुखापवर्तनं गर्हाभ्रूभेदानादरादयः ।।८५।।

(२९) असूया- दूसरे के सौभाग्य, सम्पत्ति, विद्या, शौर्य इत्यादि के कारण गुण में भी दोषारोपण करना असूया कहलाता है। इसमें मुख को घुमा लेना, निन्दा करना, त्यौरी चढ़ाना (भ्रूभेद), अनादर आदि विक्रियाएँ होती है।।८४उ.-८५।।

परसौभाग्येन यथा (दशरूपके उद्धृतम् १३०)-

मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति
कान्तस्वहस्तलिखिता मम मञ्जरीति ।
अन्यापि किं न सखि! भाजनमीदृशानां
वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः ।।340।।

परसौभाग्य से असूया जैसे (दशरूपक में उद्धृत १३०)-

हे सखी इस बात का गर्व न कर कि प्रियतम के अपने हाथ से चित्रित मञ्जरी मेरे कपोलतल पर विराजमान है। अन्य स्त्री भी क्या इस प्रकार के सौभाग्य का पात्र नहीं हो सकती यदि वैरी कम्पन बाधक न हो जाये।।340।।

परसम्पत्या यथा-

लोकोपकारिणी लक्ष्मीः सतां विमलचेतसाम् ।
तथापि तां विलोक्यैव दूयन्ते दुष्टचेतसः ।।341।।

परसम्पत्ति से असूया जैसे-

(यद्यपि) निर्मल मन वाले सज्जनों की लक्ष्मी (धन) लोकोपकार करने वाली होती हैं

तथापि उस (लक्ष्मी) को देख कर ही दुष्ट मन वाले (दुष्ट लोग) दूषित हो जाते हैं।।341।।

परविद्यया यथा (प्रबोधचन्द्रोदये २.४)-

प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धविरुद्धार्थाभिधायिनः ।
वेदान्ता यदि शास्त्राणि बौद्धैः किमपराध्यते ।।342।।

परविद्या से अमर्ष जैसे (प्रबोधचन्द्रोदय २/४ में)-

प्रत्यक्ष इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध (इस जगत्) का विरोध करने वाले वेदान्त यदि शास्त्र हैं (तो फिर) बौद्धों द्वारा कौन सा अपराध किया गया है (कि उनके ग्रन्थ प्रमाण) शास्त्र न माने जाये)।।342।।

यथा वा-

गुणाधारे गौरे यशसि परिपूर्णे विलसति
प्रतापे चामित्रान् दहति तव शिङ्गक्षितिपते!
नवैवद्रव्याणीत्यकथयदहो मूढ़तमधी-
श्चतुर्धा तेजोऽपि व्यभजत कणादो मुनिरपि ।।343।।

अत्र प्रौढकविसमयप्रसिद्धमार्गानुसारिणो वक्तुः परिमितद्रव्यवादिनि कणादेः महत्यसूया मूढतमधीरिति वागारम्भेण व्यज्यते।

अथवा जैसे-

हे शिङ्गराज! तुम्हारे गुण के आश्रयभूत परिपूर्ण उज्ज्वल कीर्ति (यश) के शोभायमान होने पर तथा प्रताप में शत्रुओं के जल जाने पर यह आश्चर्य है कि अत्यधिक मूढ़ बुद्धि वाले कणाद मुनि भी द्रव्य नौ हैं यह कहते हैं और तेज का चार भागों में विभाजन करते हैं।।343।।

यहाँ प्रौढ़कवि (शिङ्गभूपाल) के समय के प्रसिद्ध मार्ग का अनुसरण करने वाले वक्ता परिमित द्रव्य का कथन करने वाले कणाद मुनि के प्रति महती असूया 'अत्यन्त मूढ़ बुद्धि वाले' इस कथन से व्यञ्जित होती है।

परशौर्येण यथा (हनुमन्नाटके १४.२१)-

स्त्रीमात्रं ननु ताटका भृगुसुतो रामस्तु विप्रोः शुचि-
र्मारीचो मृग एव भीतिभवनं वाली पुनर्वानरः ।
भो काकुस्थः विकत्थसे किमथवा वीरो जितः कस्त्वया
दोर्दर्पैस्तु तथापि ते यदि समं कोदण्डमारोपय ।।344।।

परशौर्य से असूया जैसे (हनुमन्नाटक १४.२१ में)-

ताड़का बेचारी स्त्री थी, भृगुपुत्र परशुराम पवित्र ब्राह्मण थे, मरीच मृग होने के नाते स्वाभावतः भीरु था और बाली तो वानर ही ठहरा, अरे काकुत्स्थ राम! बहुत डींग मारते हो, भला

यह तो बताओ कि किस वीर को तुमने आज तक जीता? यदि भुजदण्डों का घमण्ड हो तो आओ, मेरे साथ धनुष उठाओ!।।344।।

अथ चापलम्–

रागद्वेषादिभिश्चित्तलाघवं चापलं भवेत् ।
चेष्टास्तत्राविचारेण परिरम्भावलम्बने ।।८६।।
निष्कासनोक्तिपारुष्यताडनाज्ञापनादयः ।

(३०) चपलता– राग, द्वेष आदि से चित्त की लघुता चपलता कहलाती है। उसमें बिना विचार किए आलिङ्गन करना, कथन में कठोरता, पीटना, सूचित करना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।८६-८७पू.।।

रागेण यथा (शिशुपालवधे ७.५१)–

विजनमिति बलादमुं गृहीत्वा-
क्षणमथ वीक्ष्य विपक्षमन्तिकेऽन्या ।
अभिपतितुमना लघुत्वभीते-
रभवत मुञ्चति वल्लभेऽतिगुर्वी ।।345।।

राग से चपलता जैसे (शिशुपालवध ७/५१ में)–

'एकान्त है' इस कारण से इस (प्रियतम) को बलात् पकड़कर उसी क्षण समीप में सपत्नी को देखकर अपनी लघुता के भय से (सपत्नी के देखने से पहले ही) (वहाँ से) खिसकने की इच्छा करती हुई प्रियतम को छोड़ कर गौरवान्वित हो गयी।।345।।

द्वेषेण यथा (बालरामायणे ५/४९)–

पादाघातैः सुरभिरभितः सत्वरं ताडनीयो
गाढामोदं मलयमरुतः शृङ्खलादाम दत्त ।
कारागारे क्षिपत तरसा पञ्चमं रागराजं
चन्द्रं चूर्णीकुरुत च शिलापट्टके पिष्टबिम्बम् ।।346।।

अत्र सीताविरहेण रावणस्य वसन्तादिविषयद्वेषेण तत्तदधिदेवतानां ताडनाज्ञापनादिभिरनुभावैश्चापल्यं द्योत्यते।

द्वेष से चपलता जैसे (बालरामायण ५/४९ में)–

इस सुरभि को पैरों के आघात से मारना चाहिए, अत्यधिक आनन्दित मलयाचल से आने वाली हवा को कस कर रस्सी में बाँधने का दण्ड दिया जाय, रागराज पञ्चम (राग) को शीघ्र जेल में डाल दिया जाय और चन्द्रमा को शिलापट्टक पर पीसे बिम्ब वाला करके चूर्ण बना दिया जाय।।346।।

यहाँ सीता से विरह के कारण रावण का वसन्त इत्यादि विषयक द्वेष से तद्‌तद् अधिष्ठाता देवताओं के पीटने की आज्ञा इत्यादि अनुभावों से चपलता द्योतित होती है।

अथ निद्रा–

मदस्वभावव्यायामनिश्चिन्तत्वश्रमादिभिः ।।८७।।
मनोनिमीलनं निद्रा चेष्टास्तत्रास्यगौरवम् ।
आघूर्णमाननेत्रत्वमङ्गानां परिवर्तनम् ।।८८।।
निःश्वासोच्छ्वासने सन्नगात्रत्वं नेत्रमीलनम् ।
शरीरस्य च सङ्कोचो जाड्यं चेत्येवमादयः ।।८९।।

(३१) निद्रा– मद, स्वभाव, व्यायाम, निश्चिन्तता, श्रम इत्यादि के कारण मन का सुस्त होना निद्रा कहलाता है। उसमें मुख की गम्भीरता, नेत्रों का घूमना, अङ्गों का करवट बदलना, निःश्वास और उच्छवास, शरीर का लोटना, आँखों का बन्द होना, शरीर का सिकोड़ना, जड़ता इत्यादि इस प्रकार चेष्टाएँ होती हैं।।८७उ.-८९।।

मदाद् यथा (रघुवंशे ६/७५)–

यस्मिन् महीं शासति वाणिनीनां-
निद्रा विहारार्धपथे गतानाम् ।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि-
को लम्बयेदाहरणाय हस्तम् ।।347।।

मद से निद्रा जैसे– (रघुवंश ६/७५ में) –

जिस राजा दिलीप के शासन करते समय क्रीडा-स्थान में मद पीकर सोयी स्त्रियों के वस्त्रों को वायु भी नहीं छू सकता था तो फिर दूसरा कौन पुरुष उन्हें छूने के लिए हाथ बढ़ा सकता है।।347।।

स्वभावाद् यथा–

उत्तानामुपधाय बाहुलतिकामेकामपाङ्गाश्रया-
मन्यामप्यलसां निधाय विपुलामाभोगे नितम्बस्थले ।
नीवीं किञ्चिदिव श्लथां विदधती निःश्वासमुन्मुञ्चती
तल्पोत्पीडनतिर्यगुन्नतकुचा निद्राति शातोदरी ।।348।।

स्वभाव से निद्रा जैसे–

आँख के कोनों द्वारा आश्रय बनाये गये एक हाथ रूपी लता को उत्तान करके और दूसरे सुस्त (हाथ) को विशाल परिधि वाले नितम्बस्थल पर रखकर, कुछ ढीली नीवी को धारण करती हुई तथा लम्बी-लम्बी श्वॉस छोड़ती हुई और शय्या (पलंग) पर दबने के कारण तिरछे उठे

हुए स्तन वाली शातोदरी (रमणी, मनोहर पेट वाली) सो रही है।।348।।

व्यायामाद् यथा (उत्तररामचरिते १/२४)-

अलसलुलितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदात्
प्रशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ।।349।।

व्यायाम से निद्रा जैसे (उत्तररामचरित १/२४ में)-

जहाँ पर तुम मार्ग में चलने के परिश्रम से आलस्ययुक्त, कोमल और सुन्दर, दृढ़ आलिङ्गनों से दाबे गये और परिमर्दित कमल के डंडियों के सदृश दुर्बल अङ्गों को मेरी छाती पर रख कर सो गयी थी।।349।।

नैश्चिन्त्याद् यथा (अनर्घराघवे १.२७)-

दत्तेन्द्राभयदक्षिणाद्भुतभुजासम्भारगम्भीरया
त्वद्वृत्त्या शिथिलीकृतत्रिभुवनत्राणाय नारायणः ।
अन्तस्तोषतुषारसौरभमयश्वासनिलापूरण-
प्राणोत्तुङ्गभुजङ्गतल्पमधुना भद्रेण निद्रायते ।।350।।

निश्चिन्तता से जैसे (अनर्घराघव १.२७ में)-

इन्द्र को अभय देने वाले आपके भुजबल गम्भीरव्यापारों ने नारायण के शिर से भुवन रक्षा का भार उतार दिया है, अतः नारायण आन्तरिक सन्तोष को अभिव्यक्त करने वाला श्वासग्रहण करते हैं जिससे नारायण के तल्पभुज-गपवनाश होने से स्थूल होते जाते हैं, और भगवान् नारायण उस पन्नगशयन पर आनन्द की नींद सोते हैं।।350।।

श्रमाद् यथा (कुमारसम्भवे ८/८४)-

केवलं प्रियतमादयालुना ज्योतिषामवनतासु पंङ्क्तिषु ।
तेन तत्परिगृहीतवक्षसा नेत्रमीलनकुतूहलं कृतम् ।।351।।

श्रम से निद्रा जैसे- (कुमारसम्भव ८/८४ में)-

इस प्रकार सम्भोग करते-करते जब रात का पिछला पहर आ गया और तारों की पंक्तियाँ छटकने लगीं तब शंकर जी ने केवल अपनी प्रिया के ऊपर दया करके (न कि तृप्त होकर) पार्वती जी की छाती में चिपके हुए ही अपनी आँखे मूँद लेने का खिलवाड़ किया।।351।।

अथ सुप्तिः-

उद्रेक एव निद्रायाः सुप्तिः स्यात्तत्र विक्रियाः ।
इन्द्रियोपरतिर्नेत्रमीलनं स्रस्तगात्रता ।।९०।।

उत्स्वप्नायितनैश्चल्यश्वासोच्छ्वासादयो मताः ।

(३२) सुप्ति–

निद्रा की अधिकता सुप्ति कहलाता है। इसमें इन्द्रियों की विरक्ति, नेत्र बन्द होना, शरीर का ढीला हो जाना, निद्रा में बड़बड़ाना, निश्चलता, श्वाँस-उच्छ्वास इत्यादि विक्रियाएँ कही गयी है॥९०-९१पू.॥

यथा–

अव्यासुरन्तःकरुणारसार्द्रा-
निःसर्गनिर्यन्निगमान्तगन्धाः ।
श्वासानिलास्त्वां स्वपतो मुरारेः
शय्याभुजङ्गेन्द्रनिपीतशेषाः ॥352॥

जैसे– शय्या बने शेषनाग के द्वारा पीने से शेष बची हुई सोते हुए कृष्ण की अन्तः-करुणारूपी रस से सिक्त और स्वभावतः निकलते हुए उपनिषदों के सुगन्ध से युक्त श्वाँस की हवा तुम्हारी रक्षा करे॥352॥

अथ बोधः–

स्वप्नस्पर्शननिध्वाननिद्रासम्पूर्णतादिभिः ॥९१॥
प्रबोधश्चेतनावाप्तिश्चेष्टास्तत्राक्षिमर्दनम् ।
शय्याया मोक्षणं बाहुविक्षेपोऽङ्गुलिमोटनम् ॥९२॥
शिरः कण्डूयनं चाङ्गवलनं चैवमादयः ।

(३३) बोध–

स्वप्न, स्पर्श, ऊँची ध्वनि, निद्रा- पूर्ति इत्यादि द्वारा चैतन्यता प्राप्त होना बोध कहलाता है। उसमें आँख मलना, शय्या का छोड़ना, हाथों का फेंकना, अङ्गुलियों का चटकाना, सिर खुजलाना, अङ्गों का ऐंठना इत्यादि इस प्रकार की चेष्टाएँ होती है॥९१उ.-९३पू.॥

स्वप्नाद् यथा (कुमारसम्भवे ५/५७)–

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं
निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।
क्व नीलकण्ठ! व्रजसीत्यलक्ष्यवा-
गसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ॥353॥

स्वप्न से जैसे (कुमारसम्भव के ५/५७ में)–

कभी-कभी रात के तीन भाग शेष रह जाने पर अर्थात् पहले ही पहर में यह जब क्षणमात्र के लिए सोती थी तो अकस्मात् चौंक कर जाग उठती और बड़बड़ाने लगती थी कि हे

नीलकंण्ठ तुम कहाँ जा रहे हो तथा अपनी बाँहो को इस प्रकार फैलाती थी मानों शिव जी के गले में डाल कर उन्हें जाने से रोक रही हों।।353।।

स्पर्शनाद् यथा (शिशुपालवधे ८.१०)-

आघ्राय चाननमधिस्तनमायताक्ष्याः
सुप्तं तदा त्वरितकेलिभुवा श्रमेण ।
प्राभातिकः पवन एष सरोजगन्धी
प्रबोधयन्मणिगवाक्षसमागतो माम् ।।354।।

स्पर्श से बोध जैसे (शिशुपालवध ८.१० में)-

तब विशाल नेत्रों वाली प्रियतमा के मुख और विशाल स्तनों को सूँघ कर (उसके) अनुलेप से सुगन्धित (कमलों के) गन्ध वाली प्रातःकालीन वायु मणिनिर्मित गवाक्ष (खिड़की) से (भीतर) आकर शीघ्र सुरत से उत्पन्न श्रम से सोये हुए मुझको प्रबोधित किया।।354।।

निःस्वानाद् यथा (रघुवंशे ९.७१)-

उषसि स गजयूथकर्णतालैः
पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः ।
अरमत मधुरस्वराणि शृण्वन्
विहगविकूजितवन्दिमङ्गलानि ।।355।।

ऊँची ध्वनि से बोध जैसे (रघुवंश ९/७१ में)-

वन में रहते हुए भी राजा दशरथ के सभी व्यवहार राजाओं के समान हुआ करते थे। प्रातःकाल जब बड़े-बड़े नगाड़ों के समान शब्द करने वाले हाथियों के कानों की फट-फट होती थी तब आँखे खुलती थी और उस समय वन के पक्षी चारणों के समान जो मंगल गीत गाते थे उन्हें सुनकर वे परम प्रसन्न होते थे।।354।।

निद्रासम्पूर्त्या यथा (रघुवंशे १०.६)-

ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः ।
अव्याक्षेपो भविष्यन्त्या कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ।।356।।

निद्रापूर्ति से बोधजैसे (रघुवंश १०/६ में)-

देवता लोग ज्यों ही क्षीरसागर में पहुँचे त्यों ही भगवान् विष्णु भी योगनिद्रा से जग उठे। किसी कार्य में विलम्ब न होना पूर्ण होने वाले कार्य की सिद्धि का शुभ लक्षण है।।356।।

उत्तमाधममध्यमेषु सात्विका व्यभिचारिणः ।।९३।।
विभावैरनुभावैश्च वर्णनीया यथोचितम् ।
उद्वेगस्नेहदम्भेर्ष्याप्रमुखश्चित्तवृत्तयः ।।९४।।

उक्तेष्वन्तर्भवन्तीति न पृथक्तवेन दर्शिताः ।

उत्तमादि में औचित्य से सात्विक तथा व्यभिचारीभावों का कथन- उत्तम, मध्यम और अधम नायक में ये सात्विक और व्यभिचारी भाव होते हैं, विभावों और अनुभावों के साथ उनका यथोचित वर्णन कर दिया गया ।।९३उ.-९४पू.।।

उद्वेगादि का कथित व्याभिचारी भावों में अन्तर्भाव- उद्वेग, स्नेह, दम्भ, ईर्ष्या— ये मुख्यतया चित्तवृत्तियाँ हैं जिनका उपर्युक्त व्याभिचारी भावों में अन्तर्भाव हो जाता है इसलिए अलग से उनका विवेचन नहीं किया गया है।।९४उ.-९५पू.।।

तथाहि- परप्रतारणरूपस्य दम्भस्य जिह्मतावहित्थयोरन्तर्भावः। चित्तद्रवतालक्षणस्य स्नेहस्य हर्षेऽन्तर्भावः। स्वविषयदानमानाद्यमर्षणरूपाया ईर्ष्याया अमर्षेऽन्तर्भावः। परविषयायास्त्वसूयायाम्। उद्वेगस्य निर्वेदविषादादिषु यथोचितमन्तर्भाव! इत्यादि द्रष्टव्यम्।

जैसे कि पर प्रताड़ना (दूसरों को ताड़ना देना) रूपी दम्भ का जिह्मता और अवहित्था में अन्तर्भाव हो जाता है। चित्त द्रवण (चित्त का पिघलना) रूपी स्नेह का हर्ष में अन्तर्भाव हो जाता है। स्वविषयक दान, मान इत्यादि अमर्षण (असहनशीलता) रूपी ईष्या का अमर्ष में अन्तर्भाव हो जाता है। पर विषयक (दान मान इत्यादि अमर्षण रूपी ईष्या का) असूया में अन्तर्भाव हो जाता है। उद्वेग का तो निर्वेद, विषाद आदि में यथोचित अन्तर्भाव हो जाता है। ऐसे ही सभी को समझ लेना चाहिए।

तथा च भावप्रकाशिकाकारः-

अन्येऽपि यदि भावाः स्युश्चित्तवृात्तविरोषतः ।
अन्तर्भावस्तु सर्वेषां द्रष्टव्यो व्यभिचारिषु ।। इति

जैसा कि भावप्रकाशिकाकार ने कहा है-

यदि चित्तवृत्ति विशेष से अन्य भी भाव हों तो उन सभी भावों का अन्तर्भाव (उपर्युक्त) व्यभिचारीं भावों में समझ लेना चाहिए।।

विभावा अनुभावाश्च ते भवन्ति परस्परम् ।।९५।।
कार्यकारणभावस्तु ज्ञेयः प्रायेण लोकतः।

विभावादि को लोक व्यवहार से जानना- वे विभाव और अनुभाव एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। उनका कार्य- कारण भाव प्रायः लोक (व्यवहार) से समझ लेना चाहिए।।९५उ.-९६पू.।।

तथाहि- सन्तापस्य दैन्यं प्रति विभावत्वं ग्लानिं प्रत्यनुभावत्वं च। प्रहारस्य प्रलयमोहो प्रति विभावत्वम् औग्र्यं प्रत्यनुभावत्वं च। विषादस्योत्पातावेगं प्रत्यनुभावत्वं स्तम्भं प्रति विभावत्वम् । व्याधेर्ग्लानिस्तम्भप्रलयादीन् प्रति विभावत्वम् ।

जैसे कि– सन्ताप का दैन्य के प्रति विभावत्व और ग्लानि के प्रति अनुभावत्व होता है। प्रहार का प्रलयमोह के प्रति विभावत्व और उग्रता के प्रति अनुभावत्व होता है। विषाद का स्तम्भ के प्रति विभावत्व और वातावेग के प्रति अनुभावत्व होता है। व्याधि का ग्लानि, जड़ता, प्रलय इत्यादि के प्रति विभावत्व है।

स्वातन्त्र्यात् पारतन्त्र्याद् द्वेधामी व्यभिचारिणः ।।९६।।
परपोषकतां प्राप्ताः परतन्त्रा इतीरिताः ।
तदभावे स्वतन्त्रा स्युर्भावा इति ते स्मृताः ।।९७।।

व्यभिचारी भावों के प्रकार– स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के भेद से ये व्याभिचारी भाव दो प्रकार के होते हैं- (१ स्वतन्त्र और २. परतन्त्र)।

परतन्त्र व्यभिचारी भाव– परपोषकता को प्राप्त व्यभिचारी भाव परतन्त्र कहलाते हैं।

स्वतन्त्र व्यभिचारी भाव– और उस (परपोषकता) के अभाव में व्यभिचारीभाव स्वतन्त्र कहलाते हैं ऐसा कहा गया है।।९६उ.-९७।।

तत्र पारतन्त्रेण निर्वेदो यथा (अनर्घराघवे ४.४४)–

कुर्युः शस्त्रकथाममी यदि मनोर्वंशे मनुष्याङ्कुराः
स्याच्चेद् ब्रह्मगणोऽयमाकृतिगणस्तत्रेष्यते चेद् भवान् ।
सम्राजां समिधां च साधकतमं धत्ते छिदाकारणं
धिङ्मौर्वीकुशकर्षणोल्बणकिणग्रन्थिर्ममायं करः ।।357।।

इत्यत्र निर्वेदस्य क्रोधाङ्गत्वम्।

परतन्त्रता से निर्वेद जैसे (अनर्घराघव ४.४४ में)–

यदि यह मनुष्य के अंकुर भी शस्त्र की बातें करने लगे और यदि ब्रह्मगण को आकृतिगण मान कर तुम्हारा भी उसी में समावेश कर दिया जाय, तब राजाओं तथा समिधाओं को समभाव से काटने वाले इस कुठार को धनुष्प्रत्यञ्चा के द्वारा घर्षण से उत्पन्न व्रणचिह्नयुक्त हमारा हाथ व्यर्थ धारण करता है, इसे धिक्कार है।।357।।

यहाँ निर्वेद का क्रोध के प्रति अङ्गत्व है।

निर्वेदस्य स्वतन्त्रत्वं यथा (वैराग्यशतके ७१)–

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुधास्ततः किं
सम्मानिताश्च विभवैः सुहृदस्ततः किम् ।
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृतामसुभिस्ततः किम् ।।358।।

अत्र निर्वेदस्यानन्याङ्गत्वात् स्वतन्त्रत्वम् ।

निर्वेद की स्वतंत्रता जैसे (वैराग्यशतक ७१ में)-

सकल मनोरथ प्रदान करने वाली सम्पदाएँ प्राप्त कर लीं तो क्या? शत्रुओं के सिर पर पैर रख दिया तो क्या? मित्र आदि प्रियजनों को धन-सम्पत्ति से तृप्त कर दिया तो क्या? शरीरधारियों के शरीर कल्पपर्यन्त स्थित रहे तो क्या?।।358।।

यहाँ निर्वेद के दूसरे का अङ्गत्व न होने से स्वतन्त्रता है।

इत्यादि। ननु निर्वेदस्य शान्तरसस्थायित्वं कैश्चिदुक्तम् । कथमस्यान्यरसोपकरणत्वमिति चेद्, उच्यते। सति खलु ग्रामे सीमासम्भवना। स्थायित्वं नाम संस्कारपाटवेन भावस्य (वासनारूपेण स्थितस्य कारणवशादुद्बोधितस्य) मुहुर्मुहुर्नवीभावः। तेन निर्वेदवासनावासिते भावकचेतसि नैष्फल्येनाभिमतेषु विभावादिषु (भावकानां प्रथमं प्रवृत्तेरेवासम्भवात्) तत्सामग्रीफलभूतस्य निर्वेदस्योत्पत्तिरेव सङ्गच्छते, किं पुनः स्थायित्वम्। किञ्चासति निर्वेदस्थायिनि शान्तरूपो भावकानामास्वादश्चित्रगतकदलीफलरसास्वादलम्पटानां राजशुकानां विवेकसहोदरो भवेदिति कृतं सरम्भेन।

निर्वेद का शान्त रस के स्थायिभावत्व का अभाव- (शङ्का) कुछ लोग निर्वेद को शान्त रस का स्थायी भाव कहते हैं फिर इसका अन्य रसों का उपकरणत्व कैसे होगा **(समाधान)** समुच्चय (संग्रह) में सीमा की सम्भावना होती है। संस्कार की तीक्ष्णता से (वासना रूप में स्थित तथा कारणवशात् उद्बोधित) भाव का बार-बार नवीन होना स्थायित्व कहलाता है। इस कारण से निर्वेद की वासना से वासित भावक के मन में निष्फलता- पूर्वक अभिमत विभाव इत्यादि में (भावकों की प्रथम प्रवृत्ति के असम्भव होने के कारण) उस सामग्री के फलीभूत निर्वेद की उत्पत्ति ही नहीं होती। फिर उसका स्थायित्व कैसे होगा। इस प्रकार निर्वेद के स्थायी न होने पर भावकों का शान्तरूप आस्वाद चित्रित केले के आस्वाद के लोभी तोतों के विवेक के समान होता है— यह आरम्भ में ही किया गया (कहा गया) है।

विषादस्य परतन्त्रत्वं यथा (मालतीमाधवे १/३६)-

वारं वारं तिरयति दृशामुद्गतो बाष्पपूर-
स्तत्सङ्कल्पोपहितजडिम स्तम्भमभ्येति गात्रम् ।
सद्यः स्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलाङ्गुलीकः
पाणिर्लेखाविधिषु नितरां वर्तते किं करोमि ।।359।।

अत्र विषादस्य शृङ्गाराङ्गत्वम् ।

विषाद की परतन्त्रता जैसे (मालतीमाधवे १.३६ में)-

उत्पन्न अश्रु— प्रवाह नेत्रों को बार-बार आवृत्त कर दे रहा है। प्रिया की चिन्ता से कार्य में असमर्थता को प्राप्त करने वाला शरीर स्तब्ध हो जाता है। यह हाथ चित्र बनाने के कार्यों में तत्क्षण पसीना आने से और लगातार काँपने से चञ्चल अङ्गुलियों से युक्त हो जाता है, मैं क्या करूँ।।359।।

यहाँ विषाद की शृङ्गाराङ्गता है।

स्वतन्त्रत्वं यथा (रघुवंशे 6.67)–

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।360।।

इत्यत्र विषादस्यानन्याङ्गत्वम् । एवमन्येषामपि स्वतन्त्रत्वपरतन्त्रत्वे तत्र तत्रोहनीये।

विषाद की स्वतन्त्रता जैसे (रघुवंश ६.६७ में)–

जिस प्रकार रात में आगे बढ़ने वाली दीपशिखा राजमार्ग में बने हुए जिस महल को पार कर जब आगे बढ़ जाती है तब वह महल अन्धेरा व्याप्त हो जाने के कारण शोभारहित हो जाता है उसी प्रकार पति को स्वयं वरण करने वाली वह इन्दुमती जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ती जाती थी वह राजा उदासीन होता जाता था।।360।।

यहाँ विषाद का अन्याङ्गत्व नहीं है। इसी प्रकार दूसरों की भी स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के विषय में स्थल-स्थल पर विचार कर लेना चाहिए।

अभासता भवेदेषामनौचित्यप्रवर्तिनाम् ।
असत्यत्वादयोग्यत्वादनौचित्यं द्विधा भवेत् ।।९८।।
असत्यत्वकृतं तत्स्यादचेतनगतं तु यत् ।

व्यभिचारी भावों की आभासता– अनौचित्य द्वारा प्रवर्तित इन (व्याभिचारी भावों की आभासता होती है।।९८पू.

अनौचित्य के प्रकार– अनौचित्य दो प्रकार का होता है - १ असत्यता से तथा (२) अयोग्यता से।।९८उ.।।

१. असत्यकृत् अनौचित्य– असत्यकृत अनौचित्य अचेतन गत होता है।।९९पू.।।

यथा (दशरूपके उद्धृतम् २११)–

कस्त्वं भो! कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शाखोटकं
वैराग्यादिव वक्षि साधु विदितं कस्मादिदं श्रूयताम् ।
वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते
नच्छायापि परोपकारकरिणी मार्गस्थितस्यापि मे ।।361।।

अत्र वृक्षविशेषत्वादचेतने शाकोटके चित्तविकारस्यासम्भवादनुचितो निर्वेदोऽयमाभासत्वमापद्यते।

जैसे (दशरूपक में भी उद्धृत २१९)-

अरे तुम कौन हो? बतलाता हूँ— मुझे भाग्य का मारा शाखोटक (सेहुण्ड) वृक्ष जानो। तुम तो वैराग्य-युक्त से बोल रहे हो। हाँ, आपने ठीक जान लिया। किन्तु यह (वैराग्य) किस कारण से है? सुनिये-यहाँ (मार्ग के) वाम भाग में जो वट वृक्ष है, पथिकजन उसका सब प्रकार से (छाया, आरोहण आदि) से आश्रय लेते हैं, किन्तु मार्ग में स्थित होते हुए मेरी छाया भी दूसरे का उपकार नहीं कर सकती।।361।।

यहाँ वृक्ष विशेष होने के कारण अचेतन शाखोटक में चित्तविकार के असम्भव होने से अनुचित निर्वेद आभासता को प्राप्त करता है।

अयोग्यत्वकृतं प्रोक्तं नीचतिर्यङ्नराश्रयम् ।।९९।।

(२) अयोग्यता से अनौचित्य- अयोग्यताकृत अनौचित्य छोटे-छोटे पक्षियों और नीच मनुष्य के आश्रित होता है।।९९उ.।।

तत्र नीचतिर्यग्गतं यथा-

वेलातटे प्रसूयेथा मा भूः शङ्कितमानसा ।
मां जानाति समुद्रोऽयं टिट्टिभं साहसप्रियम् ।।362।।

अत्र यदि समुद्रवेलायां प्रसूये, तर्हि उद्वेलकल्लोलमालादिभिर्ममापत्यानि हृतानि भवेयुरिति शङ्कितायां निजगृहण्यां कश्चिट्टिट्टिभः पक्षिविशेषो गर्वायते। तदयं गर्वो नीचतिर्यग्गतत्वादाभासो नातीव स्वदते।

छोटे पक्षी के आश्रित अनौचित्य जैसे-

समुद्र के तट पर प्रसव करो। (यह समुद्र अण्डों को बहा ले जाएगा इसके लिए) शङ्कित मन वाली मत होवो क्योंकि यह समुद्र साहसप्रिय (साहसी) मुझ टिट्टिम को जानता है।।362।।

यहाँ यदि समुद्र तट पर प्रसव करती हूँ तो उठती हुई तरङ्गों के समूह द्वारा मेरी सन्तानों का हरण हो जाएगा इस शङ्का से युक्त अपनी पत्नी के प्रति कोई टिट्टिम (नामक) पक्षीविशेष गर्व प्रकट करता है। यह गर्व क्षुद्रपक्षीगत होने के कारण (गर्व का) आभास बिल्कुल आस्वाद्य नहीं होता।

नीचनराश्रयो यथा-

अभ्युत्तानशयालुना करयुगप्राप्तोपधानश्रिया
गन्धूरस्य तरोतले घुटपुटध्वानानुसन्धायिभिः ।
दीर्घैः श्वासभरैःसफूत्कृतिशतैरास्फोटितोष्ठद्वयं
तत्पूर्वं कृषिकर्मणि श्रमवता क्षुद्रेण निद्रायते ।।363।।

अत्र नीचगता निद्रा भावकेभ्यो नातिस्वदते।

नीच मनुष्य के आश्रित अनौचित्य जैसे-

पहले कृषिकार्य में परिश्रम करने वाला शूद्र गन्धूर नामक वृक्ष के नीचे दोनों हाथों को तकिया के समान अपने सिर के नीचे करके घुटपुट ध्वनि से क्रमबद्ध, लम्बी-लम्बी श्वास से युक्त तथा सैकड़ों फूत्कारों के द्वारा दोनों ओठों को आस्फोटित करता हुआ (फूँकमारता या सिकोड़ता हुआ) उत्तान सो रहा है।।363।।

यहाँ नीचगत निन्द्रा भावकों के लिए आस्वाद्य नहीं होती।

उत्पत्तिसन्धिशाबल्यशान्तयो व्यभिचारिणाम् ।

दशाश्चतस्त्र तत्र

व्यभिचारी भावों की दशाएँ-

उत्पत्ति, शबलता, सन्धि और शान्त व्यभिचारी भावों की चार दशाएँ होती है।

उत्पतिर्भावसम्भवः ।।१००।।

उत्पत्ति- उत्पत्ति भाव से उत्पन्न होती है।।१००।।

यथा (कुमारसम्भवे ६/८४)-

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।

लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।।364।।

अत्र लज्जाया हर्षस्य वा समुत्पत्तिः।

जैसे- (कुमारसम्भव ६/८४ में)-

जिस समय अङ्गिराऋषि इस प्रकार कह रहे थे उस समय नम्रमुखी पार्वती अपने पिता के पास बैठ कर लज्जावश लीला-कमल-पत्रों को गिन रही थीं।।364।।

यहाँ लज्जा अथवा हर्ष की समुत्पत्ति है।

सरूपमसरूपं वा भिन्नकारणकल्पितम् ।

भावद्वयं मिलति चेत् स सन्धिरिति गीयते ।।१०१।।

सन्धि- समान रूप वाले अथवा असमान रूप वाले भिन्न कारण से उत्पन्न यदि दो भाव मिलते हैं, तो वह सन्धि कहलाती है।।१०१।।

सरूपयोः सन्धिर्यथा-

अरिव्रजानामनपोतशिङ्गखड्गप्रहारैरवनिं गतानाम् ।

प्रियाजनाङ्कप्रहिताङ्गकानां भवन्ति नेत्रान्तनिमीलनानि ।।365।।

अत्र नायकखड्गप्रहारप्रियाजनाङ्गस्पर्शाभ्यां कल्पितयोः प्रतिनायकेषु मोहयोः सन्धिर्नेत्रान्तनिमीलनेन व्यज्यते।

समान रूप वाले भावों की सन्धि जैसे-

अनपोतशिङ्ग (नामक राजा) के खड्ग के प्रहार से पृथिवी **पर** गिरे हुए और प्रियाओं की गोद में रखे गये अङ्गों वाले शत्रुओं की आँखें बन्द होने लगती हैं।।३६५।।

यहाँ नायक के खड्गप्रहार और प्रियाओं के अङ्गों के स्पर्श से होने वाली प्रतिनायकों में मूर्छा की सन्धि आँखे बन्द होने से व्यञ्जित हो रही है।

असरूपयोः सन्धिर्यथा-

श्रीशिङ्गभूपप्रतिनायकानां स्विद्यन्ति गात्राण्यतिवेपितानि ।
तत्तूर्यसंवादिषु गर्जितेषु प्रियाभिरालम्बितकन्धराभ्याम् ।।366।।

अत्र गर्जितेषु नायकसन्नाहनिस्साणशङ्कयाङ्कुरितस्य प्रतिनायकानां त्रासस्य प्रियालिङ्गनतरङ्गितस्य हर्षस्य च स्वेदवेपथुसादृश्यकल्पितसंश्लेषः सन्धिः।

असरूप भावों की सन्धि जैसे (शिङ्गभूपाल का ही)-

श्रीशिङ्गभूपाल के प्रतिनायकों (शत्रुओं) के अत्यधिक काँपते हुए अङ्ग उस (शिङ्गभूपाल) के तुरही की ध्वनि की गर्जना होने पर प्रियाओं द्वारा आश्रय लिये गये, दोनों कन्धों से (निकलने वाले) पसीने के कारण भींग जाते हैं।।366।।

यहाँ गर्जना होने पर नायक के अस्त्र- शस्त्र से सुसज्जित होने की शङ्का से अङ्कुरित प्रतिनायकों का भय और प्रिया के आलिङ्गन से छलकते हुए हर्ष स्वेद और कम्प का सादृश्य कल्पित-संश्लेष सन्धि है।

अत्यारूढस्य भावस्य विलयः शान्तिरुच्यते ।

शान्ति- अत्यधिक उठे हुए भाव का विलीन हो जाना शान्ति कहलाता है।।१०२पू.।।

यथा-

शुद्धान्तस्य निवारितोऽप्यनुनयैर्निश्शङ्कमङ्कुरितो
वृद्धामात्यहितोपदेशवचनै रुद्धोऽपि वृद्धिं गतः ।
मानोद्रेकतरुः प्रतिक्षितिभुजामामूलमुन्मूल्यते
वाहिन्यामनपोतशिङ्गनृपतेरालोकितायामपि ।।367।।

जैसे-

अन्तःपुर की रानियों के विनय के द्वारा निषेध करने पर भी निशङ्क होकर अङ्कुरित तथा वृद्धों और मन्त्रियों के हितोपदेश वचनों से रोके जाने पर भी वृद्धि को प्राप्त प्रतिपक्षी राजाओं का मान रूपी वृक्ष, अनपोत (नामक) शिङ्गराजा की सेनाओं को देखने पर जड़ से उखड़ जाता है।।367।।

अत्र हितोपदेशानादराधिरूढस्य प्रतिनायकस्यगतगर्वस्य शान्तिरामूलमुन्मूल्यत

इति वागारम्भेण व्यज्यते।

यहाँ हितोपदेश का अनादर करने से बढ़े हुए प्रतिनायक का गर्व 'जड़ से उखड़ जाता है' इस कथन से शान्ति व्यञ्जित होती है।

शबलत्वं तु भावानां सम्मर्दः स्यात् परस्परं ।।१०२।

शबलता– अनेक भावों की परस्पर भीड़ शबलता कहलाती है।।१०२उ.।।

यथा–

को वा जेष्यति सोमवंशतिलकानस्मान् रणप्राङ्गणे!

(गर्वः)–

हन्तास्मासु पराङ्मुखो हतविधिः

(विषादावसूये)–

किं दुर्गमध्यास्महे ।

(चिन्ता)–

अस्मत्पूर्वनृपानसौ निहतवान्

(स्मृत्यमर्षौ)–

दीर्घान् धिगस्मज्जनान् ।

(निर्वेदः)–

किं वाक्यैरनपोतशिङ्गनृपतेः सेवैव कृत्यं परम् ।।367।।

जैसे– चन्द्र वंश के तिलक हम लोगों को युद्धस्थल पर कौन जीतेगा?**(गर्व)** ओह हम लोगों के प्रति यह दुर्भाग्य विमुख हो गया है। **(विषाद और असूया)**– क्या (हम लोग) किले में छिप जाएँ। **(चिन्ता)**– (शिङ्गराजा ने) हमारे पूर्ववर्ती राजाओं को मार डाला है। **(स्मृति और गर्व)**– हमारे लोगों को धिक्कार है। **(निर्वेद)**– कहने से क्या लाभ? (हम लोगों के लिए इस) अनपोत (नामक) शिङ्ग राजा की सेवा ही सबसे बड़ा करणीय कार्य है।।३६७।।

अत्र गर्वविषादासूयाचिन्तास्मृत्यमर्षनिर्वेदमतीनां सम्मर्दो भावशाबल्यमित्युच्यते।

यहाँ गर्व, विषाद, असूया, चिन्ता, स्मृति, अमर्ष, निर्वेद, मति-इन भावों की एकत्र भीड़ भावशाबल्य है, यह कहा गया है।

दिगन्तरालसञ्चारकीर्त्तिना शिङ्गभूभुजा ।
एवं सञ्चारिणः सर्वे सप्रपञ्चं निरूपिताः ।।१०३।।

।। इति सञ्चारिभावाः ।।

इस प्रकार दिगन्तरों में प्रसरित कीर्त्ति वाले शिङ्गभूपाल द्वारा सभी सञ्चारीभाव विशद रूप से निरूपित किये गये हैं॥१०३॥

।।सच्चारी भाव समाप्त।।

अथ स्थायिनः-

सजातीयैर्विजातीयैर्भावैर्ये त्वतिरस्कृताः ।
क्षीराब्धवन्नयन्त्यन्यान् स्वात्मत्वं स्थायिनो हि ते ।।१०४।।

स्थायी भाव- सजातीय और विजातीय भावों के द्वारा अतिरस्कृत जो दूसरों को क्षीरसागर के समान आत्मीय बना लेते हैं, वे स्थायी भाव कहलाते हैं॥१०४॥

भरतेन च ते कथिता रतिहासोत्साहविस्मयक्रोधाः ।
शोकोऽथ जुगुप्सा भयमित्यष्टौ लक्ष्म वक्ष्यते तेषाम् ।।१०५।।

स्थायी भावों की संख्या- आचार्य भरत के द्वारा ये आठ स्थायी कहे गये हैं— १. रति, २. हास ३. उत्साह ४. विस्मय ५. क्रोध ६. शोक ७. जुगुप्सा और ८. भय। उनका लक्षण कहा जा रहा है-॥१०५॥

तत्र रतिः-

यूनोरन्योन्यविषया स्थायिनीच्छा रतिर्भवेत् ।
निसर्गेणाभियोगेन संसर्गेणाभिमानतः ।।१०६।।
उपमाध्यात्मविषयैरेषा स्यात् तत्र विक्रियाः ।
कटाक्षपातभ्रूक्षेपप्रियवागादयो मताः ।।१०७।।

१. रति- दो युवकों (युवक और युवती) की स्वभाव से, (मन के) लगाव से, संसर्ग से, अभिप्राय से, उपमा से, आध्यात्म से और विषयों से जो स्थाई इच्छा होती है, वह रति कहलाती है। इसमें कटाक्षपात् भ्रूक्षेप, प्रिय वाणी इत्यादि विक्रियाएँ कही गयी हैं॥१०६-१०७॥

तत्र निसर्गेण रतिर्यथा (कुमारसम्भवे ५.८२)-

अलं विवादेन यथा श्रुतं त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थिरं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।।369।।

अत्र रूपादिदृष्टकारणनिरपेक्षा पार्वत्या रतिर्जन्मान्तरवासनारूपा निसर्गादेव भवति।

स्वभाव से रति जैसे (कुमारसम्भव ५/८२ में)-

अथवा इस प्रकार के विवाद से प्रयोजन ही क्या है? तुमने शिव के विषय में जो कुछ सुन रखा है यदि वह यथार्थ ही हो तो भी मेरा मन तो एक मात्र उन्हीं शिव में दृढ़ता के साथ रम गया है। अपनी इच्छा से व्यवहार करने वाला (प्रेम करने वाला) निन्दा से कभी नहीं डरता।।369।।

यहाँ पार्वती की रूप इत्यादि दृष्टकारण की अवहेलना वाली जन्मान्तर की वासना रूप रति स्वभाव (अलौकिकता) से ही होती है।

अभिनियोगोऽभिनिवेशः। तदेकपरत्वमिति यावत्।

तेन यथा (मालतीमाधवे ४.८)-

तन्मे मनः क्षिपति यत् सरसप्रहार-
मालोक्य मामगणितस्खलदुत्तरीया।
त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टि-
राश्लेषयत्यमृतसंवलितैरपाङ्गैः ।।370।।

अत्रोत्तरीयस्खलनादिसूचितेन मदयन्तिकाप्रेमाभियोगेन मकरन्दस्य तत्र रतिरुत्पद्यते।

अभिनियोग का अर्थ है- अभिनिवेश (मन से लगाव)। दोनों एक ही हैं।

उस (अभिनियोग) से जैसे मालतीमाधव ४/८ में)-

(मकरन्द कहता है-) आर्द्र प्रहार वाले मुझको देख कर अपने स्तनों से गिरते हुए उत्तरीय की परवाह न करके भयभीत (एक वर्ष के) मृगशावक के समान चञ्चल नेत्रों वाली (मदयन्तिका) ने अमृत से मिश्रित अङ्गों से जो मेरा आलिङ्गन किया, वह मेरे मन को चञ्चल कर रहा है।।370।।

यहाँ उत्तरीय के स्खलन इत्यादि द्वारा सूचित मदयन्तिका के प्रेम-लगाव के कारण मकरन्द की वहाँ रति उत्पन्न हो रही है।

संसर्गेण यथा (महावीचरिते१.२१)-

उत्पतिर्देवयजनाद् ब्रह्मवादी पिता नृपः।
सुप्रसन्नोज्ज्वला मूर्तिरस्याः स्नेहं करोति मे ।।371।।

अत्र देवयजनजनकादिसम्बन्धगौरवेण सीतायां रामस्य रतिः।

संसर्ग से रति जैसे (महावीरचरित १/२१ में)-

सुन्दर मूर्ति, ब्रह्मज्ञानी राजा पिता, यज्ञभूमि से उत्पत्ति, यह सब मुझे इस पर स्नेह करने को प्रेरित कर रहा है।।371।।

यहाँ देवयजन, जनक इत्यादि के सम्बन्ध के गौरव के कारण से सीता में राम की रति है।

अथाभिमानः–

इदमेव मम प्रियं, नान्यदित्यभिप्रायोऽभिमानः ।

तेन यथा (मालतीमाधवे) १/३४)–

जगति जयिनस्ते भावा नवेन्दुकलादयः
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये ।
मम तु यदीयं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्यस्मिन् स एव महोत्सवः ।।371।।

अत्र माधवस्य विलोचनचन्द्रिकानयनमहोत्सवाद्याभिमानेनेतररमणीवस्तुनैस्स्पृह्येन च मालत्यां रतिः।

अभिमान– यह ही मेरा प्रिय है, दूसरा नहीं- यह अभिप्राय अभिमान कहलाता है।

उस अभिमान से जैसे रति (मालतीमाधव २१.३७ में)–

लोक में अत्यधिक प्रसिद्ध नवीन चन्द्रकला इत्यादि जयशील हैं। स्वभाव से सुन्दर और भी पद हैं जो मन को प्रसन्न करते हैं। परन्तु जो यह नेत्र-चन्द्रिका (मालती) लोक में मेरे नेत्र के विषय को प्राप्त हो गयी है, जन्मशाली पदार्थों में एक वही सौख्य का कारण है।।372।।

यहाँ माधव की विलोचन चन्द्रिका, नयन महोत्सव इत्यादि अभिमान से अन्य रमणी रूपी वस्तु से निस्स्पृहता के कारण मालती में रति है।

उपमया यथा (रघुवंशे ९/६७)–

अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार ।
सपदि गतमनस्कश्छिन्नमाल्यानुकीर्णे-
रतिविगलितबन्धे केशहस्ते प्रियायाः ।।373।।

अत्र मृगयान्तरितापि दशरथस्य प्रियाविषया रतिस्तदीयकेशकलापसदृश-केकिकलापदर्शनेनोत्पद्यते।

उपमा से रति जैसे (रघुवंश ९/६७) में–

कभी-कभी राजा दशरथ के घोड़े के पास रंग-बिरंगी चमकीली पूछों वाले मयूर भी उड़ जाया करते थे पर वे उन पर बाण नहीं चलाते थे क्योंकि उन्हें देखकर दशरथ जी को विविध प्रकार के सुन्दर पुष्पों से सुशोभित और सम्भोग- काल में अपनी प्रियाओं के खुले हुए केशपाशों का स्मरण होता था, इसलिए उन्हें उनको मारने का ध्यान ही नहीं रहता था।।373।।

यहाँ मृगया में अन्तरित (छिपी हुई दशरथ की प्रिय-विषयक रति) उनकी प्रियाओं के खुले हुए केशपाश की समानता करने वाले मयूरों के पूँछों को देखने के कारण उत्पन्न हो रही है।

आध्यात्मं स्वात्मप्रामाण्यमात्रम् ।

तेन यथा (शाकुन्तले ५/३१)-

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मे चेतः ।।374।।

अत्र दुष्यन्तस्य निजचित्तसन्तापप्रत्यये शापविस्मृतायामपि शकुन्तलायां रतिः।

आध्यात्म का अर्थ है स्वात्मप्रमाण।

उस (आध्यात्म) से जैसे (अभिज्ञानशाकुन्तल ५/३१ में)-

भले ही (अपने द्वारा) मुनि की दुरदुराई गयी पुत्री पत्नी के रूप में याद नहीं आती, लेकिन बहुत उद्विग्न हो रहा मेरा दिल मुझे (उसे परिग्रह होने का) विश्वास दिला-सा रहा है।।374।।

यहाँ दुष्यन्त का अपने चित्त के सन्ताप को शाप के कारण विस्मृत हुई भी शकुन्तलाविषयक रति है।

विषया शब्दादयः।

तत्र शब्देन यथा-

सखि! मे नियतिहतायास्तद्दर्शनमस्तु वा मा वा ।
पुनरपि स वेणुनादो यदि कर्णपथे पतेत्तदेवालम्।।375।।

अत्र प्रागदृष्टेऽपि कृष्णे वेणुवादेन कामवल्या रतिः ।

विषय का अर्थ है 'शब्द' इत्यादि।

शब्द से रति जैसे—

हे सखी! मुझ अभागिन को उस (कृष्ण) का दर्शन हो या न हो फिर भी यदि उनके बाँसुरी का स्वर मेरे कानों में पड़ जाय तो वही बहुत है।।375।।

पहले कभी कृष्ण को न देखने पर भी बाँसुरी के सुनने के स्वर से कामवली की कृष्ण के प्रति रति है।

स्पर्शेन यथा (विक्रमोर्वशीये १.११)-

यदयं रथसंक्षोभादंसेनांसो रथाङ्गसुश्रोण्याः ।
स्पृष्टः सरोमविक्रियमङ्कुरितं मनोभवेनेव ।।376।।

स्पर्श से रति जैसे (विक्रमोर्वशीये १.११में)-

रथ के उथल पुथल (संक्षोभ) के कारण रथ के चाक के समान सुन्दर नितम्ब वाली(रमणी) के कन्धे से (मेरे) कन्धे का जो स्पर्श हो गया उससे कामदेव के द्वारा रोमाञ्च अङ्कुरित कर दिया गया।।376।।

रूपेण यथा–

अयं रामो नायं तु जनकधर्मं दलितवा-
नयं कामो नायं स तु मधुमनामोदितमना ।
सखि! ज्ञातं सोऽयं युवतिनयनोत्पादनफलं
निदानं भाग्यानां जयति खलु शिङ्गक्षितिपतिः ।।377।।

अत्र रामादिस्मरणहेतुना नायकरूपातिशयेन कस्याश्चिद् रतिः।

रूप से जैसे–

(एक सखी दूसरी सखी से शिङ्गभूपाल के रूप का वर्णन करती हुई कहती है-) हे सखी! ये राम है (अरे!) नहीं, इन्होंने तो जनक के धर्म का दलन किया है। ये कामदेव हैं (अरे!) नहीं, ये तो मधुरविचार से प्रसन्न मन वाले हैं। अरे! मैं समझ गयी ये तो युवतियों के लिए उत्पन्न फल तथा भाग्यों के कारण शिङ्गभूपाल हैं जो निश्चित रूप से जीतते हैं।।377।।

यहाँ रामादि के स्मरण के कारण नायक के अतिशय रूप से किसी (नायिका) की रति है।

रसेन यथा (कुमारसम्भ्सवे ३.६७)–

हरस्तु किञ्चित्परिवृतधैर्य-
श्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे
व्यापारयामास विलोचनानि ।।378।।

रस से रति जैसे (कुमारसम्भव ३/६७ में)–

जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय होने पर अत्यन्त गम्भीर भी समुद्र क्षुब्ध हो जाता है उसी प्रकार शङ्कर जी भी (काम के सम्मोहन नामक बाण के चढ़ाने के कारण) कुछ अधीर हो गये और बिम्बाफल के समान लाल ओठ वाली पार्वती के मुख को अपनी तीनों आखों से देखने लगे।।378।।

अत्रापि यद्यपि सम्भोगात्प्रागज्ञातस्याधररागस्य रसं प्रति विभावता न सङ्गच्छते, अथापि प्रसिद्धेः सम्भावितस्य रसस्यैव विभावत्वं बिम्बाफलाधरोष्ठ इति पदेन व्यज्यते। अथवा समास्वादितदाक्षायणीबिम्बाधरस्य परमेश्वरस्य तद्रसेनैव जननान्तरसङ्गतायामपि तस्यां रतिः।

यहाँ भी यद्यपि सम्भोग से पूर्व अज्ञात अधर- लालिमा का रस के प्रति विभावता

नहीं प्राप्त होती तथापि प्रसिद्धि के कारण सम्भावित रस की विभावता 'बिम्बा फल के समान अधर है' इस पद से व्यञ्जित होती है। अथवा जन्मान्तर में प्राप्त उस (पार्वती) के प्रति उनके होठों (के चुम्बनादि) का आस्वादन कर लेने वाले शङ्करजी की उस रस से रति है।

गन्धेन यथा ममैव–

उन्मीलन्नवमालतीपरिमलन्यक्कारबन्धव्रतै-
रालोलैरलिमण्डलैःप्रतिपदं प्रत्याशमासेवितः ।
अङ्गानामभिजातचम्पकरुचामस्याः मृगयाक्ष्याः स्फुट-
न्नामोदोऽयमदृष्टपूर्वमहिमा बध्नाति मे मानसम् ।।379।।

अत्र पराशरमुनिप्रसादेन लब्धेन दिव्येन सत्यवतीशरीरसौरभेण शन्तनोस्तस्यां रतिः।

गन्ध से जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

खिलती हुई नवमालती की सुगन्ध से दीनव्रत वाले चञ्चल भ्रमरों के समूह द्वारा पद-पद पर आशा के साथ सेवन किया जाता हुआ, इस मृगाक्षी (हरिण के समान चञ्चल नेत्रों वाली) के नये चम्पक पुष्प के समान कान्ति वाले अङ्गों में स्फुरित होती हुई यह अदृष्टपूर्व गौरव वाली सुगन्ध मेरे मन को बाँध (आकर्षित कर) रही है।।379।।

यहाँ पराशर मुनि की प्रसन्नता से प्राप्त सत्यवती के शरीर की दिव्य सुगन्ध से शन्तनु की उसके प्रति रति है।

भोजस्तु सम्प्रयोगेण रतिमन्यामुदाहरत ।

रतिविषयक भोज का मत–

भोज ने सम्प्रयोग (सम्भोग) के कारण एक अन्य रति का भी उदाहरण दिया हैं।।१०८पू.।।

यथा (विज्जिकायाः)–

उन्नमय्य सकचग्रहमोष्ठं
चुम्बति प्रियतमे हठवृत्त्या ।
ऊहु मुञ्च म म मेति च मन्दं
जल्पितं जयति बालवधूनाम् ।।380।।

जैसे (विज्जिका का सुभाषितावली में)–

बालों के सहित पकड़े गये होठो को ऊपर उठा कर हठपूर्वक प्रियतम द्वारा चुम्बन किये जाने पर बालवधुओं का 'ऊहु, छोड़ो, नहीं नहीं' यह धीरे से कहा गया शब्द विजयी होता है।।380।।

व्याकृतं च तेनैव अत्र तर्जनार्थमोक्षणार्थवारणार्थानां मन्दं मन्दं प्रयोगान्मान-

वत्याः सम्प्रयोगे रत्युत्पत्तिः प्रतीयते इति।

उन्ही (भोज) ने व्याख्या भी किया है- यहँ तर्जन, छोड़ने, मना करने के मन्द-मन्द प्रयोग (कहने) से मानवती रमणी की सम्भोग में रति का उत्पन्न होना प्रतीत होता है।

सम्प्रयोगस्य शब्दादिष्वन्तर्भावान्न तन्मतम् ।।१०८।।

शिङ्गभूपाल का मत–

सम्प्रयोग का शब्द इत्यादि में अन्तर्भाव होने से उस मत को शिङ्गभूपाल नहीं मानते ।।१०८उ.।।

तथा हि– उक्तोदाहरणे मानवतीजल्पितस्य शब्दरूपत्वमेव।

क्योंकि उक्त उदाहरण में मानवती रमणी का कथन शब्दरूपता वाला ही है।

तथा च (गाथासप्तशत्याम् १.२२)–

आअरपसरिओट्ठं जघडिअणासं अचुम्बिअणिडाकं ।
वण्णघिअलिप्पमुहिए तीए परिचुम्बणं हमरिसो ।।381।।
(आदरप्रसारितोष्ठमघटितनासमचुम्बितनिटिलम् ।
वर्णघृतलिप्तमुखायास्तस्याः परिचुम्बनं स्मरामः ।।)
इत्यादिषु चुम्बनादीनामपि स्पर्शेष्वन्तर्भावः।

और वैसे हीं–

वर्ण रूपी घृत से युक्त (वर्णों का उच्चारण करने वाले) मुख वाली उस (प्रियतमा) के आदर से फैलाये गये ओंठ को, अव्यस्त नासा (नाक) को, चुम्बन न किये गये मस्तक को, पूर्णतया किये गये चुम्बन को हम याद कर रहे हैं।।381।।

इत्यादि में चुम्बन इत्यादि का स्पर्श में अन्तर्भाव है।

अङ्कुरपल्लवकलिकाप्रसूनफलभोगभागियं क्रमतः ।
प्रेमा मानः प्रणयः स्नेहो रागोऽनुराग इत्युक्तः ।।१०९।।

रति के अवस्थान्तर– जिस प्रकार (बीज से) अङ्कुर, पल्लव, कली, पुष्प और फल होता है उसी प्रकार (रति से) (१) प्रेमा (२) मान (३) प्रणय (४) स्नेह (५) राग और (६) अनुराग होता है- ऐसा कहा गया है।।१०९।।

अथ प्रेमा–

स प्रेमा भेदरहितं यूनोर्यद् भावबन्धनम् ।

(१) प्रेमा– युवकों (युवक और युवती) का (परस्पर) भेदरहित भावबन्धन प्रेमा कहलाता है।।११०।।

यथा (रघुवंशे ३.२४)-

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं
बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम् ।
विभक्तमप्येकसुतेन तत् तयोः
परस्परस्योपरि पर्यचीयत ।।382।।

अत्र भेदकारणे सुतस्नेहे सत्यपि सुदक्षिणादिलीपयोः रतेरपरिहारेण भेदरतित्वम्।

प्रेमा जैसे (रघुवंश ३.२४ में)-

चकवा और चकई के समान सुदक्षिणा और दिलीप का हृदयाकर्षक पारस्परिक प्रेम एक पुत्र में बँट जाने पर भी एक दूसरे के ऊपर बढ़ता गया।।382।।

यहाँ पुत्रस्नेह को भेद का कारण होने पर भी सुदक्षिणा और दिलीप में रति के प्रति सम्मान के कारण भेद रतित्व है।

अथ मानः-

यत्तु प्रेमानुबन्धेन स्वातन्त्र्याद्धृदयङ्गम् ।।११०।।
बध्नाति भावकौटिल्यं सोऽयं मान इतीर्यते ।

(२) मान- प्रेमानुबन्ध से स्वतन्त्रता के कारण जो प्रिय भावकौटिल्य है, वही मान कहलाता है।।११०उ.-११पू.।।

यथा (किरातार्जुनीये ८/१९)-

व्यपोहितुं लोचनतो मुखानिलै-
रपारयन्तं किल पुष्पजं रजः ।
पयोधरेणोरसि कचिदुन्मना
प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी ।।383।।

अपराधसम्भावनायामपि प्रेमकल्पितस्वातन्त्र्येणावज्ञाख्यं चित्तकौटिल्यम्।

जैसे (किरातार्जुनीय ८.१९ में)-

उन्नत और स्थूल पयोधरों वाली किसी दूसरी देवाङ्गना ने आँख से पुष्पराग को फूँककर निकाल सकने में असमर्थ अपने प्रियतम के वक्षस्थल में मुँह ऊँचा करके (पराग निकालने के बहाने) अपने स्तन से चोट किया।।383।।

यहाँ अपराध की सम्भावना होने पर भी प्रेमोत्पन्न स्वतन्त्रता के कारण अवज्ञा नामक चित्त की कुटिलता स्पष्ट है।

अथ प्रणयः-

बाह्यान्तरोपचारैर्यत् प्रेम मानोपकल्पितैः ।।१११।।

बध्नातिभावविस्रम्भं सोऽयं प्रणयउच्चते ।

(३) **प्रणय–** जो प्रेम मान से उत्पन्न तथा बाहरी और भीतरी सौजन्य (उपचार) से भावविस्रम्भ को बाँधता है, वह प्रणय कहलाता है॥११११उ.-११२पू.॥

यथा–

प्रतिश्रुतं द्यूतपणं सखीभ्यो
विवक्षति प्रेयसि कुञ्चितभ्रूः ।
कण्ठं कराभ्यामवलम्व्य तस्य
मुखं पिधते स्वकपोलकेन ॥384॥

अत्र भावबन्धनापराधकौटिल्ययोरनुवृत्तौ कण्ठलम्बनादिनोपचारेण विस्रम्भः।

जैसे–

सखियों से द्यूत के पासे पर लगाये जाने को सुन कर प्रिया की कुछ कहने की इच्छा होने पर अपनी भौंहों को टेढ़ी कर लेने वाली (उस प्रिया) ने उस (नायक) के गले को अपने हाथों से सहारा देकर (पकड़ कर) (उसके) मुख को अपने कपोल से लगा लिया॥384॥

यहाँ भाव-बन्धन और अपराध की कुटिलता की अनुवृत्ति होने पर कण्ठ को सहारा देना इत्यादि उपचार के कारण विस्रम्भ है।

अथ स्नेहः–

विस्रम्भे परमां काष्ठामारुढे दर्शनादिभिः ॥११२॥
यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते ।

(४) **स्नेह–**

दर्शन इत्यादि द्वारा विस्रम्भ के पराकाष्ठा पर हो जाने पर जिससे हृदय द्रवित हो जाता है, वह स्नेह कहलाता है॥११२उ.-११३पू.॥

दर्शनेन यथा कन्दर्पसम्भवे ममैव–

उभे तदानीमुभयोस्तु चित्ते
कदुष्णनिःश्वासचरिष्णुकेन ।
एकीकरिष्यन्ननुरागशिल्पी
रागोष्मणैव द्रवतामनैषीत् ॥385॥

अत्र लक्ष्मीनारायणयोरन्योऽन्यदर्शनेनान्तःकरणद्रवीभावः।

दर्शन से स्नेह जैसे कन्दर्पसम्भव में ही–

उस समय एकत्र करते हुए अनुराग-शिल्पी ने थोड़ी गरम श्वास को सक्रिय करने वाले राग की ऊष्मा द्वारा दोनों (लक्ष्मी तथा नारायण) के चित्त में द्रवता को ला दिया (दोनों के चित्त

को द्रवीभूत कर दिया)।।385।।

यहाँ लक्ष्मी और नारायण के एक दूसरे के परस्पर देखने से उनके अन्तःकरण का द्रवीभूत होना व्यञ्जित है।

स्पर्शेन यथा (अमरुशतके ४०)-

गाढालिङ्गनवामनीकृतकुचप्रोद्भिन्नरोमोद्गमा
सान्द्रस्नेहरसातिरेकविगलच्छ्रीमन्नितम्बाम्बरा ।
मा मा मानद! माति मामलमिति क्षामाक्षरोल्लापिनी
सुप्ता किन्नु मृता नु किं मनसि मे लीना विलीना नु किम् ।।386।।

स्पर्श से स्नेह जैसे (अमरुशतक ४० में)-

(कोई विरहविधुर नायक नायिका की सुरतावस्था का स्मरण करता हुआ कर रहा है) सुरतकाल में गाढ़ आलिङ्गन से जिसके कुच दब गये थे और जिन पर रोमाञ्च हो आये थे, घने स्नेहरस की अधिकता के कारण जिसके नितम्ब के वस्त्र सरक गये थे और जो टूटी फूटी वाणी में मुझसे कह उठी कि हे मानद! नहीं-नहीं, मुझे अधिक न सताओं, अब बस करो। क्या वह मेरी प्रिया सो गयी है, या मर गयी है या मेरे हृदय में लीन हो गयी है या कहीं विलीन हो गयी है।।386।।

स त्रेधा कथ्यते प्रौढमध्यमन्दविभेदतः ।।११३।।

स्नेह के प्रकार – प्रौढ़, मध्यम और मन्द भेद से वह (स्नेह) तीन प्रकार का होता है।।११३उ.।।

(अथ प्रौढः)-

प्रवासादिभिरभिज्ञातश्चित्तवृत्तौ प्रिये जने ।
इतरक्लेशकारी यः स प्रौढ़ स्नेह उच्यते ।।११४।।

प्रौढ़ स्नेह- प्रवास इत्यादि के कारण प्रियजन की चित्तवृत्ति (मनोभाव) ज्ञात न होने पर जो एक दूसरे को क्लेश पहुँचाने वाला स्नेह है, वह प्रौढ़ कहलाता है।।११४।।

यथा (मेघदूते २/४९)-

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद् विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने! मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहादाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते ह्यभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ।।387।।

अत्र प्रोषिते यक्षे स्नेहजनितया तदन्यासङ्गशङ्कया जनितः प्रियाक्लेशो मय्यविश्वासिनी भूरिति प्रत्याश्वासनेन व्यज्यते।

प्रौढ़ स्नेह जैसे (मेघदूत २/४९ में)-

हे काली-काली आँखों वाली, पहचान के इस चिह्न के देने से मुझे सकुशल जान कर लोकापवाद के कारण मेरे ऊपर अविश्वास मत करना। (कुछ लोगों ने) प्रेम को विरह में, किसी कारण से नष्ट होने वाला कहा है। किंतु (विरह का) वह स्नेह, उपभोग न होने से अभिलषित पदार्थ के विषय में बढ़े हुए आस्वाद से युक्त होते हुए प्रेमपुञ्ज के रूप में परिणत हो जाता है।।387।।

यहाँ प्रोषित यक्ष के प्रति स्नेह से उत्पन्न, उसके अन्य रमणी के साथ आसङ्ग की शङ्का से प्रिया का क्लेश 'मेरे ऊपर अविश्वास मत करना' इस आश्वासन से व्यञ्जित होता है।

अथ मध्यमः-

इतरानुभवापेक्षा सहते यः स मध्यमः ।

मध्यम स्नेह- जिसे (स्नेह में) दूसरे के अनुभव की अपेक्षा का सहन किया जाता है, वह मध्यम स्नेह होता है।।११५पू.।।

यथा (रत्नावल्याम् ३/१९)-

किं देव्याः कृतरोषवेगमुषितस्निग्धस्मितं तन्मुखं
किं वा सागरिका क्रमोद्गतरुषा सन्तर्ज्यमानां तया ।
बध्वानीतमितो वसन्तकमहं किं चिन्तयाम्यद्य भोः
सर्वाकारकृतव्यथः क्षणमपि प्राप्नोति नो निर्वृतिम् ।।388।।

अत्र सागरिकानुभवापेक्षया राजस्नेहो वासवदत्तायां मध्यमः।

मध्यम स्नेह जैसे (रत्नावली ३/१९ में)-

क्या मैं महारानी के किये गये अत्यन्त क्रोध से चुरायी गयी स्निग्ध मुस्कान वाले उस मुख को सोचूँ! क्या बढ़े हुए क्रोध वाली उस (महारानी वासवदत्ता) से डरी हुई सागरिका को सोचूँ! क्या बाँध कर यहाँ से अन्यत्र ले जाये गये विदूषक वसन्तक (प्रियमित्र) को सोचूँ। हाय! इस प्रकार सम्पूर्ण ढंग से पीड़ित मैं (उदयन) क्षण भर को भी शान्ति नहीं रह पा रहा हूँ।।388।।

यहाँ सागरिका-विषयक अनुभव की अपेक्षा के कारण वासवदत्ता के प्रति राजा का स्नेह मध्यम है।

अथ मन्दः-

द्वयोरेकत्र मानादौ तमन्यत्र करोति यः ।।११५।।
नैवापेक्षां न चोपेक्षां स स्नेहो मन्द उच्यते ।

मन्द स्नेह- एक स्थान पर रहने वाले दोनों (नायक और नायिका) को मान इत्यादि में जो उसको अलग-अलग कर देता है और जिसमें न तो अपेक्षा ही रहती है और

न उपेक्षा ही, वह मन्द स्नेह कहलाता है।।११५उ-११६पू.।।

यथा (मालविकाग्निमित्रे ३/२३)–

मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रणिपातलङ्घनं सेवाम् ।
एवं हि प्रणयवती सा शक्यमुपेक्षितुं कुपिता ।।389।।

अत्र कुपितायामिरावत्यामुपेक्षापेक्षयोरभावस्य कथनेन राज्ञः स्नेहस्तद्विषयो मन्दः।

मन्द स्नेह जैसे (मालविकाग्निमित्र ३/२३ में)–

प्रियतमा मालविका ने मेरे हृदय को आकृष्ट कर लिया है अत एव इरावती की अप्रसन्नता को मैं उपकार ही मान रहा हूँ क्योंकि वह इरावती क्रुद्ध है उसकी उपेक्षा करके भी कुछ समय तक रहा जा सकता है।।389।।

यहाँ कुपित इरावती के प्रति उपेक्षा तथा अपेक्षा दोनों के अभाव के कथन से राजा का तद्विषयक स्नेह मन्द स्नेह है।

आदिशब्दादतिपरिचयादयः ।

यथा (शीलाभट्टारिकायाः इदमिति शार्ङ्गधरपद्धतौ उद्धृतम्)

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढा कदम्बानिलाः ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ।।390।।

कारिका में प्रयुक्त आदि शब्द से अति परिचय इत्यादि को समझना चाहिए।

जैसे– वही मेरे कौमार्य का हरण करने वाले (प्रियतम पति अब भी) हैं और वे ही चैत्रमास की चाँदनी वाली रात्रियाँ हैं, वही विकसित मालती की सुगन्ध से पूर्ण और धूलिकदम्ब की कामोत्तेजक (उन्मादक) वायु (बह रही) है तथा मैं भी वह ही हूँ। (सभी वस्तुएँ पुरानी ही हैं और दीर्घकाल तक उपभुक्त होने से उनके प्रति उत्सुकता होने का कोई अवसर नहीं है) फिर भी (आज) वहाँ नर्मदा के तट पर उस बेंत की लताओं से घिरे हुए वृक्ष के नीचे (जहाँ अनेक बार अपने प्रियतम के साथ सम्भोग कर चुकी हूँ) उसी कामक्रीडा के विलासों के लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।।390।।

अत्र कस्याश्चित् स्वैरिण्या गृहिणीत्वपरिचयेन पतिदशां प्राप्तेऽपि जारे उपेक्षापेक्षयोरभावकथनाद् मन्दः स्नेहः।

यहाँ किसी व्यभिचारिणी का प्रियतम के पतिदशा को प्राप्त होने पर भी गृहिणीत्व के परिचय से उपेक्षा और अपेक्षा-इन दोनों के अभाव का कथन होने से मन्द स्नेह है।

अथ रागः-

दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव रज्यते ।।११६।।

येन स्नेहप्रकर्षेण स राग इति गीयते ।

(५) राग- अत्यधिक दुःख भी चित्त में जिस स्नेह की उत्कृष्टता से सुख रूप से रञ्जित होता है वह राग कहलाता है।।११६उ.-११७पू.।।

कुसुम्भनीलीमाञ्जिष्ठरागभेदेन स त्रिधा ।।११७।।

राग के भेद (अ) कुसुम्भराग (आ) नीली राग और (३) माञ्जिष्ठ भेद से राग तीन प्रकार का होता है।।११७उ.।।

कुसुम्भरागः स ज्ञेयो यश्चित्ते सज्जति क्षणम् ।

अतिप्रकाशमानोऽपि क्षणादेव विनश्यति ।।११८।।

(अ) कुसुम्भराग- कुसुम्भराग वह राग है जो चित्त में क्षण भर में उत्पन्न होता है और अत्यधिक प्रकाशित होता हुआ क्षण भर में ही विनष्ट हो जाता है।।११८।।

यथा (गाथासप्तशत्याम् १/७२)-

बहुबल्लहस्स जा होइ वल्लहा अहवि पञ्च दिअहाइं ।

ता किं छट्ठं मिग्गइ जस्सिं दिट्ठं अ वहुअं अ ।।391।।

(बहुवल्लभस्य का भवति वल्लभाथवा पञ्च दिवसान् ।

तत्किं षष्ठ मृग्यते यस्मिन् मृष्टं च बहु च।।)

कुसुम्भराग जैसे (गाथासप्तशती १.७२में)-

जो स्त्री बहुत प्रियाओं से प्रेम करने वाले की प्रिया होती है, वह किसी प्रकार पाँच दिन देख पाती है, फिर क्या वह छठे दिन की प्रतीक्षा करती है। अरी जो चीज बिल्कुल अनुकूल है, वह कही अधिक भी होती है क्या! अर्थात् अनुकूल चींज अधिक नहीं होती।।391।।

नीलीरागस्तु यः सक्तो नापैति न च दीप्यते ।

(आ) नीली राग- जो राग न स्थिर रहता है और न उद्दीप्त (प्रकाशित) रहता है, वह नीली राग कहलाता है।।११९पू.।।

यथा (कुमारसम्भवे१/५३)-

यदैव पूर्वे जनने शरीरं सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज ।

तदा प्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत् ।।392।।

अत्र पशुपतिचित्तरागः सतीसङ्गमाभावनिश्चयेन नापैति विषयाभावान्न प्रकाशते च।

नीली राग जैसे (कुमारसम्भव १/५३ में)-

पार्वती ही प्रथम जन्म में दक्ष प्रजापति की कन्या थी और शङ्कर से व्याही थी, उन्होंने पिता

द्वारा किए गये पति के अपमान से क्रुद्ध होकर जब अपने शरीर का योगाग्नि में त्याग कर दिया था, तभी से शङ्कर ने भी विषय-वासना का त्याग कर दूसरी किसी स्त्री से विवाह नहीं किया।।392।।

यहाँ शङ्कर के चित्त का राग सती के समागम के अभाव के निश्चय से न तो स्थिर रहता है और न विषय के अभाव के कारण प्रकाशित होता है।

अचिरेणैव संसक्तश्चिरादपि न नश्यति ।।११९।।
अतीव शोभते योऽसौ माञ्जिष्ठो राग उच्यते ।

(३) माञ्जिष्ठ राग– जो शीघ्र उत्पन्न, बहुत दिनों तक नष्ट न होने वाला तथा अधिक शोभायमान होता है, वह राग माञ्जिष्ठ राग कहलाता है।।११९उ.-१२०पू.।।

यथा (उत्तरामचरिते १/३९)–

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत् स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्राप्यते ।।393।।

माञ्जिष्ठ राग जैसे (उत्तररामचरित १/३९ में)–

जो (दाम्पत्य) सुख और दुःख में एकरूप हैं और सभी अवस्थाओं में अनुगत है, जिसमें हृदय का विश्राम है, जिसमें प्रीति बुढ़ापे से भी नहीं हट सकती है, जो कि समय से विवाह से लेकर मरणपर्यन्त, परिपक्व और उत्कृष्ट प्रेम में अवस्थित हैं, उस दाम्पत्य का वह एक कल्याण बड़े पुण्य से पाया जाता है।।393।।

अथानुरागः–

राग एव स्वसंवेद्यदशां प्राप्याप्रकाशितः ।।१२०।।
यावदाश्रयवृत्तिश्चेदनुराग इतीरितः ।

(६) अनुराग– अपनी संवेद्य दशा को प्राप्त करके उद्दीप्त और आश्रय वृत्ति वाला राग अनुराग कहलाता है।।१२०उ.-१२१पू.।।

यथा ममैव–

अश्रान्तकण्टकोद्गममनवरतस्वेदमविरतोत्कम्पम् ।
अनिशमुकुलितापाङ्गं मिथुनं कलयामि तदविनाभूतम् ।।394।।

अत्र पार्वतीपरमेश्वरयो रतिः शरीरैक्यनित्यसम्बन्धेन यावदाश्रयवृत्तिरनुभूतसर्व रागोपप्लवतया स्वसंवेद्यदशाप्रकाशितनित्यभोगरूपाश्रान्तरोमाञ्चादिभिरनुभावैर्व्यज्यते।

अनुराग जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

अनवरत रोमाञ्चयुक्त, निरन्तर निकलते हुए पसीने वाला, सतत् कम्पन-सम्पन्न, लगातार

अर्धविकसित (आधी खुली हुई) नेत्रों के कोरों वाला, उस कारणभूत (शिव और पार्वती) के मिथुन (जोड़े) को मैं भजता हूँ।।394।।

यहाँ शरीर की एकता के नित्य-सम्बन्ध से आश्रय- वृत्ति वाली पार्वती और परमेश्वर की रति अनुभूत सम्पूर्ण राग की परिपूर्णता से अपनी दशा से प्रकाशित नित्य भोग-रूप वाली निरन्तर रोमाञ्च इत्यादि अनुभावों द्वारा व्यञ्जित होती है।

अन्ये प्रीतिं रतेर्भेदमामनन्ति न तन्मतम् ।।१२१।।
असम्प्रयोगविषया सेयं हर्षान्न भिद्यते ।

प्रीति का हर्ष में अन्तर्भाव– अन्य आचार्य प्रीति को रति का भेद मानते हैं, किन्तु यह मत उपयुक्त नहीं है। सम्प्रयोग का विषय न होने से यह प्रीति हर्ष से अलग नहीं है।।१२१उ.-१२२पू.।।

अथ हासः–

भाषणाकृतिवेषाणां क्रियायाश्च विकारतः ।।१२२।।
लौल्यादेश्च परस्थानमेषामनुकृतेरपि ।
विकारश्चेतसो हासस्त्वत्र चेष्टा समीरिता ।।१२३।।
दृष्टेर्विकासो नासोष्ठकपोलस्पन्दनादयः ।

(२) हास– भाषण, आकृति, वेष तथा कार्य के विकार से और चञ्चलता इत्यादि से तथा दूसरे के स्थान का अनुकरण करने से मन का विकार हास कहलाता है। उसमें नेत्रों का विकास (फैलना) तथा नाक, ओठ और कपोल (गालों) का फड़कना इत्यादि चेष्टाएँ कही गयी हैं।।१२२उ.-१२४पू.।।

भाषाविकारो भाषणासम्बन्धत्वादिः। आकृतिर्विकृतिः अतिवामनत्वदन्तुरत्वादिः। वेषविकारो विरुद्धालङ्कारकल्पना। क्रियाविकारो विकटगतित्वादिः एषामुदाहरणानि कैशिक्यां शुद्धहास्यजे नर्मणि निरूपितानि द्रष्टव्यानि।

भाषाविकार= भाषणासम्बन्धत्व इत्यादि। **आकृति में विकार**- अत्यधिक विपरीतता, बडे-बड़े अथवा आगे निकले हुए दाँत वाला होना इत्यादि। **वेषविकार=** असङ्गत स्थान पर आभूषण पहनना। **क्रियाविकार**- विकराल गति वाला होना। इनके उदाहरण कैशिकी वृत्ति के निरूपण के स्थल पर शुद्धहास्यज नर्म में दिये गये हैं। (वहाँ उन्हें) देख लेना चाहिए।

लौल्याद् यथा (अनर्घराघवे २.२०)–

बालेयतण्डुलनिलोपकदर्थिताभि-
रेताभिरग्निशरणेषु सधर्मिणीः ।
उत्साहहेतुमपि दण्डमुदस्यमाना-
माधातुमिच्छति मृगे मुनयो हसन्ति ।।395।।

अत्र मृगाणां सन्त्रासनयष्टिसमाघ्राणनलौल्येन मुनीनां हासः।

चञ्चलता से हास जैसे (अनर्घराघव २.२० में)-

अग्निगृह में बलि के लिए रखे गये तण्डुलों को हरिण खा जाते हैं, इस पर मुनिस्त्रियाँ खीझकर उनको डराने के लिये दण्ड उठाती हैं, परन्तु हरिण इतने हिलेमिले हैं कि वे उस दण्ड को सूँघने की इच्छा करने लगते हैं, जिसे देखकर मुनिगण उन मृगों की ढिठाई पर हँस देते हैं।।394।।

यहाँ मृगों के डराने के डण्डे की सूँघने की चञ्चलता के कारण मुनिजनों का हास है।

परानुकरणेन यथा (भोजस्य सरस्वतीकण्ठाभरणेऽपि उद्धृतम् , १४२)-

पि पि प्रिय! स स स्वयं मु मु मुखासवं देहि मे
त त त्यज दु दु द्रुतं भ भ भाजनं काञ्चनम् ।
इति स्खलितजल्पितं मदवशात् कुरङ्गीदृशः
प्रगे हसितहेतवे सहचारिभिरध्यैयत ।।396।।

परानुकरण से हास जैसे (सरस्वतीकण्ठाभरण में भी उद्धृत, १४३)-

'हे प्रिय! मुझे अपने मुख की सुरा दो, इस स्वर्णनिर्मित (सुरा के) पात्र को छोड़ो इस प्रकार मृगनयनी (स्त्रियों) की मद के कारण स्खलित वाणी को सखियों ने भोर में ही हँसी के लिए कहा।।396।।

अथोत्साहः-

शक्तिधैर्यसहायाद्यैः फलश्लाघ्येषु कर्मसु ।।१२४।।
सत्वरा मानसी वृत्तिरुत्साहस्तत्र विक्रियाः ।
कालाद्यवेक्षणं धैर्यं वागारम्भादयोऽपि च ।।१२५।।

(३) उत्साहः-

शक्ति, धैर्य, सहायक इत्यादि से प्रशंसनीय फल वाले कार्यों में मन- विषयक द्रुतगामी प्रवृत्ति उत्साह कहलाती है। उसमें समय इत्यादि का ध्यान देना, धैर्य, वागारम्भ इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।१२४उ.-१२५।।

सहजाहार्यभेदेन स द्विधा परिभाष्यते ।

उत्साह के भेद- सहज और आहार्य भेद से वह (उत्साह) दो प्रकार का कहा गया है।।१२६पू.।।

शक्त्या सहजोत्साहो यथा-

अथ महेन्द्रं गिरिमारुरोह
वारानिधिं लङ्घयितुं हनूमान् ।

वामेतराक्षिस्फुरणेन जानन्
करस्थितां राघवकार्यसिद्धिम् ।।397।।

अत्र हनूमतः स्वशक्तिजनितः समुद्रतरणोत्साहः महेन्द्रारोहेण व्यज्यते।

शक्ति से सहज उत्साह जैसे–

इसके बाद दाहिनी आँख फड़कने (के शुभ शकुन) से रामकार्य (सीता की खोज) की सिद्धि को हस्तगत हुआ जानकर हनुमान समुद्र को लाँघने के लिए महेन्द्र पर्वत चढ़ गये।।397।।

यहाँ हनुमान् के समुद्रतरण का अपनी शक्ति से उत्पन्न उत्साह महेन्द्र (पर्वत) पर आरोहण (चढ़ने) से व्यञ्जित होता है।।

अथ धैर्येण यथा–

शक्त्या वक्षसि मग्नया सह मया मूढे प्लवङ्गाधिपे
निद्राणेषु च विद्रवत्सु कपिषु प्राप्तावकाशे द्विषि ।
मा भैष्टेति निरुन्धतः कपिभटानस्योर्जितात्मस्थितेः
सौमित्रेरधियुद्धभूमिगदिता वाचस्त्वया न श्रुताः ।।398।।

अत्र रावणशक्तिप्रहारेण क्षीणशक्तेरपि लक्ष्मणस्य धैर्यजनितोत्साहः कपिभटाश्वासनादिभिर्व्यज्यते।

धैर्य से सहज उत्साह जैसे–

(लक्ष्मण के) वक्षस्थल पर मेरे द्वारा शक्ति के प्रहार करने के साथ ही वानरों के अधिपति (सुग्रीव) के जड़ीभूत हो जाने पर, वानर (सेनाओं) के शिथिल हो जाने और (इधर-उधर) भागने पर, शत्रुओं से अवकाश पाकर 'मत डरो' इस प्रकार वानर- योद्धाओं को घेरते (नियन्त्रित करते) हुए तथा अपनी स्थिति को दृढ़ बनाते हुए इस लक्ष्मण की युद्धभूमि में कही गयी वाणी (बात) को तुमने नहीं सुना।।398।।

यहाँ रावण द्वारा शक्तिप्रहार से क्षीण शक्ति वाले लक्ष्मण का धैर्य से उत्पन्न उत्साह वानर योद्धाओं के लिए दिये गये आश्वासन से व्यञ्जित होता है।

सहायेन सहजोत्साहो यथा (रघुवंशे ४/२६)–

स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः ।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।।399।।

सहायक से सहज उत्साह जैसे (रघुवंश ४/२६ में)–

दुर्ग आदि की रक्षा का प्रबन्ध कर, पृष्ठदेशस्थ राजाओं के उन्मूलक रघु यात्रा के समय मङ्गलाचरण करके छः प्रकार की सेना के साथ दिग्विजयेच्छा से चले।।399।।

शक्त्याहार्योत्साहो यथा (बालरामायणे १.५३)–

हस्तालम्बितमक्षसूत्रवलयं कर्णावतंसीकृतं

स्रस्तं भ्रूयुगमुन्नमय्य रचितं यज्ञोपवीतेन च ।
सन्नद्धा जघने च वल्कलपटी पाणिश्च धत्ते धनु-
र्दृष्टं भो जनकस्य योगिन इदं दान्तं विरक्तं मनः ।।400।।

शक्ति से आहार्य उत्साह जैसे (बालरामायण १/५३) में-

घुन लग जाने से जर्जर शङ्कर के धनुष को भुजाओं के बल के मद से मेरे द्वारा फेका गया देख कर युद्धभूमि में यह सीरध्वज जनक छोड़ना नहीं चाहते हैं। हे मेरे मुखों! तुम एक साथ हँसो। यह सङ्गम अयोग्य है।।400।।

धैर्यसहायाभ्यामाहार्यो यथा (कुमारसम्भवे ३/१०)-

तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि
सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणे-
र्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ।।401।।

अत्र स्वभावशक्तिरहितस्य मन्मथस्येन्द्रप्रोत्साहनजनितेन धैर्येण वसन्तसहायेन चाहृतोत्साहो धैर्यच्युतिचिकीर्षाकथनादभिव्यज्यते।

धैर्य और सहायक से आहार्य उत्साह जैसे (कुमारसम्भव ३.१० में)-

यदि आपकी कृपा बनी रहे तो केवल मित्र वसन्त की सहायता से मैं अपने इस अत्यन्त कोमल पुष्प बाणों द्वारा ही पिनाक जैसे कठोर धनुष को धारण करने वाले शिव का धैर्य भी नष्ट कर दूँगा। फिर अन्य धनुर्धारियों का चर्चा ही व्यर्थ है।।401।।

यहाँ स्वाभाविक शक्ति से रहित कामदेव का इन्द्र के प्रोत्साहन से उत्पन्न धैर्य वसन्त की सहायता से बढ़ा उत्साह, धैर्य, च्युति चिकीर्षा के कथन से व्यञ्जित होता है।

अथ विस्मयः-

लोकोत्तरपदार्थानां तत्पूर्वावलोकनादिभिः ।।१२६।।
विस्तारश्चेतसो यस्तु विस्मयो स निगद्यते ।
क्रियास्तत्राक्षिविस्तारसाधूक्तिपुलकादयः ।।१२७।।

(४) विस्मय- लोकोत्तर पदार्थों का उससे पहले न देखने इत्यादि के कारण जो चित्त का विस्तार होता है, उसे विस्मय कहा जाता है। उसमें आँखों का फैल जाना,शिष्टता पूर्वक वाणी, रोमाञ्च इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।१२६उ.-१२७।।

यथा-

शिला कम्पं धत्ते शिव शिव वियुङ्क्ते कठिनता-
महो नारीच्छायामयति वनिताभूयमयते ।

वदत्येवं रामे विवलितमुखी वल्कलमुर-
स्थले कृत्वा वद्ध्वा कचभरमुदस्थादृषिवधूः ।।402।।

जैसे-

शिला के प्रकम्पित होने पर, शिव-शिव यह उच्चारण करते हुए (राम के) कठिन अथवा पीड़ित नारी की छाया (के रूप में विद्यमान अहिल्या) के समीप में जाने पर, और 'अरे! (यह तो) स्त्री की समृद्धि (स्थिति) को प्राप्त कर रही है' इस प्रकार राम के कहने पर वह विवलित मुख वाली हुई ऋषिपत्नी (अहिल्या) चेतनायुक्त हो जाने के कारण वल्कल को (अपनी) छाती पर करके (वल्कल से छाती को ढककर) और (बिखरे हुए) बालों के समूह (भार) को बाँधकर खड़ी हो गयी।।402।।

अथ क्रोधः-

वधावज्ञादिभिश्चित्तज्ज्वलनं क्रोध ईरितः ।

(५) **क्रोध-** वध और तिरस्कार से चित्त का जलना क्रोध कहलाता है।

एषत्रिधाभवेत्क्रोधकोपरोषप्रभेदतः ।।१२८।।

क्रोध के प्रकार- यह क्रोध, कोप तथा रोष के भेद से तीन प्रकार का होता है।।१२८उ.।।

वधच्छेदादिपर्यन्तं क्रोधः क्रूरजनाश्रयः ।
अभ्यर्थनावधिः प्रायः कोपो वीरजनाश्रयः ।।१२९।।
शत्रुभृत्यसुहृत्पूज्याश्चत्वारो विषयास्तयोः ।

क्रूर लोगों के आश्रित क्रोध वध तथा छिन्नभिन्न कर देने तक और वीर लोगों के आश्रित क्रोध अनुरोध पर्यन्त रहता है। इन दोनों के लक्ष्य शत्रु, भृत्य (नौकर), मित्र तथा पूज्य लोग होते हैं।।१२८-१३०पू.

मुहुर्दष्टोष्ठता भुग्नभ्रूकुटी दन्तघट्टनम् ।।१३०।।
हस्तनिपीडनं गात्रकम्पः शस्त्रप्रतीक्षणम् ।
स्वभुजावेक्षणं कण्ठगर्जाद्या शात्रवक्रुधि ।।१३१।।

शत्रुविषयक क्रोध में चेष्टाएँ- शत्रुविषयक क्रोध में बार ओठों का काटना, भौहें टेढ़ी होना, दाँतों को रगड़ना (दबाना), हाथों को मीचना, शरीर में कम्पन, शस्त्रों को देखना, अपनी भुजाओं को देखना, गर्जना करना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।१३०उ.-१३१।।

वधेन शत्रुविषयक्रोधो यथा (वेणीसंहारे ३.२४)-

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।

नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ।।403।।

वध से शत्रुविषयक क्रोध जैसे (वेणीसंहार ३.२४ में)-

(अश्वत्थामा कहता है)-हाथ में शस्त्र लिये हुए 'मर्यादा का पालन न करने वाले' नरपशुओं के सदृश जिन आप लोगों ने (आचार्य द्रोण का शिरश्छेदन रूप) यह महान् पातक किया है, अथवा (कृष्ण आदि जिन्होंने उसका) अनुमोदन किया है, अथवा (भीम, अर्जुन आदि जिन्होंने धृष्टद्युम्न को रोकने का) यत्न न करके खड़े-खड़े प्रसन्नतापूर्वक (इस पाप को) देखा है, (नरकासुर के शत्रु) कृष्ण, भीम तथा अर्जुन के सहित उन (धृष्टद्युम्न आदि) के रक्त, चर्बी और मांस से मैं अभी दिशाओं की बलि (पूजन) करता हूँ।।403।।

अवज्ञया शत्रुविषयक्रोधो यथा-

श्रुतिशिखरनिषद्यावेद्यमानप्रभावं
पशुपतिमवमन्तुं चेष्टते यस्य बुद्धिः ।
प्रलयशमनदण्डोच्चण्डमेतस्य सोऽहं
शिरसि चरणमेनं पातयामि त्रिवारम् ।।404।।

अत्र परमेश्वरावज्ञया जनितो दक्षविषयो दधीचिक्रोधः परुषवागारम्भेण व्यज्यते।

तिरस्कार से शत्रुविषयक क्रोध जैसे-

वेदों के शिखर रूपी खटोले पर चढ़े लोगों (वेदज्ञों) द्वारा अज्ञात प्रभाव वाले पशुपति (शिव) की अवमानना (तिरस्कार) करने के लिए जिस (दक्ष प्रजापति) की बुद्धि चेष्टा (प्रयत्न) कर रही है इसके (दक्ष के) शिर पर वह मैं तीन बार प्रलय-शान्ति के दण्ड से उग्र इस चरण को गिरा रहा (मार रहा) हूँ।।404।।

यहाँ परमेश्वर (शिव) के तिरस्कार के कारण उत्पन्न दक्ष के प्रति दधीचि का क्रोध कटुवाक्य कथन से व्यञ्जित होता है।।

भृत्यक्रोधे तु चेष्टाः स्युस्तर्जनं मूर्धधूननम् ।
निर्भर्त्सनं च बहुधा मुहुर्निर्वर्णनादयः ।।१३२।।

भृत्यविषयक क्रोध में चेष्टाएँ- भृत्य विषयक क्रोध में धमकाना (डराना), शिर धूनना, प्रायः गाली देना, ध्यानपूर्वक देखना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।१३२।।

यथा वीरानन्दे-

आधूतमूर्धदशकं तरलाङ्गुलीकं
रूक्षेक्षणं परुषहुङ्कृतिगर्भकण्ठम् ।

पश्यन् निशाचरमुखानि ततोऽवतीर्णः
सौधात् प्लवङ्गपतिमुष्टिहतो दशास्यः ।।405।।

अत्र सुग्रीवसम्पातेः पलायितेषु भृत्येषु रावणस्य क्रोधो मूर्धधूननादिभिरनुभावैर्व्यज्यते।

भृत्यविषयक क्रोध जैसे वीरानन्द में-

अपने धूने जाते हुए दश शिरों, चञ्चल अङ्गुलियों, रूखी आँखों, कठोर हुंकार से भरे हुए कण्ठ और अन्य निशाचरों के मुखों देखता हुआ पुनः अट्टालिका से उतरा हुआ रावण वानरराज (सुग्रीव) को मुष्टिका से मारा ।।405।।

यहाँ सेवकों के भाग जाने पर सुग्रीव और सम्पति के प्रति रावण का क्रोध 'शिर के धूनने, इत्यादि अनुभावों द्वारा व्यञ्जित होता है।

मित्रक्रोधे विकाराः स्युर्नेत्रान्तस्खलदश्रुता ।
तूष्णींध्यानं च नैश्चैष्ट्यं श्वसितानि मुहुर्मुहुः ।।१३३।
मौनं विनम्रमुखता भुग्नदृष्ट्यादयोऽपि च ।

मित्रविषयक क्रोध में चेष्टाएँ- मित्र-विषयक क्रोध में नेत्रों के कोनों से आँसू गिरना, मौनध्यान, निश्चेष्टता, बार-बार लम्बी श्वास लेना, मौन रहना, विनम्र मुख होना, दृष्टि टेढ़ा करना इत्यादि विकार होते हैं।।१३३-१३४पू.।।

यथा ममैव-

सुभद्रायाः श्रुत्वा तदनुमतिमत् तेन हरणं
कृतं कौन्तेयेन क्षुभितमनसः स्तब्धवपुषः ।
नमद्वक्त्रा स्वान्ते किमपि विलिखन्तोऽतिकुटिलै-
रपश्यन्नुद्बाष्पैर्यदुपतिमपाङ्गैर्यदूद्भटाः ।।406।।

अत्र सुभद्राहरणानुमत्या जनितः कृष्णविषयो यदूनां क्रोधः कुटिलवीक्षणादिभिर्व्यज्यते।

मित्रविषयक क्रोध जैसे शिङ्गभूपाल का ही-

उस अर्जुन के द्वारा उस (कृष्ण) की अनुमति से किये गये सुभद्रा के हरण को सुनकर आन्दोलित मन वाले, जड़ीभूत शरीर वाले, झुके हुए मुख वाले अपने मन में कुरेदते हुए यादव वीर कृष्ण को आँसू निकलते हुए अत्यन्त कुटिल दृष्टि से देखा।।406।।

यहाँ सुभद्रा के हरण की अनुमति के कारण उत्पन्न कृष्णविषयक यादवों का क्रोध कुटिलतापूर्वक देखने इत्यादि से व्यञ्जित होता है।

पूज्यक्रोधे तु चेष्टा स्युःस्वनिन्दा नम्रवक्रता ।।१३४।।
अनुत्तरप्रदानाङ्गस्वेदगद्गदिकादय ।

पूज्य-विषयक क्रोध में चेष्टाएँ– पूज्य विषयक क्रोध में अपनी निन्दा करना, विनम्र कुटिलता, उत्तर न देना, शरीर में पसीना आना, हकलाना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।१३४उ.-१३५पू.।।

यथा वीरानन्दे–

रामप्रवासजननीं जननीं विलोक्य
रूक्षं विवक्षुरपि गद्गदिका दधानः ।
नम्राननः कुटिलरज्यदपाङ्गदृष्टि-
र्जज्वाल चेतसि परं भरतो महात्मा ।।407।।

पूज्यविषयकक्रोध जैसे वीरानन्द में–

राम के वन भेजने में (कारण) उत्पन्न करने वाली माता (कैकेयी) को देखकर कुटिल नेत्रप्रान्त वाले तथा कटु बोलने की इच्छा करने वाले महात्मा भरत हकलाते हुए मन (हृदय) में अत्यधिक जलने लगे।।407।।

शत्रुक्रोधे तु चेष्टाः स्युर्भावगर्भितभाषणम् ।।१३५।।
भ्रूभेदनिटिलस्वेदकटाक्षारुणिमादयः ।

शत्रुविषयक क्रोध में चेष्टाएँ– शत्रु-विषयक क्रोध में भावगर्भित भाषण, भौहों का तन जाना, मस्तक पर पसीना हो जाना, कटाक्ष, लालिमा इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।१३५उ.-१३६पू.।।

यथा (उत्तरामचरिते ५/३५)–

कोपेन प्रविधूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजो वेपथुः
किञ्चित्कोकनदच्छदेन सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः ।
धत्ते कान्तिमिदं च वक्त्रनयनयोर्भङ्गेन भीमभ्रुवो-
श्चन्द्रस्योद्भटलाञ्छनस्य कमलस्योद्भ्रान्तभृङ्गस्य च ।।408।।

अत्र लवस्य चन्द्रकेतोश्च परस्परविषयःकोपो भ्रूभेदादिभिर्व्यज्यते।

शत्रुविषयक क्रोध जैसे (उत्तररामचरित ५/३५ में)–

कोप से केशों को अत्यधिक हिलाने (कम्पित करने) वाला समस्त शरीर में उत्पन्न कम्पन प्रकट हो रहा है। स्वभाव से ही रक्तकमल के पत्र के समान दोनों नेत्र लाल हो रहे हैं। भ्रूमङ्ग से भयङ्कर हुआ इन दोनों का मुख भी कलङ्की चन्द्रमा और ऊपर घूमने वाले भँवरों से युक्त कमल भी कान्ति को धारण कर रहा है।।408।।

यहाँ लव और चन्द्रकेतु का परस्पर एक दूसरे के प्रति क्रोध भ्रूभेद इत्यादि द्वारा व्यञ्जित होता है।

भृत्यादिकोपत्रितये तत्तत्कोपोचिता क्रियाः ।।१३६।।

भृत्यादि (भृत्य, मित्र और पूज्य)- विषयक (क्रोध, कोप तथा रोष)- इन तीनों से सम्बन्धित कोप में तत्तत् कोप के अनुकूल चेष्टाएँ होती है॥१३६उ.॥

अथ रोषः-

मिथः स्त्रीपुंसयोरेव रोषः

रोष- युवक और युवती में परस्पर रोष होता है।

स्त्रीगोचरः पुनः।

प्रत्ययावधिरत्र स्युर्विकाराः कुटिलेक्षणम् ॥१३७॥

अधरस्फुरणापाङ्गरागनिःश्वासितादयः ।

स्त्रीगोचर पुरुष का रोष- पुरुष का स्त्रीगोचर (स्त्रीविषयक)रोष विश्वास पर्यन्त रहने वाला होता है। इसमें कुटिलतापूर्वक देखना, ओठों का फड़कना, आँखों का लाल हो जाना, निःश्वास इत्यादि विकार होते हैं॥१३७-१३८पू.॥

यथा वीरानन्दे-

भ्रूभङ्गभिन्नमुपरञ्जितलोचनान्त-
माकम्पिताधरमतिश्वसितानुबन्धम् ।
पत्युर्मुखं क्षितिसुता परिलोकयन्ती
काराविमुक्तिरपि कष्टतरेति मेने ॥409॥

अत्र रावणकारागारनिवासशङ्कया जनितः सीताविषयो रामस्य रोषो भ्रूभङ्गादिभिरनुभावैर्व्यज्यते।

जैसे वीरानन्द में-

पति (राम) के भ्रूभङ्ग के कारण प्रचण्ड, रक्त हुए नेत्रप्रान्त वाले, काँपते हुए ओठों वाले और लम्बी-लम्बी श्वासों वाले मुख को देखती हुई सीता ने (रावण के) जेल में बन्द होने के दुःख की अपेक्षा अधिक कष्टकर माना॥409॥

यहाँ रावण के जेल में (सीता के) निवास करने के कारण शङ्का से उत्पन्न सीता विषयक राम का रोष भ्रूमङ्ग इत्यादि अनुभावों से व्यञ्जित होता है।

प्रत्ययावधित्वं यथा (वेणीसंहारे २/१३)-

दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलब्धजनित क्रोधादहं नो गतो
दिष्ट्या नो परुषं रुषार्धकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम् ।
मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दृष्ट्या कथान्तं गता
मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत् ॥410॥

अत्र स्वप्नवृत्तान्तश्रवणभ्रान्तिजनितस्य भानुमतीविषयस्य सुयोधनस्य रोषस्य

स्वप्नशेषश्रवणजनितप्रत्ययकृता शान्तिः दिष्ट्येत्यादिवागारम्भेण व्यज्यते।

प्रत्ययावधिता जैसे (वेणीसंहार २/१३ में)-

सौभाग्य से मैं आधी सुनी हुई (बात से प्रतीत) वञ्चना से उत्पन्न क्रोधवश (भानुमती के पास तक) नहीं चला गया। सौभाग्य से (कथा के) आगे कहे जाने पर (ही) क्रोध के कारण मेरे द्वारा कुछ कठोर (वचन) नहीं कह डाला गया। सौभाग्य से शून्य हृदय वाले मुझ को विश्वास दिलाने के लिए (ही) कथा समाप्ति को पहुँच गयी (अर्थात् कथा समाप्त हो गयी) सौभाग्य से संसार के झूठे आरोप से युक्त इस (भानुमती) से विहीन नहीं हुआ अर्थात् मैंने उसे मारकर संसार से विदा नहीं कर दिया।।410।।

यहाँ स्वप्न में वृत्तान्त सुनने की भ्रान्ति से उत्पन्न भानुमती- विषयक सुयोधन के रोष का स्वप्नशेष के सुनने से उत्पन्न विश्वास से की गयी शान्ति 'सौभाग्य से' इत्यादि कथन से व्यञ्जित होती है।।

द्वेधा निगदितः स्त्रीणां रोषः पुरुषगोचरः ।।१३९।।
सपत्नीहेतुराद्यः स्यादन्यः स्यादन्यहेतुकः ।
सपत्नीहेतुको रोषो विप्रलम्भे प्रपञ्च्यते ।।१४०।।
अन्यहेतुकृते त्वत्र क्रियाः पुरुषरोषवत् ।

पुरुषगोचर स्त्री का रोष- स्त्रियों का पुरुषगोचर (पुरुष-विषयक) रोष दो प्रकार का कहा गया है— सपत्नी हेतुक और अन्यहेतुक।

सपत्नीहेतुक रोष- सपत्नी हेतुक रोष विप्रलम्भ (शृङ्गार) के प्रसङ्ग में निरूपित किया जाएगा।

अन्य हेतुक रोष- अन्यहेतुक रोष में पुरुष के रोष के समान विक्रियाएँ होती हैं।।१३९उ.-१४१पू.।।

यथा (अभिज्ञानशाकुन्तले ५.२३)-

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपाद्यमाने ।
भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य ।।411।।

जैसे (अभिज्ञानशाकुन्तल ५/२३ में)-

जिसके मन का व्यापार भूल से कठोर हो गया है, उस मेरे एकान्त में घटित हुए प्रेम को अस्वीकार करने पर अत्यन्त क्रोध से चटक लाल नेत्रों वाली (शकुन्तला) ने टेढ़ी भौहों के भङ्ग (भ्रू-भङ्ग या भृकुटित) से मानों कामदेव का धनुष तोड़ डाला।।411।।

अत्र प्राक्तनवृत्तान्तापह्नवजनितो दुष्यन्तविषयकः शकुन्तलारोषो भ्रूभेदादिभिर्व्यज्यते।

यहाँ पूर्ववृत्तान्त छिपाने के कारण उत्पन्न दुष्यन्त-विषयक शकुन्तला का रोष भ्रूभेद इत्यादि द्वारा व्यञ्जित होता है।

अथ शोकः-

बन्धुव्यापत्तिदौर्गत्यधननाशादिभिः कृतः ।।१४०।।
चित्तक्लेशभरः शोकस्तत्र चेष्टा विवर्णता ।
बाष्पोद्गमो मुखे शोषः स्तम्भनिःश्वसितादयः।।१४१।।

(६) शोक -

बन्धुओं की विपत्ति, दुर्गति, धन के विनाश इत्यादि द्वारा किया गया चित्त का क्लेश शोक कहलाता है। उसमें विवर्णता, आँसू निकलना, मुख का सूख जाना, जड़ता, निःश्वास इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।१४०उ.-१४१।।

उत्तमानामयं प्रौढो विभावैरन्यसंश्रितै ।
आत्मस्थैरधिरुढोऽपि प्रायः शैर्येण शाम्यति ।।१४२।।
तत्र चेष्टा गुणाख्याननिगूढरुदितादयः ।

उत्तम व्यक्ति का शोक- उत्तम लोगों का यह शोक परगत (अन्य के आश्रित) विभावों से प्रौढ़ (परिपुष्ट) होता है और स्वंगत(विभावों) से बढ़ा हुआ (शोक) प्रायः शौर्य से शान्त होता है। उसमें गुणों की चर्चा, छिपकर भीतर-भीतर रोना इत्यादि चेष्टाएँ होती हैं।।१४२-१४३पू.।।

परगतविभावैर्यथा-

देवो रक्षतु वः किलाननपरिव्याकीर्णचूडाभरां
भर्त्तुर्भस्मनि पेतुषीं करतलव्यामृष्टपार्श्वक्षितिम् ।
हा प्राणेश्वर! हा स्मरेति रुदतीं बाष्पाकुलाक्षीं रतिं
दृष्ट्वा यस्य ललाटलोचनमपि व्याप्ताश्रु निर्वापितम् ।।412।।

अत्र रतिगतशोच्यदशाविलोकनेन देवस्य शोको बाष्पोद्गमेन व्यज्यते।

परगत विभावों से शोक जैसे-

मुख पर जूड़े के बालों को बिखरायी हुई, पति (कामदेव) के भस्म (जले शरीर की राख) पर लोटती हुई, हथेलियों को समीप में फैलायी हुई हाय प्राणेश्वर; हाय काम! इस प्रकार रोती हुई, आँसुओं से व्याकुल नेत्रों वाली रति को देख कर जिस के ललाट की आँख भी भरे हुए आँसुओं को गिराने लगी, वे देव (शङ्कर) तुम्हारी रक्षा करें।।412।।

यहाँ रति विषयक चिन्तनीय दशा को देखने से शिव का शोक आँसुओं के

निकलने से व्यञ्जित होता है।

आत्मगतैर्यथा (वेणीसंहारे ५/१४)-

अयि कर्ण कर्णसुभगां प्रयच्छ मे
गिरमुद्वमन्निव मयि स्थिरां मुदम् ।
अनुजैर्विमुक्तमकृताप्रियं कथं
वृषसेनवत्सल! विहाय यासि माम् ।।413।।

स्वगत विभावो से शोक जैसे (वेणीसंहार ५/१४ में)-

हे कर्ण, मुझमें स्थायी प्रसन्नता को उड़ेलते हुए से (तुम) कानों को प्रिय लगने वाली वाणी मुझे प्रदान करो। हे वृषसेन पर स्नेह करने वाले, कभी भी न बिछुड़े हुए, (तुम्हारा) अप्रिय न करने वाले, प्रिय मुझको छोड़कर जा रहे हो? (अर्थात् मुझको इस तरह छोड़ कर जाना उचित नहीं)।।413।।

स्यादेष मृतिपर्यन्त स्वपरस्थैस्तु मध्यमम् ।।१४३।।
अनतिव्यक्तरुदितप्रमुखास्तत्र विक्रियाः ।

मध्यम व्यक्ति का शोक- स्वगत और परगत अनुभावों से यह शोक मध्यम में मृत्तिपर्यन्त रहता है। इसमें अत्यधिक छिपा हुआ रुदन इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।१४३उ.-१४४पू.।।

स्वगतैर्मध्यमस्य यथा करुणाकन्दले-

न्यायोपाधिरयं यदश्रुकणिकां मुञ्चन्ति बन्धुव्यये
रागोपाधिरयं त्यजन्ति विषयान् यज्ज्ञातयो दुस्त्यजान् ।
प्राणानां पुनरुत्क्रमः किमुपधिस्तत् केन विज्ञायते
देवं चानकदुन्दुभिं दशरथं चेक्ष्वाकुवंशं विना ।।414।।

अत्र वसुदेवस्य बन्धुविपत्तिजः शोकः प्राणोत्क्रमणेन व्यज्यते।

स्वगत विभावों से मध्यम का शोक जैसे करुणाकन्दल में-

बन्धु की हानि होने पर जो आँसुओं के कणों को गिराता है, यह न्यायोपाधि है। जो परिचित दुस्त्याज्य विषयों को छोड़ देते हैं, वह रागोपाधि है फिर देवताओं के बड़े नगाड़े और इक्ष्वाकुवंशीय दशरथ के बिना यह कौन बता सकता है कि जो प्राणों का उत्क्रम करता है, वह कौन सी उपाधि है।।414।।

यहाँ वसुदेव का बन्धुविपत्ति से उत्पन्न शोक 'प्राणों' के उत्क्रमण से व्यञ्जित होता है।

परगतेर्यथा-

निर्भिद्यन्त इवाङ्गकान्यसुहरैराक्रन्दसंस्तम्भनैः
कण्ठे गर्वनिरुद्धबाष्पविगमे वाचां गतिर्गद्गदा ।

धावन्त्यन्तरसंस्तुतानपि जनान् कण्ठे ग्रहीतुं मनः
काष्ठा तस्य ममेदृशी यदुकुले कुल्यः कथं जीवति ।।415।।

अत्र यदुकुलध्वंसेन नारदस्य शोकः ।

परगत विभावों से मध्यम का शोक जैसे–

आक्रन्दन से जड़ हुए प्राण लेने वाले (यमदूतों) द्वारा मानो (शरीर) के अङ्ग टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं, कण्ठ में गर्व के कारण रुके हुए आँसू के निकलने से वाणी की गति अस्पष्ट हो रही है, अन्तःकरण से अप्रशंसित (अपरिचित) व्यक्ति को भी गले लगाने के लिए मन दौड़ रहा है। जब मेरी यदुकुल (के विनष्ट हो जाने) पर इस प्रकार की काष्ठा (व्याकुलता) है तो उस (यदुकुल) के परिवार (सम्बन्धी) जन कैसे जी रहे हैं।।415।।

यहाँ यदुकुल के विनष्ट हो जाने से नारद का शोक हैं।

हेतुभिः स्वगतैरेव प्रायः स्त्रीनीचयोरयम् ।।१४४।।
मरणव्यवसायान्तस्तत्र भूपरिवेष्टनम् ।
उरस्ताडननिर्भेदपातोच्चैरोदनादयः ।।१४५।।

नीच व्यक्ति तथा स्त्री का शोक–

स्वगत अनुभावों के कारण मृत्यु- निर्धारण तक रहने वाला शोक प्रायः स्त्री और नीच व्यक्ति में होता है। उसमें भूमि पर लोटना, छाती पीटना, निर्भेदन, गिरना, ऊँची आवाज में रोना इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।१४४उ.-१४५।।

तत्र नीचगतो यथा करुणाकन्दले–

कचैरर्धच्छिन्नैः करनिहतिरक्तै कुचतटै-
र्नखोत्कृत्तैर्गण्डैरुपलहतिशीर्णैश्च निटिलैः ।
विदीर्णैराक्रन्दाद् विकलगदितैः कण्ठविवरै-
र्मनस्तक्ष्णोत्यन्तःपुरपरिजनानां स्थितिरियम् ।।416।।

नीचगत विभाव से शोक जैसे करुणाकन्दल में–

अन्तःपुर (रनिवास) के सेवकों की यह स्थिति थी कि वे आधे बिखरे बालों, हाथों द्वारा पीटे गये स्तनतटों (चुचुकों), नख से नोचे गये गालों, पत्थर से मारे गये मस्तक, खुली हुई रूलाई के कारण व्याकुल ध्वनि वाले कण्ठविवरों से अपने को शान्त करते थे।।416।।

स्त्रीगतो यथा (कुमारसम्भवे ४/४)–

अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी ।
विललाप विकीर्ण-मूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम् ।।417।।

स्त्रीगत विभाव से शोक (जैसे कुमारसम्भव ४/४ में)-

(कामदेव की मृत्यु का निश्चय हो जाने पर) वह अत्यन्त विह्वल होकर बालों को बिखेर करके पृथ्वी पर लौटती हुई विलाप करने लगी जिससे उसके स्तन धूल से धूसरित हो उठे। उसके विलाप को सुन कर वह वनस्थली भी उसके इस दुःख में समान दुःख वाली जैसी बन गई।।417।।

अथ जुगुप्सा-

अहृद्यानां पदार्थानां दर्शनश्रवणादिभिः ।
सङ्कोचनं यन्मनसः सा जुगुप्सात्र विक्रिया ।।१४६।।
नासापिधानं त्वरिता गतिरास्यविकूणनम् ।
सर्वाङ्गधूननं कुत्सा मुहुर्निष्ठीवनादयः ।।१४७।।

(७) जुगुप्सा- अप्रिय वस्तुओं के देखने, सुनने इत्यादि से मन का सङ्कोच जुगुप्सा कहलाता है। उसमें नाक बन्द करना, तीव्रगमन, मुख विचकाना, सभी अङ्गों का धूनना, घृणा, बार-बार थूकना इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।१४६-१४७।।

अहृद्यदर्शनाद् यथा (मालतीमाधवे ५/१७)-

निष्टापस्विद्यदस्थ्नः क्वथनपरिणमन्मेदसः प्रेतकायान्
कृष्ट्वा संसक्तधूमानपि कुणपभुजो भूयसीभ्यांश्च ताभ्यः ।
उत्पक्वस्रंसि मांसप्रचयमुभयतः सन्धिनिर्मुक्तमारा-
देते निश्चूष्य जङ्घानलकमुदयिनीर्मज्जधाराः पिबन्ति ।।418।।

अत्र जङ्घानिश्चूषणमज्जधारापानादिजनिता पिशाचविषया माधवस्य जुगुप्सारूपा गर्हा कुणपभुज इत्यनेन व्यज्यते।

अप्रिय वस्तु को देखने से जैसे (मालतीमाधव ५/१७ में)-

शव को खाने वाले ये पिशाच प्रचुर चिताओं से अच्छी तरह एक बार ताप से जिनसे रुधिर गिर रहे हैं और अच्छी तरह पकाने से जिनसे चरबी गिर रही है, धूएँ से व्याप्त ऐसे शव के शरीरों को भी खींच कर उत्कृष्ट पापयुक्त और गिरने वाले मांस से सम्बद्ध, ताप से हिलते हुए मूल और अग्रभाग में अस्थिसंयोग स्थानों से पृथग्भूत (जॉघ) के काण्ड को समीप में शरीर से अलग कर निकलती हुई मज्जा की धातुओं को पी रहे हैं।।418।।

यहाँ जङ्घा चूसने और मज्जा की धारा को पीने इत्यादि से उत्पन्न पिशाच -विषयक माधव की जुगुप्सा रूप घृणा 'शव खाने वाला' इस कथन से व्यञ्जित होती है।

श्रवणाद् यथा-

मेदोमज्जाशोणितैः पिच्छिलेऽन्तः-
त्वक्प्रच्छन्ने स्नायुबद्धास्थिसन्धौ ।

साधुर्देहे कर्मचाण्डालगेहे
बध्नात्युद्यत्पूतिगन्धे रतिं कः ।।419।।

अत्र कस्यचिद् वस्तुतत्त्वविचारागमश्रवणजनिता देहे जुगुप्सारूपा निन्दा व्यज्यते।

अप्रिय श्रवण से जैसे-

मांस, चर्बी और रक्त से चिपके हुए तथा त्वचा से छिपे हुए, नसों (पेशियों) और हड्डियों से जुड़े हुए चाण्डाल के गृह के समान निकलती हुई दुर्गन्ध वाले इस शरीर के प्रति कौन सज्जन (व्यक्ति) प्रेम करेगा।।419।।

यहाँ किसी व्यक्ति की शरीर के प्रति वस्तुतत्त्व (यथार्थ) विचार को सुनने से उत्पन्न जुगुप्सा रूपी निन्दा व्यञ्जित होती है।

घृणा शुद्धाजुगुप्सान्या दशरूपे निरूपिता ।
सा हेयश्रवणोत्पन्नजुगुप्साया न भिद्यते ।।१४८।।

इसके अतिरिक्त दशरूपक में घृणा और शुद्धा इन दो अन्य जुगुप्सा का भी निरूपण किया गया है। वह (घृणा और शुद्धा जुगुप्सा) श्रवणोत्पन्न जुगुप्सा से भिन्न नहीं है।।१४८।।

अथ भयम्-

भयं तु मन्तुना घोरदर्शनश्रवणादिभिः ।
चित्तस्यातीव चाञ्चल्यं तत्प्रायो नीचमध्ययोः ।।१४९।।
उत्तमस्य तु जायेत कारणैरतिलौकिकैः ।
भये तु चेष्टा वैवर्ण्यं स्तब्धत्वं गात्रकम्पनम् ।।१५०।।
पलायनं परावृत्य वीक्षणं स्वाङ्गगोपनम् ।
आस्यशोषणमुत्क्रोशशरणान्वेषणादयः ।।१५१।।

(८) भय- अपराध और भयङ्कर (दृश्य) के दर्शन तथा श्रवण इत्यादि चित्त का अत्यधिक चञ्चल हो जाना भय कहलाता है। यह भय प्रायः नीच और मध्यम लोगों में होता है। उत्तम लोगों में (भय) अत्यधिक लौकिक कारणों से होता है। भय में विवर्णता जड़ता, शरीर का काँपना, पलायन, पीछे मुड़ कर देखना, अपने अङ्गों को छिपाना, मुख का सूखना, शोर मचाना, शरण ढूढ़ना इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।१४९-१५१।।

मन्तुरपराधः।

तस्माद्यथा (रघुवंशे १६/८०)-

विभूषणप्रत्युपहारहस्तं विशांपतिस्तं प्रणतं निरीक्ष्य ।
सौपर्णमस्त्रं प्रतिसञ्जहार प्रह्वष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्त ।।420।।

मन्तु का अर्थ है– अपराध।

उस अपराध से भय जैसे (रघुवंश १६.८० में)–

राजा कुश ने आभूषण रूप प्रत्युपहार को लेकर उपस्थित उस नाग को देख कर धनुष पर से गरुड़ास्त्र उतार लिया, क्योंकि सज्जन लोग उन पर क्रोध नहीं करते जो नम्र होकर उनके आगे आ जाते हैं।।420।।

घोरदर्शनाद् यथा–

पराजितचोलभयेन पाण्ड्यः
पलायमानो दिशि दक्षिणस्याम् ।
समाकुलो वारिनिधिं विगाह्य
सेतुच्छिदं दाशरथिं निनिन्द ।।421।।

अत्र युद्धसंरम्भभीमस्य चोलस्य दर्शनात् पाण्ड्यस्य भयं पलायनादिभिर्व्यज्यते।

भयङ्कर (दृश्य) देखने से भय जैसे–

(भयङ्कर युद्ध में) पराजित हुए (अत एव) चोल राजा के भय से दक्षिण दिशा में भागते हुए व्याकुल (घबड़ाए हुए) पाण्ड्य राजा समुद्र में घुसकर (बनाये गये) सेतु को (लङ्काविजयोपरान्त वापस लौटते समय) तोड़ देने वाले राम की निन्दा करने लगे।।420।।

यहाँ युद्ध में भयङ्कर चोल (राजा) को देखने के कारण पाण्ड्य (राजा) का भय पलायन इत्यादि से व्यञ्जित होता है।

घोरश्रवणाद् यथा–

श्रुत्वा निस्साणराणं रणभुवि भवतो माधवक्ष्मामाधवेन्द्र!
प्राप्य प्रत्यर्थिवीराःकुलशिखरिगुहां गूढगाढान्धकाराम् ।
लीना लूनप्रताप निजकटकमणिश्रेणिकान्तिप्रकर्षं
स्रष्टारं नष्टधैर्याः कमलभुवमहो हन्त निन्दन्ति मन्दम् ।।422।।

भयङ्कर श्रवण से भय जैसे–

हे महाराज माधवेन्द्र! युद्धस्थल की ओर आप के निकलने को सुनकर और अभीष्ट अवसर को पाकर गहन गम्भीर अन्धकार वाली कुलपर्वतों की गुफाओं में छिपे हुए नष्ट प्रताप वाले धैर्यरहित (शत्रु) करधनी की मणियों के समूह की कान्ति से प्रकृष्ट विधाता कमलभूत (कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा) की धीरे-धीरे निन्दा करते हैं यह आश्चर्य की बात है।।422।।

अतिलौकिकात्कारणादुत्तमस्य यथा (शिशुपालवधे १/५३)–

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः
सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।

प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं
निनाय बिभ्यद् दिवसानि कौशिकः ।।423।।

अतिलौकिक कारण से उत्तम जन का भय (जैसे शिशुपालवध १/५३) में-

जिस प्रकार अस्थिर दृष्टि उल्लू परम तेजस्वी सूर्य को देखने में असमर्थ होकर हिमालय की गुफा में प्रवेश कर डरता हुआ दिन व्यतीत करता है, उसी प्रकार रावण के भय से चञ्चल नेत्र वाले इन्द्र ने सूर्य के समान तेजस्वी रावण को देखने में असमर्थ होकर अपनी अमरावती पुरी छोड़कर हिमालय की कन्दरा में दिन व्यतीत किया।।423।।

अत्र वर्णनीयतयोत्तमं रावणं प्रति देवेन्द्रस्य (भीतत्ववर्णनाद्) मध्यमत्वं न शङ्कनीयम्। यतः प्रकृतिरेव कारणं पुंसामुत्तमत्वे न वर्णना। तथासति 'प्रियेण तस्यानपराधबाधिता' (शिशुपालनवधे १.६१) इत्यादिनौग्र्यादिभावकथनमुत्तमस्य रावणस्य नोचितं स्यात्। तस्मादुत्तमप्रकृतेरपि देवेन्द्रस्य लोकोत्तरवरप्रदानभीषणाद् रावणाद् भयमुत्पद्यते।

यहाँ (भयभीत होने का) वर्णन होने से उत्तम रावण के प्रति देवेन्द्र के मध्यमत्व की शङ्का नहीं करनी चाहिए। क्योंकि पुरुषों की उत्तमता में स्वभाव ही कारण होता है, वर्णन नहीं। ऐसा होने पर 'प्रियेण तस्यानपराधबाधता' इत्यादि द्वारा उत्तम रावण की उग्रता इत्यादि का कथन उचित नहीं होगा। इसी कारण से उत्तम स्वभाव वाले इन्द्र का लोकोत्तर वर प्राप्त करने वाले भीषण रावण से भय उत्पन्न होता है।

अथोत्तमस्य हेतुजभयानङ्गीकारे- ***(सुभाषितसुधानिधावप्युद्धृतम्)***

विद्राणे वित्तनाथे सवितरि तरले जातशङ्के शशाङ्के ।
वैकुण्ठे कुण्ठगर्वे द्रवति मघवति क्लान्तकान्तौ कृतान्ते ।
अब्रह्मण्यं ब्रुवाणे वियति शतधृतावुद्धृतैकाग्रहस्ते ।
पायाद् वः कालकूटं झटिति कवलयन् लीलया नीकण्ठः ।।424।।

उत्तम के हेतुज भय को स्वीकार करने पर-

वित्तनाथ सविता के उद्‌बुद्ध हो जाने पर, सशङ्कित चन्द्रमा के थर्रा जाने पर, वैकुण्ठ में कुण्ठित गर्व वाले इन्द्र के द्रवीभूत हो जाने पर, यमराज की कान्ति के मलिन हो जाने पर और आकाश में ब्रह्मा द्वारा 'अनर्थ हो गया' ऐसा कहे जाने पर एक (दाहिने हाथ) की हथेली पर लेकर कालकूट (विष) को लीला द्वारा झट से खाते हुए नीलकण्ठ (शङ्कर) तुम लोगों की रक्षा करें।।424।।

इत्यत्र विद्रावतारल्यादिभिरुद्घोषितस्य द्रव्यनाथसवित्रादिगतभयस्यापलापः कथमभिधेयः। तदपलापेऽपि कालकूटभक्षणस्य सुकरत्वात् तत्कार्यनिर्वहणे स्फीतस्य नीलकण्ठप्रभावोत्कर्षस्य कथं मस्तकोन्नमनं स्यात्।

यहाँ उद्‌बुद्ध होने, थर्रा जाने इत्यादि के द्वारा उद्‌घोषित द्रव्यनाथ सविता इत्यादि

में स्थित भय का अपलाप कैसे अभिधेय (कथनीय) होगा। उसके अपलाप होने पर भी विषभक्षण की सुकरता होने के कारण उस कार्य के निर्वाह में बढ़े हुए शङ्कर के प्रभाव का उत्कर्ष कैसे प्रणाम करने योग्य (प्रशंसनीय) होगा।

हेतुजा इतरे प्रोक्ते भये सोङ्ढलसुनुना ।
कृत्रिमं तूत्तमगतं गुर्वादीन् प्रत्यवास्तवम् ।।१५२।।
विभीषिकार्थं बालादेर्वित्रासिकमित्युभे ।

भयविषयक सङ्गीतरत्नाकर का मत–

सोड्ढल के पुत्र (सङ्गीतरत्नाकर के कर्ता शारङ्गदेव) ने दूसरों द्वारा कहे गये भय में हेतुज और कृत्रिम-इन दो भेदों को माना है। उसमें हेतुज तो अन्वर्थ वाला है (अर्थात् किसी कारण से उत्पन्न भय हेतुज भय कहलाता है) और दूसरा कृत्रिम (भय) गुरु इत्यादि के प्रति अवास्तविक भय होता है, बालक इत्यादि का भय वित्रासितक हेतुज कहलाता है॥१५२-१५३पू.॥

तत्रान्त्यमन्तर्भूतं स्याद् घोरश्रवणजे भये ।।१५३।।
भिक्षुभल्लूकचोरादिविद्युत्क्रव्यादकल्पितम् ।
आद्यं तु युक्तिकक्ष्यायां भयकक्ष्यां न गाहते ।।१५४।।
गुर्वादिसन्निधौ यस्मान्नीचैःस्थित्यादिसूचितम् ।
भावो विनय एव स्यादथ स्यान्नाटके यदि ।।१५५।।
अवहित्थतया तस्य भयत्वं दूरतो गतम् ।
अतो हेतुजमेवैकं भयं स्यादिति निश्चयः ।।१५६।।

सङ्गीतरत्नाकर के मत का खण्डन और अपने मत का प्रतिष्ठापन–

उसमें अन्तिम वित्रासित बालक इत्यादि का भय भिक्षु, भालू, चोर इत्यादि की सूचना से उत्पन्न होने के कारण (शिङ्गभूपाल द्वारा २.१४९ में निरूपित) घोर श्रवणजभय में अन्तर्भूत हो जाता हैं दूसरा कृत्रिम भय नाटक में गुरु इत्यादि के समीप अपनी नीच स्थिति (विनय इत्यादि) से सूचित होने वाला भाव विनय होता है। मनोभाव के गोपन (अवहित्था) के कारण उसकी भयता नहीं होती। अतः निश्चित रूप से हेतुज भय एक ही प्रकार का होता है॥१५३उ.-१५६॥

इस स्थल को सङ्गीतरत्नाकर में इस प्रकार कहा गया है- स्वहेतुजाः कृत्रिमाश्च वित्रासिकमित्यपि, भयानकस्त्रिधा। तत्र प्रथमोऽन्वर्थनामकः। कृत्रिमास्तूत्तमङ्गतो गुर्वादीन् प्रत्यवास्तवः, विभीषिकार्थो बालादेर्वित्रासिकम् दूष्यते। (१४८७-८८)।

तथा च भारतीये (नाट्यशास्त्रे ६.७१)–

एतत् स्वभाजं स्यात् सत्त्वसमुत्थं तथैव कर्त्तव्यम् ।

पुनरेभिरेव भावैः कृतकं मृदुचेष्टितैश्च भयम् ।। इति।।

जैसा भरत के नाट्यशास्त्र में कहा गया है-

"जो स्वभावज (भय) है उसमें उसी प्रकार सत्त्व से उत्पन्न (सात्त्विक भाव) को करना चाहिए। पुनः इन मृदुचेष्टा वाले भावों से कृतक भय को करना चाहिए।।'

ननु चात्र स्वभावजं कृतकं चेति भयं द्विविधं प्रतीयते। तस्मात् तद्विरोध इति चेद् मैवम्। भरताद्यभिप्रायमजानता पेलवोक्तिमात्रतात्पर्येण न शङ्कितव्यम्। तथाहि लोके माञ्जिष्ठादिद्रव्यं सहजो रक्तिमा गाढतरं व्याप्नोति, एवं मध्यनीचयोर्भयं स्वल्पकारणमात्रेऽपि सहजवद् दृश्यत इति सहजमित्युपचर्यते। यथा कृतको लाक्षारसः प्रयत्नसज्जितोऽपि काष्ठादिकमन्तर्न व्याप्नोति, एवमुत्तमगतं भयमिति लौकिककारणप्रकर्षेणापि कृतकवदेव प्रतीयत इति कृतकमित्युपचर्यते। अन्यथा स्वाभाविकस्य भयस्य रम्यदर्शनेऽपि समुत्पत्तिप्रसङ्गात्।

शङ्का- यहाँ (भरत के कथन से) स्वभावज और कृतक- दो प्रकार का भय प्रतीत होता है। इस कारण उस आप के कथन (एक प्रकार के हेतुज भय) से विरोध हो जाता है।

समाधान- ऐसी बात नहीं है। भरत इत्यादि के कथन को न जानते हुए केवल मधुरवचन वाले तात्पर्य से शङ्का नहीं करनी चाहिए। जैसे लोकव्यवहार में मजीठ इत्यादि की लालिमा गाढ़तरता को व्याप्त करती है उसी प्रकार मध्यम और नीच लोगों का भय स्वल्पकारण मात्र से भी सहज के समान दिखलायी पड़ता है इसलिए वह सहज के समान व्यवहार करता है। और जैसे कृतक (लगाया गया) लाक्षारस प्रयत्नपूर्वक सजाने (लगाने) पर भी काष्ठ इत्यादि के भीतर नहीं व्याप्त होता उसी प्रकार उत्तम लोगों का भय भी लौकिक कारणों की प्रकृष्टता होने पर भी कृतक के समान प्रतीत होता है अतः वह कृतक के समान व्यवहार करता है। अन्यथा स्वाभाविक भय का रमणीय दर्शन होने पर भी उपलब्ध होने के कारण (स्वाभाविक होता)।

ननु यदि स्वाभाविकं भयं न विद्यते तर्हि (मालविकाग्निमित्रे १/१२)-

द्वारे नियुक्तपुरुषानुमतप्रवेशः
सिंहासनान्तिकचरेण सहोपसर्पन् ।
तेजोभिरस्य विनिवारितदृष्टिपातै-
र्वाक्यादृते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि ।।425।।

(शङ्का)- यदि (उत्तम लोगों में) स्वाभाविक भय नहीं होता तो (मालविकाग्निमित्र ९/१२) में—

यद्यपि द्वारपाल ने मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया है और मैं इनके सिंहासन के पास रहने वाले कञ्चुकी के साथ ही भीतर भी आया हूँ फिर भी इनके तेज से मेरी आँखें इतनी चकित हो गयी है मानों बिना रोके ही मैं बढ़ने से रोक दिया गया हूँ।।425।।

इत्यादिषु, कथं भयोत्पत्तिरितिचेद्, उच्यते–भीषणास्त्रिविधा आकृतिभीषणा क्रियाभीषणा माहात्म्यभीषणाश्चेति। तत्राकृतिभीषणा रक्षपिशाचादयः, क्रियाभीषणा वीरभद्रपरशुरामशार्दूलवृकादयः, माहात्म्यभीषणा देवनरदेवादयः। तदत्र माहात्म्य-भीषणराजदर्शनाद् भयं नाट्याचार्यस्य जायते, न पुनः स्वभावात् । तदेतद् निःशंसयं कृतम् 'अहो दुरासदो–राजमहिमा' (मालविकाग्निमित्रे १/११ श्लोकात्पूर्वम्) इति पूर्ववाक्यं प्रथ्नता तेनैव कालिदासेनेति सर्वं कल्याणम् ।

इत्यादि में भय की उत्पत्ति कैसे होती है?

समाधान– भीषणता तीन प्रकार की होती है- आकृति से भीषणता, क्रिया से भीषणता और माहात्म्य से भीषणता। उनमें राक्षस पिशाच इत्यादि आकृति से भय उत्पन्न करने वाले है। वीरभद्र, परशुराम, सिंह बाघ इत्यादि कार्य से भयभीत करने वाले हैं। देवता राजा इत्यादि माहात्म्य से भयभीत करने वाले हैं। यहाँ (इस श्लोक में) नाट्याचार्य (हरदत्त) का भय माहात्म्य से भीषण राजा को देखने से उत्पन्न हुआ है, स्वभाव से नहीं। इसीलिए निःसन्देह रूप से 'अहा! राजा की महिमा दुर्निवार्य होती है' (मालविकाग्निमित्र १/११ श्लोक से पूर्व) इस प्रकार पूर्ववाक्य कहने वाले कालिदास ने 'सबका कल्याण हो'- यह भी कहा है।

भोजेनोक्ता स्थायिनोऽन्ये गर्वः स्नेहो धृतिर्मतिः ।
स्थास्नुरेवोद्धतप्रायः शान्तोदात्तरसेष्वपि ।।१५७।।

भोज के मत में गर्व, स्नेह, धृति और मति का स्थायिभावत्व– भोज के द्वारा उद्धत, प्रेय, शान्त और उदात्त रसों में क्रमशः गर्व, स्नेह, धृति और मति ये चार स्थायिभाव होते हैं।।१५७।।

तथाहि- इदं खलु तेनैव प्रेयोरसप्रवादिना महाराजेनोदाहृतम्-

यदेव रोचते मह्यं तदेव कुरुते प्रिया ।
इति वेद्मि न जानामि तत् प्रियं यत् करोति सा ।।426।।

जैसे कि प्रेयरस का अभिधान करने वाले उसी महाराज (भोज) के द्वारा (स्नेह) उदाहरण के रूप में दिया गया है-

जो मुझे अच्छा लगता है वही (मेरी) प्रिया करती है— इतना ही मैं जानता हूँ। किन्तु यह नहीं जानता कि वह कौन सा प्रिय है जिसको वह करती है।।426।।

तेनैव व्याकृतं च– अत्र वत्सलप्रकृतेर्धीरललितनायकस्य प्रिया-लम्बनभावादुत्पन्नः स्नेहः स्थायिभावो विषयसौन्दर्यादिभिरुद्दीप्यमानः समुपजायमानैर्मतिधृतिस्मृत्यादिभिर्व्यभि-चारिभावैरनुभावैश्च प्रशंसादिभिः संसृज्यमानो निष्पन्नः प्रेयोरस इति प्रतीयते। रतिप्रीत्योरयमेव मूलप्रकृतिरिष्यत इति।

उन्हीं (भोज) के द्वारा व्याकृत (व्याख्या) भी की गयी है– यहाँ स्नेहशील (अत्यन्त प्रिय) स्वभाव वाले धीरललित नायक के प्रियालम्बनभाव से उत्पन्न स्नेह नामक स्थायि भाव विषय, सौन्दर्य इत्यादि द्वारा उद्दीप्त होता हुआ, उत्पन्न हुए मति, धृति, स्मृति इत्यादि व्याभिचारिभावों और अनुभावों से प्रशंसा इत्यादि द्वारा उत्पन्न प्रेयरस प्रतीत होता है। रति और प्रीति का यहीं मूलकरण कहा जाता है।

न तावदस्य स्नेहस्य रतिं प्रति मूलप्रकृतित्वं रत्यङ्कुरदशायामस्यासम्भवात्। सम्भोगेच्छामात्रं हि रतिः सैव प्रेयमानप्रणयाख्याभिस्तिसृभिः पूर्वदशाभिरुत्कटभूता चतुर्थदशायां चित्तद्रवीभावलक्षणस्नेहरूपतामाप्नोति।

स्नेह के स्थायिभावत्व का निराकरण–

(किन्तु) इस स्नेह का रति के अङ्कुरित होने की दशा में इस (स्नेह) के असम्भव होने के कारण रति के प्रति मूलकारणता नहीं हो सकती। केवल सम्भोगेच्छा मात्र ही रति है, जो प्रेय, मान और प्रणय नामक तीन पूर्व दशाओं से उत्कट होकर चतुर्थ दशा में चित्त के द्रवीभूत लक्षण वाली स्नेहरूपता को प्राप्त करती है।

तथा च भावप्रकाशिकायाम् (१६/१७)–

इयमङ्कुरिता प्रेम्णा मानात् पल्लविता भवेत् ।
सकोरका प्रणयतः स्नेहात् कुसुमिता भवेत् ।।इति।

जैसा भावप्रकाशिका (१६/१७) में कहा गया है–

यह (रति) प्रेम के द्वारा अङ्कुरित होती है और मान से पल्लवित होती है। अन्त में प्रणय के द्वारा कली रूप में होकर स्नेह से विकसित (प्रफुल्लित) हो जाती है।

अतोऽस्मिन्नुदाहरणे स्नेहस्य रतिरूपेणैवास्वाद्यत्वं, न पृथक्स्थायित्वेन। एवञ्च स्नेहस्य रतिभेदत्वकथनात् प्रेयोरसस्यापि शृङ्गारादपृथक्त्वमर्थसिद्धम्।

इसलिए उपर्युक्त उदाहरण में स्नेह का रति रूप से ही आस्वादन होता है, अलग से स्थायिभाव के रूप में नहीं और इस प्रकार स्नेह का रति के भेद के रूप में कथन होने से प्रेयरस का भी शृङ्गार रस से अलग न होना स्वतः सिद्ध हो जाता है।

तत्र स्नेहो रतेर्भेदो स्त्रीपुंसेच्छात्मकत्वतः ।
अन्ये पोषासहिष्णुत्वान्नैव स्थायिपदोचिताः ।।१५८।।

उसमें स्नेह स्त्री और पुरुष का इच्छात्मक स्नेह रति का भेद है।।१५८।।

अन्य (गर्व, धृति और मति) के स्थायिभावत्व का खण्डन– (भोज द्वारा कहे गये स्नेह से) अन्य (गर्व, धृति और मति) की भी पुष्टता को वहन करने की शक्ति न होने के कारण स्थायिभाव नाम (पद) से कहना उचित नहीं है।।१५८उ.।।

तत्र गर्वस्थायित्वमुदाहृतम् (काव्यादर्शे २/२९३ उद्धृतम्)–

अपकर्त्ताहमस्मीति मा ते मनसि भूद् भयम् ।
विमुखेषु न मे खड्गः प्रहर्तुं जातु वाञ्छति ।।427।।

भोज ने गर्व के स्थायिभावत्व का उदाहरण दिया है–

मैं (तुम्हारा) अपकार करने वाला हूँ। अतः तुम्हारे मन में भय नहीं होना चाहिए। (क्योंकि युद्ध से) विमुख हुए लोगों पर मेरी तलवार प्रहार करने के लिए इच्छा नहीं करती।।427।।

व्याकृतं च– अत्र मयापकारःकृत इति यत्ते चेतसि भयं, तन्माभूत्। मम खड्गः पराङ्मुखेषु न कदाचिदपि प्रहर्तुमुत्सहत इति सर्वदैव रूढोहङ्कारः प्रतीयते। सोऽयं गर्वप्रकृतिरुद्धतो नाम रसो निष्पद्यत इति।

और भोज ने व्याख्या किया है- यहाँ मेरे द्वारा अपकार किया गया है इसलिए तुम्हारे मन में जो भय है, वह नहीं होना चाहिए (क्योंकि) मेरी तलवार (युद्ध से) पराङ्मुख लोगों पर कभी भी प्रहार करने का उत्साह नहीं करती, इससे अङ्कुरित अहङ्कार प्रतीत होता है। वह यह गर्वमूलक उद्धत नामक रस निष्पन्न होता है।

न तावदत्र गर्वः, किन्तु पूर्वमपकर्त्तारं पश्चात् भीतं द्विषन्तमवलोक्य जातया समरविमुखं न हन्मि मा भैषिरिति वाक्सूचितया नीचे दया कस्यचिद् वीरसार्वभौमस्य शोभनः पौरुषसात्त्विकभावः प्रतीयते। यदि वा, अभीतमपि शत्रुं भीतो यदि तर्हि पलायस्वेत्यधिक्षिपतीति गर्व इति चेद् अस्तु वा गर्वः। तथापि असत्यभीतिकल्पनारूपचित्ताध्यवसायप्रकाशनद्वारेण शत्रुवधक्रोधमेव पुष्णाति।

गर्व के स्थायिभावत्व का निराकरण– यहाँ गर्व नहीं है; प्रत्युत पहले अपकार करने वाले (पुनः) बाद में भयभीत शत्रु को देखकर 'युद्ध से विमुख व्यक्ति को मैं नहीं मारता, इसलिए डरो मत' इस वाक्य द्वारा सूचित होने से नीच के प्रति उत्पन्न दया वाले किसी सार्वभौम वीर का शोभायमान पुरुष- विषयक सात्त्विक भाव प्रतीत होता है अथवा भयरहित शत्रु को 'यदि भयभीत हो तो भाग जाओ' यह अधिक्षेप (अपमान) करता है, इससे गर्व है तो गर्व होवे, तो भी असत्य भय की उत्पत्ति रूप चित्त के अध्यवसाय (दृढ़निश्चय या प्रयत्न) के प्रकाशन द्वारा शत्रु के वध के लिए क्रोध को ही पुष्ट करता है।

किञ्च विमुखाप्रहाररूपात्मसम्भावनारूपगर्वस्यासत्यभीतिकल्पनोपबृंहणादेष भावकानां वैरस्याय न केवलं, स्वादाभावाय चेति नास्मिन्नुदाहरणे गर्वस्य स्थायित्वमुपपद्यते।

और क्या? विमुखों पर प्रहार न करना रूप आत्मसम्भावना (आत्मचिन्तन) रूप गर्व का असत्य भयोत्पत्ति के विस्तार के कारण यह भाव केवल आस्वाद रहितता के लिए नहीं है, आस्वाद के अभाव के लिए भी है, अतः इस उदाहरण में गर्व का स्थायिभावत्व नहीं प्राप्त होता।

धृतेः स्थायित्वमपि तेनैवोदाहृतम्। तथाहि (हितोपदेशे १/१२२)-

सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मास्तृतैव भूः ।।428।। इति।

भोज ने धृति के स्थायिभावत्व का भी उदाहरण दिया है। जैसे कि(हितोपदेश १/१२२में)-

जिसका मन सन्तुष्ट है उसकी सभी सम्पत्तियाँ उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार जूते से ढके हुए पैर वाले व्यक्ति के लिए पूरी पृथ्वी चमड़े से ढँकी है।।428।।

व्याकृतं च- अत्र कस्यचिदुपशान्तप्रकृतेर्धीरशान्तनायकस्य अर्थोपगम-नमनोनुकूलदारादिसम्पत्तेरालम्बनविभावरूपायाः समुत्पन्नो धृतिस्थायिभावो वस्तुतत्त्वालोचना-दिभिरुद्दीपनविभावरुद्दीप्यमानः समुपजायमानस्मृतिमित्यादिभिर्व्यभिचारिभावैर्वागारम्भा-दिभिश्चानुभावैरनुसज्यमानो निष्पन्नो शान्तो रसः इति सङ्कीर्त्यते। अन्ये पुनरस्य शमं प्रकृतिमामनन्ति।स तु धृतेरेव विशेषो भविष्यतीति।

उन्होंने (भोज ने) व्याख्या भी किया है- यहाँ किसी उपशान्त स्वभाव वाले नायक का आलम्बन विभाव-भूत धन प्राप्त होना, मनोनूकूल पत्नी इत्यादि सम्पत्ति से उत्पन्न धृति (नामक) स्थायिभाव, वस्तुतत्त्व (यथार्थ) के समालोचन इत्यादि उद्दीपन विभावों से उद्दीप्त होता हुआ, उत्पन्न स्मृति, मति इत्यादि व्यभिचारी भावों के कथन इत्यादि अनुभावों से सुसज्जित होता हुआ शान्त रस कहलाता है। अन्य (कतिपय आचार्य) शम को इसका कारण कहते हैं। वह शम भी धृति का ही विशेष रूप है।

अत्र तावदनुकूलदारसिद्धिजनिताया धृतेस्तु रतिपरतन्त्रत्वमाबाल-गोपालप्रसिद्धम्। ननु वस्तुतत्त्वालोचनादिभिरस्याः स्थायित्वं कल्प्यत इति चेद् न। नैस्स्पृहवासनावासिते भावकचित्ते विभावादिष्वपि नःस्पृह्योन्मेषाद् धृतेर्मूलच्छेद प्रसङ्गात्। अर्थसम्पत्तिजनिता धृतिस्तु अगृध्नुलक्षणलोकोत्तरत्वप्राप्ति-व्यवसायरूपमुत्साहमनुसरन्ती वीरोपकरणतामाप्नोतीति नात्र धृतेः स्थायित्वम्। धृतिस्थायित्वनिराकरणसंरम्भेणैव नष्टस्तद्विषयः शमस्थायी कुत्रस्त वा लीनो न ज्ञायते।

धृति के स्थायिभावत्व का निराकरण- यहाँ अनुकूल पत्नी की प्राप्ति से उत्पन्न धृति का तो रति की परतन्त्रता बालक कृष्ण के समान प्रसिद्ध है। **(शङ्का)** वस्तुतत्त्व (यथार्थ) की आलोचना इत्यादि द्वारा इस (धृति) का स्थायिभावत्व कल्पित हो सकता है। **(समाधान)-** ऐसा नहीं है। नि:स्पृहता की वासना से वासित (युक्त) भावक के चित्त में विभाव इत्यादि के होने पर भी नि:स्पृहता के उन्मेष (दीप्तता) से धृति का मूलकारण न होने से स्थायिभावत्व नहीं हो सकता। अर्थ- सम्पत्ति से उत्पन्न अलोभ लक्षण वाली लोकोत्तरता की प्राप्ति का प्रयत्नरूप उत्साह का अनुसरण करती हुई वीरोपकरणता को प्राप्त करती है इसलिए यहाँ

धृति का स्थायिभावत्व नहीं है। धृति के स्थायिभावत्व के निराकरण के कथन से ही यह विषय (प्रसङ्ग) नष्ट (समाप्त) हो जाता है फिर शम का स्थायिभावत्व कहाँ विलीन हो गया- यह मैं नहीं जानता।

मतेः स्थायित्वं तेनैवोदाहृतम् । तथाहि (महावीरचरिते १.३१)-

साधारण्यान्निरातङ्कः कन्यामन्योऽपि याचते ।
किं पुनर्जगतां जेता प्रपौत्रः परमेष्ठिनः ।।429 इति।।

मति के स्थायिभावत्व का उदाहरण उन्होंने (भोज ने) दिया हैं जैसे कि (महावीरचरित १.३१ में)-

साधारणता के कारण कन्या की मँगनी अन्य कोई भी कर सकता है, फिर ब्रह्मा के प्रपौत्र जगत् विजयी (रावण) की क्या बात है?।।429।।

व्याकृतं च- रामस्योदात्तप्रकृतेर्निसर्गत एव तत्त्वाभिनिवेशिनी मतिर्नान्यविषये प्रवर्तते, न च प्रवृत्तोपरमति। सा च सीतेयं मम स्वीकारयोग्येत्येवंरूपेण प्रवृत्ता रावणप्रार्थना-लक्ष्मणप्रोत्साहनाभ्यामुद्दीप्यमाना समुचीयमानचिन्तावितर्कव्रीडावहित्थस्मृत्यादिभिः कालो - चितोत्तरानुमीयमानैर्विवेकचातुर्यधैर्यौदार्यादिभिः संसृज्यमानोदात्तरसरूपेण निष्पद्यत इति।

और (भोज ने) व्याख्या किया है- उदात्त प्रकृति वाले राम की स्वभावतः ही तत्त्व (यथार्थ) का अन्वेषण करने वाली मति अन्य विषय में प्रवृत्त नहीं होती और न ही प्रवृत्त होने पर विनष्ट होती है। 'वह यह सीता मेरे स्वीकार योग्य है' इस प्रकार से प्रवृत्त (राम की मति) रावण की प्रार्थना और लक्ष्मण के उत्साह से उद्दीप्त होती हुई, समुचित चिन्ता, वितर्क, व्रीडा, अवहित्था, स्मृति इत्यादि द्वारा समयोचित उत्तर से अनुमान की जाती हुई, धैर्य उदारता इत्यादि द्वारा उदात्तरस के रूप में उत्पन्न होती है।

अत्र तावत्सीताविषया आत्मस्वीकारयोग्यत्वनिश्चयरूपा रामस्य मतिस्तु रतेरुत्पत्तिमात्रकारणमेव, तदनिश्चये रतेरनौचित्यात् ।

अत्र न्यायः। साधारण्यनिश्चयो मतिः। तस्याः स्थायित्वमिच्छाम इति चेद् न। सा हि रावणविषयलज्जासूयादोषनिराकरणद्वारेण कार्यकरणापराङ्मुखीभाव-लक्षणलोकोत्तरत्वप्राप्तिव्यावसायरूपं रामोत्साहं भावकास्वादयोग्यतया प्रोत्साहयति।

मति के स्थायिभावत्व का निराकरण- यहाँ तो सीता- विषयक आत्मस्वीकार की योग्यता वाली निश्चयरूप राम की मति तो उस अनिश्चिता के होने पर रति का अनौचित्य होने से रति की उत्पत्तिमात्र का कारण ही है।

इस विषय में यह नियम है- सामान्य रूप से निश्चय करना मति कहलाता है। **(शङ्का)-** यदि उस (मति) का स्थायिभावत्व होना अभिलषित हो तो? **समाधान-** ऐसा (मति का स्थायिभावत्व) नहीं हो सकता, क्योंकि वह (मति) रावण- विषयक लज्जा निन्दा-

दोष के निराकरण के द्वारा कार्य करने का अविमुखीभाव लक्षण वाला लोकोत्तरत्व प्राप्ति के लिए व्यवसाय रूप राम के उत्साह को भावकों की आस्वाद्य योग्यता के अनुसार प्रोत्साहित करता है।

तदष्टावेव विज्ञेयाः स्थायिनो मुनिसम्मताः ।

तो भरत मुनि द्वारा अनुमोदित आठ स्थायीभाव ही जानना चाहिए।।१५९पू.।।

स्थायिनोऽष्टौ त्रयस्त्रिंशत् सञ्चारिणोष्ट सात्त्विकाः ।।१५९।।
एवमेकोनपञ्चाशद् भावा स्युर्मिलिता इमे ।
एवं हि स्थायिनो भावान् शिङ्गभूपतिरभ्यधात् ।।१६०।।

सम्पूर्ण भावों की संख्या- आठ स्थायी भाव, तैंतीस सञ्चारीभाव और आठ सात्त्विक भाव— इस प्रकार सभी मिल कर उन्चास भाव होते हैं। इस प्रकार शिङ्गभूपाल ने स्थायी भावों का विवेचन कर दिया।।१५९उ.-१६०।।

अथैषां रसरूपत्वमुच्येते शिङ्गभूभुजा ।
विद्वान्मानसहंसेन रसभावविवेकिना ।।१६१।।

अब विद्वन्मानसहंस रसभाव का विवेक रखने वाले शिङ्गभूपाल द्वारा इस स्थायीभावों की रसरूपता को बतलाया जा रहा है।।१६१।।

एते च स्थायिनः स्वैः स्वैर्विभावैर्व्यभिचारिभिः ।
सात्त्विकैश्चानुभावैश्च नटाभिनययोगतः ।।१६२।।
साक्षात्कारमिवानीताः प्रापिताः स्वादुरूपताम् ।
सामाजिकानां मनसि प्रयान्ति रसरूपताम् ।।१६३।।

रस निरूपण- ये (रति इत्यादि) स्थायीभाव अपने अपने विभाव, व्यभिचारीभाव और सात्त्विक अनुभावों द्वारा (परिपुष्ट होकर) नट के अभिनय कौशल से (व्यञ्जित होकर) साक्षात्कार के समान लाये जाने के कारण आस्वादन रूप को प्राप्त करते हैं और सामाजिकों (दर्शकों) के मन में प्रकृष्टतापूर्वक रसरूप में प्रवाहित होते हैं।।१६२-१६३।।

दध्यादिव्यञ्जनद्रव्यैश्चिञ्चादिभिरथौषधैः ।
गुडादिमधुरद्रव्यैर्यथायोगं समन्वितैः ।।१६४।।
यद्वत्पाकविशेषेण षाडवाख्यो रसः परः ।
निष्पद्यते विभावाद्यैः प्रयोगेण तथा रसः ।।१६५।।
सोऽयमानन्दसम्भेदो भावकैरनुभूयते ।

जिस प्रकार दही इत्यादि व्यञ्जन पदार्थों, इमली इत्यादि वनस्पतियों तथा गुड़ इत्यादि मधुर पदार्थों के यथोचित, (अनुपात में) मिश्रणों के साथ पाक-विशेष द्वारा (एक

अपूर्व आनन्ददायक) षाडव (मधुरादि छः रसों वाला) नामक रस निष्पन्न होता है उसी प्रकार विभाव इत्यादि के (यथोचित) प्रयोग से आनन्दमिश्रित यह (शृङ्गार इत्यादि) रस निष्पन्न होता है जो भावकों के द्वारा अनुभव किया जाता है॥१६४-१६६पू.॥

ननु, नायकनिष्ठस्य स्थायिप्रकर्षलक्षणस्य रसस्य सामाजिकानुभवयोग्यता नोपपद्यते। अन्यभवस्य तस्यान्यानुभवायोगादिति चेत् सत्यम् । को वा नायकगतं रसमाचष्टे। तथाहि– स च नायको दृष्टः श्रुतोऽनुकृतो वा रसस्याश्रयतामालम्बते। नाद्यः। साक्षाद्दृष्टनायक-रत्यादेर्व्रीडाजुगुप्सादिप्रतीपफलत्वेन स्वादाभावात् । न द्वितीय तृतीयौ। तयोरविद्यमानत्वात्। न ह्यत्रसत्याश्रये तदाश्रितस्यावस्थानमुपपद्यते।

(शङ्का) नायकनिष्ठ स्थायी भाव के उत्कर्ष लक्षण वाले रस में सामाजिकों के अनुभव की योग्यता नहीं उत्पन्न होती क्योंकि अन्य (नायक) में उत्पन्न (रस) का अन्य (सामाजिकों) के अनुभव से योग नहीं हो सकता। **(समाधान)**-ठीक है, नायकगत रस का आस्वादन कौन करता है? जैसे कि दृष्ट, श्रुत या अनुकृत वह नायक रस की आश्रयता को प्राप्त होता है। उसमें पहला (दर्शन) वाला नहीं हो सकता, क्योंकि साक्षात् रूप से दृष्ट नायक की रति इत्यादि से उत्पन्न जुगुप्सा इत्यादि प्रतीयमान फल होने के कारण आस्वाद का अभाव होता है। और दूसरा (सुनने) तथा तीसरा (अनुकृत) भी नहीं हो सकता क्योंकि दोनों में (नायक) विद्यमान नहीं होते। क्योंकि आश्रय के न होने पर उसके आश्रित रहने वाले की विद्यमानता नहीं होती।

ननु भवतु नामैवम् । तथापि रसस्य नटगतत्वेन सामाजिकानुभवानुपपत्तिरिति चेद्, न। नटे रसम्भवः किमनुभावादिसद्भावेन विभावादिसम्भवेन वा। नाद्यः। अभ्यासपाटवादिनापि तत्सिद्धेः। किञ्च सामाजिकेषु यथोचितमनुभावसद्भावेऽपि त्वया तेषां रसाश्रतानङ्गीकारात्।

(शङ्का) इस प्रकार की बात मान ली जाय तो भी रस की नटगतता के कारण सामाजिकों में(रस के) अनुभव की प्राप्ति होती है। **(समाधान)** ऐसी बात नहीं है। नट में रस की उत्पत्ति क्या अनुभाव इत्यादि के होने से होती है अथवा विभावादि की उत्पत्ति द्वारा। (इसमें) पहला (अनुभाव इत्यादि द्वारा रस की उत्पत्ति) नहीं हो सकती क्योंकि अभ्यास की पटुता इत्यादि से भी उसकी सिद्धि (प्राप्ति) हो जाती है। और भी सामाजिकों में यथोचित अनुभाव इत्यादि के होने पर भी तुम्हारे (शङ्का करने वाले) द्वारा उन (अनुभाव इत्यादि) की रसाश्रयता को स्वीकार न करने के कारण भी अनुभाव इत्यादि द्वारा रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

यदि विभावेन तत्रापि किमनुकार्यमालविकादिना (उत) अनुकारिणा स्वकान्तादिना वा। नाद्यः। अनौचित्यात् । नापि द्वितीयः। नटे साक्षाद्दृष्टनायकवदश्लीलप्रतीतेः।

यदि विभाव से (रस की उत्पत्ति मान ली जाय) तो भी क्या अनुकार्य मालविका इत्यादि द्वारा (रस की उत्पत्ति होती है) अथवा अनुकारी अपनी प्रियतमा इत्यादि द्वारा।

अनौचित्य के कारण प्रथम (अर्थात् अनुकार्य मालविका इत्यादि द्वारा रस की उत्पत्ति) नहीं हो सकती और नट में प्रत्यक्षदृष्ट नायक के समान अश्लील प्रतीति होने के कारण द्वितीय (अर्थात् स्वकान्ता इत्यादि द्वारा भी) रस की उत्पत्ति नहीं होती।

ननु मालविकादिविभावविशेषस्यानौचित्यात् (स्ववि-) भावस्यासन्निहितत्वात् (सन्निहितत्त्वेऽपि साक्षाद्दृष्टनायकवदश्लीलताप्रतीतेः) च समाजिकानामपि न नटवदेव रसानाश्रयत्वं प्रसज्यत इति चेद् अत्र केचन समादधते–

(शङ्का)– यदि मालविका इत्यादि विभाव विशेष का अनौचित्य के कारण और अपने विभाव के सन्निनहित (समीप) न होने के कारण (सन्निहित होने पर भी साक्षाद्— दृष्ट नायक के समान अश्लीलता की प्रतीति होने के कारण) सामाजिकों में नट के समान ही रसाश्रयता होती है। इस विषय में कुछ आचार्य समाधान देते (करते) हैं—

विभावादिभावाना–मनपेक्षितबाह्यसत्त्वानां शब्दोपादानादेवासादितसद्भावाना-मानुकूल्यापेक्षया निस्साधारणानामपि काव्ये नाट्ये चाभिधापर्यायेण साधारणीकरणात्मना भावनाव्यापारेण स्वसम्बन्धितया विभावितानां साक्षाद्भावकचेतसि विपरिवर्तमानानामालम्ब-नत्वाद्यविरोधादनौचित्यादिविप्लवरहितः स्थायी निर्भरानन्दविश्रान्तिस्वभावेन भोगेन भाव-कैर्भुज्यत इति।

अनपेक्षित बाह्यसत्त्वों वाले विभाव इत्यादि सद्भावों का शब्दों के उपादान (अभिग्रहण) से ही उपलब्ध सद्भावों की अनुकूलता की अपेक्षा से निस्साधारण लोगों का भी काव्य और नाट्य में अभिधा के पर्याय से साधारणीकरण आत्मा द्वारा भावना— व्यापार से अपने सम्बन्धितता के कारण विभावित (प्रकटित) और प्रत्यक्ष रूप से भावक के चित्त में विपरिवर्तित होते हुए (विभावादि) का आलम्बनत्व इत्यादि का अविरोध होने के कारण अनौचित्य इत्यादि विप्लव से रहित स्थायी (भाव) निर्भरानन्द विश्रान्ति युक्त स्वभाव वाले भोजकत्व के कारण भावकों द्वारा भुज्यमान होता है।

अन्ये त्वन्यथा समाधानमाहुः– लोके प्रमदादिकारणादिभिः स्थाय्यनुमानेऽभ्यास-पाटवात् सहृदयानां काव्ये नाट्ये च विभावादिपदव्यपदेश्यैः (ममैवैते शत्रोरेवैते तटस्थस्यैवैते न ममैवैते न शत्रोरेवैते न तटस्थस्यैवैते इति सम्बन्धविशेषस्वीकारपरिहारनियमानध्यवसायात्) स्वसम्बन्धित्वे च साधारण्यात् प्रतीतैरभिव्यक्तीभूतो वासनात्मकतया स्थितः स्थायी रत्यादिः पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणो लोकोत्तरचमत्कारकारिपरमानन्दमिव कन्दलयन् रसरूपतामाप्नोति।

दूसरे आचार्य अन्य प्रकार से समाधान करते हैं- लोक में प्रमदा आदि कारणों के द्वारा रत्यादि स्थायीभावों का अनुमान होने पर अभ्यासकौशल (अभ्यास की कुशलता) के कारण सहृदयों का काव्य और नाट्य में विभाव इत्यादि (विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव) भाव के पदों (शब्दों) के अभिधाज्ञान के (शब्दार्थ ज्ञान) द्वारा अपने सम्बन्धितता के कारण साधारणीकरण के कारण प्रतीति से (भावकत्व व्यापार से) अभिव्यक्त हुआ वासनात्मक रूप

से विद्यमान रति इत्यादि स्थायिभाव पानक रस- न्याय से चर्वणा को प्राप्त होता हुआ (अनौचित्य और विभिन्न प्रकार के विप्लवों से रहित तथा सत्त्व के उद्रेक से) लोकोत्तर चमत्कार से युक्त आनन्द (परमानन्द) के समान कन्दलित होता हुआ रसरूपता को प्राप्त करता है(सहृदय भावकों) द्वारा अनुभव किया जाता है।

एवञ्च भुक्तिव्यक्तिपक्षयोरुभयोरपि सामाजिकानां रसाश्रयत्वोपपत्तेरन्यतरपक्षपरिग्रहादुदास्महे।

इस प्रकार (भट्टनायक के) भुक्तिवाद और (अभिनवगुप्त के) अभिव्यक्तिवाद - दोनों पक्षों से सामाजिकों में रसाश्रयता को प्राप्त होने से अन्य पक्षों के ग्रहण करने और न करने के प्रति हम उदासीन हैं।

प्रायेण भारतीयमतानुसारिणां प्रक्रिया तु (इत्थम्)- लोके कारणकार्यसहकारिरूपतामुपगतैः काव्ये नाट्ये वा रससूक्तिसुधामाधुरीणैर्यथोक्ताभिनयसमेतैर्वा पदार्थत्वेन विभावानुभावसञ्चारिव्यपदेशं प्रापितैर्नायिकानायकचन्द्रचन्द्रिकामलयानिलादिभ्रूविक्षेपकटाक्षपातस्वेदरोमाञ्चादिनिर्वेदविषादादिरूपैर्वासनात्मकैरात्मसम्बन्धित्वेनाभिमतैर्भावैर्धर्मकीर्तिरतानां षडङ्गनाट्यसमयज्ञानां नानादेशवेषभाषाविचक्षणानां निखिलकलाकलापकोविदानां सन्त्यक्तमत्सराणां सकलसिद्धान्तवेदिनां रसभावविवेचकानां काव्यार्थनिहितचेतसां सामाजिकानां मनसि मुद्रामुद्रितन्यायेन विपरिवर्तिता वासिताश्चाभिवर्धिताः स्थायिनो भावाः काव्यार्थत्वेनाभिमताः बाह्यार्थावलम्बनात्मकाः सन्तो विकासविस्तारक्षोभविक्षेपात्मकतया विभिन्नाः स्वरूपेण (रत्युत्साहादिरूपेण सामाजिकैः) आस्वाद्यमानाः परमानन्दरूपतामानुवन्तीति सकल-सहृदयहृदयसंवेदनसिद्धस्य रसस्य प्रमाणान्तरेण संसाधनपरिश्रमः श्रोतृजनचित्तक्षोभाय न केवलं (प्रत्युत) नोपयोगायेति प्रकृतमनुसरामः।

प्रायः भारतीय (भारत से सम्बन्धित) मत का अनुसरण करने की प्रक्रिया तो इस प्रकार है—

प्रायः भरत के मतों का अनुसरण करने वाले आचार्यो की (रसचर्वणा- विषयक) प्रक्रिया इस प्रकार है-लोक में कारण और कार्य की सहकारि रूपता की प्राप्ति होने से काव्य अथवा नाटक में रस- विषयक सूक्ति रूपी अमृत की मधुरता से युक्त अथवा यथोक्त अभिनय से समवेत पदार्थता के कारण विभाव, अनुभाव और सञ्चारिभावों से व्यपदिष्ट तथा नायक, नायिका चन्द्रमा, चाँदनी, मलयानिल इत्यादि भ्रूविक्षेप, कटाक्षपात् स्वेद, रोमाञ्च इत्यादि और निर्वेद, विषाद इत्यादि के रूप से प्राप्त कराया गया, वासनात्मक स्वसम्बन्धता से अभिमत भावों द्वारा धर्म कीर्ति में रत, षडङ्गों सहित नाट्यज्ञाता अनेक स्थानानुसार वेष-भाषा के विचक्षण, सम्पूर्ण कलाकलाप के गम्भीर ज्ञाता, मत्सर का त्याग कर देने वाले, सभी सिद्धान्तों के ज्ञाता, रसभाव के विवेचकों और काव्यार्थ में निहित चित्त वाले सामाजिकों के मन में मुद्रामुद्रित न्याय से विपरिवर्तित, वासित तथा अभिवर्धित स्थायिभाव काव्यार्थता के रूप में अभिमत तथा बाह्यार्थ आलम्बनात्मक होते हुए विकास,

विस्तार, क्षोभ और विक्षेपात्मकता से युक्त होने के कारण विभिन्नता को प्राप्त तथा रति उत्साह इत्यादि) स्वरूप से सामाजिकों को आस्वाद्यमान होता हुआ परमानन्दता को प्राप्त करते हैं। तथा सभी सहृदयों के हृदय को संवेदन शील बनाने वाले इसका अन्य प्रमाणों से सिद्ध करने के परिश्रम के बल श्रोता लोगों के मन संक्षोभित करने के लिए है, उपयोग के लिए नहीं। इसलिए मैं प्रकृत रूप का ही अनुसरण करता हूँ।

अष्टधा स च शृङ्गारहास्यवीराद्भुता अपि ।।१६६।।
रौद्रः करुणबीभत्सौ भयानक इतीरितः ।

रस के प्रकार– और वह (रस) आठ प्रकार का कहा गया है-१. शृङ्गार २. हास्य ३. वीर ४. अद्भुत ५. रौद्र ६. करुण ७. बीभत्स और ८. भयानक ।।१६६-१६७पू.।।

एषूत्तरस्तु पूर्वस्मात्सम्भूतो विषमात् समः ।।१६७।।

विषम से सम संख्यक रस की उत्पत्ति– इन (रसों) में उत्तरवर्ती सम संख्यक रस पूर्ववर्ती विषम संख्यक रस से उत्पन्न होता है।।१६७उ.।।

बहुवक्तव्यताहेतोः सकलाहलादनादपि ।
रसेषु तत्र शृङ्गारः प्रथमं लक्ष्यते स्फुटम् ।।१६८।।

शृंगार रस के प्रथम निरूपण का कारण– उन रसों में अनेक प्रकार से वक्तव्य होने के कारण सभी लोगों के लिए आह्लादित करने वाला होने के कारण भी शृङ्गार रस का सर्वप्रथम लक्षण किया जा रहा है।।१६८।।

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
नीता सदस्यरस्यत्वं रतिः शृङ्गार उच्यते ।।१६९।।

१. शृङ्गार रस– अपने अनुकूल विभावों, अनुभावों, सात्त्विक तथा व्यभिचारिभावों द्वारा सभा के लोगों (दर्शकों) में रसता को प्राप्त रति (नामक स्थायीभाव) शृङ्गार (रस) कहलाता है।।१६९।।

स विप्रलम्भः सम्भोग इति द्वेधा निगद्यते ।

शृङ्गार के भेद– वह (शृङ्गार रस) दो प्रकार का कहा गया है— (१) विप्रलम्भ और (२) सम्भोग।।१७०पू.।।

अयुक्तयोस्तरुणयोर्योऽनुरागः परस्परम् ।।१७०।।
अभीष्टालिङ्गनादीनामनवाप्तौ प्रकृष्यते ।
स विप्रलम्भो विज्ञेयः स चतुर्धानिगद्यते ।।१७१।।
पूर्वानुरागमानौ च प्रवासकरुणावति ।

१. विप्रलम्भ शृङ्गार– पहले कभी न मिले हुए या मिलकर वियुक्त दो तरुणों

(नायक और नायिका) का परस्पर जो अनुराग अभीष्ट आलिङ्गन इत्यादि के प्राप्त न होने पर प्रकृष्ट होता रहता है (बढ़ता रहता है), उसको विप्रलम्भ जानना चाहिए।

विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रकार– वह (विप्रलम्भ) चार प्रकार का कहा गया है- (अ) पूर्वानुराग (आ) मान (इ) प्रवास और (ई) करुण।।१७०उ.१७२पू.।।

अत्रायमर्थः– नायिकानायकयोः प्रागसङ्गतयोः सङ्गतवियुक्तयोर्वा स्वोचितविभावैरनुभावैश्चोपजायमानः परस्परानुरागोऽन्यतरानुरागो वा स्वाभिलषितालिङ्गनादीनामनवाप्तौ सत्यामुत्पद्यमानैर्व्यभिचारिभिरनुभावैश्च प्रकृष्यमाणो विप्रलम्भशृङ्गार इत्याख्यायते। स च पूर्वानुरागादिभेदेन चातुर्विध्यमापद्यते।

इसका तात्पर्य यह है– पहले न मिले हुए या मिलकर बिछुडे हुए नायिका और नायक का यथोचित विभावों और अनुभावों से उत्पन्न परस्पर अनुराग या एक का दूसरे के प्रति अनुराग, अपने द्वारा चाहे गये आलिङ्गन इत्यादि के प्राप्त न होने पर उत्पन्न व्यभिचारी भावों और अनुभावों द्वारा प्रकृष्ट होता हुआ विप्रलम्भ शृङ्गार कहलाता है। वह पूर्वानुराग इत्यादि भेद से चार प्रकार का होता है।

तत्र पूर्वानुरागः–

यत्प्रेम सङ्गमात्पूर्वं दर्शनश्रवणोद्भवम् ।।१७२।।

पूर्वानुरागः स ज्ञेयः

(अ) पूर्वानुराग– समागम से पहले दर्शन अथवा श्रवण से उत्पन्न जो प्रेम होता है, वह पूर्वानुराग कहलाता है।

श्रवणं तद्गुणश्रुतिः।

श्रवणेन पूर्वानुरागो यथा (नैषधचरिते ३.७७)–

साधु त्वया तर्कितमेतदेव
स्वेनानलं यत् किल संश्रयिष्ये ।
विनामुना स्वात्मनि तु प्रहर्तुं
मृषागिरं त्वां नृपतौ न कर्त्तुम् ।।430।।

श्रवण– श्रवण का तात्पर्य है- उसके गुणों का सुनना।।१७३पू.।।

श्रवण से पूर्वानुराग जैसे (नैषधचरित ३/७७ में)–

यही तुमने ठीक विचार किया कि मैं स्वयं ही अनल (नलातिरिक्त, अग्नि) का आश्रय ले लूँगी, किन्तु नल के बिना अपने को समाप्त करने के लिए (अग्नि-अनल का आश्रय लूँगी), न कि तुम्हें नरराज (नल) के सम्मुख झूठा सिद्ध करने के लिए (अनल अर्थात् नल व्यतिरिक्त का आश्रय) ।।430।।

अत्र हंसमुखान्नलगुणश्रवणेन दमयन्त्याः पूर्वानुरागः।

यहाँ हंस के मुख से नल के गुणों को सुनने से उत्पन्न दमयन्ती का पूर्वानुराग स्पष्ट है।

प्रत्यक्षचित्रस्वप्नादौ दर्शनं दर्शनं मतम् ।।१७३।।

दर्शन– प्रत्यक्ष, चित्र, अथवा स्वप्न इत्यादि में देखना दर्शन कहलाता है।।१७३उ.।।

प्रत्यक्षदर्शनेन यथा (रघुवंशे ६/६९)–

तं वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यं न्यवर्तातान्योपगमात् कुमारी ।
नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षटपदाली ।।431।।

प्रत्यक्षदर्शन से पूर्वानुराग जैसे (रघुवंश ६/६९ में)–

जिस प्रकार पुष्पित आम्र के वृक्ष को देख कर भ्रमर की पंक्ति दूसरे वृक्ष की चाह नहीं करती उसी प्रकार सर्वाङ्गसुन्दर अज को देख कर वह इन्दुमती दूसरे राजा के पास जाने से रुक गयी।।431।।

चित्रदर्शनेन यथा (रत्नावल्याम् २.९)–

लीलावधूतकमला कलयन्ती पक्षपातमधिकं नः ।
मानसमैुति केयं चित्रगता राजहंसीव ।।432।।

अत्र चित्रगतरत्नावलीदर्शनाद् वत्सराजस्य पूर्वानुरागः ।

चित्रदर्शन से पूर्वानुराग जैसे (रत्नावली २/९ में)–

खेल-खेल से कमलों को हिलाने वाली चित्रलिखित (आश्चर्य-जनक) वाली हमारी अत्यधिक अनुकूल (पंख फड़फड़ाकर) कहती हुई (लक्षणों) से अपने को दिखलाती हुई यह कौन राजहंसी मन में (मानसरोवर में) जा रही है(समा रही है)।।432।।

यहाँ चित्रगत रत्नावली को देखने के कारण वत्सराज का पूर्वानुराग है।

स्वप्नदर्शनेन यथा–

स्वप्ने दृष्टाकारा तमपि समादाय गतवती भवती ।
अन्यमुपायं न लभे प्रसीद रम्भोरु! दासाय ।।433।।

अत्र कामपि स्वप्ने दृष्टवतः कस्यचिन्नायकस्य पूर्वानुरागः।

स्वप्नदर्शन से पूर्वानुराग जैसे–

स्वप्न में देखे गये आकार वाली आप उस (स्वप्न) को भी लेकर चली गयी। (अब) मेरे पास अन्य दूसरा उपाय नहीं प्राप्त होता (दिखलायी पड़ता)। इसलिए हे केले के खम्भे के समान जंघाओं वाली मुझ सेवक के लिए प्रसन्न होओ।।433।।

यहाँ किसी (रमणी) को स्वप्न में देखने वाले किसी नायक का पूर्वानुराग हैं।

यतः पूर्वानुरागोऽयं सङ्कल्पात्मा प्रवर्तते ।

सोऽयं पूर्वानुरागाख्यो विप्रलम्भः इतीरितः ।।१७४।।

पूर्वानुराग का स्वरूप- जो पूर्वानुराग विचारशक्ति को उत्पन्न करता है, वह पूर्वानुराग नामक विप्रलम्भ होता है।।१७४।।

पारतन्त्र्यादयं द्वेधा दैवमानुषकल्पनात् ।
तत्र सञ्चारिणो ग्लानिः शङ्कासूये श्रमो भयम् ।।१७५।।
निर्वेदौत्सुक्यदैन्यानि चिन्तानिद्रे प्रबोधता ।
विषादो जडतोन्मादो मोहो मरणमेव च ।।१७६।।

पूर्वानुराग के प्रकार- परतन्त्रता के कारण यह (१) दैव (भाग्य) से उत्पन्न और (२) मानुष से उत्पन्न होने के कारण दो प्रकार का होता है। उसमें ग्लानि, शङ्का, असूया, श्रम, भय,निर्वेद, उत्सुकता, दीनता, चिन्ता, अनिद्रा, प्रबोध, विषाद, जड़ता, उन्माद, मोह और मरण ये सञ्चारी भाव होते हैं।।१७५-१७६।।

तत्र दैवपारतन्त्रेण यथा (कुमारसम्भवे ३.७५)-

शैलात्मजापि पितुरूच्छिरसोऽभिलाषं
व्यर्थं समीक्ष्य ललितं वपुरात्मनश्च ।
सख्याः समक्षमिति चाधिकजातलज्जा
शून्या जगाम भवनाभिमुखी कथञ्चित् ।।434।।

अत्र जनकाद्यानुकूल्येऽपि दैवपारतन्त्र्येण पार्वत्या पूर्वानुरागः।

दैवपारतन्त्र्य से पूर्वानुराग जैसे (कुमारसम्भव ३/७५ में)-

पार्वती जी सखियों के सामने ही अपने मनस्वी पिता हिमालय की इच्छा तथा अपने सौन्दर्य दोनों ही को इस प्रकार निष्फल होते देख कर लज्जा से गड़ सी गयी। किन्तु किसी प्रकार अपने को सम्हाल कर खोए हुए मन से वह अपने भवन की ओर चल पड़ी।।434।।

यहाँ जनक (पिता हिमालय) इत्यादि के अनुकूल होने पर भी दैवपरतन्त्रता के कारण पार्वती का पूर्वानुराग है।

मानुषपारतन्त्र्येण यथा (मालविकाग्निमित्रे २.४)-

दुल्लहो पिओ तस्सिं भव हिअअ णिरासं
अम्हो अङ्गो मे फुरइ किं वि वामो ।
एसो सो चिरदिट्ठो कहं उण दक्खिदव्वो
अहं पराहीणा तुमं पुण सतिण्हं ।।435।।
(दुर्लभः प्रियस्तस्मिन् भव हृदय! निराशम्
अहो अपाङ्गो में स्फुरति किमपि वामः।

एष स चिरदृष्टः कथं पुनर्द्रष्टव्यः
अहं पराधीना त्वं पुनः सतृष्णम् ।।)

अत्र देवयानीपारतन्त्र्येण शर्मिष्ठायाः ययातिविषयः पूर्वानुरागः।

मानुषपारतन्त्र से पूर्वानुराग जैसे (मालविकाग्निमित्र २/४ में)-

हे हृदय! मेरा प्रियतम दुष्प्राप्य है। अतः उसके प्राप्त होने की आशा छोड़ दो। अरे! मेरा बाया नेत्र फड़क रहा है। वह बहुत दिनों के बाद देखा गया यह (प्रियतम सामने विद्यमान) है यह किस प्रकार प्राप्तव्य है। हे प्रियतम (इस) पराधीन मुझको अपने प्रति प्रबल अभिलाषा वाली समझो।।435।।

(यह श्लोक मालविकाग्निमित्र में भी प्राप्त होता है। शिङ्गभूपाल द्वारा की गयी इसकी व्याख्या से प्रतीत होता है कि इसको उन्होंने किसी ऐसे नाटक से उद्धृत किया है जिसका कथानक देवयानी और शर्मिष्ठा विषयक है।)

यहाँ देवयानी की परतन्त्रता के कारण शर्मिष्ठा का ययातिविषयक पूर्वानुराग है।

एतस्मिन्नभिलाषादि मरणान्तमनेकधा ।
तत्तत्सञ्चारिभावानामुत्कटत्वाद् दशा भवेत् ।।१७७।।

इसमें अभिलाषा से लेकर मरण तक तत्तत् सञ्चारी भावों की उत्कटता के कारण अनेक प्रकार की अवस्थाएँ होती है।।१७७।।

तथापि प्राक्तनैरस्या दशावस्थाः समासतः ।
प्रोक्ताः तदनुरोधेन तासां लक्षणमुच्यते ।।१७८।।

पूर्वानुराग की दश अवस्थाएँ- (अनेक अवस्थाओं के होने पर) भी प्राचीन आचार्यों द्वारा इसकी दश अवस्थाओं को संक्षेप में कहा गया है। उनके अनुरूप उनका यहाँ लक्षण किया जा रहा है।।१७८।।

अभिलाषश्चिन्तानुस्मृति गुणसङ्कीर्तनोद्वेगाः ।
सविलापा उन्मादव्याधी जड़ता मृतिश्च ताः क्रमशः ।।१७९।।

पहले उन (नायक-नायिका) में क्रमशः १. अभिलाष फिर २. चिन्ता उसके बाद ३. अनुस्मृति तत्पश्चात् ४. गुण कीर्तन फिर ५. उद्वेग पुनः ६. विलाप तदुपरान्त ७. उन्माद ८. व्याधि ९. जड़ता और १०. मृत्ति (ये देश अवस्थाएँ होती है)।।१७९।।

तत्राभिलाषः-

सङ्गमोपायरचितप्रारब्धव्यवसायतः ।
सङ्कल्पेच्छासमुद्भूतिरभिलाषोऽत्रविक्रियाः ।।१८०।।
प्रवेशनिर्गमौ तूष्णीं तद्दृष्टिपथगामिनौ ।
रागप्रकाशनपराश्चेष्टाः स्वात्मप्रसाधनम् ।।१८१।।

व्याजोक्तयश्च विजने स्थितिरित्यादयो मताः ।

१. अभिलाष- (प्रिय को देखने अथवा उसके गुणों के श्रवण से) समागम के उपाय के प्रारम्भ करने के प्रयत्न से संकल्प (निश्चय) इच्छा का उत्पन्न होना अभिलाष कहा जाता है। इसमें घुसना, निकलना, मौन, मार्ग की ओर देखना, राग प्रकाशन के लिए चेष्टाएँ, अपना प्रसाधन (सजावट) करना, परोक्ष कथन, निर्जन- स्थान में रहना इत्यादि विक्रियाएँ कही गयी है।।१८०-१८२पू.।।

यथा-

अलोलैश्च श्वासप्रविदलितलज्जापरिमलैः
प्रमोदादुद्वेलैश्चकितहरिणीवीक्षणसखैः ।
अमन्दैरौत्सुक्यात् प्रणयलहरीमर्मपिशुनै-
रपाङ्गैः सिंहक्ष्मारमणमबला वीक्षितवती ।।436।।

जैसे-

स्थिर (चञ्चलतारहित) श्वाँस के विभक्त होने के कारण लज्जा- सौरभ से युक्त, आनन्द के कारण लहराते हुए, चञ्चल हिरणी के समान उत्सुकता के कारण तीव्र, प्रणय- तरंग की सजीवता को प्रकट करने वाले तिरछी नेत्रों से रमणी ने सिंहभूमि पर रमण करने वाले (शिङ्गभूपाल) को देखा।।436।।

अत्र रागप्रकाशनपरैर्दृष्टिविशेषैर्नायके कस्याश्चिदभिलाषो व्यज्यते।

यहाँ राग प्रकाशन में तत्पर दर्शनविशेषों से नायक के प्रति किसी (नायिका) की अभिलाषा व्यञ्जित होती है।

अथ चिन्ता-

केनोपायेन संसिद्धिः कदा तस्य समागमः ।।१८२।।
दूतीमुखेन किं वाच्यमित्याद्यूहस्तु चिन्तनम् ।
अत्र नीव्यादिसंस्पर्शः शय्यायां परिवर्तनम् ।।१८३।।
सबाष्पकेकरा दृष्टिर्मुद्रिकादिविवर्तनम् ।
निर्लक्ष्यवीक्षणं चैवमाद्या विकृतयो मताः ।।१८४।।

१. चिन्ता-

किस उपाय से (उसके मिलन का कार्य) होगा, कब उसका समागम होगा, दूती के मुख से क्या कहलवाया जाय इत्यादि का ऊहापोह करना चिन्ता कहलाता है। इसमें नीवी इत्यादि का संस्पर्श, शय्या पर करवटें बदलना, अश्रुपूरित वक्र- दृष्टि, मुद्रिका इत्यादि का विस्तार, निरर्थक देखना इत्यादि विकृतियाँ कही गयी हैं।।१८२उ.-१८४।।

यथा–

उद्यानं किमुपागतास्मि सुकृती देवो न किं दर्शितः
श्रीसिंहः स्वसखीमुखेन स कथं नेयः स किं वक्ष्यति ।
सिद्ध्येत्तेन कदा समागम इति ध्यानेन सव्याकुला
शय्यायां परिवर्तते श्वसिति च क्षिप्त्वा कपोले करे ।।437।।

जैसे–

मैं भाग्यशाली क्या उद्यान में आ गयी हूँ, महाराज (श्रीसिंह) क्या दिखलायी दिये? सखियों के द्वारा वे कैसे लाये जाएँगे, वे क्या कहते हैं, उनसे समागम कब सिद्ध होगा- 'इस प्रकार के ध्यान से व्याकुल (नायिका) शय्या (पलंग) पर करवटें बदलती है और हाथ पर गाल को रख कर लम्बी-लम्बी श्वासें लेती है।।437।।

अथानुस्मृतिः

अर्थानामनुभूतानां देशकालानुवर्त्तिनाम् ।
सान्तत्येन परामर्शो मनसः स्यादनुस्मृतिः ।।१८५।।
तत्रानुभावा निश्वासो ध्यानं कृतविहस्तता ।
शय्यासनादिविद्वेष इत्याद्याः स्मरकल्पिताः।।१८६।।

३. **अनुस्मृति–** देश काल का अनुसरण करने वाले अनुभूत अर्थों के विषय में अन्त तक मन का परामर्श (अर्थात् देशकाल की अनुवर्तिनी किसी वस्तु को देखकर परिचित वस्तु का ध्यान आ जाना) अनुस्मृति कहलाता है। उसमें निःश्वास, ध्यान, व्याकुलता, शय्या और आसन इत्यादि से विद्वेष इत्यादि काम- विषयक कल्पित अनुभाव होते हैं।।१८५-१८६।।

यथा–

आरामे रतिराजपूजनविधावासन्नसञ्चारिणो
व्यापारानन‌पोतसिंहनृपते रागानुसन्धायकान् ।
स्मारं स्मारममुं क्षणं शशिमुखी श्वासैर्विवर्णाधरा
नान्यत् कांक्षति कर्म कर्तुमुचितं नास्ते न शेते क्वचित् ।।438।।

जैसे–

कामदेव की पूजन विधि वाले उद्यान में सञ्चारियों (सेवकों) से घिरे हुए अनपोत शिङ्गराज के राग के अनुसन्धान करने वाले व्यापारों को उस समय याद करके श्वासों के कारण विवर्ण ओठों वाली चन्द्रमुखी (रमणी) उचित काम को भी नहीं करना चाहती, न स्थिर रहती है और न सो पाती हैं।।438।।

अथ गुणकीर्तनम्–

सौन्दर्यादिगुणश्लाघा गुणकीर्तनमत्र तु ।

रोमाञ्चो गद्गदा वाणी भावमन्थरवीक्षणम् ।।१८७।।
तत्सङ्गचिन्तनं संख्या गण्डस्वेदादयोऽपि च ।

(४) गुणकीर्तन- सौन्दर्यादि गुणों की प्रशंसा गुणकीर्तन कहलाता है। इसमें रोमाञ्च, गद्गद् वाणी, भाव के कारण जड़ दृष्टि, उसके साथ के विषय में चिन्तन, गणना (गिनना), गालों पर पसीना आना इत्यादि अनुभाव होते हैं।।१८७-१८८पू.।।

यथा-

किं कामेन किमिन्दुना सुरभिणा किं वा जयन्तेन किं
मद्भाग्यादनपोतसिंहनृपते रूपं मया वीक्षितम् ।
अन्यास्तत्परिचर्ययेव सुदृशो हन्तेति रोमाञ्चिता
स्विद्यद्गण्डतलं सगद्गदपदं साख्याति सख्याः पुरः ।।439।।

जैसे-

नायिका अपनी सखी के सामने (अनपोत सिंह राजा के गुणों का वर्णन करते हुए कह रही है-) मुझे कामदेव से क्या? चन्द्रमा से क्या प्रयोजन अथवा इस सुगन्ध से क्या अथवा (इन्द्रपुत्र) जयन्त से क्या प्रयोजन? सौभाग्य से मेरे द्वारा अनपोत सिंह राजा का सौन्दर्य देख लिया गया अन्य (नायिकाएँ) तो उस सुन्दर दृष्टिवाले (राजा) की सेवा करने से रोमाञ्चित होती है किन्तु खेद है कि (उन्हें देख कर ही) मेरे गालों पर पसीना हो गया और पैर लड़खडड़ाने लगे।।439।।

अथोद्वेगः-

मनसः कम्प उद्वेगः कथितस्तत्र विक्रियाः ।।१८८।।
चिन्ता सन्तापनिःश्वासौ द्वेषः शय्यासनादिषु ।
स्तम्भचिन्ताश्रुवैवर्ण्यदीनत्वादय ईरिताः ।।१८९।।

(५) उद्वेग- मन का काँप जाना उद्वेग कहा जाता है। उसमें चिन्ता, सन्ताप, निःश्वास, शय्या और आसन इत्यादि के प्रति द्वेष, जड़ता, चिन्ता के कारण निष्प्रभता, दीनता इत्यादि विक्रियाएँ कही गयी है।।१८८उ.-१८९।।

यथा-

सेवाया अनपोतसिंहनृपतेर्यातेषु राजस्वथो
तत्स्त्रीभिश्चिरयत्सु तेषु विलसच्चेतः समुद्भ्रान्तिभिः ।
निःश्वासग्लपिताधरं परिपतत्संरुद्धबाष्पोदयं
कामं स्निग्धसखीजने विरचिता दीना दृशोर्वृत्तयः ।।440।।

जैसे-

अनपोत सिंह राजा की सेवा के पश्चात् जाने वाले (अन्य) उन (सेवा करने वाले)

राजाओं के विलम्ब करने पर ललित चित्त से इधर-उधर टहलती हुई उनकी स्त्रियों के निःश्वास के द्वारा ओठ मलिन कर दिया, रुके हुए आसुओं को गिराने लगी और प्रियसखियों के प्रति नेत्रों की वृत्तियों (देखने की क्रिया) को दीन बना दिया (दीनता पूर्वक देखने लगी)।।440।।

अथ विलापः-

इह मे दिक्पथं प्रापदिहातिष्ठदिहास च ।।१९०।।
इत्यादिवाक्यविन्यासो विलापः इति कीर्तितः ।
तत्र चेष्टास्तु कुत्रापि गमनं क्वचिदीक्षणम् ।।१९१।।
क्वचित् क्वचिदवस्थानं क्वचिच्च भ्रमणादयः।

(६) विलाप- यहाँ मेरी आँखों के सामने रहो, यहाँ खड़े रहो, और यहाँ बैठो- इत्यादि वाक्य-विन्यास विलाप कहलाता है। उसमें कहीं जाना, कहीं देखना कहीं- कहीं रुक जाना, और कहीं घूमना इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।१९०-१९२पू.।।

यथा-

अत्राभूदनपोतसिंहनृपतिस्तत्राहमस्मिन् लता-
कुञ्जे सादरवीक्षिताहमिह मामानन्दयत् स स्मितैः ।
इत्यालापवती विलोकितमपि व्यालोकते सम्भ्रमाद्
यातं याति च सत्वरा तरुतलं लीलात एकाकिनी ।।441।।

जैसे-

यहाँ अनपोतसिंह राजा रहें, मैं वहाँ रहूँ, इस लतामण्डप में मैं सादर (उनके) द्वारा देखी जाऊँ, वे मुस्कान-पूर्वक मुझे आनन्दित करें, इस प्रकार आलाप करती हुई वह (नायिका) देखी गयी वस्तु को भी सम्भ्रम (आदर) से देखती है और पहले गये हुए वृक्ष के नीचे लीला- पूर्वक अकेली ही जाती है।।441।।

अथोन्मादः-

सर्वास्ववस्थासु सर्वत्र तन्मनस्कया सदा ।।१९२।।
अतस्मिंस्तदिति भ्रान्तिरुन्मादो विरहोद्भवः ।
तत्र चेष्टास्तु विज्ञेया द्वेषः स्वेष्टेऽपि वस्तुनि ।।१९३।।
दीर्घं मुहुश्च निःश्वासो निर्निमेषतया स्थितिः ।
निर्निमित्तध्यानगानमौनादयोऽपि च ।।१९४।।

(७) उन्माद- सभी अवस्थाओं में सभी जगह सदा तन्मनस्क होने के कारण 'यहीं वह है' विरह से उत्पन्न इस प्रकार का भ्रम उन्माद कहलाता है। उसमें अपनी इष्ट वस्तु के प्रति भी द्वेष, बार-बार दीर्घ निःश्वास, अपलक देखने के कारण स्थिर रहना, निरर्थक ध्यान-गान- मौन इत्यादि चेष्टाएँ होती है।।१९२उ.-१९४।।

यथा–

औत्सुक्यादनपोतसिंहनृपतेराकारमालिख्य सा
निर्वर्ण्यायमसौ मम प्रिय इति प्रेमाभियोगभ्रमात् ।
आशूत्थाय ततोऽपसृत्य तरसा किञ्चिद्विवृत्तानना-
सासूयं सदरस्मितं सचकितं साकाङ्क्षमालोकते ।।442।।

जैसे–

उस (नायिका) ने उत्सुकता के कारण अनपोत सिंह राजा के आकार (आकृति) को चित्रित करके प्रेम की घनिष्टता के कारण यही 'मेरा प्रियतम है' इस प्रकार (तन्मनस्क होने से) चुम्बन करके पुनः शीघ्रता से उठ कर और वहाँ से हट कर तेजी से मुख को घुमा कर आनन्दपूर्वक मुस्कराकर सचकित अभिलाषपूर्वक देखने लगी।।442।।

अथ व्याधिः–

अभीष्टसङ्गमाभावाद् व्याधिः सन्तापलक्षणा ।
अत्र सन्तापनिःश्वासौ शीतवस्तुनिषेवणम् ।।१९५।।
जीवितोपेक्षणं मोहो मुमूर्षा धृतिवर्जनम् ।
यत्र क्वचिच्च पतनं स्रस्ताक्षत्वादयोऽपि च ।।१९६।।

(८) **व्याधि–** अभीष्ट के सङ्गम न होने के कारण सन्ताप होना व्याधि कहलाता है। इसमें सन्ताप, निःश्वास, शीतल वस्तुओं का सेवन, जीवन की उपेक्षा, मोह (मूर्च्छा), मरने की इच्छा, धैय-त्याग (अधीर होना) जहाँ कहीं भी गिर जाना, आखें नीची करना इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।१९५-१९६।।

यथा–

सङ्गत्यानपोतसिंहनृपतेरासक्तचेतोगतेः
कन्दर्पानलदीपितानि सुतनोरङ्गानि पर्याकुलाः ।
व्यालिम्पन् हिमबालुकापरिचितैः श्रीगन्धसारद्रवैः
सख्यःपाणितलानि पत्रमरुता निर्वापयन्त्योर्मुहुः ।।443।।

जैसे–

जब आसक्त चित्त वाले अनपोत सिंह राजा के संसर्ग से सुष्ठु शरीर वाली (नायिका) की कामाग्नि से उत्तेजित अङ्ग व्याकुल हो गये तब सखियों ने हिमबालुका से, इकट्ठा किये गये चन्दन के द्रवों से और पत्तों की हवा से हथेलियों को बार-बार लेप किया।।443।।

अथ जडता–

इदमिष्टमनिष्टं तदिति वेत्ति न किञ्चन ।

नोत्तरं भाषते प्रश्ने नेक्षते न शृणोति च ।।१९७।।
यत्र ध्यायति निःसंज्ञं जडता सा प्रकीर्तिता ।
अत्र स्पर्शानभिज्ञत्वं वैवर्ण्यं शिथिलाङ्गता ।।१८९।।
अकाण्डहुङ्कृतिः स्तम्भो निःश्वासकृशादयः।

(९) जड़ता– यह इष्ट है वह अनिष्ट है— यह कुछ भी नहीं जानती, प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर नहीं देती, न देखती है, न सुनती है, न ध्यान देती है, इस प्रकार की चेतना शून्यता जड़ता कही जाती है। इसमें स्पर्श को न जानना, निष्प्रभता, अङ्गों में शिथिलता, बिना कारण हुंकार, स्तम्भ, निःश्वास, कृशता इत्यादि अनुभाव होते हैं।।१९७-१९९पू.।।

यथा–

सङ्कल्पैरनपोतसिंहनृपतौ संरूढमूलाङ्कुरै-
राक्रान्ता तनुताङ्गता स्मरशरैः शातेव शातोदरी ।
अस्मन्मूलमिदं तनुत्वमिति किं लज्जालसे लोचने
प्राप्ते पक्षपुटावृत्तिं रतिपतेस्तत्केतनं जृम्भताम् ।।444।।

जैसे–

अनपोत सिंह राजा के प्रति रोमाञ्चित कामना-शक्ति के कारण कामदेव के बाणों से पराभूत (विद्ध) पतली (सौन्दर्य युक्त) कमर वाली (रमणी) ने दुर्बलता (अथवा सौन्दर्ययुक्तता) के समान तनुता (कृशता) को प्राप्त किया। यह तनुता (कृशता) मेरे कारण है क्या? इस प्रकार लज्जा से अलसाए हुए नेत्रों के पलकों के प्रत्यावर्तित होने पर कामदेव का निवास-स्थान वह (प्रत्यावर्तन) प्रफुल्लित होवे।।444।।

अथ मरणम्–

तैस्तैः कृतैः प्रतीकारैर्यदि न स्यात् समागमः ।।१९९।।
ततः स्यान्मरणोद्वेगः कामाग्नेस्तत्र विक्रियाः
लीलाशुकचकोरादिन्यासः स्निग्धसखीकरे ।।२००।।
कलकण्ठकलालापः श्रुतिर्मन्दानिलादरः ।
ज्योत्स्नाप्रवेशमाकन्दमञ्जरीवीक्षणादयः ।।२०१।।

(१०) मृत्ति (मरण)– उन (विभिन्न) किये गये सभी उपायों से यदि समागम न हो तो उससे कामग्नि का जो उद्वेग होता है वह मरण (मृत्ति) कहलाता है। (अपनी) प्रिय सहेली के हाथ पर लीला (विनोद) पूर्वक शुक चकोर इत्यादि का रखना, मधुर कण्ठ वाली (कोयल) की आवाज का सुनना, मन्द वायु के प्रति सम्मान जताना, चाँदनी में जाना, आम (अथवा अशोक) की मञ्जरीको देखना इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।१९९उ.-२०१।।

यथा–

तन्वी दर्शनसंज्ञयैव लतिकामापृच्छ्य संवर्धितां
न्यासीकृत्य च सारिकां परिजने स्निग्धे समं वीणया ।
ज्योत्स्नामाविशती विशारदसखीवर्गेण कर्णान्तिकं
सिक्तेन ह्यनपोतसिंहनृपतेर्नाम्ना पुनर्जीविता ।।445।।

जैसे–

तन्वी देखने मात्र से ही बढ़ी हुई लतिका से पूछ कर, स्नेही परिजन के पास सारिका को धरोहर रख कर, वीणा के साथ चाँदनी में प्रवेश करती हुई पुनः स्नेही सखियों के द्वारा (अपने) कानों के समीप में अनपोत सिंह राजा के नाम (को सुन लेने) से पुनर्जीवित हो गयी।।445।।

अत्र केचिदभिलाषात् पूर्वतनमिच्छोत्कण्ठालक्षणमवस्थाद्वयमङ्गी-कृत्य द्वादशावस्था इति वर्णयन्ति। तत्रेच्छा पुनरभिलाषान्न भिद्यते, तत्प्राप्तित्वरा-लक्षणोत्कण्ठा तु चिन्तनान्नातिरिच्यत इत्युदासितम्।

अवस्थाओं की संख्या विषयक मतभेद–

इन (अवस्थाओं की संख्या के विषय) में (शारदातनय इत्यादि) कुछ लोग पहली अवस्था अभिलाष से पूर्व में इच्छा और उत्कण्ठा- इन दो और अवस्थाओं को स्वीकार करके बारह अवस्थाओं का वर्णन करते हैं।

शिङ्गभूपाल का मत–

इन दोनों अवस्थाओं में से इच्छा अभिलाष से भिन्न नहीं है। उस इच्छा से प्राप्त उत्कण्ठा भी चिन्ता से भिन्न नहीं है। इसलिए मैं इनके प्रति उदासीन हूँ।

अथ मानविप्रलम्भः–

मुहुः कृतो मेति मेति प्रतिषेधार्थवीप्सया ।
ईप्सितालिङ्गनादीनां निरोधो मान उच्यते ।।२०२।।

(अ) मानविप्रलम्भ– (अभीष्ट आलिङ्गन इत्यादि चेष्टाओं के)प्रतिषेध की इच्छा से बार-बार कहा गया 'मत, मत' इस प्रकार से निरोध करना मान कहलाता है।।२०२।।

सोऽयं सहेतुनिर्हेतुभेदाद् द्वेधा

मान के प्रकार– वह मान सहेतुज तथा निर्हेतुज भेद से दो प्रकार का होता है।।२०३पू.।।

अत्र हेतुजः ।
ईर्ष्यया सम्भवेदीर्ष्या त्वन्यासङ्गिनि वल्लभे ।।२०३।।

असहिष्णुत्वमेव स्याद् दृष्टेरनुमितेः श्रुतेः ।
ईर्ष्यामाने तु निर्वेदावहित्थाग्लानिदीनता ।।२०४।।
चिन्ता चापल्यजडतामौनाद्या व्यभिचारिणः ।

हेतुज मान– प्रियतम के दूसरी (नायिका) के प्रति आसक्त होने पर उत्पन्न ईर्ष्या हेतुज मान कहलाती है। इसमें देखने, अनुमान करने अथवा सुनने से असहिष्णुता होती है। ईर्ष्यामान में निर्वेद, अवहित्था, ग्लानि, दीनता, चिन्ता, चपलता, जड़ता, मौन इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं।।२०२उ.-२०५पू.।।

तत्र दर्शनेर्ष्यामानो यथा (गाथासप्तशत्याम् ९.३२)–

पच्चक्खमन्तुकारअ! जइ चुम्बसि मह इमे हदकवोले ।
ता मज्झ पिअसहीए विसेसओ कीस तण्णाओ ।।446।।
(प्रत्यक्षमन्तुकारक! यदि चुम्बसि ममेमौ हतकपोलौ।
ततो मम प्रियसख्या विशेषकः कस्मादार्द्रः।।)

दर्शन से ईर्ष्यामान जैसे (गाथा सप्तशती ९.३२ में)–

हे प्रत्यक्ष अपराधी (प्रत्यक्ष अपराध करने वाले)! जब तुम मेरे इन अभागे गालों को चूमते हो तो मेरी प्रियसखी का गाल कैसे गीला करोगे।।446।।

विमर्श– तात्पर्य यह है कि ईर्ष्यामान हेतुज होता है और वह अपने प्रिय को अन्य नायिका के प्रति अनुरक्त हुआ जानकर ईर्ष्या के कारण होता है। यह केवल स्त्रियों में होता है। प्रिय की किसी अन्य नायिका में आसक्ति को या तो प्रत्यक्ष रूप से देख कर या अनुमान करके अथवा विश्वस्त सखी द्वारा सुन कर यह मान होता है।

अत्र नायिकाकपोलचुम्बनव्याजेन तत्प्रतिबिम्बितां सखीं चुम्बति नायके तदीर्ष्यया जनितो नायिकामानः प्रत्यक्षमन्तुकारकेत्यनया सम्बुद्ध्या व्यज्यते।

यहाँ नायिका के गालों के चूमने के बहाने से उसमें प्रतिबिम्बित (उस नायिका की) सहेली का चुम्बन लेते हुए (नायक) के प्रति उसकी ईर्ष्या से उत्पन्न नायिका का मान 'प्रत्यक्ष अपराध करने वाले' इस सम्बोधन से व्यक्त हो रहा है।

भोगाङ्कगोत्रस्खलनोत्स्वप्नैरनुमितिस्त्रिधा ।।२०५।।

अनुमिति के भेद– अनुमिति तीन प्रकार की होती है- (१) भोगाङ्क से २. गोत्रस्खलन से ३. उत्स्वप्न से ।।२०५।।

विमर्श– १. सम्भोग के चिह्नों को देखकर अनुमान के द्वारा अन्यासक्ति -समझने से भोगाङ्क अनुमिति होता है। २. गोत्रस्खलन (बातचीत में भूल से अन्य नायिका का नाम ले लेने) से अनुमान द्वारा अन्यासक्ति जान लेने के कारण उत्पन्न मान गोत्रस्खलन मान होता

है। ३. स्वप्न की बड़बड़ाहट में अन्य नायिका का नाम आ जाने के कारण अनुमान से अन्यासक्ति से जाने ज्ञान के कारण से उत्पन्न मान उत्स्वप्न ईर्ष्यामान होता है।

भोगाङ्कानुमितिजनितेर्ष्यामानो यथा ममैव–

को दोषो मणिमालिका यदि भवेत् कण्ठे न किं शङ्करो
धत्ते भूषणमर्धचन्द्रममलं चन्द्रे न किं कालिमा ।
तत्साध्वेव कृतं भणितिभिर्नैवापराद्धं त्वया
भाग्यं द्रष्टुमनीशद्धं यैव भवतः कान्तापराद्ध्मया ।।447।।

अत्र मणिमालिकादिलक्षणमदनमुद्रानुमितिप्रियापराधजनितेर्ष्यासम्भूतो मानः तत्साध्वेव कृतमित्यादिभिर्विपरीतलक्षणोक्तिभिर्व्यज्यते।

भोगाङ्कानुमिति से ईर्ष्या मान जैसे (शिङ्गभूपाल का ही)–

यदि मणिमालिका (मणिनिर्मित माला) गले में नहीं है तो इसमें दोष ही क्या है (अर्थात् कोई दोष नहीं) क्या शंकर जी निर्मल अर्धचन्द्र को धारण नहीं करते (अर्थात् अवश्य धारण करते हैं) और उस चन्द्रमा में क्या कालिमा (दाग) नहीं है (अर्थात् अवश्य है) तो आपने (परनायिका से सम्भोग करके) अच्छा ही किया है, अच्छा ही किया है (यह तो अपराध मेरा है कि) मैं आप के इस सौभाग्य को देखने के लिए सक्षम नहीं हूँ। इस प्रकार (वक्रोकि से) कहने वाली नायिका के प्रति मैने (परस्त्री-गमन का) अपराध किया है।।447।।

यहाँ मणिमालिकादि लक्षणभूत (दूसरी नायिका से समागम रूप) काम के चिह्न से अनुमान किये गये प्रिय के अपराध से उत्पन्न ईर्ष्या से प्रादुर्भूत मान 'तो तुमने अच्छा ही किया इत्यादि विपरीत उक्ति द्वारा व्यञ्जित होता है।

गोत्रस्खलनेन यथा ममैव–

नामव्यतिक्रमनिमित्तरुषारुणेन
नेत्राञ्चलेन मयि ताडनमाचरन्त्याः ।
मा मा स्पृशेति परुषाक्षरवादरम्यं
मन्ये तदेव मुखपङ्कजमायताक्ष्याः ।।448।।

गोत्रस्खलन आनुमिति से ईर्ष्या जैसे (शिङ्गभूपाल का ही)–

(मेरे द्वारा) नाम लेने में व्यक्तिक्रम हो जाने के कारण क्रोध से लाल नेत्रों की कोरों (किनारों) से मेरे प्रति पीटने का आचरण करती हुई विशाल नेत्रों वाली प्रियतमा के 'मत मत छुओ' इस प्रकार कठोर वचनों के कहने से रमणीय मुखकमल को मैं वैसा ही मानता हूँ।।448।।

उत्स्वप्नेर्ष्यया यथा (रघुवंशे १९/२२)–

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम् ।

प्रच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्तनैः ।।449।।

उत्स्वप्नानुमिति से ईर्ष्यामान जैसे (रघुवंश १९/२२ में)-

जब स्त्रियाँ देखती थीं कि राजा अग्निवर्ण स्वप्न में बड़बड़ाते हुए दूसरी स्त्री की बड़ाई कर रहा है तब वे स्त्रियाँ बिना बोले ही बिस्तर से कोने में आँसू गिराती हुई क्रोध से कङ्गन को तोड़ कर उनसे पीठ फेर कर सो जाती थी, इस प्रकार उससे रुठ कर उसका तिरस्कार करती थीं।।449।।

श्रुतिः प्रियापराधस्य श्रुतिराप्तसखीमुखात् ।

श्रुति- प्रिय सखी के मुख से प्रिय के (अन्य नायिका के समागम वाले) अपराध का सुनना श्रुति कहलाता है।।२०६पू.।।

श्रुतिजनितेर्ष्यया मानो यथा- (अमरुशतके.५)

अङ्गुल्याग्रनखेन बाष्पसलिलं विक्षिप्य विक्षिप्य किं
तूष्णीं रोदिषि कोपने! बहुतरं फूत्कृत्य रोदिष्यसि ।
यस्यास्ते पिशुनोपदेशवचनैर्मानेऽतिभूमिं गते
निर्विण्णोऽनुनयं प्रति प्रियतमो मध्यस्थतामेष्यति ।।450।।

श्रवण से ईष्यामान जैसे (अमरुशतक ५ में)-

रे कोपने ! इस प्रकार अङ्गुलियों के नख से आसुओं की बूँदों को टुकड़े-टुकड़े करती हुई तुम धीरे-धीरे क्यों रो रही हो। यदि दुष्टों के वचनों को मान कर क्रोध करने में अति कर दिया तो तुम्हारा प्रिय इससे इतना खिन्न हो जाएगा कि फिर तुम्हारे अनुनय की भी उपेक्षा कर बैठेगा जिससे तुम्हें चिल्ला चिल्लाकर बहुत अधिक रोना पडेगा।।450।।

अत्र पिशुनसखीजनोपदेशजनितो मानो बाष्पादिभिर्व्यज्यते।

यहाँ दुष्ट सखियों के द्वारा कहे गये उपदेश को सुनने से उत्पन्न मान आँसू आदि गिरने से व्यञ्जित होता है।

कारणाभावसम्भूतो निर्हेतुः स्यात् द्वयोरपि ।।२०६।।
अवहित्थादयस्तत्र विज्ञेया व्यभिचारिणः ।

निर्हेतुजमान- कारण न होने पर भी (बिना कारण) दोनों (नायक और नायिका) का मान निर्हेतुज मान कहलाता है। इसमें अवहित्था (आन्तरिकभावों को छिपाना) इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं।।२०६उ.-२०७पू.।।

विमर्श- निर्हेतुक मान नायक और नायिका दोनों में होता है। इसमें कभी नायकनायिका से और कभी नायिका नायक से बिना कारण मान कर बैठती है।

तत्र पुरुषस्य यथा (अमरुशतके ७)-

लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो

निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः ।
परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्जरशुकै-
स्तवावस्था चेयं विसृज कठिने! मानमधुना ।।451।।

पुरुष का निर्हेतुक मान जैसे (अमरुशतक ७ में)-

हे कठिने (कठोर हृदय वाली)! देखों, बाहर तुम्हारा प्रियतम सिर झुकाए हुए धरती कुरेद रहा है। सखियाँ बिना खाये पड़ी है, और रोते-रोते उनकी आँखे सूज गयी है, पिंजरें के तोते ने हँसना पढ़ना सब कुछ छोड़ दिया है, (यह सब देख सुन कर भी) अभी तक तुम्हारी यह दशा है, इसलिए अब भी मान छोड़ दो।।451।।

यथा वा (गाथासप्तशत्याम् १/२०)-

अलिअपसुत्तअ निमीलिअक्खः देहि!सुहअ! मज्झ ओआसं ।
गण्डपरिचुम्बणपुलइअङ्ग! ण पुणो चिराइस्सं ।।452।।
(अलीकप्रसुप्तनिमीलिताक्ष! देहि सुभग! ममावकाशम् ।
गण्डपरिचुम्बनपुलकिताङ्ग! न पुनश्चिरयिष्यामि।।)

अथवा जैसे (गाथासप्तशती १.२०में)-

(नायक के प्रति नायिका की उक्ति है-) कपोल पर चुम्बन करते ही रोमाञ्च से भरते हुए तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग को देखकर मैं समझ गयी कि तुम झूठमूठ आँखे झेप कर बीच पलङ्ग पर पड़ गये हो- जैसे सो ही रहे हो। हटो, मुझे जगह दो अब देर नहीं करूँगी।।452।।

अत्रालीकस्वापाक्षिनिमीलनादिसूचितपुरुषमानकारणस्य प्रसाधनगृहव्यापार-निमित्तविलम्बस्याभासत्वम्।

यहाँ झूठमूठ के सोने का बहाने और आँखों के झेपने इत्यादि से सूचित होने वाले पुरुष का मान अकारण है- (क्योंकि इससे) प्रसाधन (शृङ्गार) गृह में (सजावट) के कार्य के कारण विलम्ब होना आभासित होता है।

स्त्रिया यथा (कुमारसम्भवे ८.५१)-

मुञ्च कोपमनिमित्तकोपने! सन्ध्यया प्रणमितोऽस्मि नान्यया ।
किं न वेत्सि सहधर्मचारिणं चक्रवाकसमवृत्तिमात्मनः ।।453।।

अत्र पार्वतीमानकारणस्य परमेश्वरकृतसन्ध्याप्रणामस्याभासत्वम् ।

स्त्री का निर्हेतुक मान जैसे (कुमारसम्भव ८/५१ में)-

हे अकारण क्रोध करने वाली प्रिये! अब क्रोध छोड़ दो सन्ध्या से मैं प्रणत हूँ और किसी से नहीं, मैं तो सदा तुम्हारे साथ ही धर्म का आचरण करने वाला हूँ, क्या तुम मुझे चकवे के समान सच्चा प्रेमी नहीं समझती।।453।।

यहाँ पार्वती के मान के कारण का परमेश्वर (शङ्करजी) द्वारा किये गये सन्ध्या के प्रणाम का आभासत्व होता है।

ननु 'अलिअपसुत्ते' इत्यत्र गण्डपरिचुम्बनस्य निषेधो न श्रूयते। मुञ्च कोपमित्यत्र च निषेधो न श्रूयते। कथमस्य निर्हेतुकस्य मान (मेति वा नेति वा निषेधाभावेऽपि) मानत्वमिति चेत्। पूर्वस्मिन्नुदाहरणे: मेति मेति वाचिकनिषेधस्योपलक्षणत्वादप्रतिक्रियया चुम्बनाङ्गीकारलक्षणो निषेधो विद्यत एव। अपरत्र पुनरनुत्तरदानादिनानङ्गीकारलक्षणो निषेधो विद्यत एव।

शङ्का– 'अलिअप्पसुत्ते' यहाँ गालों के चुम्बन का निषेध नहीं सुनायी पड़ता है और 'कोप छोड़ो' यहाँ भी निषेध नहीं है फिर इसकी निर्हेतुक की 'मत-मत अथवा नहीं-नहीं'- इस निषेध के अभाव होने पर भी मान कैसे है। **समाधान–** पूर्ववर्ती उदाहरणों में 'मत-मत' यह वाचिक निषेध की उपलक्षणता होने से अप्रतिक्रिया के कारण चुम्बन के स्वीकार रूपी निषेध है ही। दूसरी ओर फिर उत्तर देने इत्यादि के द्वारा (चुम्बन का) अस्वीकार रूप निषेध है।

ननु निर्हेतुकस्य मानस्य भावकौटिल्यरूपमानस्य च को भेद इति चेद् उच्यते। निर्हेतुकमाने तु कोपव्याजेन चुम्बनादिविलम्बात् प्रेमपरीक्षणं फलं, भाव–कौटिल्यमाने तु चुम्बनाद्यविलम्बः फलमिति स्पष्ट एव तयोर्भेदः।

निर्हेतुज और भावकौटिल्य मान में भेद–

फिर निर्हेतुक मान और भावकौटिल्य रूप मान में क्या भेद है, इस विषय में कहते हैं- निर्हेतुक मान में तो कोप के बहाने से चुम्बन इत्यादि में विलम्ब के कारण प्रेम का परीक्षण फल है किन्तु भावकौटिल्य मान में चुम्बनादि में शीघ्रता फल है। इस प्रकार दोनों का भेद स्पष्ट है।

निर्हेतुकं स्वयं शाम्येत् स्वयं ग्राहस्मितादिभिः ।।२०७।।

निर्हेतुक मान की शान्ति– निर्हेतुक मान स्वयं पकड़ने, मुस्कराने इत्यादि से अपने आप शान्त हो जाता है।।207।।

यथा (कन्दर्पसम्भवे)–

इदं किमार्येण कृतं ममाङ्के
मुग्धे किमेतद् रचितं त्वयेति ।
तयोः क्रियान्तेष्वनुभोगचिह्नैः
स्मितोत्तरोऽभूत् कुहनाविरोधः ।।454।।

अत्र लक्ष्मीनारायणयोरन्योन्यमानस्य परस्परकृतभोगचिह्नकारणभासजनितस्य स्मितोत्तरतया स्वयं शान्तिरवगम्यते।

जैसे (कन्दर्पसम्भव में)–

(लक्ष्मी कहती है- हे विष्णु) आप के द्वारा मेरे अङ्क पर यह क्या कर दिया गया। (विष्णु कहते हैं-) हे मुग्धे (लक्ष्मी) तुम्हारे द्वारा मुझे यह क्या कर दिया गया? इस प्रकार (सम्भोग) क्रिया के अन्त में उन दोनों (लक्ष्मी और विष्णु) का मुस्कान भरा उत्तर-प्रत्युत्तर (दोनों के) मान का विरोधी (मान को शान्त करने वाला) हो गया।।454।।

यहाँ लक्ष्मी और नारायण के परस्पर एक दूसरे पर किये गये सम्भोग-कालिक चिह्न के आभास से उत्पन्न परस्पर (अकारण) मान मुस्कराहट पूर्वक (एक-दूसरे के) उत्तर-प्रत्युत्तर से स्वयं शान्त हो गया।

हेतुजस्तु शमं याति यथायोग्यं प्रकल्पितैः ।
साम्ना भेदेन दानेन नत्युपेक्षारसान्तरैः ।।२०८।।

हेतुजमान की शान्ति– हेतुजमान यथोचित किये गये साम, भेद, दान, प्रणति, उपेक्षा और रसान्तर से शान्त होता है।।२०८।।

तत्र प्रियोक्तिकथनं यत्तु तत्साम गीयते ।

१. साम– प्रिय बात कहना साम कहलाता है।।२०९पू.।।

तेन यथा ममैव–

अनन्यसाधारण एष दासः
किमन्यया चेतसि शङ्कयेति ।
प्रिये वदत्यादृतया कयाचि-
न्नाज्ञायि मानोऽपि सखीजनोऽपि ।।455।।

जैसे शिङ्गभूपाल का ही–

अनन्य (दूसरी रमणी में अनासक्त) साधारण (भोला भाला) यह तुम्हारा सेवक है, तुम अन्य (रमणी में अनुरक्त होने की) शङ्का क्यों कर रही हो- आदरपूर्वक प्रियतम के इस प्रकार कहने पर किसी (नायिका) के द्वारा (अपने) मान और (अपनी) सहेलियों का ध्यान ही नहीं रहा।।455।।

अत्र प्रियसामोक्तिजनिता कस्याचिन्मानशान्तिः सखीजनमानाद्यज्ञानसूचितैरालिङ्ग-नादिभिर्व्यज्यते।

यहाँ प्रियतम के प्रिय कथन से किसी नायिका के मान की शान्ति हो गयी यह सखियों के सम्मान इत्यादि न करने से सूचित आलिङ्गन इत्यादि द्वारा व्यञ्जित होता है।

सङ्ख्यादिभिरुपालम्भप्रयोगो भेद उच्यते ।।२०९।।

२. भेद– संख्या इत्यादि के द्वारा (गिन-गिन कर) उलाहना देना भेद कहलाता

है।।२०९उ.।।

यथा–

विहायैतन्मानव्यसनमनयोस्तन्वि! कुचयो-
र्विर्धेयस्ते प्रेयान् यदि वयमनुलङ्घ्यवचसः ।
सखीभ्यः स्निग्धाभ्यो गिरमिति निशम्येणनयना
निवापाम्भो दत्ते नयनसलिलैर्मानसुहृदे ।।456।।

जैसे– 'हे पतले शरीर वाली! मानहानि को छोड़ कर वचन का उल्लङ्घन करने वाली हम लोग तुम्हारे इन स्तनों पर जो तुम्हें प्रिय हो उस कार्य को सम्पादित करें' इस प्रकार (अपनी) प्रिय सखियों द्वारा कही गयी बात को सुनकर हरिणी के समान चञ्चल नेत्रों वाली (रमणी) ने मान करने वाले प्रियतम के लिए अपने नेत्रों के जल (आसुओं) से जल की भेंट प्रदान किया।।456।।

व्याजेन भूषणादीनां प्रदानं दानमुच्यते ।

३. दान– बहाने से (बहाना बनाकर) आभूषण इत्यादि का देना दान कहलाता है।।२१०पू.।।

यथा (शिशुपाल वधे ७.५५)–

मुहुरुपहसितामिवालिनादै-
र्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम् ।
वसतिमुपगतेन धूर्त! तस्याः
शठ! कलिरेव महांस्त्वयाद्य दत्तः ।।457।।

जैसे शिशुपालवध ७/५५ में)–

भ्रमरों के नादों (ध्वनियों) से बार-बार हँसी गयी इस कलिका (पुष्प की कली) को हमारे लिए क्यों दे रहे हो? हे शठ! उस (सपत्नी) के घर ठहरे हुए तुम आज यह बड़ी भारी कलि (कल-झगड़ा) दे दी है। अत एव एक कलि (कलह) के दे चुकने पर पुनः दूसरी कली (पुष्प की कली) देना व्यर्थ है)।।457।।

नतिःपादप्रणामः स्सात्

तया यथा–

पिशुनवचनरोषात् किञ्चिदाकुञ्चिभ्रूः
प्रणमति निजनाथे पादपर्यन्तपीठम् ।
युवतिरलमपाङ्गस्यन्दिनो बाष्पबिन्दू-
ननयत कुचयुग्मे निर्गुणां हारवल्लीम् ।।458।।

नति– पैरों में प्रणाम करना नति कहलाता है।

नति से मानशान्ति जैसे-

संकेत वाली बात से (उत्पन्न) रोष के कारण प्रियतम के अपने पैरों पर गिरकर प्रणाम करने पर भी भौंहों को कुछ टेढ़ी की हुई यौवना (नायिका) ने आँखों के कोरों से बहने वाले आँसुओं की बूँदों से दोनों स्तनों पर धागे से रहित हार की लड़ियाँ बना दिया।।458।।

तूष्णीं स्थितिरुपेक्षणम् ।।२१०।।

५. उपेक्षा- शान्त (मौन) रहना उपेक्षा कहलाता है।।२१०उ.।।

यथा (गाथासप्तशत्याम् २.८)-

चरणोआसणिसण्णस्स तस्स हमारिमो अणाणवन्तस्स ।
पाअङ्ग द्वावेष्ठिअकेसदिढा अड्ढणसुहोल्लं ।।459।।
(चरणावकाशनिषण्णस्य तस्य स्मरामोऽनालपतः।
पादाङ्गुष्ठावेष्ठितकेशदृढाकर्षणमुखार्द्राम् ।।)

अत्र शय्यायां चरणावकाशस्थितिमौनादिभिरुपेक्षा। तया जनिता मानस्यशान्तिश्चरणाङ्गुष्ठावेष्ठितकेशदृढाकर्षणेन व्यज्यते।

जैसे (गाथासप्तशती २.८ में)-

• (यह सखी के प्रति नायिका की उक्ति है-) हे सखी, मैं वह सुख अब तक नहीं भूलती, जब वह मेरे पैरों पर सिर रखकर पड़ा हुआ था और मैं उसके बालों को पैर के अङ्गूठे में लपेट कर खींचने लगी थी।।459।।

यहाँ शय्या पर चरणों के बीच में पड़े होने पर भी मौन इत्यादि द्वारा उपेक्षा हुई है। उस उपेक्षा से उत्पन्न मान की शान्ति पैर के अंगूठे में लपेटकर बालों के खींचने से व्यक्त हो रही है।

आकस्मिकरसादीनां कल्पना स्याद् रसान्तरम् ।

६. रसान्तरः- अकस्मात् रसादि की कल्पना करना रसान्तर कहलाता है।।२११पू.।।

यादृच्छिकं बुद्धिपूर्वमिति द्वेधा निगद्यते ।।२११।।

रसान्तर के प्रकार- यह दो प्रकार का होता है - १. यादृच्छिक २. बुद्धिपूर्व।।२११उ.।।

अनुकूलेन दैवेन कृतं यादृच्छिकं भवेत् ।

(१). यादृच्छिक- अनुकूल भाग्य के द्वारा किया गया यादृच्छिक होता है।।२१२पू.।।

तेन मानशान्तिर्यथा (काव्यादर्शेद्प्युद्धृतम्)-

मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः ।
उपकाराय दिष्ट्यैतदुदीर्णं घनगर्जितम् ।।460।।

अत्र मानप्रणोदनघनगर्जितसन्त्रासस्य प्रियप्रयत्नैर्विना दैववशेन सम्भूतत्वाद् यादृच्छिकत्वम्।

उस यादृच्छिक से मानशान्ति जैसे-

इस नायिका के मान को शान्त करने के लिए (उसके) पैरों पर गिरे हुए मेरे उपकार के लिए भाग्य से बादलों की गर्जना हो गयी।।460।।

मानशान्ति के कारणभूत घनगर्जना का भय उत्पन्न होना प्रियतम के प्रयत्न के बिना ही भाग्य से हो गया, अत: यहाँ यादृच्छिकता है।

प्रत्युत्पन्नधियां पुसां कल्पितं बुद्धिपूर्वकम् ।।२१२।।

(२). **बुद्धिपूर्व-** प्रत्युत्पन्न बुद्धि वाले मनुष्यों की कल्पना बुद्धिपूर्व कहलाती है।।२१२उ.।।

यथा (अमरुशतके ७२)-

लीलातामरसाहतोऽन्यवनितानिश्शङ्कदष्टाधरः
कश्चित् केसरदूषितेक्षण इव व्यामील्य नेत्रे स्थितः ।
मुग्धा कुड्मलिताननेन ददती वायुं स्थिरा तस्य सा
भ्रान्त्या धूर्ततयाथ सा नतिमृते तेनानिशं चुम्बिता ।।461।।

अत्र मानापनोदनस्य प्रियत्रासस्य नेत्रव्यावृतिनटनलक्षणया नायकस्य प्रत्युत्पन्नमत्या कल्पितत्वाद् बुद्धिपूर्वकत्वम्।

बुद्धिपूर्वकत्व से मानशान्ति जैसे (अमरुशतक ७२ में)-

(**सखी-सखी से कह रही है**)- किसी नायक के अधरों को किसी अन्य स्त्री ने निडर होकर काट लिया था जिसे देख कर नायिका ने उसके मुख पर नीलकमल से प्रहार कर दिया। नायक आँखे मूँद कर यों बैठ गया मानो उसकी आँखे कमल के केसर पराग से दुःख रही हो! भोली नायिका भ्रान्तिवश (नायक को दुःखी समझ जाने की भूल से) अथवा धूर्तता से (पैरों पर गिरने के बाद प्रसन्न होने की क्या आवश्यकता, अतः अच्छा मौका हाथ आया है-यह सोचकर) फूँक मारती हुई उसके सम्मुख बैठ गयी और नायक बिना चरण पर गिरे ही उसे लगातार चूमने लगा।।261।।

यहाँ मान को दूर करने वाले प्रिय के भय का नेत्र के मूँद लेने के नाटक के कारण नायक की प्रत्युत्पन्न मति का कथन होने से बुद्धिपूर्वकत्व है।

अथ प्रवासः-

पूर्वसङ्गतयोर्यूनोर्भवेद् देशान्तरादिभिः ।
चरणव्यवधानं यत् स प्रवास इतीरितः ।।२१३।।
तज्जन्यो विप्रलम्भोऽपि प्रवासत्वेन सम्मतः ।

हर्षगर्वमदव्रीडा वर्जयित्वा समीरिता: ।।२१४।।
शृङ्गारयोग्या सर्वेऽपि प्रवासे व्यभिचारिण: ।

(इ) प्रवास विप्रलम्भ- पहले मिले हुए युवकों (नायक और नायिका) के उपभोग में देशान्तर (गमन) इत्यादि के कारण व्यवधान होना प्रवास कहा जाता है। उस (प्रवास) से उत्पन्न विप्रलम्भ भी प्रवासता के रूप में माना जाता है। इस प्रवास (विप्रलम्भ) में हर्ष, गर्व तथा व्रीडा को छोड़कर (अन्य) सभी शृङ्गार के योग्य व्यभिचारी भाव होते हैं।।२१३-२१५पू.।।

कार्यतः सम्भ्रमाच्छापात् तत् त्रिधा

प्रवास के प्रकार- (क) कार्य **(ख)** सम्भ्रम और **(ग)** शाप के कारण उत्पन्न यह प्रवास विप्रलम्भ तीन प्रकार का होता है।

तत्र कार्यजः ।।२१५।।
बुद्धिपूर्वतया यूनोः सन्निधानव्यपेक्षया ।
वृत्तो वर्तिष्यमाणश्च वर्तमान इति त्रिधा ।।२१६।।

कार्यज प्रवास के भेद- बुद्धिपूर्वक अर्थात् समझ बूझ कर मिलने की आशा से कार्यज प्रवास (१) भूत (२) भविष्य और (३) वर्तमान- तीन प्रकार का होता है।।२१६।।

धर्मार्थसङ्ग्रहो बुद्धिपूर्वो व्यापारः कार्यम् ।

(क) कार्य- बुद्धिपूर्वक धर्म और अर्थ का संग्रह रूप व्यापार कार्य कहलाता है।।२१७पू.।।

तेन वृत्तो यथा (रघुवंशे ६.२३)-

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः ।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान् मन्दारशून्यानलकांश्चकार ।।462।।

उस(कार्य) से भूतकाल वाला (प्रवास विप्रलम्भ) जैसे (रघुवंश ६/२३ में)- सर्वदा यज्ञ करके इन्होंने इन्द्र को अपने यहाँ बार-बार बुलाया है जिसका फल यह हुआ है कि इन्द्राणी के पीले कपोलों पर लटकने वाले बाल शृङ्गार न होने के कारण कल्प-वृक्षों के फूलों से शून्य हो गये है। अर्थात् इन्द्र को इनके यज्ञ में आ जाने पर पति के पास न रहने से इन्द्राणी ने शृङ्गार करना छोड़ दिया है।।462।।

अत्र पुरन्दरस्य पूर्वं शचीमामन्त्र्य पश्चादध्वरप्रदेशगमनेन तयोः सन्निधानव्यपेक्षया विप्रलम्भस्य भूतपूर्वत्वम् ।

यहाँ इन्द्र के पहले इन्द्राणी को बुलाकर फिर यज्ञ में चले जाने से दोनों के मिलने की आशा से विप्रलम्भ की भूतपूर्वता है।

वर्तिष्यमाणो यथा (अमरुशतके ३०)-

भवतु विदितं व्यर्थालापैरलं प्रिय! गम्यतां
तनुरपि न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु पराङ्मुखः ।
तव यदि तथा रूढं प्रेमप्रपन्नमिमां दशां
प्रकृतितरले का नः पीडा गते हतजीविते ।।463।।

कार्य से भविष्यकाल वाला प्रवास विप्रलम्भ जैसे (अमरुशतक ३० में)-

(कोई नायिका अन्य नायिका में अनुरक्त नायक से कह रही है-) हे प्रिय, मुझे मनाने की यह सब झूठी बातें समाप्त करो, मैं सब कुछ जान गयी हूँ, अब तुम यहाँ से जाने की कृपा करो, इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, वास्तव में मेरा दैव ही मुझसे विमुख हो गया है। जब तुम्हारा उतना प्रगाढ़ प्रेम इस दशा को पहुँच गया तब तुम्हें मेरे इस निन्दनीय जीवन के चले जाने से क्या पीड़ा हो सकेगी? यह जीवन तो चञ्चल है ही, यह तो उसकी प्रकृति ही है।।463।।

वर्तमानो यथा-

यामीति प्रियपृष्टायाः प्रियायाः कण्ठलग्नयोः ।
वचो जीवितयोरासीत् पुरो निस्सरणे रणः ।।464।।

कार्य से वर्तमानकाल वाला प्रवास विप्रलम्भ जैसे-

'मैं परदेश जा रहा हूँ' इस प्रकार प्रियतम के द्वारा कही गयी प्रियतमा के गले में लगी हुई वाणी (बात) तथा जीवन धारण करने वाले प्राण में युद्ध होने लगा। क्योंकि जाने का उत्तर देने के लिए वाणी पहले निकलना चाहती थी और प्राण उससे पहले निकल जाना चाहता था।।।464।।

अथ सम्भ्रमः

आवेगः सम्भ्रमः सोऽपि नैको दिव्यादिभेदतः ।

(ख) सम्भ्रम- आवेग (बेचैनी) ही सम्भ्रम कहलाता है। वह (सम्भ्रम) भी दिव्य इत्यादि भेद से अनेक प्रकार का होता है।।२१७पू.।।

दिव्यो यथा (विक्रमोर्वशीये ४.९)-

तिष्ठेत् कोपवशात् प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति
स्वर्गायोत्पतिता भवेन्मयि पुनर्भावार्द्रमस्या मनः ।
तां हर्तुं विबुधद्विषोऽपि न च मे शक्ताः पुरोवर्तिनीं
सा चात्यन्तमगोचरं नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः ।।465।।

अत्र विप्रलम्भस्य कारणान्तरनिरासेन कोऽयं विधिरिति विधेः कारणत्वाभिप्रायेण दिव्यसम्भ्रमजनित्वं प्रतीयते।

दिव्य सम्भ्रम से प्रवास विप्रलम्भ जैसे (विक्रमोर्वशीय ४/९ में)-

वह (उर्वशी) क्रोध के कारण अपने (देवाङ्गनात्व के दिव्य) प्रभाव से छिप कर बैठ सकती है (यह शंका होती है परन्तु उसी समय उसका समाधान हो जाता है कि) किन्तु वह बहुत देर तक नाराज नहीं रहती है (फिर दूसरी शङ्का होती है कि) शायद (मुझको) छोड़कर स्वर्ग चली गयी हो (पर साथ ही उसका निवारण हो जाता है कि) उसका मन मुझ पर स्नेह से आर्द्र है (इस लिए मुझे छोड़कर स्वर्ग को नहीं जा सकती है)। तब फिर क्या कोई हरण कर ले गया । यह शङ्का होती है (उसके साथ ही उसका समाधान हो जाता है कि) मेरे सामने से असुर भी उसका अपहरण नहीं कर सकते (औरों की बात ही क्या है)। इसलिए कोई अपहरण कर ले गया हो यह भी सम्भव नहीं) फिर भी वह आँखों के सामने से ओझल हो गयी है, यह कैसी भाग्य है (कुछ समझ में नहीं आता है)।।465।।

यहाँ विप्रलम्भ का दूसरे कारणों के निराकरण से 'यह कैसा भाग्य है' इस प्रकार विधि (भाग्य) की कारणता के अभिप्राय से दिव्यसम्भ्रम की उत्पत्ति प्रतीत होती है।

अथ शापः-

शापो वैरूप्यताद्रूप्यप्रवृतेर्द्विविधो भवेत् ।।२१६।।

प्रवासः शापवैरूप्यादहल्यागौतमादिषु ।

(ग) शाप - वैरूप्य और ताद्रूप्य भेद से दो प्रकार का होता है। शाप वैरूप्य से प्रवास (विप्रलम्भ) अहिल्या-गौतम इत्यादि में हुआ है।।२१७उ.-२१८पू.।।

ताद्रूप्येण यथा (मेघदूते १/१)-

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु, वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।466।।

शापताद्रूप्य से प्रवास विप्रलम्भ जैसे (मेघदूत १/१ में)-

अपने कर्त्तव्य-पालन में असावधान (अतः) प्रिया के वियोग के कारण दुःसह और वर्षपर्यन्त भोगे जाने वाले स्वामी के शाप से शक्तिविहीन किसी यक्ष ने, सीता के स्नान करने से पवित्र जल वाले तथा घने नमेरू वृक्षों से युक्त रामगिरि (नामक पर्वत के) आश्रमों में निवास किया।।466।।

अथ करुणः-

द्वयोरेकस्य मरणे पुनरुज्जीवनावधौ ।।२१८।।
विरहः करुणोऽन्यस्य सङ्गमाशानिवर्तनात्
करुणभ्रमकरित्वात् सोऽयं करुण उच्यते ।।२१९।।

सञ्चारिणोऽनुभावश्च करुणे विप्रवासवत् ।

(ई) करुण विप्रलम्भ– दोनों (नायक-नायिका) में से एक के मरने पर पुन: समागम की आशा उत्पन्न होने तथा करुण के आवर्तन होने से उसके पुनजीर्वित होने के समय में करुण विरह होता है, उसे करुण विप्रलम्भ कहते हैं। करुण में प्रवास विप्रलम्भ के समान (ग्लानि, विषाद, जड़ता स्मृति इत्यादि) सञ्चारी भाव तथा अनुभाव होते हैं।।२१८उ.-२२०पू.।।

यथा (कुमारसम्भवे ४.४६)–

अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं व्यसनकृशा प्रतिपालयां-बभूव ।
शशिन इव दिवातनस्य रेखा किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम् ।।467।।

अत्राकाशसरस्वतीप्रत्ययेन रतेर्विप्रलम्भः कृशत्वाद्यनुमितैर्ग्लान्यादिभिर्व्यभिचारिभिर्भावैः प्रोषितसमयपरिपालनादिभिरनुभावैर्व्यज्यते।

जैसे (कुमारसम्भव ४/४६ में)–

इसके पश्चात् पति-वियोग के दुःख से दुर्बल शरीर वाली रति शाप की अवधि समाप्त होने की उसी प्रकार प्रतीक्षा करने लगी, जिस प्रकार दिन में निकली हुई तथा किरणों के अभाव से धुँधली और तेजहीन चन्द्रमा की कला रात के आने की प्रतीक्षा करती है।।467।।

यहाँ आकाशवाणी के विश्वास से रति का विप्रलम्भ कृशता इत्यादि के द्वारा अनुमान किया गया, ग्लानि इत्यादि व्यभिचारी भावों से, प्रोषित (दूर रहने) के समय तक की प्रतीक्षा करने (अथवा भलीभाँति अपने को सँभाले रखने) इत्यादि अनुभावों से व्यञ्जित होता है।

अत्र केचिदाहुः– करुणो नाम विप्रलम्भशृङ्गारो नास्ति। उभयालम्बनस्य तस्यैकत्रैवासम्भवात् । यत्र त्वेकस्यापाये सति तदितरगता प्रलापादयो भवन्ति, स शोकान्न भिद्यत इति। तदयुक्तम् । यत्र पुनरूज्जीवनेन सम्भोगाभावः, तत्र सत्यं शोक एव। यत्र सोऽस्ति, तत्र विप्रलम्भः एव। अन्यथा सम्भोगशिरस्केऽन्यतरापायलक्षणे वैरूप्यशापप्रवासेऽपि शोकरूपत्वापत्तेः।

करुण विप्रलम्भ की स्थापना– इस विषय में (धनिक, धनञ्जय आदि) कुछ लोग कहते है- ''करुण नाम का विप्रलम्भ शृङ्गार नहीं होता। क्योंकि एक पात्र की मृत्यु हो जाने पर दोनों आलम्बनों (नायिका और नायक) का एकत्र होना सम्भव नहीं है। एक के मर जाने पर उस (नायक और नायिका) में से दूसरे के द्वारा जो प्रलाप इत्यादि किये जाते हैं, वे शोक से अलग नहीं है (अत: इसे करुण रस समझना चाहिए)'' यह कथन अयुक्त (अनुचित) है क्योकिं जहाँ पुन: जीवित न होने से समागम का अभाव (समागम न होना) होता है, वहाँ तो सचमुच शोक ही होता है और जहाँ वह (पुनर्जीवित होने पर समागम) होता है वहाँ विप्रलम्भ ही होता है। अन्यथा सम्भोग के चरम सीमा पर पहुच जाने पर वैरूप्य शाप वाले प्रवास में

भी शोक की प्राप्ति हो जाएगी।

नन्वेयं प्रवासकरुणयोः को भेदः इति चेद्, उच्यते। शरीरेण देशान्तरगमने प्रवासः, प्राणैर्देशान्तरगमने करुण इति।

शङ्का– यदि ऐसी बात है तो फिर प्रवास विप्रलम्भ और करुण में क्या भेद है? **समाधान–** इस विषय में कहते हैं- शरीर के द्वारा देशान्तर जानें पर प्रवास विप्रलम्भ होता है और प्राण के देशान्तर जाने पर करुण होता है?

अत्र केचिद् अयोगशब्दस्य पूर्वानुरागवाचकत्वं विप्रयोगशब्दस्य मानादिवाचकत्वं चाभिप्रेत्यायोगो विप्रयोगश्चेति सम्भोगादन्यस्य शृङ्गारस्य विभागमाहुः। विप्रलम्भपदस्य प्रयोगे च कारणं ब्रुवते कृत्वा सङ्केतमप्राप्तेऽध्यक्रमे नायकेनान्यकान्तानुसरणे च विप्रलम्भशब्दस्य मुख्यप्रयोगः, वञ्चनार्थत्वात्। तत्सामान्याभिधायित्वे तु विप्रलम्भशब्दस्योपचरितत्वापत्तेरिति, तदयुक्तम्। चतुर्विधे विप्रलम्भे वञ्चनारूपस्यार्थस्य मुख्यतः एव सिद्धेः।

तथा च श्रीभोजः (सरस्वतीकण्ठाभरणे ५/६३,६५,६६)–

विप्रलम्भस्य यदि वा वञ्चनामात्रवाचिनः।
विना समासैश्चतुराश्चतुरोऽर्थान् प्रयुञ्जते।।
पूर्वानुरागो विविधो वञ्चनव्रीडितादिभिः।
माने विरुद्धं तत्प्राहुः पुनरीर्ष्यायितादिभिः।।
व्याविद्धं दीर्घकालत्वात् प्रवासे तत्प्रतीयते।
विनिषिद्धं तु करुणे करुणत्वेन गीयते।।

इस सन्दर्भ में (धनञ्जय इत्यादि) कुछ लोग अयोग शब्द का पूर्वानुराग वाचकता और विप्रयोग शब्द का मान इत्यादि वाचकत्व मानकर सम्भोग शृङ्गार से अन्य (वियोग) शृङ्गार के अयोग और विप्रयोग ये दो भेद करते हैं। विप्रलम्भ शब्द के प्रयोग में वे ये कारण देते हैं (१) सङ्केत देकर नायक का न आना (२) नायक द्वारा आने की अवधि का अतिक्रमण करना और (३) नायक का अन्य नायिका में आसक्त हो जाना। किन्तु इन तीनों में वञ्चना के कारण विप्रलम्भ शब्द का मुख्य (अर्थ में) प्रयोग होता है।(अन्यत्र सर्वत्र तो लक्षणा करनी पड़ती है)। अत एव सामान्य रूप से अभिधान होने में विप्रलम्भ शब्द का उपचारिता (लक्षणा अर्थ के प्रयोग) के कारण आपत्ति होती है। (अतः अयोग और वियोग) का प्रयोग करना चाहिए।) किन्तु (धनञ्जय का यह मत) उपयुक्त नहीं है क्योंकि (पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण-इन) चारों प्रकार के विप्रलम्भ (शृङ्गार) में वञ्चना रूप अर्थ के मुख्य रूप से सिद्ध होने के कारण विप्रलम्भ शब्द का प्रयोग सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

जैसा कि श्रीभोज ने (सरस्वतीकण्ठाभरण में) कहा है–

यदि वञ्चना मात्र के वाचक विप्रलम्भ के चारों भेद बिना समास के (वञ्चना के) चार

अर्थों से युक्त होते हैं तो पुर्वानुराग (विप्रलम्भ) में व्रीड़ा इत्यादि से युक्त विविध प्रकार की वञ्चना होती है।, प्रवास (विप्रलम्भ) में दीर्घ काल के कारण व्याविद्ध (व्यवधान अथवा अवरोध से युक्त) वञ्चना प्रतीत होती है और करुण (विप्रलम्भ) में करुणता के कारण विशेष रूप से निषिद्ध की गयी वञ्चना कही गयी है।।

अथ सम्भोगः-

स्पर्शनालिङ्गनादीनामानुकूल्यान्निषेवणम् ।।२२०।।
घटते यत्र यूनोर्यत् स सम्भोगश्चतुर्विधः ।

(ख) सम्भोग शृङ्गार- युवकों (नायक और नायिका) की अनुकूलता के कारण स्पर्श, आलिङ्गन इत्यादि का उपभोग जिसमें घटित होता है, वह सम्भोग शृङ्गार कहलाता है। वह चार प्रकार का होता है।।२२०उ.-२२१पू.।।

***अत्रायमर्थः-** प्रागसङ्गतयोः सङ्गतवियुक्तयोर्वा नायिकानायकयोः परस्परसमागमे प्रागुत्पन्ना तदानीन्तना वा रतिः प्रेप्सितालिङ्गनादीनां प्राप्तौ सत्यामुपजायमानैर्हर्षादिभिः संसृज्यमाना चन्द्रोदयादिभिरुद्दीपिता स्मितादिभिर्व्यज्यमाना प्राप्तप्रकर्षा सम्भोगशृङ्गार इत्याख्यायते। स च वक्ष्यमाणक्रमेण चतुर्विधः।*

यहाँ इसका यह अर्थ है- पहले न मिले हुए अथवा मिलकर विलग हुए नायिका और नायक का परस्पर मिलन होने पर पूर्व में उत्पन्न अथवा उस समय वाली रति, अभीष्ट आलिङ्गन इत्यादि के प्राप्त होने पर उत्पन्न हर्ष इत्यादि के द्वारा संसृज्यमान (वृद्धि को प्राप्त) चन्द्रोदय इत्यादि द्वारा उद्दीपित, स्मित (मुस्कान) इत्यादि द्वारा अभिव्यञ्जित (होकर) प्रकर्ष को प्राप्त होने पर सम्भोग शृङ्गार कहलाती है। वह नीचे कहे गये क्रम के अनुसार चार प्रकार की होती है।

संक्षिप्त सङ्कीर्णः सम्पन्नतरः समृद्धिमानिति ते ।।२२१।।
पूर्वानुरागमानप्रवासकरुणानुसम्भवा क्रमतः ।

सम्भोग शृङ्गार के भेद- सम्भोग शृङ्गार चार प्रकार का होता है- १. संक्षिप्त २. सङ्कीर्ण ३. सम्पन्नतर और ४. समृद्धिमान् । ये क्रमशः पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण से उत्पन्न होते है।।२२१उ.-२२२प.।।

तत्र संक्षिप्तः-

युवानो यत्र संक्षिप्तान् साध्वसव्रीडितादिभिः ।।२२२।।
उपचारान् निषेवन्ते स संक्षिप्त इतीरितः ।

(१) संक्षिप्त सम्भोगशृङ्गार- युवक (नायिका और नायक) भय और लज्जा इत्यादि के कारण जिसमें शिष्टता का सेवन (आचरण) करते हैं, वह संक्षिप्त सम्भोग शृङ्गार कहलाता है।।२२२उ.-२२३पू.।।

पुरुषगतसाध्वसेन संक्षिप्तो यथा (सरस्वतीकण्ठाभरणेऽप्युद्धृतम्)-

लीलाए तुलिअसेले सक्खदु वो राहिआइ थणपट्टे ।
हरिणो पुढमसमाअमसद्धसव सवेविलो हत्थो ।।468।।
(लीलया तुलितशैलो रक्षतु वो राधायाः स्तनपृष्ठे।
हरेः प्रथमसमागमसाध्वसवशवेपनशीलो हस्तः ।।)

पुरुषगत भय से संक्षिप्त शृङ्गार जैसे-

लीलापूर्वक पर्वत को उठाने वाला कृष्ण का वह हाथ जो राधिका के स्तनों के ऊपरी भाग पर प्रथम समागम के समय भय के कारण काँप रहा है, तुम लोगों की रक्षा करे।।468।।

यहाँ प्रथम समागम के समय के भय के कारण राधा के स्तनों पर रखा गया हाथ काँप रहा है। अतः यहाँ भय के कारण संक्षिप्त सम्भोग शृङ्गार है।

स्त्रीगतसाध्वसात् संक्षिप्तो यथा (कुमारसम्भवे ८/८)-

चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं सन्नहस्तमदयोपगूहने ।
श्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम् ।।469।।

स्त्रीगत भय से जैसे (कुमारसम्भव ८/८ में)-

जब शङ्कर जी चुम्बन लेना चाहते थे तो वह (पार्वती) अपना अधर ही नहीं देती थी और जब वे उन्हें कसकर अपनी छाती से लगा लेना चाहते थे तो वह धीरे-धीरे स्तनों पर हाथ रख कर उस आलिङ्गन को प्रगाढ़ नहीं होने देती थीं (अर्थात् स्वयं भी उनको अपनी छाती से चिपका नहीं लेती थीं)। इस प्रकार सहयोगविहीन तथा कष्टसाध्य नववधू का सम्भोग भी शङ्कर जी को बहुत प्रिय लग रहा था।।469।।

अथ सङ्कीर्णः-

सङ्कीर्णस्तुभवेद्यत्र व्यलीकस्मरणादिभिः ।।२२३।।
सङ्कीर्णमानःसम्भोगः किञ्चित् पुष्पेषुपेशलः ।

(२) सङ्कीर्ण सम्भोग शृङ्गार- व्यर्थ स्मरण इत्यादि के द्वारा जहाँ (सम्भोग) सङ्कीर्ण (अत्यधिक विस्तार को प्राप्त) हो जाता है, वह कामक्रीडा-कुशल (सम्भोग) (सङ्कीर्णमान) सङ्कीर्ण सम्भोग कहलाता है।।२२३उ.-२२४पू।।

यथा-

विमर्दरम्याणि समत्सराणि विजेभिरे तैर्मिथुनै रतानि ।
वैयात्यविस्रम्भविकल्पतानि मानावसादाद् विशदीकृतानि ।।470।।

जैसे- मसलने से रमणीय, मत्सर (तृप्तता) से रहित, निर्लज्जता और विश्वास के कारण अनिश्चित तथा मान और सुस्ती के कारण विस्तार किया गया, सुरत उन जोड़ों (युवक और

युवतियों) द्वारा प्रारम्भ किया (वृद्धि को प्राप्त कराया) गया।।470।।

अथ सम्पन्नः-

भयव्यलीकस्मरणाद्यभावात् प्राप्तवैभवः ।।२२४।।
प्रोषितागतयोर्यूनोर्भोगः सम्पन्न ईरितः ।

(३) सम्पन्न सम्भोग शृङ्गार- भय, व्यर्थ स्मरण इत्यादि के अभाव (भयादि से रहितता) के कारण समृद्धि को प्राप्त प्रोषित (विदेश से लौटे हुए) युवकों (नायक और नायिका) का भोग सम्पन्न सम्भोग कहलाता है।।२२४उ.-२२५पू.।।

यथा (सरस्वतीकण्ठाभरणेऽप्युद्धृतम्)-

दन्तक्खअं कवोले कअग्गहुव्वेल्लिओ अ धम्मिल्लो ।
परिचुम्बिआ अ दिट्ठी पिआअमं सूचइ वहुए ।।471।।
(दन्तक्षतः कपोले कचग्रहोद्वेलितश्च धम्मिल्लः ।
परिचुम्बिता च दृष्टिः प्रियागमं सूचयति वध्वाः।।)

अत्राप्रथमसम्भोगत्वाद् भयाभावः दन्तक्षतादिष्वङ्गार्पणानुकूल्येन व्यलीकस्मराद्यभावः, ताभ्यामुपरूढवैभवः सम्पद्यते।

जैसे-

गालों पर दाँत से कटे होने, बालों को पकड़ने से बिखरी हुई जूड़ा और इधर-उधर चञ्चल आँखें वधू के प्रियतम के (विदेश से) आने को सूचित करती हैं।।471।।

यहाँ प्रथम बार का सम्भोग न होने (अर्थात् पहले भी सम्भोग हुए होने) के कारण भय का अभाव है। दन्तक्षत इत्यादि में अङ्गों को समर्पित करने की अनुकूलता के कारण व्यर्थ के स्मरण इत्यादि का अभाव है। उन (अभावों) के कारण समृद्धि को प्राप्त सम्भोग हो रहा है।

अथ समृद्धिमान्-

पुनरुज्जीवतां भोगसमृद्धिः कियती भवेत् ।।२२५।।
शिवाभ्यामेव विज्ञेयमित्ययं समृद्धिमान् ।

(४) समृद्धिमान् सम्भोगशृङ्गार- पुनर्जीवित होने पर मिले हुए नायक—नायिका की) कितनी सम्भोग समृद्धि होती है यह शिव और पार्वती ही जानते हैं, ऐसा अपूर्व सम्भोग समृद्धिमान् सम्भोग कहलाता है।।२२५उ.—२२६पू.।।

यथा (अभिनन्दस्य कादम्बरीकथासारे ८.८०)-

चन्द्रापीडं सा च जग्राह कण्ठे
कण्ठस्थानं जीवितं च प्रपेदे ।

तेनापूर्वा सा समुल्लासलक्ष्मी-
मिन्दुस्पृष्टं सिन्धुलेखेव भेजे ।।472।।

जैसे (अभिनन्द के कादम्बरी कथासार में ८.८०)-

चन्द्रापीड को उस (कादम्बरी) ने गले से लगा लिया जैसे गले में प्राण प्राप्त हो गया हो। उससे पूर्व उस (चन्द्रापीड) ने उसी प्रकार आनन्द रूपी लक्ष्मी को प्राप्त किया जैसे चन्द्रमा के स्पर्श से सागर की लहरें प्राप्त करती हैं।।472।।

यथा वा (कर्पूरमञ्जर्याम् १.२)-

अकलिअपरिरम्भविब्भमाई अजणिअचुम्बण डम्बराइ दूरं ।
अघडिअघणताडणाइ णिच्चं णमह अणङ्गरहीण मोहजाइं ।।473।।
(अकलितपरिरम्भविभ्रमाण्यजनित चुम्बनाडम्बराणि दूरम् ।
अघटित घनताडनानि नित्यं नमतानङ्गरत्योमोहनानि।।)

अत्र पुनरुज्जीवितेन कामेन सह रत्याः रतेर्बाह्योपचारोपेक्षयैव तत्फलरूपसुख-प्राप्तिकथनात् सम्भोगः समृद्ध्यते।

अथवा जैसे (कर्पूरमञ्जरी १.२ में)-

दर्शकगण आलिङ्गन चेष्टा से रहित, चुम्बन के आडम्बर से शून्य और अंग-विशेषों के कठिन ताडन से रहित काम और रति की सुरत क्रीडाओं को निरन्तर नमस्कार करें, अथवा उनका रसास्वाद करें।।473।।

यहाँ पुनर्जीवित कामदेव के साथ रति की बाह्योपचार की उपेक्षा से ही उसके परिणामरूप सुखप्राप्ति का कथन होने से सम्भोग समृद्धि को प्राप्त करता है।

अथ हास्यम् –

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।।२२६।।
हासः सदस्यरस्यत्वं नीतो हास्य इतीर्यते ।
तत्रालस्यग्लानिनिद्राबोधाद्या व्यभिचारिणः ।।२२७।।

२. हास्य रस– अपने अनुकूल विभावों, अनुभावों तथा व्यभिचारी भावों द्वारा सभा के लोगों (दर्शकों) में रसत्व को प्राप्त हास (नामक स्थायी भाव) हास्य (रस) कहलाता है। उस (हास्य रस) में आलस्य, ग्लानि, निद्रा, बोध इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं।।२२६उ.-२२७।।

एष द्वेधा भवेदात्मपरस्थितिविभागतः ।

हास्य रस के भेद– अपनी परिस्थिति (आश्रय) के विभाग (भेद) से यह दो प्रकार का होता है- १. आत्मस्थ और २. परस्थ।।२२८पू.।।

आत्मस्थस्तु यदा स्वस्य विकारैर्हसितः स्वयम् ।।२२८।।

१. आत्मस्थ हास्य रस– अपने ही विकारों से स्वयं हँसना आत्मस्थ हास्य (रस) कहलाता है॥२२८उ.॥

यथा बालरामायणे(२.२)–

भिङ्गिरिटिः– (आत्मानं निर्वर्ण्य सोपहासम्) अहो! त्रिभुवनाधिपतेरनुचरस्य महार्हवेषता।

कौपीनाच्छादने वल्कलमक्षसूत्रं जटाच्छटाः ।
रुद्राङ्कुशस्त्रिपुण्ड्रं च वेषो भिङ्गिरिटेरियम् ।।474।।

अत्र भिङ्गिरिटिः स्ववेषवैकृतेन स्वयमात्मानं हसति ।

जैसे (बालरामायण २.२ में)–

भिङ्गिरिटि– (अपने को देखकर हँसते हुए) अहो! त्रिभुवन-नायक (शङ्करजी) के अनुचर का यह बहुमूल्य वेष है-

कौपीन ही पहनने का वस्त्र है, वल्कल, रुद्राक्षमाला, जटाएँ, त्रिशूल और त्रिपुण्ड यही भृङ्गरिटि का वेष है।। 474।।

यहाँ भृङ्गिरटि अपने वेष-विकार से स्वयं हँसता है।

परस्थस्तु परप्राप्तैरेतैर्हसति चेत् परम् ।

२. परस्थ हास्य रस– दूसरे व्यक्ति के प्राप्त विकार से यदि (उस विकृत व्यक्ति से) अन्य (व्यक्ति हँसता है तो वह परस्थ हास्य (रस) कहलाता है॥२२९पू.॥

यथा (शिशुपालवधे ५/७)–

त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणो-
स्तावत्खरः प्राखरमुल्ललयाञ्चकार।
यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्ब-
विस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात ।।475।।

परस्थ हास्य रस जैसे (शिशुपालवध ५/७ में)–

हथिनी से डरा हुआ तथा सब लोगों को हँसाने वाला गधा तब तक उछलता रहा जब तक सरके हुए (उछलने से बन्धन के ढीला पड़ने के कारण नियत स्थान को छोड़े हुए) आसन (पीठ पर कसे हुए जीन या कम्बल आदि) से वस्त्रहीन नितम्बों वाली अन्तः पुर की दासी वहीं गिर पड़ी।।475।।

प्रकृतिवशात् स च षोढा स्मितहसिते विहसितावहसिते च।।२२९ ।।
अपहसितातिहसितके ज्येष्ठादीनां कमाद् द्वे द्वे।

स्वभाववश हास्य रस के भेद– स्वभाव के कारण वह छः प्रकार का होता है-

१. स्मित २. हसित ३. विहसित ४. अवहसित ५. अपहसित और ६. अतिहसित॥२२९उ.-२३०पू.॥

स्मितं चालक्ष्यदशनं दिक्कपोलविकासकृत् ॥२३०॥

१. स्मित– स्मित हास्य उसे कहते है जिसमें नेत्र और गाल कुछ खिले हुए हों और दाँत न दिखलायी पड़े॥२३०उ.॥

यथा (कुवलयावल्याम् २.१५)–

उत्फुल्लगण्डमण्डलमुल्लसितदृगन्तसूचिताकूतम् ।
नमितं तया मुखाम्बुजमुन्नमितं रङ्गसाम्राज्यम् ॥476॥

अत्र गण्डमण्डलविकासदृगन्तोल्लासाभ्यां नायिकायाः स्मितं व्यज्यते।

स्मित जैसे (कुवयलयावती २.१५)–

खिले हुए कपोलों वाला तथा प्रफुल्लित आखों के कोरों से सूचित प्रयोजन वाला तथा उस नायिका द्वारा नीचे झुकाया गया सुखकमल रङ्गशाला के लोगों को ऊँचा उठा दिया॥476॥

यहाँ गण्डमण्डल (गालों) विकसित हो जाने (खिल जाने) और नेत्रों के कोरों के उल्लसित (प्रफुल्लित) हो जाने के कारण नायिका का मुस्कराना व्यञ्जित होता है।

तदेव लक्ष्यदशनशिखरं हसितं भवेत् ।

२. हसित– वही स्मित (हास्य) हसित कहलाता है जब उसमें दाँत कुछ दिखलायी पड़ने लगे॥२३०पू.॥

यथा (मालविकाग्निमित्रे २.१०)–

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिदभिव्यक्तदशनशोभि मुखम् ।
असमग्रकेसरमुछ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम् ॥477॥

अत्र किञ्चिदभिव्यक्तदशनत्वादिदं हसितम् ।

जैसे (मालविकाग्निमित्र २/१० में) –

आज मेरी आँखों को विशाल नेत्रों वाली प्रिया के मुस्कराते हुए उस मुख का दर्शन मिल गया है जिसमें कुछ-कुछ दाँत दिखलाई पड़ रहे थे और जो उस खिलते हुए कमल के समान जान पड़ता है, जिसके केसर पूर्णरूप से न दिखायी दे रहे हो॥477॥

यहाँ दाँतों के कुछ-कुछ दिखलायी पड़ने के कारण हसित है।

तदेव कुञ्चितापाङ्गगण्डं मधुरनिस्वनम् ॥२३१॥
कालोचितं सानुरागमुक्तं विहसितं भवेत् ।

३. विहसित– वही हसित (हास्य) विहसित कहलाता है जब उसमें नेत्रों के कोर और गाल थोड़ा सिकुड़ जाय, समयानुसार अनुराग प्रकट होता हो और मधुर ध्वनि सुनायी

पड़े॥२३१उ.-२३२पू.॥

यथा–

सविधेऽपि मय्यपश्यति शिशुजनचेष्टाविलोकनव्याजात् ।
हसितं स्मरामि तस्याः सस्वनमाकुञ्चितापाङ्गम् ।।478।।

जैसे–

समीप से मेरे द्वारा देखे जाने पर उस (नायिका की) शिशुओं की चेष्टाओं को देखने के बहाने से कुछ मधुर ध्वनि वाले तथा सिकुड़े हुए आँखों के कोरों वाले हसित को मैं याद कर रहा हूँ।।478।।

फुल्लनासापुटं यत् स्यान्निकुञ्चितशिरोंऽसकम् ।।२३२।।
जिह्मावलोकिनयनं तच्चावहसितं मतम् ।

४. अवहसित– जिसमें नासापुट फूल जाय, शिर और कन्धे सिकुड़ जाय आँखों से तिरछे देखा जाय-वह अवहसित हास होता है॥२३२उ.-२३३पू.॥

यथा–

खर्वाटधम्मिल्लभरं करेण
संस्पृष्टमात्रं पतितं विलोक्य ।
निकुञ्चितांसं कुटिलेक्षणान्तं
फुल्लाग्रनासं हसितं सखीभिः ।।479।।

जैसे,

हाथ से छूते (स्पर्श करते) ही गिर जाने वाले गञ्जें के बालों को देख कर (नायिका) कन्धों को सिकोड़ कर, आँखों की कोरों को टेढ़ा करके और नाक के अगले भाग को फूला कर सखियों के साथ हँसने लगी।।479।।

कम्पिताङ्गं साश्रुनेत्रं तच्चापहसितं भवेत् ।।२३३।।

५. अपहसित– वह अवहसित हास अपहसित कहलाता है जब उसमें अङ्ग काँपने लगे और नेत्रों में आँसू बहने लगे॥२३३उ.॥

यथा–

समं पुत्रप्रेम्णा करटयुगलं चुम्बितमनो
गजास्ये कृष्टास्ये निबिडमिलदन्योन्यवदनम् ।
आपायात्पायाद् वः प्रमथमिथुनं वीक्ष्य तदिदं
हसन् क्रीडानृत्तश्लथचलिततुन्दः स च शिशुः ।।480।।

जैसे-

पुत्र के प्रेम के समान 'प्रेम' के कारण दोनों कपोलों का चुम्बन करने की इच्छा वाले अत एव गणेश के मुख को खींचने पर गाढ़ आलिङ्गन मुख वाले प्रमथ दम्पती (शिव का पति-पत्नी वाला गण) को देख कर हँसते हुए और क्रीडानृत्य के कारण शिथिल तथा हिलते हुए उदर वाले वे बालक (गणेश) अनिष्ट से तुम लोगों की रक्षा करें।।480।।

करोपगूढपार्श्वं यदुद्धतायतनिस्वनम् ।
बाष्पाकुलाक्षयुगलं तच्चातिहसितं भवेत् ।।२३४।।

६. अतिहसित- जिस में पसलियाँ हाथों में छिप जाय, बहुत देर तक ऊँची आवाज हो और दोनों आँखे आँसू से भर जॉय, वह हास्य उपहसित होता है।।२३४।।

यथा (शिशुपालवधे १५.३९)-

इति वाचमुद्धतमुदीर्य सपदि सह वेणुदारिणा ।
सोढरिपुबलभरोऽसहनः स जहास दत्तकरतालमुच्चकैः ।।481।।

जैसे (शिशुपालवध १५-३९ में)-

शत्रुओं के पराक्रम को सहने वाला एवं (श्रीकृष्ण के युधिष्ठिरकृत सत्कार को) नहीं सहन करता हुआ शिशुपाल इस प्रकार निष्ठुर वंचन कह कर तत्काल नरकात्मज के साथ ताल ठोक कर उच्च स्वर से अट्टहास किया।।481।।

अथ वीरः-

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।
नीतः सदस्यरस्यत्वमुत्साहो वीर उच्यते ।।२३५।।

३. वीर रस- स्वानुकूल विभावों, अनुभावों तथा व्यभिचारीभावों द्वारा सभा के लोगों (दर्शकों) में रसता को प्राप्त उत्साह (नामक स्थायी भाव) वीर रस कहलाता है।।२३५।।

एष त्रिधा समासेन दानयुद्धदयोद्भवाः ।

वीर रस के भेद- यह (वीर रस) संक्षेप में दान, युद्ध और दया से उत्पन्न क्रमशः तीन प्रकार का कहा गया है- १.दानवीर २. युद्धवीर और ३. दयावीर।।२३६पू.।।

दानवीरे धृतिर्हर्षो मत्याद्या व्यभिचारिणः ।।२३६।।
स्मितपूर्वाभिलाषित्वं स्मितपूर्वं च वीक्षितम् ।
प्रसादे बहुदातृत्वं तद्वद्वाचानुमोदितम् ।।२३७।।
गुणागुणविचाराद्यस्त्वनुभावाः समीरिताः ।

१. दानवीर- दानवीर में धृति, हर्ष, मति इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं। स्मितपूर्वक अभिलाषत्व, स्मितपूर्वक देखना, प्रसन्न होने पर बहुत देना, वाणी द्वारा उसका

अनुमोदन गुण और दोष का विचार इत्यादि अनुभाव कहे गये हैं॥२३६-२३८पू.॥

यथा–

अमुष्मै चौराय प्रतिहतभिये भोजनृपतिः
परं प्रीतः प्रादादुपरितनपादद्वयकृते ।
सुवर्णानां कोटीर्दश दशनकोटिशतहरीन्
करीन्द्रानप्यष्टौ मदमुदितगुञ्जन्मधुलिहः ॥482॥

जैसे–

अत्यधिक प्रसन्न भोजराज ने इस निडर चोर के पैरों के ऊपरी भाग के लिए सुवर्णों का दस करोड़ (मुद्रा), दाँत वाले सौ करोड़ घोडों और मदमत्त गुञ्जार करते हुए भ्रमरों वाले आठ हाथियों को दिया॥४८२॥

युद्धवीरे हर्षगर्वमोदाद्या व्यभिचारिणः ॥२३८॥
असाहाय्येऽपि युद्धेच्छा समरादपलायनम् ।
भीताभयप्रदानाद्या विकारास्तत्र कीर्तिताः ॥२३९॥

२. युद्धवीर– युद्धवीर में हर्ष, गर्व, मोद इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं। उसमें असहाय (निर्बल) के प्रति भी युद्ध करने की इच्छा, युद्ध में डटे रहना, भयभीत लोगों को अभयदान देना इत्यादि विकार (अनुभाव) कहे गये हैं॥२३८पू.-२३९॥

यथा (रघुवंशे ७–५६)–

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्
दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः ।
विलोलयामास महावराहः
कलपक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ॥483॥

जैसे (रघुवंश ७/५६ में)–

जिस प्रकार प्रलय के समय वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु समुद्र के बढ़े हुए जल को चीरते हुए आगे चलते गये उसी प्रकार रथ पर बैठे हुए कवच तथा तरकस को धारण किये हुए वे अद्वितीय वीर अज अकेले ही शत्रुओं की सेना को चीरते चले जा रहे थे॥483॥

दयावीरे धृतिमतिप्रमुखा व्यभिचारिणः ।
स्वार्थप्राणव्ययेनापि विपन्नत्राणशीलता ॥२४०॥
आश्वासनोक्तयः स्थैर्यमित्याद्यास्तत्र विक्रियाः ।

३. दयावीर–

दयावीर में धृति, मति इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं। उसमें अपना धन और प्राण

त्याग कर भी दु:खी लोगों की रक्षा करना, आश्वासन भरी बात कहना, स्थिरता इत्यादि विक्रियाएँ होती है॥२४०-२४१पू.॥

यथा (नागानन्दे ४.११)-

आर्त्तं कण्ठगतप्राणं परित्यक्तं स्वबान्धवैः ।
त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः ।।484।।

जैसे (नागानन्द ४.११ में)-

अपने बन्धुओं द्वारा त्याग दिये गये तथा कण्ठगत प्राण वाले इसको यदि मैंने नहीं बचाया तो मेरे शरीरधारण से क्या लाभ।।484।।

अथाद्भुतम्-

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।।२४१।।
नीतः सदस्यरस्यत्वं विस्मयोऽद्भुततां व्रजेत् ।
अत्र धृत्यावेगजाड्यहर्षाद्या व्यभिचारिणः ।।२४२।।
चेष्टास्तु नेत्रविस्तारस्वेदाश्रुपुलकादयः ।

४. अद्भुत रस- अपने अनुकूल विभावों, अनुभाव और व्यभिचारी भावों द्वारा सभा के लोगों (दर्शकों) में रसता को प्राप्त विस्मय (नामक स्थायी भाव) अद्भुत रस कहलाता है। इसमें धृति, आवेग, जड़ता, हर्ष इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं। नेत्रों का फैलना, पसीना आना, आँसू निकलना, रोमाञ्च इत्यादि चेष्टाएँ होती है॥२४१उ.-२४३पू.॥

यथा-

सोढाहे नमतेति दूतमुखतः कार्योपदेशान्तरं
तत्तादृक् समराङ्गणेषु भुजयोर्विक्रान्तमव्याहतम् ।
भीतानां परिरक्षणं पुनरपि स्वे स्वे पदे स्थापनं
स्मारं स्मारमरातयः पुलकिता रेचल्लशिङ्गप्रभोः ।।485।।

जैसे-

अरे! (राजा शिङ्गभूपाल) है, उन 'क्षमाशील के प्रति आप लोग झुक जाइए (तुम लोग झुक, जाओ)' इस प्रकार दूत के मुख से (क्रियमाण) कार्य के उपदेश (को सुनने) के बाद रेचल्लवंशीय (राजा) शिङ्गभूपाल के शत्रु लोग; उस प्रकार के भीषण युद्धस्थलों पर (उनकी) भुजाओं के अनतिक्रमणीय पराक्रम को, (उसके द्वारा की गयी) भयभीत (शत्रुओं) की रक्षा को, पुनः (उन शत्रुओं को) उनके उनके पदों पर नियुक्त करने को बार-बार याद करके रोमाञ्चित हो जाते थे।।485।।

अत्र नायकगुणातिशयजनितो विरोधिनां विस्मयस्मृतिहर्षादिभिर्व्यभिचारिभिरुपचितः पुलकादिभिरनुभावैर्व्यज्यमानोऽद्भुतत्वमापद्यते।

यहाँ नायक के गुण की अधिकता से उत्पन्न विस्मय, स्मृति, हर्ष इत्यादि व्यभिचारी भावों द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा रोमाञ्च इत्यादि अनुभावों द्वारा व्यञ्जित अद्भुत-रसता को प्राप्त है।

अथ रौद्रः-

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।।२४३।।
क्रोधः सदस्यरस्यत्वं नीतो रौद्र इतीर्यते ।
आवेगगर्वौग्र्यामर्षमोहाद्या व्यभिचारिणः ।।२४४।।
प्रस्वेदभ्रुकुटीनेत्ररागाद्यास्तत्र विक्रियाः ।

५. रौद्ररस- स्वोचित विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव द्वारा सदस्यों (दर्शकों) में रसता को प्राप्त क्रोध (नामक स्थायी भाव) रौद्र (रस) कहलाता है। इसमें आवेग, गर्व, उग्रता, अमर्ष, मोह इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं। पसीना निकलना, भौहों को टेढ़ा करना, आँखे लाल हो जाना इत्यादि विक्रियाएँ होती हैं।।२४३उ.-२४५पू.।।

यथा करुणाकन्दले-

आत्माक्षेपक्षोभितैः पीडितोष्ठैः
प्राप्तोद्योगैर्योगपद्यादभेद्यैः ।
भिन्धिच्छिन्धिध्वनिभिर्भिल्लवर्गै-
र्दर्पान्धैर्वैरन्निरुद्धिर्निरुद्धः ।।486।।

अत्र वज्रविषयो भिल्लवर्गक्रोधः स्वात्माक्षेपादिभिरुद्दीपितो दर्पान्धपरुषवागाद्यनुमितैर्गर्वासूयादिभिः परितोषितः स्वोष्ठपीडनशत्रुनिरोधादिभिरनुभावैरभिव्यक्तो रौद्रतया निष्पद्यते।

जैसे करुणाकन्दल में-

अपने पर आक्षेप से क्षुब्ध, (क्रोध के कारण दाँतों से) होठों को दबाये हुए, परिश्रम (अथवा चेष्टा) से सम्पन्न, एक साथ मिले होने के कारण अभेदनीय, 'मारो काटो' इस प्रकार शोर करते हुए तथा घमंड से परिपूर्ण भिल्लों (जंगली जाति विशेष) के द्वारा अनिरुद्ध का पुत्र (वज्र) रोक दिया गया।।486।।

यहाँ भिल्ल समूहों का वज्रविषयक क्रोध अपने आक्षेप इत्यादि के द्वारा उछिप्त और दर्पान्ध कठोर वाक्य की उत्पत्ति इत्यादि से अनुमित गर्व, असूया इत्यादि द्वारा परिपुष्ट होता हुआ अपने ओष्ठों के दबाने, शत्रु-निरोध इत्यादि अनुभावों से अभिव्यक्त होकर रौद्रता के रूप से उत्पन्न होता है।

अथ करुणः-

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितव्यभिचारिभिः ।।२४५।।
नीतः सदस्यरस्यत्वं शोकः करुण उच्यते ।

अत्राष्टौ सात्विका जाड्यनिर्वेदग्लानिदीनता ।।२४६।।
आलस्यापस्मृतिव्याधिमोहाद्या व्यभिचारिणः ।

६. करुणरस– स्वोचित विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव के द्वारा दर्शकों में रसता को प्राप्त शोक करुण (रस) कहलाता है। इस में आठ सात्विकभाव तथा जड़ता, निर्वेद, ग्लानि, दैन्य, आलस्य, अपस्मृति, व्याधि, मोह इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं।।२४५उ.-२४७पू.।।

यथा करुणाकन्दले–

कुलस्य व्यापत्या सपदि शतधोद्दीपिततनु-
र्मुहुर्बाष्पश्वासान्मलिनमपि रागं प्रकटयन् ।
स्लथैरङ्गैः शून्यैरसकृदुपरुद्धैश्च करणै-
र्युतो धत्ते ग्लानिं करुण इव मूर्तो यदुपतिः ।।487।।

अत्र बन्धुव्यापत्तिजनितो वासुदेवस्य शोको बन्धुगुणस्मरणादिभिरुद्दीपितो मलिनत्वेन्द्रियशून्यत्वादिसूचितैर्दैन्यमोहग्लान्यादिसञ्चारिभिः प्रपञ्चितो मुहुर्बाष्पश्वास-मलिनमुखरागादिभिरनुभावैरभिव्यक्तः करुणत्वमापद्यते।

जैसे करुणाकन्दल में–

कुल (परिवार) की बर्बादी से तुरन्त सैकड़ो प्रकार से जलते हुए शरीर वाले, बार-बार आँसू निकलने और निःश्वास के कारण मलिन राग को प्रकट करते हुए शिथिल और शून्य अङ्गों के द्वारा अनेक बार रुके हुए इन्द्रियों से युक्त कृष्ण साक्षात् करुण के समान ग्लानि (शोक) को धारण करते थे।।487।।

यहाँ बन्धुओं की बर्बादी से उत्पन्न कृष्ण का शोक, बन्धुओं के गुणों के स्मरण इत्यादि द्वारा उद्दीप्त होकर मलिनता, इन्द्रिय-शून्यता इत्यादि के द्वारा सूचित तथा दैन्य, मोह, ग्लानि आदि सञ्चारिभावों से विस्तृत और बार-बार आँसू गिराने, श्वास, मलिन-मुखराग इत्यादि अनुभावों से अभिव्यक्त होकर करुणता को प्राप्त होता है।

अथ बीभत्सः–

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।।२४६।।
जुगुप्सा पोषमापन्ना बीभत्सत्वेन रस्यते ।
अत्र ग्लानिश्रमोन्मादमोहापस्मारदीनताः ।।२४८।।
विषादचापलावेगजाड्याद्या व्यभिचारिणः ।
स्वेदरोमाञ्चनासाग्राच्छादनाद्याश्च विक्रियाः ।।२४९।।

७. बीभत्सरस- स्वोचित विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों द्वारा पुष्टि को प्राप्त जुगुप्सा (नामक स्थायी भाव) बीभत्सता के रूप में रसित होता है, अतः बीभत्स रस

कहलाता है। इसमें ग्लानि, श्रम, उन्माद, मोह, अपस्मार, दीनता, विषाद, चञ्चलता, आवेग, जड़ता, इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं तथा पसीना निकलना, रोमाञ्च होना, नासाग्र का ढकना इत्यादि विक्रियाएँ होती है।।२४७उ.-२४९।।

यथा (चमत्कारचन्द्रिकायाम्)-

अंहश्शेषैरिव परिवृतो मक्षिकामण्डलीभिः
पूयक्लिन्नं व्रणमभिमृशन् वाससः खण्डकेन ।
रथ्योपान्ते द्रुतमुपसृतं सङ्कुचन्नेत्रकोणं
छन्नघ्राणं रचयति जनं दद्रुरोगी दरिद्रः ।।488।।

अत्र दद्रुरोगिविषया रथ्याजनजुगुप्सा मक्षिकापूयादिभिरुद्दीपिता त्वरोपसरणानुमितैर्विषादादिभिः पोषिता नेत्रसङ्कोचनादिभिरभिव्यक्ता बीभत्सतामाप्नोति।

जैसे (चमत्कारचन्द्रिका में)-

मानो पाप के शेष रह जाने के कारण मक्खियों के समूहों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ तथा (घाव से निकलने वाले) मवाद से गीले घाव को कपड़े से पोछता हुआ दरिद्र कोढ़ का रोगी गली के किनारे से शीघ्रता से जाने वाले और आखों की कोरों को सङ्कुचित कर लेने वाले लोगों की नासिका को बन्द करा देता है।।488।।

यहाँ कोढ़ रोगी से सम्बन्धित गली के लोगों की जुगुप्सा मक्षिका, मवाद इत्यादि द्वारा उद्दीप्त होकर शीघ्रतापूर्वक दूर जाने के अनुमान से विषाद इत्यादि द्वारा पुष्ट तथा आँखों के सङ्कोचन इत्यादि से अभिव्यक्त होकर बीभत्सता को प्राप्त होती है।

अथ भयानकः-

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।
भयं सदस्यरस्यत्वं नीत प्रोक्तो भयानकः ।।२५०।।
तत्र सन्त्रासमरणचापलावेगदीनताः ।
विषादमोहापस्मारशङ्काद्या व्यभिचारिणः ।।२५१।।
विक्रियास्त्वास्यशोषाद्याः सात्विकाश्चाश्रुवर्जिताः ।

८. भयानक रस- स्वोचित विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों के द्वारा दर्शकों में रसत्व को प्राप्त भय (नामक स्थायी भाव) भयानक रस कहलाता है। उसमें सन्त्रास, मरण, चपलता, वेग, दीनता, विषाद, मोह, अपस्मार, शङ्का इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं तथा मुख-सूखना इत्यादि विक्रियाएँ और आँसू बहने को छोड़कर अन्य सात्त्विक भाव होते हैं।।२५०-२५२पू.।।

यथा (चमत्कारचन्द्रिकायाम्)-

श्रीशिङ्गक्षितिनायकस्य रिपवो घाटीश्रुतेराकुलाः

शुष्यत्तालुपुटं स्खलत्पदतलं व्यालोकयन्तो दिशः ।
धावित्वा कथमुपेत्य तमसा गाढोपगूढो गुहा-
मन्विष्यन्ति तदन्तरे करतलस्पर्शेन गर्तान्तरम् ।।489।।

अत्र नायकं प्रति प्रतिभूपानां भयं तद्घाटीश्रवणादिनोद्दीपितं व्याकुलत्व-तालुशोषपदस्खलनाद्यनुमितैरावेगशङ्कात्रासादिभिर्व्यभिचारिभिरुपचितं पलायनगुहाप्रवेश-गर्तान्तरान्वेषादिभिरनुभूयमानं भयानकत्वेन निष्पद्यते।

जैसे (चमत्कारचन्द्रिका में)-

श्रीशिङ्गभूपाल के शत्रुगण आक्रमण को सुनकर व्याकुल हो जाते हैं। उनके तालु सूख जाते हैं और दिशाओं में देखते हुए उनके पैर लड़खड़ाने लगते हैं तथा दौड़कर किसी प्रकार अन्धकार से युक्त गुफाओं के भीतर प्रवेश करके हाथों से स्पर्श करके उसमें गड्ढे को (छिपने के लिए) खोजते हैं।।489।।

यहाँ शत्रु राजाओं का भय, उस आक्रमण को सुनने इत्यादि से उद्दीपित व्याकुलता, तालु के सूखने, पैरों के लड़खड़ाने आदि के द्वारा अनुमान से आवेग, शङ्का, भय इत्यादि व्यभिचारी भावों द्वारा वृद्धि को प्राप्त, पलायन, गुफा में प्रवेश, उसमें भी गड्ढे इत्यादि के खोजने से अनुभूत होता हुआ भयानकता को प्राप्त करता है।

केचित्समानबलयोरनयो सङ्करं विदुः ।।२५२।।
न परीक्षाक्षममिदं मतं प्रेक्षावतां भवेत् ।
तुल्यत्वे पूर्वमास्वादः कतरस्येत्यनिश्चयात् ।।२५३।।
स्पर्धापरत्वादुभयोरनास्वादप्रसङ्गतः ।
तयोरन्यतरस्यैव प्रायेणास्वादनादपि ।।२५४।।
युगपद्रसनीयत्वं नोभयोरुपपद्यते ।
एषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करो मम सम्मतः ।।२५५।।

ग्रन्थकार का तुल्य बल वाले दो रसों के साङ्कर्य-विषयक विचार- कुछ आचार्य समानबल वाले इन दो रसों का मिश्रण मानते हैं किन्तु यह मत दर्शकों को परीक्षा के लिए समर्थ नहीं होता। क्योंकि समान होने पर पहले किसका आस्वादन होता है- यह निश्चय न होने और स्पर्धाभाव होने से दोनों की प्रसङ्गवशात् एक साथ रसनीयता नहीं प्राप्त होती। इनका अङ्गाङ्गिभाव होने से (मुख्य और गौण रूप से) इन दोनों का मिश्रण होता है,ऐसा मेरा मत है।।२५२उ.-२५५।।

तथा च भारतीये (नाट्यशास्त्रे ७/११९)-

भावो वापि रसो वापि प्रवृत्तिर्वृत्तिरेव वा ।
सर्वेषां समवेतानां यस्य रूपं भवेद् बहु ।।

स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः सञ्चारिणो मताः ।।इति।।

जैसा कि भरत के नाट्यशास्त्र (७/११९) में कहा गया है–

"भाव और रस अथवा प्रवृत्ति और वृत्ति-इन समवेत (इकट्ठा हुए) सभी में जिसका अनेक रूप होता है वह स्थायी भाव रस माना जाता है, शेष सञ्चारी भाव होते हैं।

तुलाधृतत्वमुभयोर्न स्यात् प्रकरणादिना ।
कवितात्पर्यविश्रान्तेरेकत्रैवावलोकनात् ।।२५६।।

कवि के तात्पर्य (भाव) की समाप्ति का एकत्र दर्शन होने के कारण प्रकरण इत्यादि से (समान बल वाले) दोनों (रसों) की समानता तुलाधृतता (तराजू पर ठीक-ठीक तौलने) की भाँति नहीं होती है।।२५६।।

अथ परस्परविरुद्धरसप्रतिपादनम्–

उभौ शृङ्गारबीभत्सावुभौ वीरभयानकौ ।
रौद्राद्भुतावुभौ हास्यकरुणौ प्रकृतिद्विषौ ।।२५७।।
स्वभाववैरिणोरङ्गाङ्गिभावेनापि मिश्रणम् ।
विवेकिभ्यो न स्वदते गन्धगन्धकयोरिव ।।२५८।।

परस्पर विरुद्ध रस का प्रतिपादन–

शृङ्गार और बीभत्स, वीर और भयानक, रौद्र और अद्भुत तथा हास्य और करुण, ये दो-दो परस्पर स्वभाव से विरोधी रस होते है। स्वभाव से विरोधी इनका अङ्गाङ्गिभाव से मिश्रण रसिकों के लिए उसी प्रकार आस्वाद का विषय नहीं होता जिस प्रकार सुगन्ध और गन्धक के मिश्रण की गन्ध।।२५७-२५८।।

विरोधिनोऽपि सान्निध्याददतिरस्कारलक्षणम् ।
पोषणं प्रकृतस्य चेदङ्गत्वं न तावता ।।२५९।।

विरोधी (अङ्ग रस) के सान्निध्य के कारण यदि प्रकृति (अङ्गी रस) का अत्यधिक तिरस्कारपूर्ण पोषण होता है तो भी उसका उतना (यथोचित) अङ्गत्व नहीं होता।।२५९।।

यत्किञ्चिदुपकारित्वादङ्गस्याङ्गत्वमङ्गिनि ।
न सन्निधिमात्रेण चर्वणामुपकारतः ।।२६०।।

यदि अल्पमात्र उपकारिता के कारण अङ्ग (रस) का अङ्गी (रस) में अङ्गत्व होता है तो सन्निधिमात्र से अनुपकार के कारण (रस) चर्वणा को नहीं प्राप्त होता।।२६०।।

अन्यथा पानकाद्येषु शर्करादेरिवापतेत् ।
अन्तरा पतितस्यापि तृणादेरुपकारिता ।।२६१।।
तच्चर्वणाभिमाने स्यात् सतृणाभ्यवहारिता ।

अन्यथा (दो विरोधी रसों के सान्निध्य के कारण) पानक (एक पेय विशेष) इत्यादि में शर्करा के समान गिरे हुए तृण (तिनके) इत्यादि की भी उपकारिता हो जाएगी तथा (विरोधी रसों का सान्निध्य के कारण रस की) चर्वणा (रसास्वादन करने) की कामना में तृण के समान ग्रहणीय होगा।

निसर्गवैरिणोरङ्गाङ्गिभावात् स्वादाभावो यथा–

लालाजलं स्रवतु वा दशनास्थिपूर्ण-
मप्यस्तु वा रुधिरबन्धुरिताधरं वा ।
सुस्निग्धमांसकलितोज्ज्वललोचनं वा
संसारसारमिदमेव मुखं भवत्याः ।।490।।

अत्र शृङ्गाररसाङ्गतामङ्गीकृतवता बीभत्सेनाङ्गिनोऽपि विच्छेदाय मूले कुठारो व्यापारितः । एवमन्येषामपि विरोधिनामङ्गाङ्गिभावेनास्वादाभावस्तत्र तत्रोदाहरणे द्रष्टव्यः।

स्वभाव से विरोधी रसों के अङ्गाङ्गीभाव से रसास्वाद का अभाव जैसे–

मुख से लार का पानी गिरे अथवा दाँत हड्डियों से पूर्ण होवे अथवा होठ रक्त से सम्पन्न हो अथवा चिकने मांस ये युक्त चमकीली आँखें हो फिर भी आपका (रमणी का) यह मुख संसार में सर्वोत्तम है।।490।

यहाँ शृङ्गार रस की अङ्गता को स्वीकार करने वाले ने तद्विरोधी बीभत्स रस के द्वारा अङ्गागी (शृङ्गार रस) के अपकर्ष के लिए जड़ में ही कुठाराघात कर दिया है। इसी प्रकार अन्य विरोधी रसों के अङ्गाङ्गिभाव से (रसों के) आस्वाद के अभाव को जगह-जगह उदाहरण में देख लेना चाहिए।

भृत्योर्नायकस्येव निसर्गद्वेषिणोरपि ।।२६२।।
अङ्गयोरङ्गिनो वृद्धौ भवेदेकत्रसङ्गतिः ।

(अङ्गभूत) परस्पर जिस प्रकार स्वभाव से शत्रुता रखने वाले दो सेवकों की (अङ्गी) नायक (राजा) की वृद्धि (उत्कर्ष) में एकत्र सङ्गति (सानिध्य) हो जाता है उसी प्रकार दो विरोधी (अङ्ग) रसों को अङ्गी (रस) के उत्कर्ष में सङ्गति हो जाती है।।२६२पू.-२६२उ.।।

यथा (चमत्कारचन्द्रिकायाम्)–

कस्तूर्या तत्कपोलद्वयभुवि मकरीनिर्मितौ प्रस्तुतायां
निर्मित्सूनां स्ववक्षस्यतिपरिचयनात् त्वत्प्रशस्तीरुपांशु ।
वीर श्रीशिङ्गभूप! त्वदरिमहिभुजां राज्यलक्ष्मीसपत्नी-
मानव्याजेन लज्जां सपदि विदधते स्वावरोधाः प्रगल्भाः ।।490।।

अत्र प्रतिनायकगतयोः शृङ्गारबीभत्सयोर्नायकगतवीररसाङ्गत्वादेकत्र समावेशो न दोषाय।

जैसे (चमत्कार चन्द्रिका में)-

हे वीर श्रीशिङ्गभूपाल! उस (नायिका) के दोनों कपोलस्थलों पर मकरी (मादा घड़ियाल) के चिह्न को चित्रित करने में प्रस्तुत हुए और चित्रित करने के इच्छुक, आप के उन शत्रु राजाओं की जो अपने वक्षस्थल पर आप की प्रशस्ति लिखने के अभ्यास के कारण (उनके कपोलों पर उसे लिख देते थे) अन्तःपुर में रहने वाली प्रगल्भा रमणियाँ राज्य-लक्ष्मी रूपी सपत्नी के मान के बहाने से लज्जा को धारण करती थी।।491।।

यहाँ प्रतिनायक गत (परस्पर विरोधी) शृङ्गार और बीभत्स का नायकगत वीररस की अङ्गता होने के कारण एक स्थान पर समावेश दोषकारक नहीं है।

नन्वत्र शत्रूणां स्ववक्षसि नायकविरुदविलेखनेन जीवितान्तनिर्मित्सया जनिता निजजीवितजुगुप्सा स्वावरोधसान्निध्यादिभिरुद्दीपिता लज्जानुमितैर्निर्वेददैन्यविषादादि-भिरुपचिता तदनुमितैरेव मानसिककुत्सादिभिरभिव्यक्ता सती नायकगतं शरणागतरक्षालक्षणं वीरं पुष्णातीति प्रतीयते न पुनः प्रतिनायकगतस्य शृङ्गारस्यनायकवीरोपकरणत्वम्।

शंकाः -

यहाँ प्रतिनायकों (शत्रुओं) की अपने वक्षस्थल पर नायक की विरुद (घोषणा) लिखने से जीवन के अन्त होने से उत्पन्न अपने जीवित रहने के प्रति जुगुप्सा अन्तःपुर के सान्निध्य इत्यादि के द्वारा उद्दीप्त होकर लज्जा से अनुमानित निर्वेद, दैन्य, विषाद इत्यादि द्वारा वर्धित होकर उसके अनुमान के द्वारा ही मानसिक कुत्सा इत्यादि के द्वारा अभिव्यक्त होकर (वीभत्स रस) नायकगत रक्षालक्षण वाले वीर (रस) को पुष्ट करता है- ऐसा प्रतीत होता है प्रतिनायक शृङ्गार का नायकगत वीररस की उपकारिता नहीं हो सकती।

उच्यते- नायककृपाकटाक्षप्रसादस्थिरीकृतराज्यानां प्रतिनायकानां तादृशा विनोदाः सम्भवेयुः। नान्यत्रेति तस्य शृङ्गारस्य नायकवीरोपकरणत्वं विरुदधारणादिपरिचयेन राज्यलक्ष्मीसपत्नीपदप्रयोगेणाभिव्यज्यते।

समाधान- नायक की कृपाकटाक्ष को प्राप्त उसके अधीनस्थ राज्य के ही पात्रभूत प्रतिनायकों में इस प्रकार के (शृङ्गारपरक) विनोद हो सकते हैं, अन्यत्र (शत्रुओं में) नहीं, अत एव उस शृङ्गार का नायक की वीरता में उपकरणता (सहयोगिता) विरुदधारण इत्यादि परिचय के कारण राज्यलक्ष्मी का सपत्नी पद (शब्द) के प्रयोग से व्यञ्जित होती है।

अथ रसाभासः-

अङ्गेनाङ्गी रसः स्वेच्छावृत्तिवर्धितसम्पदा ।
अमात्येनाविनीतेन स्वामीवाभासतां व्रजेत् ।।२६३।।

रसाभास- स्वेच्छा वृत्ति के कारण अधिक बढ़ी हुई प्रतिष्ठा वाले अङ्ग (अमुख्य) रस के साथ अङ्गी (मुख्य) रस उसी प्रकार आभासतां को प्राप्त होता है जैसे अविनीत

(अशिष्ट) मंत्री द्वारा राजा आभासित होता है।

विमर्शः– अङ्ग रस को स्वेच्छापूर्वक अङ्गीरस से अधिक प्रतिष्ठा देना ही आभास कहलाता है। जिस प्रकार अमात्य का राजा के समान आचरण करना अनुचित है उसी प्रकार अङ्ग रस को अङ्गी रस की अपेक्षा विशेष महत्व देना अनुचित है। इस अनुचितता के कारण रस का पूर्णरूपेण परिपाक नहीं होता। अतः वहाँ रस का आभास मात्र होता है। इसी को रसाभास कहा जाता है।

तथा च भावप्रकाशिकायाम् (६/१६–२०)–

शृङ्गारो हास्यभूयिष्ठ शृङ्गाराभास ईरितः ।
हास्यो बीभत्सभूयिष्ठो हास्याभास इतीरितः ।।
वीरो भयानकप्रायो वीराभास इतीरितः ।
अद्भुतः करुणश्लेषाददद्भुताभास उच्यते ।।
रौद्रः शोकभयाश्लेषाद् रौद्राभास इतीरितः ।
करुणे हास्यभूयिष्ठः करुणाभास उच्यते ।।
बीभत्सोऽद्भुतशृङ्गारी बीभत्साभास उच्यते ।
स स्याद् भयानकाभासो रौद्रवीरोपसङ्गमात् ।।इति।।

जैसा कि भावप्रकाशिका (६/१६-२०) में (शारदातनय) ने कहा है-

शृङ्गाराभास– हास्य से अभिभूत (हास्य रस की अधिकता वाला) शृङ्गाराभास कहा गया है। **हास्याभास** उसी प्रकार बीभत्स रस से अभिभूत हास्यरस हास्याभास कहलाता है। **वीराभास–** भयानक रस से अभिभूत वीररस वीराभास कहलाता है। **अद्भुताभास–** करुण रस (की अधिकता से) श्लिष्ट अद्भुत रस अद्भुताभास कहा जाता है। **करुणाभास–** हास्य रस से अभिभूत करुण रस करुणाभास कहलाता है। **बीभत्साभास–** अद्भुत और शृङ्गार रस के मिश्रण से अभिभूत बीभत्स रस बीभत्साभास कहा जाता है। **भयानकाभास–** रौद्र और वीर रस से अभिभूत भयानक रस भयानकाभास कहलाता है।

अत्र शृङ्गाररसस्यारागादनेकरागात् तिर्यग्रागान्म्लेच्छारागाच्चेति चतुर्विधमाभासभूयस्त्वम् ।

शृङ्गाररसाभास के भेदः– यहाँ अराग, अनेक राग, तिर्यग्राग तथा म्लेच्छ राग से शृङ्गार रस का आभासत्व चार प्रकार होता है।

तत्रारागस्त्वेकत्र रागाभावः ।

(१) अराग– अराग का अर्थ है— एकत्र रागाभाव (अर्थात् नायक तथा नायिका में से एक का राग न होने पर) 'अराग' शृङ्गाराभास होता है।

तेन रसस्याभासत्वं यथा (हनुमन्नाटके १०-१२)-

स रामो नः स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखो
भवित्री रम्भोरु! त्रिदशवदनग्लानिरधुना ।
प्रथ्यास्यत्येवोच्चैर्विपदमचिरात् वानरचमू-
र्लघिष्ठेदं षष्ठाक्षरपरविलोपात् पठ पुनः ।।492।।

अत्र सीतायां रावणविषयरागात्यन्ताभावादाभासत्वम् ।

उस रागाभाव से रसाभास जैसे (हनुमन्नाटक १०-१२ में) -

(रावण सीता से कह रहा है) हे रम्भोरु सीते! अभी-अभी देवताओं का मुँह मुरझाने वाला है, क्योंकि लक्ष्मण-सहित राम मेरे सम्मुख युद्ध में ठहर नहीं सकेंगे और यह वानरी सेना बड़ी विपत्ति में फँस जायेगी।

(यह सुन कर सीता ने कहा)— अरे नीच! इस श्लोक के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय चरणों के क्रमशः सातवें 'त्रि' 'न' और 'वि' अक्षरों को हटा कर फिर पढ़ो। इन तीनों अक्षरों को हटाने से अर्थ होता है— रावण का मुँह मुरझा जायेगा क्योंकि लक्ष्मण सहित राम युद्ध में डटे रहेंगे और वानर सेना बड़ा महत्वपूर्ण पद प्राप्त करेगी।।492।।

यहाँ सीता में रावण विषयक राग का अत्यन्त अभाव होने से अभासता है।

नन्वेकत्र रागाभावाद् रसस्याभासत्वं न युज्यते। प्रथममजातानुरागे वत्सराजे जातानुरागाया रत्नावल्याः-

शंका- एक में रागाभाव होने से रस की आभासता उचित नहीं है क्योंकि पहले से अनुत्पन्न अनुराग वाले वत्सराज (उदयन) में उत्पन्न राग वाली रत्नावली का—

दुल्लहजणाणुराओ लज्जा गुरुई परव्वसो अप्पा ।
पिअसहि! विसमं पेम्मं मरणं सरणं णु वरमेक्कम् ।।493।।
(दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा।
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नु वरमेकम्।।)

दुर्लभ व्यक्ति के प्रति अनुराग (है), भारी लज्जा (है) आत्मा पराधीन है। हे प्रिय सखी, इस प्रकार प्रेम-विषय (शंकापन्न) है। अब मेरे लिए मृत्यु ही केवल सर्वोत्तम सहारा है।।493।।

इत्यत्र पूर्वानुरागस्याभासप्रसङ्ग इति चेद्, उच्यते- अभावो हि त्रिविधः प्रागभावोऽत्यन्ताभावः प्रध्वंसाभावश्चेति। तत्र प्रागभावे दर्शनादिकारणेषु रागोत्पत्तिसम्भावनया नाभासत्वम्। इतरयो तु कारणसद्भावेऽपि रागानुत्पत्तेराभासत्वमेव। अन्ये तु स्त्रिया एव रागाभावे रसास्याभासत्वं प्रतिजानते। न तदुपपद्यते। पुरुषेऽपि रागाभावे रसास्यानास्वादनीयत्वात्।

यहाँ पूर्वानुराग के आभास का प्रसङ्ग होने के कारण। **समाधान-** अभाव तीन प्रकार

का होता है- प्रागभाव, अत्यन्ताभाव और प्रध्वंसाभाव। इसमें प्रागभाव में दर्शन इत्यादि कारणों के होने पर रागोत्पत्ति होने की सम्भावना से आभासता नहीं होती। अन्य दोनों (अत्यन्ताभाव और प्राध्वंसाभाव) में कारण होने पर भी राग की उत्पत्ति न होने से आभासता ही होती है। पुरुष में भी रागाभाव होने पर रस की आस्वादनीयता नहीं होती रसाभास ही होता है।

यथा (अमरुशतके ४३)-

गते प्रेमावेशे प्रणयबहुमानेऽपि गलिते
निवृत्ते सद्भावे प्रणयिनि जने गच्छति पुरः ।
तदुत्प्रक्ष्योत्प्रेक्ष्य प्रियसखि! गतांस्तांश्च दिवसान्
न जाने को हेतुर्दलति शतधा यत्र हृदयम् ।।494।।

अत्र हृदयदलनाभावपूर्वगतदिवसोत्प्रेक्षाद्यनुमितैर्निर्वेदस्मृत्यादिभिरभिव्यक्तोऽपि स्त्रिया अनुरागः प्रेमावेशश्लथनादिकथितेन पुरुषगतरागध्वंसेन चारुतां नाप्नोति।।

जैसे (अमरुशतक ४३ में)-

(कलहान्तरिता नायिका सखी से कह रही है-) जब प्रेम के सभी बन्धन शिथिल हो गए, प्रेम से उत्पन्न गौरव गल गया और सद्भाव से रहित होकर जब प्रिय, अपरिचित के समान सामने आकर चला गया तब फिर उन बीते दिनों को सोच कर न जाने क्यों हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जा रहा है?।।494।।

यहाँ हृदय के टुकड़े-टुकड़े होने के अभाव से बीते हुए दिनों की उपेक्षा आदि अनुमानों के द्वारा निर्वेद, स्मृति इत्यादि से अभिव्यक्त भी स्त्री का अनुराग, प्रेमबन्धन की शिथिलता इत्यादि कथन से पुरुष- विषयक राग के विनष्ट हो जाने से रुचिकर नहीं होता।

पुरुषरागात्यन्ताभावेन रसाभासत्वं यथा (नागानन्दे १/१)-

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्रातापि नो रक्षसि ।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोन्यःपुमान्
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बोधौ जिनः पातु वः ।।495।।

पुरुष राग के अत्यन्ताभाव से रसभासता जैसे (नागानन्द १.१में)-

ध्यान का बहाना बना कर किस स्त्री को मन में सोच रहे हो? क्षण भर के लिए आँख खोल कर कामदेव के बाणों से पीड़ित हुई हमें तो देखो! रक्षक होते हुए भी हमारी रक्षा नहीं करते? झूठे ही दयालु बनते हो! तुमसे अधिक निर्दयी और कौन पुरुष होगा? यों काम- देव की साथ वाली युवतियों (अप्सराओं) द्वारा ईर्ष्या ताने के साथ कहे जाते हुए, तत्त्वज्ञान के निमित्त समाधि- स्थित भगवान् बुद्ध तुम्हारी रक्षा करें।।495।।

अत्र जिनस्य रागात्यन्ताभावेन रसाभासत्वम् ।

यहाँ जिन के राग का अत्यन्ताभाव होने के कारण रसाभासता है।

अनेकत्र योषितो रागाभासत्वं यथा (रघुवंशे ७.५३)-

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोरुत्क्रान्तवाय्वोः समकालमेव ।
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकाप्सरः प्रार्थनयोर्विवादः ।।496।।

अत्र कस्याचिद् दिव्यवनितायाः वीरद्वये रणान्निवृत्तिमरणप्राप्तदेवताभावेऽनुरागस्य निरुपमानशूरगुणोपादेयतादेरवैषम्येण प्रतिभासनादाभासत्वम् ।

अनेक पुरुषों में स्त्री की रागाभासता जैसे (रघुवंश ६/५३में)-

एक दूसरे के प्रहार से एक समय में ही मरे हुए दो योद्धा देवता होकर जब स्वर्ग में गये, तब वहाँ एक ही अप्सरा पर दोनों रीझ गये और वहाँ भी फिर आपस में झगड़ने लगे।।496।।

यहाँ किसी दिव्यस्त्री का दो वीरों के प्रति रण में प्राप्त मृत्यु के कारण प्राप्त देवत्व के अभाव में अनुराग का निरुपमान वीरता के गुणों की उपादेयता इत्यादि की विषमता से प्रतिभासित होने के कारण यहाँ आभासत्व है।

अनेकत्र पुंसो रागाद् यथा-

रम्यं गायति मेनका कृतरुचिर्वीणास्वनैरुर्वशी
चित्रं वक्ति तिलोत्तमा परिचयं नानाङ्गहारक्रमे ।
आसां रूपमिदं तदुत्तममिति प्रेमानवस्था द्विषा
भेजे श्रीयनपोतशिङ्गनृपते! त्वत्खड्गभिन्नात्मना ।।497।।

अत्र नायकखड्गधारागलितात्मनः कस्यचित् स्वर्गतनायकप्रतिवीरस्य मेनकादिस्वर्लोकगणिकास्वरवैषम्येण रागादाभासत्वम् ।

अनेकत्र (अनेक स्त्री में) पुरुष के राग से रसाभास जैसे-

मेनका मनोहर गा रही है, उवर्शी वीणा की ध्वनि के साथ दत्तरुचि वाली हो गयी है तथा अनेक हाव-भाव के क्रम में तिलोत्तमा (अपने) विचित्र परिचय को बता रही है, इन सभी का यह लावण्य अनुपम है। हे श्रीयनपोत शिङ्गभूपाल! आप के तलवार से अलग हुई आत्मा वाले (अर्थात् मृत्यु को प्राप्त) शत्रुओं ने प्रेम की अवस्था को प्राप्त किया।। 497।।

यहाँ नायक के खड्ग की धारा से वञ्चित आत्मा वाले किसी स्वर्ग को प्राप्त प्रतिनायक का मेनका इत्यादि स्वर्गलोक की गणिकाओं के स्वर-वैषम्य के कारण राग का आभासत्व है।

नन्वेवं दक्षिणादीनामपि रागस्याभासत्वमिति चेद् न। दक्षिणस्य नायकस्य नायिकास्वनेकासु वृत्तिमात्रेणैव साधारण्यं, न रागेणः। तदेकस्यामेव रागस्य प्रौढत्वमितरासु

तु मध्यमत्वं मन्दत्वं चेति तदनुरागस्य नाभासता। अत्र तु वैषम्येणानेकत्र प्रवृत्तेराभासत्वमुपपद्यते।

शंका– इस प्रकार दक्षिण नायकों का (अनेक नायिकाओं के साथ सम्बन्ध रहने से) राग की आभासता होनी चाहिए। **समाधान–** ऐसी बात नहीं है क्योंकि दक्षिण नायक का अनेक नायिकाओं के प्रति वृत्तिमात्र से ही साधारण भाव रहता है, राग से नहीं। तो (साधारण वृत्ति वाले नायक का) किसी (नायिका) के प्रति प्रौढ़, किसी के प्रति मध्यम तथा किसी के प्रति मन्द— इस प्रकार के (भेद के कारण) आभासता प्रकट नहीं होती। किन्तु यहाँ वैषम्यता के कारण अनेक वृत्ति की आभासता उत्पन्न हो सकती है।

तिर्यग्रागाद् यथा (कुमारसम्भवे ३.३६)–

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण संस्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ।।497।।

तिर्यग्राग से रसाभासता जैसे (कुमारसम्भव में)–

अपनी प्रियाओं का अनुसरण करते हुए भ्रमर ने एक ही पुष्प रूपी पात्र में मधु का पान किया और काले हरिण ने (अपनी) सिंग (शृङ्ग) से बन्द किये हुयी आखों वाली हरिणी को खुजलाते हुए संस्पर्श किया।।497।।

म्लेच्छरागाद् यथा(गाथासप्तसत्याम् ४/६०)–

अज्जं मोहणसुत्तं मिअत्ति मोत्तूण पलाइए हलिए ।
दरफुडिअवेण्टभारो अराहि हसिअं च फलहीहिं ।।498।।
(आर्यां मोहनसुप्तां मृतेति मत्वा पलायिते हलिके ।
दरस्फुटितवृन्तभारावनतयासितमिव कार्यासलताभिः।।)

अत्र सुरत मोहनसुप्ति मरणदशयोर्विवेकाभावेन हालिकस्य म्लेच्छत्वं गम्यते।

म्लेच्छराग से रसाभासता जैसे (गाथासप्तशती ४/६०)–

सुरत के सुख में पड़ी आर्या को 'मर गयी' समझ कर हलवाहा भाग पड़ा, (इस दृश्य को देखकर) थोड़े विकसित वृन्तभार से झुकी हुई कपासी हँस पड़ी।।498।।

यहाँ सुरत की मूर्च्छा में सुप्ति और मरण के विवेक का अभाव होने के कारण हलवाहे का म्लेच्छत्व ज्ञात होता है।

ननु तिर्यङ्म्लेच्छगतयोराभासत्वं न युज्यते। तयोर्विभावादिसम्भवात् । असम्भवे नास्वादयोग्यता इति चेद्न। भो! म्लेच्छरसवादिन् उत्कलाधिपतेः शृङ्गाररसाभिमानिनो नरसिंहदेवस्य चित्तमनुवर्तमानेन विद्याधरेण कविना बाढमभ्यन्तरी-कृतोऽसि। एवं खलु समर्थितमेकावल्यामनेन–

अपरे तु रसाभासं तिर्यक्षु प्रचक्षते। तत्तु परीक्षाक्षमम्। तेष्वपि विभावा-

दिसम्भवात् । विभावादिज्ञानशून्यास्तिर्यञ्चो न भाजनं भवितुमर्हन्ति रसस्येति चेद्, न। मनुष्येष्वपि केषुचित् तथानुभूतेषु रसविषयभावाभावप्रसङ्गात्। अत्र विभावादिसम्भवोऽपि रसं प्रति प्रयोजकः। न विभावादिज्ञानम्। ततश्च तिरश्चामप्यस्त्येव रसः इति।

(शंका)– विभाव इत्यादि के सम्भव होने के कारण पक्षियों तथा म्लेच्छों से सम्बन्धित आभासता मानना उचित नहीं है। क्योंकि विभावादि के न होने पर रस के आस्वादन की योग्यता नहीं होती। **समाधान**– हे म्लेच्छरसवादी! शृङ्गाररस के अभिमानी (उड़ीसा के) राजा नरसिंह देव के चित्त का अनुवर्तन करने वाले विद्याधर कवि से पूरी तरह प्रभावित हो गये हो। इसी प्रकार का समर्थन करने वाले उस (विद्याधर) द्वारा भी एकावली नामक ग्रन्थ में किया(कहा) गया है-

तिर्यग्राम से रसाभास–विषयक विद्याधर पर मत– पक्षियों में भी विभाव इत्यादि के होने से अन्य (आचार्य) तो पक्षियों में रसाभास का समर्थन करते हैं। किन्तु वह (पक्षियों में विभावादि होने से परीक्षा के लिए (परीक्षा की कसौटी पर कसने के लिए) तर्कसङ्गत नहीं है क्योंकि उनमें भी विभावादि होता है। (यदि यह कहा जाय कि) विभावादि के ज्ञान से शून्य होने के कारण पक्षी (रस के) पात्र नहीं होते तो ऐसी बात नहीं है। कुछ ऐसे उस प्रकार का अनुभव न करने वाले मनुष्यों में भी रस-विषयक भावों का अभाव होने के कारण (उनमें भी रस की सत्ता उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि) विभाव इत्यादि की उत्पत्ति ही रस के प्रति प्रयोजक होती है, न कि विभाव इत्यादि का ज्ञान। अतः पक्षियों में भी रस होता ही है।

न तावत् तिरश्चां विभावत्वमुत्पद्यते। शृङ्गारे हि समुज्ज्वलस्य शुचिनो दर्शनीयस्यैव वस्तुनो मुनिना विभावत्वेनाम्नानात्। तिरश्चामुद्वर्तनमज्जनाकल्परचनाद्यभावाद् उज्ज्वल-शुचिदर्शनीयत्वानामसम्भावना प्रसिद्धैव।

शिङ्गभूपाल का मत– पक्षियों में विभावता (विभाव का होना) नहीं प्राप्त होता। क्योंकि मुनि भरत ने शृङ्गार (रस) में समुज्ज्वल, शुचितायुक्त (पावन) और दर्शनीय वस्तु की ही विभावता को कहा है और पक्षियों में उबटन इत्यादि का लेप लगाने, स्नान करने, कल्पनाशक्ति आदि के अभाव के कारण, समुज्ज्वलता, शुचिता और दर्शनीयता की असम्भावना प्रसिद्ध ही है।

अथ स्वजातियोग्यधर्मैः करिणां करिणीं प्रति विभावत्वमिति चेत् न। तस्यां कक्ष्यायां करिणां करिणीरागं प्रति कारणत्वं न पुनर्विभावत्वम् । किञ्च जातियोग्यैर्धर्मैर्वस्तुनो न विभावत्वम् । अपि तु भावकचित्तोल्लासहेतुभिः रतिविशिष्टैरेव। किञ्च, विभावादिज्ञानं नामौचित्यविवेकः, तेन शून्यास्तिर्यञ्चो न विभावतां यान्ति।

शंका– अपनी जाति के योग्य धर्म के अनुसार हाथी का हथिनी के प्रति विभावता तो होती ही है। **समाधान**– ऐसी बात नहीं है उस श्रेणी में हाथियों का हथिनी के राग के प्रति कारणता ही मानी जाएगी, न कि विभावत्व, क्योंकि जाति के योग्य धर्म द्वारा वस्तु का

विभावत्व नहीं होता। प्रत्युत (विभावत्व) भावक के चित्त को उल्लास से रति विशेष से युक्त करता है। विभावादि ज्ञान औचित्य विवेक है (और वह पक्षियों में उपलब्ध नहीं होता) अतः विभावादि ज्ञान का अर्थ है— औचित्य विवेक। उससे शून्य पक्षी विभावत्व को प्राप्त नहीं करते।

तर्हि विभावादिज्ञानरहितेषु मनुष्येषु रसाभासप्रसङ्ग इति चेद्, नैष दोषः। विवेकरहितजनोपलक्षणम्लेच्छगतस्य रसस्याभासत्वे स्वेष्टावाप्तेः।

शंका– तो फिर विभावादि-ज्ञान से रहित मनुष्यों में भी रसाभास का प्रसङ्ग हो जायेगा। **समाधान**– इसमें दोष नहीं है। विवेक-शून्य लक्षण वाले म्लेक्षगत रस का आभासत्व ही प्राप्त होता है।

किञ्च विभावादिसम्भवोऽपि रसं प्रति प्रयोजको न विभावादिज्ञानमेतद् न युज्यते। तथाहि विभावादेविशिष्टस्य वस्तुमात्रस्य वा सम्भवो रसं प्रति प्रयोजकः। विशिष्टप्रयोजकत्वाङ्गीकारे विवेकादिप्रवेशोऽङ्गीकृत इत्यस्मदनुसरणमेव शरणं गतोऽसि। अथ विवेकं विना तदितरविशेषत्वं वैशिष्ट्यमिति चेद्, न। विशेषाणां धर्मिणि परमोत्कर्षानुसन्धानतत्पराणामन्योऽन्यसहिष्णूनामियत्तया नियमासम्भवात्। अथ यदि वस्तुमात्रस्य, तर्हि–

और क्या? विभावादि ही रस का प्रयोजक है, विभावादि का ज्ञान नहीं— यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि विभाव इत्यादि या विशिष्ट वस्तु मात्र की उत्पत्ति ही रस के प्रति प्रयोजक होती है। (ऐसी स्थिति में) विशिष्ट प्रयोजकत्व के स्वीकार करने पर (विभाव इत्यादि के) ज्ञान इत्यादि को श्रेय देने वाले (हमारे मत को) स्वीकार करने वाले हमारे ही अनुसरण की आश्रय में गये हैं (अर्थात् हमारे मत का ही समर्थन किये हैं।) यदि विवेक के बिना उससे अन्य विशेषता हो तो भी विशेषणोका धर्म में परमोत्कर्ष खोजने में लगे हुए अन्योन्य सहिष्णुओं की इयत्ता से नियम के सम्भव न होने के कारण नहीं हो सकता। यदि वस्तु मात्र की तो—

'अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्' (रघु १.५६)

इत्यादावपि स्त्रीपुंसव्यक्तिमात्रविभावसद्भावादवासनालक्षणानुभावसम्भवाच्च शृङ्गारः स्वदनीयः प्रसज्यते।

किञ्च (गाथासप्तशत्याम् 4.60)-

अज्जं मोहण सुत्तं मुअत्ति मोत्तूणपलाइए हलिए ।
दरफुडिअवेण्टभारोणआइ हसिअं .व फलहीए ।।500।।
(आर्यां मोहनसुप्तां मृतेति मत्वा पलायिते हलिके
दरस्फुटितवृन्तभारावनतया हसितमिव कार्पासलताभिः।।)

इत्यादिषु स्त्रीपुंसव्यक्तिमात्रविभावसद्भावः तदविवेकजनितहास्यपङ्कनिर्मग्नं शृङ्गार-गन्धगजमुद्धर्तुं त्वरितमित्यलं रसाभासापलापसंरम्भेण।

(दिलीप ने) अरुन्धती से उपसेवित तपस्वी वसिष्ठ को स्वाहा देवी से उपसेवित अग्नि के समान देखा ।।रघु १.५६।।

इत्यादि में स्त्री-पुंस व्यक्ति मात्र के विभाव इत्यादि के उत्पन्न और वासना लक्षण वाले अनुभाव से उत्पन्न होने के कारण शृङ्गार (का आभास) आस्वाद्य होना चाहिए।

और क्या-

सुरत के सुख में पड़ी आर्या को 'मर गयी,' समझ कर हलवाहा भाग पड़ा। (इस दृश्य को देखकर) थोड़े विकसित वृन्तभार से झुकी हुई कपासी हँस पड़ी।।500।।

इत्यादि में स्त्री पुंस व्यक्तिमात्र विभाव से उत्पन्न और उस (हलवाहे) के अविवेक से उत्पन्न हास्य-रुपी कीचड़ में फँसे हुए शृङ्गार रुपी मतवाले हाथी को निकालने के लिए शीघ्रता होना ही पर्याप्त है। इससे अधिक रसाभास के विषय में कथन अपलाप है।

ननु सीतादिविभावैर्वस्तुमात्रैरेव योषिन्मात्रप्रतीतौ सामाजिकानां रसोदयः, न पुनर्विशिष्टैः, तत्कथमिति चेद्, उच्यते।

शङ्का–सीता इत्यादि विभावों से वस्तुमात्र के कारण ही स्त्रीमात्र में प्रतीति होने पर सामाजिकों में रस का उदय हो जाता है, विशिष्टों द्वारा नहीं। वह कैसे होता है?

अत्र जनकतनयात्वरामपरिग्रहत्वादिविरुद्धधर्मपरिहारेण ललितोज्ज्वल-शुचिदर्शनीयत्वादिविशिष्ट शब्दतः सीतादिविभावो योषित्सामान्यं तादृशमेव ज्ञापयति। न पुनः स्त्रीजातिमात्रमितिसकलमपि कल्याणम् ।

समाधान- यह जनक की पुत्री होने और राम की पत्नी इत्यादि विरुद्ध धर्म के परिहार होने से ललित, उज्ज्वल, शुचि और दर्शनीय इत्यादि वैशिष्ट्य ही शब्द से प्रतिपादित सीता इत्यादि विभाव स्त्री सामान्य को भी वैसा ही ज्ञापित करता है। सम्पूर्ण स्त्री जाति मात्र को नहीं। इस प्रकार सभी लोगों का कल्याण होवे।

हरिश्चन्द्रो रक्षाकरणरुचिसत्येषु वचसां
विलासे वागीशो महति नियते नीतिनिगमे ।
विजेता गाङ्गेयं जनभरणसम्मोहनकला-
व्रतेषु श्रीशिङ्गक्षितिपतिरुदारो विहरते ।।२६४।।

वचनों की रक्षा करने में रुचि रखने वाले सत्यसम्पन्न (लोगों) में हरिश्चन्द्र, विलास में वागीश और महान् निर्धारित नीतिशास्त्र में गङ्गा के पुत्र भीष्म (या कार्तिकेय) को पराजित करने वाले तथा लोगों के पालन और सम्मोहन की कला के व्रत में उदार श्री शिङ्गभूपाल मनोविनोद करते हैं।।२६४।।

नित्यं श्रीयन्नपोतक्षितिपतिजनुषः शिङ्गभूपालमौलेः
सौन्दर्यं सुन्दरीणां हरिणविजयिनां वागुरा लोचनानाम् ।
दानं मन्दारचिन्तामणिसुरसुरभीगर्वनिर्वापणाङ्कं
विज्ञानं सर्वविद्यानिधिमुनिपरिषच्छेमुषीभाग्यरेखा ।।२६५।।

।।इति श्रीमदान्ध्रमण्डलाधीश्वरप्रतिगण्डभैरवश्रीमदनपोत
नरेन्द्रनन्दनभुजबलभीमश्रीशिङ्गभूपालविरचिते रसार्णव-
सुधाकरनामनि नाट्यालङ्कारे रसिकोल्लासो
नाम द्वितीयो विलासः।।

श्रीयन्नपोतराजा के पुत्र तथा शिङ्गराजाओं में चूड़ामणि (शिङ्गभूपाल) की सुन्दरियों में सौन्दर्य, हरिणों को पराजित करने वाले नेत्रों में पाश (फँसाने का फन्दा), मन्दार चिन्तामणि और देवताओं की सुरभि (नामक गाय) के (वाञ्छित दान देने के) गर्व को शान्त करने वाले चिह्न वाला दान तथा सभी विद्याओं के ज्ञाता विद्वानों की सभा में वृद्धि को प्राप्त भाग्य रेखा थी।।२६५।।

इस प्रकार श्रीमान् आन्ध्र मण्डल के राजा प्रतिगण्डभैरव श्रीसम्पन्न अनपोत राजा के पुत्र, भुजबलभीम श्रीशिङ्गभूपाल द्वारा विरचित रसार्णवसुधाकर नामक नाट्यालङ्कार में रसिकोल्लास नामक द्वितीय विलास समाप्त।।

+++

तृतीयो विलासः

तदीदृशरसाधारं नाट्यं रूपकमित्यपि ।
नटस्यातिप्रवीणस्य कर्मत्वान्नाट्यमुच्यते ।।१।।
यथा मुखादौ पद्मादेरारोपे रूपकप्रथा ।
तथैव नायकारोपो नटे रूपकमुच्यते ।।२।।

नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति– ऐसे रसों का आधार नाट्य है जिसे रूपक भी कहा जाता है। अतिकुशल नट का कार्य होने के कारण वह नाट्य कहा जाता है।।१।।

रूपक शब्द की निष्पत्ति– जिस प्रकार मुख इत्यादि पर कमल इत्यादि का आरोप होने पर वह रूपक कहलाता है उसी प्रकार नट पर नायक का आरोप ही रूपक कहा जाता है।।२।।

विमर्श– जिस प्रकार मुख में कमल का आरोप किये जाने के कारण मुखकमल में रूपक (अलंकार) कहलाता है उसी प्रकार नट में राम आदि की अवस्था (रूप) का आरोप होने के कारण नाट्य को रूपक कहते हैं।

तत्र नाट्यं दशविधं वाक्यार्थमभिनयात्मकम् ।

तथा च भारतीये नाट्यशास्त्र (१८.२-३)–

नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च ।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः ।।
ईहामृगश्च विज्ञेयं दशधा नाट्यमित्यपि ।।

नाट्य के प्रकार (भेद)– वाक्यार्थ का अभिनयात्मक रूप वाला नाट्य दश प्रकार का होता है, जैसा भरत ने नाट्यशास्त्र में कहा है-(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) अङ्क, (४) व्यायोग, (५) भाण, (६) समवकार, (७) वीथी, (८) प्रहसन, (९) डिम, (१०) ईहामृग— ये दश प्रकार के नाट्य होते हैं।

रसेतिवृत्तनेतारस्तत्तद्रूपकभेदकाः ।।३।।
लक्षिता रसनेतारः इतिवृत्तं तु कथ्यते ।
इतिवृत्तकथावस्तुशब्दाः पर्यायवाचिनः ।।४।।
इतिवृत्तं प्रबन्धस्य शरीरं त्रिविधं हि तत् ।
ख्यातं कल्प्यं च सङ्कीर्णं ख्यातं रामकथादिकम् ।।५।।

रूपकों के भेदक तत्त्व– रस, इतिवृत्त और नायक ये इन रूपकों में परस्पर भेद करने वाले होते हैं। अर्थात् रस, कथावस्तु और नायक के भेद से रूपकों में भिन्नताएँ होती हैं।।३।।

इतिवृत्त का निरूपण– नायकों (नायक और नायिका) को लक्षित किया जा चुका है। अब इतिवृत्त का निरूपण किया जा रहा है। इतिवृत्त और कथावस्तु— ये दोनों शब्द पर्यावाची है।।४।।

कथावस्तु का विभाजन–

प्रबन्ध का शरीर रूपी कथावस्तु तीन प्रकार की होती है— (१) प्रख्यात, (२) कल्पित और (३) संङ्कीर्ण। राम की कथा इत्यादि प्रख्यात इतिवृत्त है।।५।।

कविबुद्धिकृतं कल्प्यं मालतीमाधवादिकम् ।
सङ्कीर्णमुभयायत्तं लवराघवचेष्टितम् ।।६।।

कविबुद्धि से प्रसूत मालतीमाधव इत्यादि इतिवृत्त कल्पित है। दोनों (प्रख्यात तथा कल्पित) से युक्त लवराघवचेष्टित सङ्कीर्ण इतिवृत्त वाला है।।६।।

लक्ष्ये स्थितं बहुधा दिव्यमर्त्यादिभेदतः ।

लक्ष्य (नाट्य) में स्थित वस्तु दिव्य और मर्त्य इत्यादि भेद से अनेक प्रकार की होती है।।७पू.।।

विमर्शः– (१) प्रस्तुत कारिका में दिव्य मर्त्य आदि कहा है। यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि आदि पद से किसका ग्रहण होता है? साहित्य-दर्पण (६.९) के अनुसार आदिपद से दिव्यादिव्य लेना चाहिए।

(२) कुछ इतिवृत्त शुद्ध दिव्य होते हैं जैसे कृष्ण की कथा। कुछ शुद्ध मर्त्य (मनुष्य से सम्बन्धित) होते हैं। जैसे मालतीमाधव, मृच्छकटिक आदि कथानक। कुछ दिव्य और मर्त्य दोनों होते हैं, जैसे राम की कथा क्योंकि राम दिव्य होकर भी को अपने को मानव समझते हैं।

तच्चेतिवृत्तं विद्वद्भिः पञ्चधा परिकीर्तितम् ।।७।।
बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमित्यपि ।

फल की दृष्टि से कथावस्तु का विभाजन– यह इतिवृत्त आचार्यों द्वारा पाँच प्रकार का कहा गया है। (१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी और (५) कार्य।।७उ.-८पू.।।

अथ बीजम्-

यत् स्वल्पमुपक्षिप्तं बहुधा विस्तृतिं गतम् ।।८।।
कार्यस्य कारणं प्राज्ञैस्तद् बीजमिति कथ्यते ।

(१) **बीज**- जो (प्रारम्भ में) सूक्ष्म रूप से सङ्केतित होता है और आगे चल कर अनेक प्रकार से विस्तृत हो जाता है तथा कार्य (फल) का निमित्त (कारण) होता है, उसको आचार्यों ने बीज कहा है॥८उ.-९पू.॥

उप्तं बीजं तरोर्यद्वदङ्कुरादिप्रभेदतः ॥९॥
फलाय कल्पते तद्वन्नायकादिविभेदतः ।
फलायै भवेत् तस्माद् बीजमित्यभिधीयते ॥१०॥

जिस प्रकार बोया गया बीज (पहले) अंकुर (पुनः) पेड़ आदि के भेद से फल की प्राप्ति के लिए होता है उसी प्रकार नायक इत्यादि के भेद से नाट्य की फल प्राप्ति (नाट्य के निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए) (उपयोगी कथावस्तु) बीज कहलाती है॥९उ.१०॥

यथा- बालरामायणे प्रथमद्वितीययोः कल्पिते मुखसन्धौ स्वल्पो रामोत्साहो बीजमित्युच्यते।

जैसे- बालरामायण के प्रथम और द्वितीय अङ्क में कल्पित मुखसन्धि में राम का स्वल्प उत्साह 'बीज' है।

अथ बिन्दुः-

फले प्रधाने बीजस्य प्रसङ्गोक्तैः फलान्तरैः ।
विच्छिन्ने यद्विच्छेदकारणं बिन्दुरिष्यते ॥११॥
जलबिन्दुर्यथा सिञ्चंस्तरुमूलं फलाय हि ।
तथैवायं मुहुः क्षिप्तो बिन्दुरित्यभिधीयते ॥१२॥

यथा- तत्रैव तृतीयचतुर्थाङ्कयोः कल्पिते प्रतिमुखसन्धौ विक्षिप्ते रावण-विरोधमूलं सीतापरिग्रहो बिन्दुरित्युच्यते।

(२) **बिन्दु**- बीज के अन्तर्गत प्रसंगवशात् कही गयी (प्रयोग की गयी) अन्य फलप्रधान कथा के समाप्त हो जाने पर मुख्यकथा की निरन्तरता को बनाये रखने के कारण (उक्त कथावस्तु) बिन्दु कहलाती है। जिस प्रकार फल प्राप्ति के लिए बीज-वपन से बाद उसकी वृद्धि के लिए बार-बार जल से सींचा जाता है उसी प्रकार नाटक के अन्तर्गत मुख्यकथा की निरन्तरता को बनाये रखने के लिए बिन्दु का प्रयोग किया जाता है।

जैसे- वहीं बालरामायण के तृतीय चतुर्थ अङ्क में आगामी युद्ध के लिए रावण के विरोध का मूलकारण सीताहरण की कल्पना करना बिन्दु है।

अथ पताका-

यत्प्रधानोपकरणप्रसङ्गात् स्वार्थमृच्छति ।
सा स्यात्पताका सुग्रीवमकरन्दादिवृत्तवत् ॥१३॥

(३) **पताका**— प्रधान इतिवृत्त के प्रसङ्ग से सुग्रीव, मकरन्द इत्यादि के वृत्तान्त के समान प्रधान कथानक के साथ गौड़ रूप से दूर तक चलने वाला जो अपने प्रयोजन को भी सिद्ध करता है, वह पताका ही होता है॥१३॥

विमर्श– कथा में प्रयोजन सिद्धि के लिए सन्निविष्ट किये गये जिससे इति-वृत्त का प्रसङ्गवशात् अपना भी प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है और कथानक के साथ दूर तक चलता रहता है वह पताका कहलाता है। जैसे रामकथा में सुग्रीव की कथा। यह दूर तक चलती है और बालिवध प्रयोजन भी सिद्ध होता है।

अथ प्रकरी–

यत्केवलं परार्थस्य साधनं च प्रदेशभाक् ।
प्रकरी सा तु मनुमत्सौदामिन्यादिवृत्तवत् ।।१४।।

(४) **प्रकरी**– प्रधान इतिवृत्ति के प्रसङ्ग में हनुमान् सौदामिनी इत्यादि के कथानक के समान जो दूसरों के प्रयोजन-सिद्धि का साधन तथा कुछ दूर तक चलने वाला होता है, वह प्रकरी कहलाता है॥१४॥

पताकाप्रकरीव्यपदेशो भावप्रकाशिकाकारेणोक्तः यथा–

पताका कस्यापि शोभाकृच्चिह्नरूपतः ।
स्वस्योपनायकादीनां वृत्तान्तस्तद्वदुच्यते ॥
शोभायै वैदिकादीनां यथा पुष्पाक्षतादयः ।
तथात्र वर्णनादिस्तु प्रबन्धे प्रकरी भवेत् ॥इति॥

पताका और प्रकरी का निरूपण भावप्रकाशिकाकार ने इस प्रकार किया है– जिस प्रकार पताका (ध्वज) चिह्न (पहचान) के रूप से किसी का शोभाधायक होता है उसी प्रकार उपनायकों इत्यादि का वृत्तान्त पताका कहलाता है। पुष्प, अक्षत इत्यादि जैसे (यज्ञ में) वैदिकों (ऋत्विजों, आचार्यों) की शोभा के लिए होते हैं उसी प्रकार प्रबन्ध में वर्णन आदि प्रकरी होता है।

विमर्श— जैसे पताका (झण्डा) नेता का असाधरण चिह्न होते हुए उसका उपकारक होता है वैसे ही यह उपनायक इत्यादि इतिवृत्त भी उसी के समान मुख्यनायक से सम्बन्धित कथा का उपकारक होता है। सम्भवतः उपमा इस प्रकार है कि नायक का एक असाधारण चिह्न (पहचान) पताका होती है और इससे उसका उपकार भी होता है क्योंकि उसी झण्डे द्वारा उसे पहचान सकते हैं। इसी प्रकार जो इतिवृत्त नायक का असाधरण रूप से उपकार किया करता है, उस दूर तक चलने वाले, प्रासङ्गिक इतिवृत्त को पताका कहते हैं और जो छोटा होता है— प्रधानकथानक का दूर तक अनुवर्तन नहीं करता, वह प्रकरी कहलाता है।

अथ पताकास्थानकानि-

अङ्कस्य च प्रधानस्य भाव्यवस्थस्य सूचकम् ।
यदागन्तुकभावेन पताकास्थानकं हि तत् ।।१५।।

पताकास्थानक- अङ्क में आगन्तुक के रूप में प्रधान (कथा) की आगे-आने वाली घटना (अवस्था) का सूचक (सूचना देने वाला) पताकास्थानक कहलाता है।।१५।।

विमर्श- जिस कथा का प्रकरण चल रहा है उसमें आगे आने वाली घटना की सूचना पताकास्थानक से मिलती है। यह सूचना पताका (ध्वजा) की भाँति भावी वृत्त को बताती है, अतः पताकास्थानक कहलाती है।

एतद्विधा तुल्यसंविधानं तुल्यविशेषणम् ।

पताकास्थानक के भेद- यह (पताकास्थानक) दो प्रकार का होता है- (१) तुल्य इतिवृत्त (संविधान) और (२) तुल्यविशेषण ।।१६पू.।।

तत्राद्यं त्रिप्रकारं स्याद् द्वितीयं त्वेकमेव हि ।।१६।।
एवं चतुर्विधं ज्ञेयं पताकास्थानकं बुधैः ।

तथा च भरतः (नाट्शास्त्रे १९/३१)-

सहसैवार्थसम्पत्तिगुणवृत्त्युपचारतः ।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम् ।।इति।।

इसमें प्रथम (तुल्यसंविधान पताकास्थानक) तीन प्रकार का होता है, और द्वितीय (तुल्यविशेषण) तो एक हीं प्रकार का होता है। इस प्रकार चार प्रकार के पताकास्थानक आचार्यों द्वारा कहे गये हैं। जैसा भरत ने (नाट्यशास्त्र में) कहा है—

भरतानुसार लक्षण- सहसा अर्थ सम्पत्ति का गुण तथा वृत्ति के उपचार (आधार) से कहा गया पताकास्थानक प्रथम प्रकार का पताकास्थानक होता है।

यथा रत्नावल्याम्-

'विदूषकः- भो एसा देवी वासवदत्ता (भो एषा देवी वासवदत्ता)। (राजा सशङ्कं रत्नावलीं विसृजति)।

इत्यत्रेयं वासवदत्तेत्यनेनोपचारप्रयोगेण भाविनो वासवदत्ता कोपस्य सूचनात् सहसार्थसम्पत्तिरूपमिदमेकं पताकास्थानकम् ।

जैसे रत्नावली में-

विदूषक- अरे! ये महारानी वासवदत्ता है। (राजा सशङ्क रत्नावली को छोड़ देता है)।

यहाँ 'यह वासवदत्ता' इस प्रकार शिष्ट प्रयोग से होने वाले वासवदत्ता के क्रोध की सूचना से सहसा प्रयोजन की पूर्णतारूप यह प्रथम पताकास्थानक कहलाता है।

तथा च भरतः (नाट्यशास्त्रे १९/३२)-

वचः सातिशयं श्लिष्टं काव्यप्रबन्धरसाश्रयम् ।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्तितम् ।।

भरत के अनुसार-

"काव्य प्रबन्ध के रस के आश्रयभूत अत्यधिकश्लिष्ट कथन द्वितीय पताकास्थानक कहलाता है।।

यथा उत्तररामचरिते (१/३८)-

रामः -

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्त्तिनयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।
अयं कण्ठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्याः न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ।।501।।
(प्रविश्य) प्रतिहारी-उवट्ठिओ (उपस्थितः) ।

रामः- अये कः !

इत्यत्र भविष्यतः सीताविरहस्य सूचनादिदं श्लिष्टं नाम द्वितीयं पताकास्थानकम्।

जैसे उत्तररामचरित में (१/३८)-

वह सीता घर में लक्ष्मी है, यह नेत्रों में अमृतशलाका है, इसका यह स्पर्श शरीर में प्रचुर चन्दन का रस है और यह बाहु गले पर शीतल और कोमल मुक्ताहार है। इसकी क्या वस्तु प्रियतर नहीं है? परन्तु इसका वियोग तो बहुत ही असहनीय है।।५०१।।

(प्रवेश करके) प्रतिहारी- उपस्थित है। **राम-** अरे! कौन (उपस्थित) है।

यहाँ होने वाले सीता के विरह की सूचना होने के कारण द्वितीय पताकास्थानक है।

तथा च भरतः (नाट्यशास्त्रे १९.३३)-

अर्थोपक्षेपणं यत्तु लीनं सविनयं भवेत् ।
श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमिष्यते ।।इति।।

और उसी प्रकार आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र १९.३३ में कहा है— प्रच्छन्न (छिपे) रूप से विनयपूर्वक छिपे श्लिष्ट अर्थ वाले पद द्वारा प्रत्युत्तर वाले कथानक से युक्त प्रयोजन का निर्देश तृतीय पताकास्थानक होता है।

यथा वेणीसंहारे (२/२३)-

राजा-

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तं

तद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य ।
अध्यासितुं च सुचिरं जघनस्थलस्य
पर्याप्तमेव करभोरु! ममोरुयुग्मम् ।।502।।
(प्रविश्य सम्भ्रान्तः) कञ्चुकी— देव! भग्नं देव! भग्नम्।

राजा– किं नाम।

कञ्चुकी– भग्नं भीमेन।

राजा– किं प्रालयसि!

इत्यत्र श्लिष्टप्रत्युत्तरेण कञ्चुकिवाक्येन भाविनो दुर्योधनोरुभङ्गस्य सूचनेन शिष्टोत्तरं नाम तृतीयमिदं पताकास्थानकम् ।

जैसे वेणीसंहार (२.२३) में–

राजा— हे करभ (हाथी के बच्चे के सूड़) के समान जाँघों वाली! वायु से चञ्चल वस्त्र के छोर वाली अत एव तुम्हारी दृष्टि को आकर्षित करने वाली मेरी दोनों जाँघें, लहराते हुए वस्त्र वाले (अतः) मेरी आँखों को प्रिय लगने वाले तुम्हारे जघनस्थल (चौड़े चूतड़) के लिए काफी देर तक बैठने के लिए पर्याप्त ही है।।502।।

(प्रवेश करके घबड़ाया हुआ) **कञ्चुकी**– टूट गया महाराज! टूट गया। **राजा**– क्या (टूट) गया? **कञ्चुकी**– भीम के द्वारा (अर्थात् भीम ने तोड़ दिया)। **राजा**– ओह! क्या बकवास कर रहे हो?

***यहाँ शिष्ट प्रत्युत्तर द्वारा (प्रच्छन्न रूपसे विनयपूर्वक) कञ्चुकी के कथन से होने वाले* दुर्योधन की जाँघों को तोड़ने की सूचना होने से शिष्टो-त्तर** नामक तृतीय पताकास्थानक है।

तथा च (भरतः नाट्यशास्त्रे १९.३४)–

द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजकः ।
उपन्यासेन युक्तास्तु तच्चतुर्थमुदाहृतम् ।।इति।।

और उसी प्रकार आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र १९.३४ में कहा है— दो अर्थ वाले उपन्यासपूर्वक श्लिष्ट पद द्वारा क्रमबद्ध रूप से काव्य की (कथा) को जोड़ने वाला कथन चतुर्थ पताकास्थानक होता है।

यथा (रत्नावल्याम् २/४)–

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ।
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन् कोपविपाटद्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ।।503।।

इत्यत्र विशेषणश्लेषेण भाविनो रत्नावलीसन्दर्शनस्य सूचनात् तुल्यविशेषणं नाम चतुर्थं पताकास्थानकमिदम्।

जैसे (रत्नावली २/४ में)-

क्षणभर में कलियों से लदी, (दुर्दमनीय उत्कण्ठा युक्त), विकसित होने वाली (जम्हाई आदि युक्त) पाण्डुर वर्ण वाली, निरन्तर बहने वाली वायु के झकोरों (निरन्तर श्वास-प्रश्वास) से अपना संचार-जन्य खेद प्रकट करती हुई (बढ़ती हुई), मदन नामक वृक्ष से युक्त (कामावेश से युक्त) इस उद्यान तल (सागरिका) को अन्य नारी के समान देखते हुए मैं आज निश्चय ही देवी वासवदत्ता के मुख को क्रोध से कुछ-कुछ लाल वर्ण का कर दूँगा।।503।।

यहाँ श्लेषपूर्ण विशेषण द्वारा होने वाले रत्नावली के दर्शन की सूचना होने से यह तुल्यविशेषण नामक चतुर्थ पताकास्थानक है।

अथ कार्यम् -

वस्तुनस्तु मतं तस्य धर्मकामार्थलक्षणम् ।।१७।।
फलं कार्यमिदं शुद्धं मिश्रं वा कल्पयेत्सुधीः

(५) कार्य (फल)- उस इतिवृत्त का धर्म, काम और अर्थ रूप (त्रिवर्ग) फल कार्य कहलाता है। यह शुद्ध (अर्थात् त्रिवर्ग में से एक) अथवा मिश्र (त्रिवर्ग में से दो या तीनों का मिश्रण) होता है— ऐसा आचार्य लोग कहते हैं।।१७उ.-१८पू.।।

विमर्श-धर्म, अर्थ और काम को सिद्ध (प्राप्त) करना ही इतिवृत्त का फल (कार्य) है। इतिवृत्त कारण है तथा धर्म, अर्थ और काम रूप फल उसका कार्य हैं। इसलिए कारिका में धर्मार्थकामलक्षण कहा गया है। कार्य के दो भेद होते हैं-(क) शुद्ध और (ख) मिश्र । मिश्र कार्य भी दो प्रकार का होता है— (१) त्रिवर्ग में से दो का मिश्रण और (२) त्रिवर्ग में से तीनों का मिश्रण।

शुद्धं यथा मालतीमाधवे (१०/२३)-

कामन्दकी-

यत्प्रागेव मनोरथैर्वृतमभूत् कल्याणमायुष्मतो-
स्तत् पुण्यैर्मदुपक्रमैश्च फलितं क्लेशोऽपि मच्छिष्ययोः ।
निष्णातश्च समागमोऽपि विहितस्त्वत्प्रेयसः कान्तया
सम्प्रीतौ नृपनन्दनौ यदपरं प्रेयस्तदप्युच्यताम् ।।504।।

इत्यत्र काव्योपसंहारश्लोकेन तृतीयपुरुषार्थस्यैव फलत्वकथनात् शुद्धं कार्यमिदम्।

शुद्धकार्य जैसे मालतीमाधव (१०/२३) में-

कामन्दकी-

पहले ही अभिलाषाओं से चिरञ्जीव तुम दोनों (मालती और माधव) का जो विवाह रूप कल्याण काङ्क्षित था वह तुम्हारे पुण्यों से, मेरे कर्मों से और मेरी शिष्याओं (सौदामिनी और

अवलोकिता) के (अथवा शिष्य-भूरिवसु और देवरात के) कष्टों से फलीभूत हुआ। तुम्हारे मित्र (मकरन्द) का प्रिया (मदयन्तिका) के साथ कौशलपूर्ण वैवाहिक सम्बन्ध भी विहित हो गया। राजा और नन्दन भी प्रीतियुक्त हो गये हैं, अन्य दूसरा जो प्रियतर हो तो उसे भी कहो।।504।।

यहाँ काव्य (नाटक) के उपसंहार वाले श्लोक के द्वारा तृतीय पुरुषार्थ काम की फलता का कथन होने से यह शुद्ध कार्य है।

मिश्रं यथा बालरामायणे (१०/१०४)-

रुग्णं चाजवगवं न चापि कुपितो भर्गः सुरग्रामणीः
सेतुश्च ग्रथितोः प्रसन्नमधुरो दृष्टश्च वारांनिधिः ।
पौलस्त्यश्चरमस्थितश्च भगवान् प्रीतः श्रुतीनां कविः
प्राप्तं यानमिदं च याचितवते दत्तं कुबेराय च ।।505।।

इत्यनेनोपसंहारश्लोकेन मिश्रस्य त्रिवर्गफलस्य कथनाद् मिश्रमिदम् ।

मिश्र कार्य जैसे बलरामायण (१०/१०४) में-

आजगव धनुष को भङ्ग किया और देवश्रेष्ठ शिव भी क्रुद्ध नहीं हुए। सेतु भी बाँध दिया तथा समुद्र प्रसन्न और सौम्य ही दिखायी पड़ा। रावण का वध भी किया तथा वेद प्रणेता भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न ही रहे और इस विमान को प्राप्त किया तथा याचना करने वाले (कुबेर) को दान भी कर दिया।।505।।

इस उपसंहार श्लोक के द्वारा त्रिवर्ण (धर्म, अर्थ और काम) मिश्रित फल का कथन होने से यह मिश्रकार्य है।।

प्रधानमङ्गमिति च तद्वस्तु द्विविधं पुनः ।।१८।।

स्वरूप की दृष्टि से कथावस्तु का विभाजन-

वह (बीज,बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य रूप) कथावस्तु पुनः दो प्रकार की होती है— (१) प्रधान (अधिकारिक) कथावस्तु और (२) अङ्ग (प्रासङ्गिक) कथावस्तु।।१८उ.।।

(तत्र प्रधानेतिवृत्तम्)-

प्रधान-नेतृचरितं प्रधानफलबन्धि च ।
काव्ये चापि प्रधानं स्यात् तथा रामादिचेष्टिम् ।।१९।।

(१) प्रधान कथावस्तु- मुख्य नायक का चरित जो काव्य में फलपर्यन्त अभिव्याप्त रहता है वह प्रधान (अधिकारिक) कथावस्तु कहलाता है। जैसे— राम इत्यादि की कथावस्तु।।१९।।

(अथाङ्गेतिवृत्तम्)-

नायकार्थकृदङ्गं स्यान्नायकेतरचेष्टितम् ।

नित्यं पताका प्रकरी चाङ्गं बीजादयः क्वचित् ।।२०।।

(२) अङ्ग (प्रासङ्गिक) कथावस्तु– नायक के प्रयोजन के लिए नायक से अन्य (उसके सहयोगी) उपनायकों की चेष्टा वाली कथावस्तु अङ्ग (प्रासङ्गिक) कथावस्तु कहलाती है।।२०पू.।।

अङ्ग (प्रासङ्गिक) कथावस्तु के भेद– प्रासङ्गिक कथावस्तु के नित्य दो भेद हैं- (अ) पताका, (आ) प्रकरी। कहीं-कहीं बीज इत्यादि भी प्रासङ्गिक कथावस्तु में आ जाते हैं।।२०उ.।।

(बीजादीनां सान्निवेशक्रमः)–

बीजत्वाद् बीजमादौ स्यात् फलत्वात्कार्यमन्ततः ।
तयोः सन्धानहेतुत्वान्मध्ये बिन्दु मुहुः क्षिपेत् ।।२१।।
यथायोगं पतकायाः प्रकर्याश्च नियोजनम् ।

बीजादि का सन्निवेश क्रम– कथावस्तु का बीज होने के कारण बीज आरम्भ में होता है और फल होने के कारण अन्त में कार्य होता है। दोनों बीज और फल को सन्धान करने वाला कारण होने से मध्य में बिन्दु को रखा जाता है। यथास्थान पताका और प्रकरी का नियोजन होता है।।२१-२२पू.।।

(अथ कार्यस्य पञ्चावस्थाः)–

कार्यस्य पञ्चधावस्था पताकादिक्रियावशात् ।।२२।।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशा नियताप्तिफलागमाः ।

कार्य (फल) की पाँच अवस्थाएँ– पताका इत्यादि क्रियावश कार्य (फल) की पाँच अवस्थाएँ होती हैं- (१) आरम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति और फलागम (२२उ.-२३पू.।।

(तत्रारम्भः)–

तत्र तु मुख्यफलोद्योगमात्र आरम्भ इष्यते ।।२३।।

यथा– बालरामायणे मुखसन्धौ रामस्य लोकोत्तरोत्कर्षप्राप्तये व्यवसायमात्र आरम्भः।

(१) आरम्भ– मुख्य फल की प्राप्ति के लिए उद्योग (उत्सुकता) मात्र ही आरम्भ कहलाता है।।२३ उ.।।

जैसे– बालरामायण की मुखसन्धि में लोकोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करने के लिए राम का व्यवसाय (निश्चय या उत्सुकता) मात्र ही आरम्भ है।

अथ यत्नः–

यत्नस्तु तत्फलप्राप्त्यामौत्सुक्येन तु वर्तनम् ।

यथा तत्रैव प्रतिमुखसन्धौ ताटकानिपातनभूतपतिधनुर्दलनादिषु रामस्य यत्नः।

(२) यत्न– उस फल की प्राप्ति में उत्सुकतापूर्वक कर्म करना (वर्तन) यत्न कहलाता है।।२४पू.।।

जैसे– वहीं (बालरामायण की) प्रतिमुख सन्धि में ताड़का का वध और शङ्कर जी के धनुष को तोड़ने इत्यादि में राम का यत्न है।

अथ प्राप्त्याशा–

प्राप्त्याशा तु महार्थस्य सिद्धिसद्भावभावना ।।२४।।

यथा तत्रैव– गर्भसन्धौ माल्यवन्मायाप्रयोगवनवाससीताहरणादिभिरन्तरिताया रामस्य परमोत्कर्षप्राप्तेर्धनुर्भगङ्गादिसुग्रीवसन्धिसेतुबन्धनादिभिः सिद्धिसद्भावभावनाकथनाद् प्राप्त्याशा।

(३) प्राप्त्याशा– महान् फल की प्राप्ति होने की भावना प्राप्त्याशा कहलाती है।।२४उ.।।

जैसे– वहीं (बालरामायण की) गर्भसन्धि में माल्यवान् के माया प्रयोग, वनवास, सीता का अपहरण इत्यादि द्वारा व्यवधान होने से राम को चरमोत्कर्ष प्राप्ति के लिए शंकर जी के धनुष को तोड़ना इत्यादि, सुग्रीव-सन्धि, पुल बाँधना इत्यादि द्वारा फलप्राप्ति होने की भावना का कथन होने से प्राप्त्याशा है।

अथ नियताप्तिः–

नियताप्तिरविघ्नेन कार्यसंसिद्धिनिश्चयः ।

यथा– तत्रैव विमर्शसन्धौ निखिलरक्षःकुलनिर्बहणादविघ्नेन रामस्य फलसंसिद्धिनिश्चयो नितातप्तिः।

(४) नियताप्ति– विघ्नों के अभाव के कारण फलप्राप्ति का निश्चय हो जाना नियताप्ति कहलाता है।।२५पू.।।

जैसे– वहीं (बालरामायण की) विमर्श सन्धि में सम्पूर्ण राक्षसकुलों के विनष्ट हो जाने से राम की फलप्राप्ति का निश्चय हो जाना नियताप्ति है।

अथ फलागमः–

समग्रेष्टफलवाप्तिर्नायकस्य फलागमः ।। २५।।

यथा– तत्रैव निर्वहणसन्धौ रामस्य ताताज्ञानिर्वहणवैरप्रशमनराज्योपभोगैर्भोगोत्तर-त्रिवर्गफललाभप्राप्तिः फलागमः।

(५) फलागम– नायक की सम्पूर्ण अभीष्ट— फल की प्राप्ति फलागम कहलाती है।।२५उ.।।

जैसे– वही (बालरामायण की) निर्वहण सन्धि में पिता की आज्ञा का निर्वाह, शत्रुता का शमन, राज्य के भोग से भी उत्कृष्ट भोग त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का

फललाभ (फल की प्राप्ति) फलागम है।

अथ सन्धिः-

एकैकस्यास्त्ववस्थायाः प्रकृत्या चैकयैकया ।
योगः सन्धिरिति ज्ञेयो नाट्यविद्याविचक्षणैः ।।२६।।

सन्धि- (पाँच प्रकार के इतिवृत्तों-बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य में से), एक-एक का (कार्य की पाँच अवस्थाओं— आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम में से) एक-एक के साथ उनकी प्रकृति के अनुसार (क्रमशः) मिलाने को नाट्यशास्त्र के ज्ञाता लोग सन्धि कहते हैं।।२६।।

विमर्शः- बीज इत्यादि पाँच प्रकार के कथानकों को पाँच आरम्भ इत्यादि के क्रमशः होने पर क्रमशः सन्धियाँ होती हैं। बीज का आरम्भ से मेल होने से मुखसन्धि, बिन्दु का यत्न से मेल होने से प्रतिमुख सन्धि, पताका का प्राप्त्याशा से मेल होने से गर्भसन्धि, प्रकरी का नियताप्ति से मेल होने से अवमर्श सन्धि और कार्य का फलागम से मेल होने पर उपसंहृति (उपसंहार) सन्धि उत्पन्न होती है।

पताकायास्त्ववस्थानं क्वचिदस्ति न वा क्वचित् ।
पताकया विहीने तु बिन्दुं वा विनिवेशयेत् ।।२७।।
मुखप्रयोजनवशात् कथाङ्गानां समन्वये ।
अवान्तरार्थसम्बन्धः सन्धिः सन्धानरूपतः ।।२८।।

पताका कहीं (किसी नाटक में) होता है और किसी में नहीं। पताका के न होने पर बिन्दु को ही मिला देना चाहिए। मुख्य प्रयोजन के कारण कथा के अङ्गों के नियोजन के लिए जो सन्धान (मिलन) रूप से अवान्तर सम्बन्ध होता है, वही सन्धि कहलाता है।।२७-२८।।

मुखप्रतिमुखे गर्भविमर्शावुपसंहृति ।
पञ्चैते सन्धयः

सन्धि के भेद- (१) मुख, (२) प्रतिमुख, (३) गर्भ, (४) विमर्श और (५) उपसंहृति ये पाँच सन्धियाँ होती हैं।

(मुखसन्धिस्तदङ्गानि च)-

तेषु यत्र बीजसमुद्भवः ।।२९।।
नानाविधानामर्थानां रसानामपि कारणम् ।
तन्मुखं तत्र चाङ्गानि बीजारम्भानुरोधतः ।।३०।।
उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम् ।
युक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना ।।३१।।

उद्भेदभेदकरणमिति द्वादशधोदिताः ।

(१) मुख सन्धि– जो बीज से उत्पन्न तथा अनेक प्रकार के प्रयोजनों और रसों का कारण होती है वह मुख सन्धि कहलाती है।

मुखसन्धि के अङ्ग– बीज और आरम्भ से मेल के कारण इस सन्धि के (१) उपक्षेप, (२) परिकर, (३) परिन्यास, (४) विलोभन, (५) उक्ति, (६) प्राप्ति, (७) समाधान, (८) विधान, (९) परिभावना, (१०) उद्भेद, (११) भेद और (१२) करण— ये बारह अङ्ग कहे गये हैं।।३०-३२पू.)

(उपक्षेपः)–

उपक्षेपस्तु बीजस्य सूचना कथ्यते बुधैः ।।३२।।

यथा बालरामायणे प्रतिज्ञातपौलस्त्यनामनि प्रथमेऽङ्के–

'(ततः प्रविशति विश्वामित्रशिष्यः) शिष्यः प्रातःसवन एव यजमानं द्रष्टुमिच्छामि' इत्युपक्रम्य 'राक्षसरक्षौषधिं राममानेतुं सिद्धाश्रमादयोध्यां गतवता तातविश्वामित्रेण यज्ञोपनिमन्त्रकस्य परमसुहृदः श्रोत्रियक्षत्रियस्य सीरध्वजस्य स्वप्रतिनिधिः प्रेषितोऽस्मि' इत्यन्तेन (१/२३ पद्यात्पूर्वम्) रावणादिदुष्टराक्षसशिष्टरामलक्ष्मणोत्साहोपबृंहणकविश्वामित्रा-रम्भरूपस्य बीजस्य सूचनादुपक्षेपः।

(१) उपक्षेप— बीज की सूचना देना (अर्थात् शब्दों द्वारा उनकी उपस्थिति करा देना) ही उपक्षेप कहलाता है।।३२उ.।।

जैसे बालरामायण के प्रतिज्ञापौलस्त्य नामक प्रथम अङ्क में–

('तत्पश्चात् विश्वामित्र का शिष्य (शुनःशेप) प्रवेश करता है)' शिष्य- प्रातःकाल (के स्नान) के समय ही यजमान को देखना चाहता हूँ',यहाँ से लेकर "राक्षसों से रक्षा के लिए औषधिस्वरूप राम को लाने के लिए सिद्धाश्रम से अयोध्या जाते हुए महर्षि विश्वामित्र ने मुझे यज्ञनिमन्त्रण देने वाले श्रोत्रिय क्षत्रिय सीरध्वज के पास अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा है (१.२३ पद्य से पहले),, यहाँ तक रावण इत्यादि दुष्ट राक्षस (को मारने के लिए) सज्जन राम-लक्ष्मण का उत्साह वर्द्धन करने वाले विश्वामित्र के कथन रूप बीज की सूचना से उपक्षेप है।

अथ परिकरः –

परिक्रिया तु बीजस्य बहुलीकरणं मतम् ।

(2) परिकर— बीज की वृद्धि करना परिक्रिया (या परिकर) कहलाता है।।33पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामयणे १.२३)–

(प्रविश्य तापसच्छद्मना) **राक्षसः –**

सम्प्रेषितो माल्यवताहमद्य
ज्ञातुं प्रवृत्तिं कुशिकात्मजस्य ।

पुरीं निमीनां मिथिलामिमां च
तां चाप्ययोध्यां रघुराजधानीम् ।।506।।

कुलपुत्रकेति सप्रसादमाश्लिष्टोऽस्मि'' इत्युपक्रम्य ''स हि नक्तञ्चराणां निसर्गामित्रो विश्वामित्रो व्रतचर्यया वीरव्रतचर्यया च समर्थो दशरथोऽपि तथाविध एव' (१/२५ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन विश्वामित्रारम्भस्य माल्यवदादिवितर्कगोचरत्वेन बहुलीकरणाद् परिकरः।

जैसे- वहीं (बालरामायण प्रथम अङ्क (१.२३) में ही-

''(तापस के कपटवेश में प्रवेश करके) **राक्षस-** आज विश्वामित्र का समाचार जानने के लिए तथा निमिवंशीय राजाओं की नगरी मिथिला और रघुवंशियों की राजधानी उस अयोध्या में जाने के लिए माल्यवान् ने भेजा है।।506।।

और 'कुलपुत्रक' ऐसा कह कर प्रसन्नतापूर्वक मुझे यह आदेश मिला है'' से लेकर ''विश्वामित्र राक्षसों के स्वभावतः शत्रु है, तप और पराक्रम से वे समर्थ भी हैं। दशरथ भी वैसे ही है''' (१.२५ से बाद) तक माल्यवान् इत्यादि के तर्क-वितर्क से स्पष्ट होने वाले विश्वामित्र के कथन का विस्तार होने से परिकर है।

अथ परिन्यासः -

बीजनिष्पत्तिकथनं परिन्यास इतीर्यते ।।३३।।

यथा तत्रैव (बाल रामायणे)-

राक्षसः- (पुरोऽवलोक्य) कथं तापसः ! (प्रत्यभिज्ञाय) तत्रापि विश्वामित्रधर्मपुत्रः शुनशेपः' इत्युपक्रम्य सम्प्रत्येव राक्षभयात् सत्रे दीक्षिष्यमाणः स भगवान् गोप्तारं रामभद्रं वरीतुमयोध्यां गतः।

राक्षसः- (सत्रासं स्वगतम्) हन्त! कथमेतदपि निष्पन्नम्। (प्रकाशम्) भगवन्! मा कोपीः' इत्यादिना '(स्वगतम्) कृतं यत् कर्त्तव्यम् । सम्प्रति चारसञ्चारस्यायमवसरः'(१/२७पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन विश्वामित्रानुभावकथनाद् राक्षसत्रासकथनाच्च बीजनिष्पत्ते परिन्यासः'।

(३) **परिन्यास-** बीज की उत्पत्ति का कथन परिन्यास कहलाता है।।३३उ.।।

जैसे वहीं (बालरामायण के प्रथम अङ्क में)-

''**राक्षस-** (सामने देखकर) क्या तपस्वी है? (पहचान कर) उसमें भी विश्वामित्र का धर्मपुत्र शुनःशेप है'' यहाँ से लेकर ''अभी ही यज्ञ में दीक्षित होने वाले (विश्वामित्र) राक्षसों के भय से रक्षा के लिए रामचन्द्र को लेने अयोध्या गये हैं। **राक्षस-** (भयपूर्वक अपने मन में) अरे ! क्या यह भी हो गया। (प्रकटरूप से) भगवन् ! कुद्ध मत होइए।' इत्यादि से लेकर (अपने मन में) जो करना था कर लिया। इस समय गुप्तचर के कार्य का समय है (१/

२७ पद्य से बाद) तक विश्वामित्र के अनुभाव का कथन होने तथा राक्षस के भय का कथन होने से बीज की उत्पत्ति के कारण परिन्यास है।

अथ विलोभनम्-

नायकादिगुणानां यद् वर्णनं तद् विलोभनम् ।

(४) विलोभन- नायक इत्यादि के गुणों का वर्णन विलोभन कहलाता है।।३४पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

रावणः- 'यस्यारोपणकर्मणापि बहवो वीरव्रतं त्याजिता'(१/३०) इत्युपक्रम्य

'रावणः (सप्रत्याशम् स्वगतम्)

निर्माल्यं नयनश्रियः कुवलयं वक्त्रस्य दासः शशी
कान्तिः प्रावरणं तनोर्मधुमुचो यस्याश्च वाचः किल ।
विंशत्या रचिताञ्जलिः करपुटैस्त्वां याचते रावणः
स्तां द्रष्टुं जनकात्मजां हृदय हे नेत्राणि मित्रीकुरु ।।(1.4)507।।

इत्यन्तेन तद्गुणवर्णनाद् विलोभनम् ।

जैसे- वहीं (बालरामायण के प्रथम अङ्क में)-

"**रावण-** जिसके आरोपण कार्य से ही बहुतों ने वीरव्रत का परित्याग कर दिया" (१/३०) यहाँ से लेकर—

"**रावण-** (आशा से मन में) नीलकमल जिसके नेत्रों की शोभा का निर्माल्य (निवेदित पुष्प है,) चन्द्रमा जिसके मुखकमल का दास है, कान्ति शरीर का आच्छादक है और जिसकी वाणी मधुवर्षा करने वाली है उस सीता को देखने के लिए बीसों हथेलियों से हाथ जोड़े रावण तुम से याचना कर रहा है। हे हृदय! नेत्रों को मित्र बनाओं।।(1.40)507।।

यहाँ तक उस (सीता) का वर्णन होने से विलोभन है।

अथ युक्तिः-

सम्यक्प्रयोजनानां हि निर्णयो युक्तिरिष्यते ।।३४।।

तथा तत्रैव (बालरामायणे) परशुरामरावणीयनामनि द्वितीयाङ्के-

(ततः प्रविशति भिङ्गिरिटिः। स परिक्रामन्नात्मानं निर्वर्ण्य) अये विरूपतापि क्वचिन्महतेऽभ्युदयाय' इत्युपक्रम्य 'भिङ्गिरिटिः नारद! यथा समर्थयसे।

तथा हि-

एकः कैलासमद्रिं करगतमकरोच्चिच्छिदे क्रौञ्चमन्यो
लङ्कामेकः कुबेरादाहृतःवसतये कङ्कणानब्धितोऽन्यः ।
एकः शक्रस्य जेता समिति भगवतः कर्तिकेयस्य चान्य

स्तत् कामं कर्मसाम्यात् किमपरमनयोर्मध्यागा वीरलक्ष्मीः ।।(2.15)।।508।।

इत्यन्तेन राघवप्रतिनायकयोर्भार्गवरावणयोः कर्मसाम्यकथनाद् युक्तिः।

(५) युक्ति– सम्यक् प्रकार से प्रयोजनों का निर्णय करना युक्ति कहलाता है।।३४उ.।।

जैसे– वहीं (बालरामायण के द्वितीय अंक में)–

"इसके बाद भृङ्गिरिटि प्रवेश करता है) **भिङ्गिरिटि–** (परिक्रमा से अपने को देख कर) अहा विकृतरूपता भी कहीं-कहीं महान् हितकर होती है" से लेकर "**भृङ्गिरिटि–** हे नारद! जैसा आप समझते हैं। (वह ठीक है) क्योंकि—

एक (रावण) ने कैलाश पर्वत को उठा लिया तो दूसरे (राम) ने क्रौञ्च पर्वत का भेदन कर डाला। एक ने रहने के लिए कुबेर से लङ्का छीन लिया तो दूसरे ने समुद्र से कङ्गन लिया। एक युद्ध में इन्द्र को जीतने वाला है तो दूसरे ने भगवान् कार्तिकेय को जीत लिया। अतः पौरुष की समानता से दोनों तुल्य हैं। वीरलक्ष्मी दोनों के बीच में हैं।।508।।

यहाँ राम के प्रतिनायकों परशुराम और रावण के कार्य की समानता का कथन होने से युक्ति है।

अथ प्राप्तिः –

प्राज्ञैः सुखस्य सम्प्राप्तिः प्राप्तिरित्यभिधीयते ।

यथा तत्रैव (बालरामायण २/१६)–

नारदः – (सयुद्धावलोकनहर्षं हस्तमुद्यम्य)-

चित्रं नेत्ररसायनं त्रिदशतासिद्धेर्महामङ्गलं
मोक्षद्वारमपावृतं मम मनः प्रह्लादनाभेषजम् ।
साकं नाकपुरन्ध्रिभिर्नवपदप्राप्त्युत्सुकाभिः सुराः ।
सर्वे पश्यत रामरावणरणं वक्त्येष वो नारदः ।।509।।

इत्यत्र नारदस्य युद्धविलोकनहर्षप्राप्तेः प्राप्तिः ।

(६) प्राप्ति– सुख के पूर्णतः प्राप्त होने को प्राज्ञों ने प्राप्ति कहा है।।३५पू.।।

जैसे वहीं (बालरामायण, २/१६ में) –

नारद– (युद्ध देखने से हर्ष से हाथ उठाकर), यह विचित्र नेत्ररसायन है। देवत्व सिद्धि का महामङ्गल है। खुला हुआ मोक्ष द्वार है और मेरे मन की प्रसन्नता का औषध है। नवीन पतियों की प्राप्ति की उत्सुकता वाली स्वर्ग रमणियों के साथ सभी देवता राम-रावण के युद्ध को देखें— यह नारद घोषणा कर रहे हैं।।509।।

यहाँ नारद का युद्ध देखने से उत्पन्न हर्ष की प्राप्ति के कारण प्राप्ति है।

अथ समाधानम् –

बीजस्य पुनराधानं समाधानमिहोच्यते ।।३५।।

यथा तत्रैव-(बालरामायणे द्वितीयाङ्के)–

'भिङ्गिरिटिः– युद्धरुचे! मा निर्भरं संरभस्व।' इत्युपक्रम्य ''अयोध्यां गत्वा परं रामरावणीयं योजयिष्यामि (२.१६ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन राघवबीजस्य नारदेन पुनराधानात् समाधानम् ।

(7) **समाधान–** बीज का पुनः आधान (उपक्षिप्त बीज का पुनः अधिक स्पष्ट रूप से उपादान) समाधान (सम्यक् रूप से आधान) कहलाता है।।३५उ.।।

जैसे– वहीं (बाल रामायण के द्वितीय अङ्क में)–

''**भृङ्गिरिटि–** हे! एक मात्र युद्ध में रुचि रखने वाले (नारद)! ऐसा उत्साह मत करो'' यहाँ से लेकर 'अयोध्या में जाकर राम और रावण के युद्ध की योजना करूँ'' तक राम के बीज का नारद द्वारा पुनः आधान करने के कारण समाधान है।

अथ विधानम्–

सुखदुःखकरं यत्तु तद् विधानं बुधा विदुः ।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) प्रथमाङ्के–

'सीता– (ससाध्वसौत्सुक्यम्) अम्मो रक्खसो त्ति सुणिअ सच्चं सज्झसकोदहलाणं मज्झे वट्टामि।(अंहो राक्षस इति श्रुत्वा सत्यं साध्वसकौतूहलयोरन्तरे वर्ते)' इत्युपक्रम्य 'सीता–तादसदाणंदमिस्साणं अन्तरे उवविसिस्सं' (तातशतानन्दमिश्राणामन्तरं उपवेक्ष्यामि।। (१.४२ पद्यात्पूर्वम्।) इत्यन्तेन सीतया अदृष्टपूर्वराक्षसदर्शनेन सुखदुःखव्यतिकराख्यानाद् विधानम्।

(8) **विधान–** जो सुख और दुःख दोनों को उत्पन्न करने वाला है उसको प्राज्ञों ने विधान कहा है।।३६पू.।।

जैसे– वहीं (बालरामायण के) प्रथम अङ्क में–

''**सीता–** (भय और उल्लास के साथ) अहा! राक्षस सुन कर भय और उत्साह के बीच में हूँ'' से लेकर ''**सीता–** पिताजी (जनक) और शतानन्द के बीच में बैठूँगी''(१.४२ से पूर्व) तक सीता द्वारा कभी न देखे गये राक्षस के देखने से सुख और दुःख के उत्पन्न होने के ख्यापन होने का विधान है।

अथ परिभावना–

श्लाघ्यैश्चित्तचमत्कारो गुणाद्यैः परिभावना ।।३६।।

यथा तत्रैव–

रावणः– (सौत्सुक्यं विलोक्य स्वगतम्) अहो त्रिभुवनातिशायि मकरध्वजसञ्जीवनं

रामणीयकमस्याः। तथाहि–

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हेमद्युतिः ।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव ।। (1.42)।।510।।

इत्युपक्रम्य 'शतानन्दः (अपवार्य) अहो लङ्काधिपतेरपूर्वगर्वगरिमा। यन्ममापि शतानन्दस्य न निश्चिनुते चेतः।किं भविता' (१/४६ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन रावणस्य सीतारामणीयकदर्शनेन शतानन्दस्य रावणोत्साहदर्शनेन च द्वयोश्चित्त-चमत्कारकथनात् परिभावना।

(9) **परिभावना–** गुण इत्यादि श्लाघ्य (आश्चर्य-जनक घटना) को देख कर चित्त का चमत्कार (विस्मयान्वित) होना परिभावना कहलाता है।।३६उ.।।

जैसे– वहीं (बालरामायण के) प्रथम अङ्क में–

"**रावण–** (उत्सुकतापूर्वक देख कर अपने मन में) अहा! इसकी सुन्दरता तीनों लोकों से न्यारी तथा काम की सञ्जीवनी है।

क्योंकि सीता के सामने चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो अञ्जन से लिप्त है, मृगियों की दृष्टि जैसे जड़ हो गयी है, विद्रुम (मूँगे) की लता की लाली मानों मुरझा गयी है, स्वर्ण की द्युति मानों काली हो गयी है, कोकिल के कण्ठ में मधुरता मानों कर्कशा का रूप ले लिया है और हाय! मयूरों के पङ्ख भी मानों कुत्सित हो गये है।(1.42)।।510।।

यहाँ से लेकर '**शतानन्द–** (एक ओर मुँह फेर कर ओह, रावण का यह गर्व अपूर्व है कि मुझ शतानन्द का भी मन निश्चित नहीं कर पा रहा है कि क्या होगा' (१.४६ पद्य से बाद) तक रावण का सीता के सौन्दर्य को देखने और शतानन्द का रावण के उत्साह को देखने से दोनों के चित्त के चमत्कार (विस्मय) के कारण परिभावना है।

अथ उद्भेदः

उद्घाटनं यद् बीजस्य स उद्भेद प्रकीर्तितः ।

(10) **उद्भेद–** बीज का उद्घाटन (गुप्त बात को प्रकट) कर देना उद्भेद कहलाता है।।३७पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) द्वितीयाङ्के–

रावणः– त्रैयम्बकः परशुरेव निसर्गचण्ड (२.३९) इत्यादि पठति।

जामदग्न्यः– अपकुर्वतापि भवता परमुपकृतम् । यदेष स्मारितोऽस्मि। (२.४४ पद्यात्पूर्वम्) इत्युपक्रम्य–

लोकोत्तरं चरितमर्पयति प्रतिष्ठां
पुसां कुलं न हि निमित्तमुदारतायाः ।
वातापितापनमुनेः कलशात्प्रसूति-
लीलायितं पुनरमुष्य समुद्रपानम् ।।(2.51)511।।

इत्यन्तेन गूढशङ्करधनुरधिक्षेपोद्घाटनाद् वा लोकोत्तरचरितसामान्यवर्णनेन तिरोहितरामचन्द्रोत्साहोद्घाटनाद्वा उद्भेदः।

जैसे वहीं (बालरामायण के) द्वितीय अङ्क में-

"**रावण**- त्रैयम्कः परशुरेव निसर्गचण्ड (२.३९) इत्यादि पढ़ता है।

जामदग्न्य- अपकार करते हुए भी तुमने महान् उपकार कर दिया जो मुझे यह स्मरण करा दिया है (२.४४ पद्य के पूर्व)। यहाँ से लेकर—

"लोकोत्तर चरित्र ही प्रतिष्ठा देता है। पुरुषों का कुल उन्नति का निमित्त नहीं। वातापि को तपाने वाले अगस्त्य मुनि का जन्म कलश से हुआ है किन्तु उनकी लीला है अगाध समुद्र को पी जाना"(2.51)।।511।।

यहाँ तक गम्भीर शंकर के धनुष के अधिक्षेप (दोषारोपण) का उद्घाटन होने अथवा लोकोत्तर चरित का सामान्य वर्णन होने से अथवा छिपे हुए रामचन्द्र के उत्साह का उद्घाटन होने के कारण उद्भेद है।

अथ भेदः-

बीजस्योद्भेदनं भेदो यद्वा सङ्घातभेदनम् ।।३६।।

(11) **भेद**- बीज का अभिर्भाव होना अथवा सङ्घ में फूट डालना भेद कहलाता है।।३६उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे द्वितीयाङ्के)-

"रावणः- (विलोक्य) अथ याचितपरशुना परशुरामेण किमभिहितमासीत्।
मायामयः- त्रैलोक्यमाणिक्यरामोदन्तम् आकर्णयतु स्वामी-

पौलस्त्यः प्रणयेन याचत इति श्रुत्वा मनो मोदते
देयो नैष हरप्रसादपरशुस्तेनाधिकं ताम्यति ।
तद्वाच्यः स दशाननो मम गिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही
तुभ्यं ब्रूहि रसातलत्रिदिवयोनिर्जित्य किं दीयताम् ।।(2/20)512।।

रावणः - "कदा नु खलु परशुरामो रसातलत्रिदियोर्जेता दाता च संवृत्तः। पुनः प्रतिगृहीता च। ततस्त्वया किमसौ प्रत्युक्तः।" इत्युत्क्रम्य "मायामयः- देव, प्रकृतिरोषणो रेणुकासुतः। तत्तमेवागतमहमुत्प्रेक्षे। रावणः- प्रियं नः।" (२.२४ पद्यात्पूर्वम्)

इत्यन्तेन प्रतिनायकरूपभार्गवरावणयोरुत्तेजनाद् भेदः।

जैसे वहीं (बालरामायण के द्वितीय अङ्क में)-

"**रावण-** (देखकर) परशुराम ने परशु माँगे जाने पर क्या कहा? **मायामय-** त्रैलोक्यमणि परशुराम के वृत्तान्त को स्वामी सुनें—

पौलस्त्य रावण प्रेम से माँग रहा है यह सुन कर मन प्रसन्न हो रहा है। यह शंङ्कर का प्रसाद परशु नहीं देना है इससे अधिक दुःखी हो रहा है। तो रावण से मेरी वाणी कहना कि 'ब्रह्मणों को मैंने पृथ्वी दे दी। तुम बताओं कि स्वर्ग और पाताल में कौन जीत कर तुम्हें दें।। (2/20)512।।

रावण- कब से परशुराम स्वर्ग और रसातल का जेता और दाता हुआ है तथा प्रतिग्रह लेने वाला हुआ है। तो तुमने उससे क्या कहा" यहाँ से लेकर "**मायामय-** देव! रेणुका पुत्र परशुराम स्वभाव से क्रोधी हैं। उन्हें मैं यहीं आया मानता हूँ। **रावण—** तब तो हमारा प्रिय ही है" तक प्रतिनायक रूप परशुराम और रावण की उत्तेजना के कारण भेद है।

अथ करणः-

प्रस्तुतार्थसमारम्भं करणं परिचक्षते।

(12) करण- प्रस्तुत कार्य के आरम्भ कर देने को करण कहा जाता है।।३८पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) (२/५५ पद्यादनन्तरम्)-

'(उभावपि चापारोपणं नाटयतः)' इत्युपक्रम्य अङ्कपरिसमाप्तेः जामदग्न्य-रावणयोः प्रस्तुतार्थसमारम्भकथनात् करणम्।

जैसे- वही (बालरामायण के द्वितीय अङ्क में २/५५ पद्य से बाद में)-

"(दोनों चाप चढ़ाने का अभिनय करते हैं।)" से अङ्क की समाप्ति तक परशुराम और रावण के प्रस्तुत कार्य के आरम्भ का कथन होने से करण है।

अथ प्रतिमुख सन्धिः

बीजप्रकाशनं यत्र दृश्यादृश्यान्तरं भवेत् ।।३८।।
तत्स्यात् प्रतिमुखं बिन्दो प्रयत्नस्यानुरारोधतः ।

(२) प्रतिमुख सन्धि- जहाँ बिन्दु के विचार (आश्रय) से बीज का कुछ दृश्य (लक्ष्य) और कुछ अदृश्य (अलक्ष्य) रूप में प्रकाशन होता है, वह प्रतिमुख सन्धि कहलाता है।।३८उ.-३९पू.।।

इह त्रयोदशाङ्गानि प्रयोज्यानि मनीषिभिः ।।३९।।
विलासपरिसर्पौ च विधूतं शमनर्मणी ।
नर्मद्युतिः प्रगमनं विरोधः पर्युपासनम् ।।४०।।
पुष्पं वज्रमुपन्यासो वर्णसंहरणं तथा ।

प्रतिमुख सन्धि के अङ्ग– प्रतिमुख सन्धि के प्रयोज्य तेरह अङ्ग होते हैं— (1) विलास, (2) परिसर्प, (3) विधुत, (4) शम, (5) नर्म, (6) नर्मद्युति, (7) प्रगमन, (8) विरोध, (9) पर्युपासन, (10) पुष्प, (11) वज्र, (12) उपन्यास, (13) वर्ण संहरण।।३९उ.-४१पू.।।

(तत्र विलासः)–

विलासं सङ्गमार्थस्तु व्यापारः परिकीर्तितः ।।४१।।

(1) विलास– (नायक-नायिका के) समागम के लिए किया गया कार्य (व्यापार) विलास कहलाता है।।४१उ.।।

यथा तत्रैव विलक्षलङ्केश्वरनाम्नि तृतीयेऽङ्के (३.२१पद्यात्पूर्वम्)–

'रामः– अये इयमसौ सा सीता, यस्याः स्वयं वसुमती माता यागभूर्जन्म-मन्दिरम् इन्दुशेखर-कार्मुकारोपणं च पणः। (सस्पृहं निर्वर्ण्य) इत्यारभ्य–

प्रतीहारः –

एतेनोच्चैर्विहसितमसौ काकली गर्भकण्ठो
लौल्याच्चक्षुः प्रहितममुना साङ्गभङ्गः स्थितोऽयम् ।
हारस्याग्रं कलयति करेणैष हर्षाच्च किञ्चित्
स्त्रैणः पुसां नवपरिगमः काममुन्मादहेतुः ।।(3.26)513।।

इत्यन्तेन रामादीनां सीतालम्बनाभिलाषकथनाद् विलासः।

जैसे– वहीं (बालरामरयण के) विलक्षलङ्केश्वर नामक तृतीय अङ्क में (३.२१ पद्य से पूर्व)

''**राम–** अरे! यही वह सीता है, जिसकी स्वयं भगवती पृथ्वी माता है यज्ञभूमि जन्म-मन्दिर है, और शिव के धनुष का आरोपण जामाता का गुण है। (स्पृहा से देखकर)'' यहाँ से लेकर—

प्रतीहार–

यह जोर से हँस रहा है, यह (दूसरा) कण्ठ से काकली गा रहा है, इसने सतृष्ण नेत्र चलाया, यह तिरछा खड़ा है, यह हाथ से हार का अग्र भाग हर्ष से कुछ उठा रहा है।।(3.26)513।।

यहाँ तक राम इत्यादि लोगों का सीता के आलम्बन आश्रय का कथन होने से विलास है।

अथ परिसर्पः –

पूर्वोद्दिष्टस्य बीजस्य त्वङ्कच्छेदादिना तथा ।
नष्टस्यानुस्मृतिः शश्वत्परिसर्प इति स्मृतः ।।४२।।

(2) **परिसर्प–** अङ्क परिवर्तन के कारण पूर्वोद्दिष्ट किन्तु नष्ट (अर्थात् पहले विद्यमान किन्तु बाद में नष्ट हुई) बीज (वस्तु) का निरन्तर प्रिय स्मरण परिसर्प कहलाता है।।४२।।

यथा तत्रैव (बालरामयणे)–

'प्रतीहारः– (स्वगतम्) कथमेते क्षत्रियजनसमुचितेऽपि चापारोपणकर्मणि निखिलाः क्षत्रियाः वितथसामर्थ्या विद्यन्ते। तदेव परमनाकलितसारो विकर्तनकुलकुमार आस्ते। यद्वा किमनेनापि।

यस्य वज्रमणेर्भेदे भिद्यन्ते लोहसूचयः ।
करोतु तत्र किं नाम नारीनखविलेखनम् ।।(3.66)513।।

(विचिन्त्य) भवतु! तथापि सङ्कीर्तयाम्येनम् । अमुना कलितसारो हि वीरप्रकाण्डमम्भूतिः' इत्युपक्रम्य 'हेमप्रभा- सम्पण्णं पिअसहीए पाणिग्गहणं' (सम्पन्नं प्रियसख्याः पाणिग्रहणम्) (३.७९ पद्यानन्तरम्) इत्यन्तेन पूर्वं ताटकादिवधदृष्टस्य पश्चान्निखिलक्षत्रियदुरारोपधूर्जटिचापारोपणप्रभाववर्णनान्नष्टस्य रामभद्रोत्साहस्य तद्धनुर्भङ्गप्रेक्षारूपेणानुस्मरणात् परिसर्पः।

जैसे (बालरामायण में)–

''**प्रतीहारी–** (अपने मन में) क्या ये सभी क्षत्रिय क्षत्रियों के उपयुक्त चापारोपण-कार्य में व्यर्थ- पौरुष वाले हो गये हैं। परन्तु इनमें जिसके पौरुष की थाह नहीं चली है— ऐसा विकर्तन (सूर्य) कुल का कुमार है। अथवा इससे भी क्या-

जिस व्रजमणि के भेदन में लोहे की सूइयाँ टूट जाती हैं यहाँ स्त्रियों के नख की कुरेद क्या करेगी?।।(3.66)513।।

(सोचकर) फिर भी इसे कहूँगी। वीर पुरुषों की सन्तानों के पौरुष की थाह नहीं है।' यहाँ से लेकर —

''**हेमप्रभा–** प्रियसखी (सीता का) पाणिग्रहण हो गया'' (३.७९ पद्य से बाद) तक पहले देखे गये ताटका इत्यादि वध का तत्पश्चात् सम्पूर्ण क्षत्रियों के द्वारा दुरारोपित शङ्कर के धनुष को चढ़ाने के प्रभाव से वर्णन हुए रामभद्र के उत्साह का उस धनुष के भङ्ग को देखने के स्मरण के कारण परिसर्प है।

अथ विधूतम्–

नायकादेरीप्सितानामर्थानामनवाप्तितः ।
अरतिर्या भवेत्तद्धि विद्वद्भि विधुतं मतम् ।।४३।।
अथवानुनयोत्कर्षे विधूतं स्यान्निराकृतिः ।

(3) **विधूत–** नायक इत्यादि के अभीष्ट अर्थ (वस्तु) की प्राप्ति न होने के कारण उससे जो अरति (विराग, अनास्था) होती है, उसे विद्वानों ने विधूत कहा है अथवा अनुनय

की अधिकता होने पर (उसका) तिरस्कार होना विधूत कहलाता है।।४३-४४पू.।।

तथा तत्रैव भागर्वभङ्गनामनि चतुर्थेऽङ्के-

शतानन्दः-(सीतायाश्चिबुकमुन्नमय्य)-

यस्यास्ते जननी स्वयं क्षितिरयं योगीश्वरोऽयं पिता
मातमैथिली शिक्ष्यते कथय किं तस्या सुजातेस्तव ।।
स्नेहात्केवलमुच्यते पुनरिदं स्त्रीणां पतिर्दैवतं
यद्भूयास्त्वमास्य धर्ममपरं छायेव रामानुगा ।।(4/42)514।।

इत्युपक्रम्य "रामः – (विचिन्त्य स्वगतम्) रुदत्यपि कमनीया जानकी" (४.४७ पद्यानन्तरम्) इत्यन्तेन सीतायाः बन्धुविरहजनितारतिकथनाद् विधूतम्।

जैसे वहीं (बालरामायण के) भार्गवभङ्गनामक चतुर्थ अङ्क में-

"**शतानन्द-** (सीता की ठुड्डी को उठाकर)—

हे मैथिली! पृथ्वी जिनकी स्वयं माता है और ये योगीश्वर पिता है, ऐसी सुजन्मवाली तुम्हें क्या शिक्षा दी जाय। स्नेह से केवल यही कहा जा रहा है कि स्त्रियों का पति देवता होता है। तुम दूसरे धर्म को छोड़ कर केवल राम की अनुवर्तिनी होना।।'(4.42) 514।।

यहाँ से लेकर

"**राम-** (सोचकर अपने मन में) रोती हुई भी जानकी मनोहर है। (४.४७ पद्य से बाद) तक सीता का बन्धुजनों से वियोग के कारण अरति होने का कथन होने से विधूत है।

अथवा मतान्तरेण तत्रैव 'रामः- (समुपसृत्य) भगवन् भार्गव सदस्यं प्रसीद' (४/५८पद्यात्पूर्वम्) इत्यारभ्य 'जामदग्न्यः- नाभिवन्दनप्रसाद्यो रेणुकासूनुः (४/५८ पद्यात्पूर्वम्) इत्यत्र रामानुनयस्य भार्गवेणास्वीकृत्यत्वाद् विधूतम्।

अथवा दूसरे मत के अनुसार वहीं (बालरामायण में)-

"**राम-** (समीप में जाकर) हे भगवान् भार्गव (परशुराम)! प्रसन्न होइए"(४/५८ से पूर्व) से लेकर "**परशुराम-** यह रेणुकापुत्र अनुनय से प्रसन्न नहीं होता"(४/५८ से पूर्व) तक राम के अनुनय को परशुराम द्वारा स्वीकार न करने के कारण विधूत है।

अथ शमः-

अरतेः शमनं तज्ज्ञाः शममाहुर्मनीषिणः ।।४४।।

तथा तत्रैव (बालरामायणे ४/५१ पद्यात्पूर्वम्)-

'हेमप्रभा- जुज्जइ फुल्लकोदूहलराणं परसुरामदंणेण(युज्यते प्रफुल्लकौतूहलत्वं परशुरामदर्शनेन) इत्यारम्भ उण पुरदो रामचन्द्ररसः' (पुरतो रामचन्द्रस्य)' इत्यन्तं रामचन्द्र-पराक्रमकथनेन सीताया अरतिशमनाच्छमः।

(4) **शम-** उस अरति का उपशमन शमन कहलाता है।।४४उ.।।

जैसे वहीं (बालरामायण के चतुर्थ अङ्क में ४/५१ पद्य से पूर्व)-

"**हेमप्रभा-** परशुराम के दर्शन से कौतूहल उचित है" से लेकर "रामचन्द्र के सामने" तक रामचन्द्र के पराक्रम का कथन होने से सीता की अरति का उपशमन हो जाने से शम है।

अथ नर्म-

परिहासप्रधानं यद्वचनं नर्म तद्विदुः ।

(5) नर्म- (मनोरञ्जन के लिए प्रयुक्त) परिहास- प्रधान कथन नर्म कहलाता है॥४५पू.॥

यथा तत्रैव (बालरामायणे) तृतीयेऽङ्के-

'रामः- (सकण्ठानुरोधम्)

वाचा कार्मुकमस्य कौशिकपतेरारोपणायार्पितं
मद्दोर्दण्डहठाञ्चलेन तदिदं भग्नं कृतन्यक्कृतिः ।
नो जाने जनकस्तदत्र भगवान् व्रीडावशादुत्तरं
निक्षेप्त्रे नतकन्धरो भगवते रुद्राय किं दास्यति ।।(3.71)515।।

इत्यत्र जनकाधिपापलापेन हासप्रधानं नर्म ।

जैसे- वहीं (बालरामायण के) तृतीय अङ्क में-

राम- (रुद्ध कण्ठ से)—

इस कौशिकपति विश्वामित्र के कहने से यह धनुष चढ़ाने के लिए मुझे दिया गया, वह मेरे बाहुदण्ड के हठपूर्वक चढ़ाने से टूट गया। मैं नहीं समझा कि महाराज जनक लज्जावश नीची गर्दन करके त्रिपुरनाशक शङ्कर भगवान् को क्या उत्तर देंगे।। (3.71)।। ।।515।।

यहाँ जनक के प्रति अपलाप के कारण हास- प्रधान नर्म है।

अथ नर्मद्युतिः-

क्रोधस्यापह्नवार्थं यद्धास्यं नर्मद्युतिर्मता ।।४५।।

(6) नर्मद्युति- (परिहास से उत्पन्न) क्रोध को छिपाने के लिए जो हास्य होता है, वह नर्मद्युति कहलाता है॥४५उ.॥

यथा तत्रैव (बालरामायणे) चतुर्थेऽङ्के-

'विश्वामित्रः - (जामदग्न्यं प्रति)

रामो शिष्यो भृगुभव भवान् भगिनेयीसुतो मे
वामे बाहावुत तदितरे कार्यतः को विशेषः ।
दिव्यास्त्राणां तव पशुपतेरस्य लाभस्तु मत्त-

स्तत् त्वां याचे विरम कलहादार्यकर्मारभस्व ।।(4/69) ।।511।।

जामदग्न्यः– (विहस्य) मातुर्मातुल, न किञ्चिदन्तरं भवतो भवानीवल्लभस्य च।' इत्युत्क्रम्य "रामः– (विहस्य) जामदग्न्यः एकः पुनरयं शस्त्रग्रहणाधिकारो यद् गुरुष्वपि तिरस्कारः।" इत्यन्तेन भार्गवराघवयोः पूज्यविषयक्रोधापह्नवार्थं हास्यकथनान्नर्मद्युतिः

जैसे– वहीं (बालरामायण के) चतुर्थ अङ्क में–

"विश्वामित्र– (परशुराम के प्रति)—

हे परशुराम! राम मेरे शिष्य और आप मेरी बहन के पौत्र हैं अतः आप दोनों मेरे बाएँ और दाहिने हाथ हैं। कार्य से कौन विशिष्ट कहा जाए? आप ने दिव्यास्त्रों को शंङ्कर से और इसने मुझसे प्राप्त किया है। अतः आप से प्रार्थना करता हूँ कि कलह से रुकिए और सत्पुरुषों का आचरण कीजिए। (4/69)।।516।।

परशुराम– (हँसकर) हे माता के मामा! आप और शङ्कर में कोई अन्तर नहीं है तथा आपके शिष्य और शङ्कर शिष्य (मुझ) में कोई अन्तर नहीं है" यहाँ से लेकर—

'राम– (मुस्कराकर) यह केवल परशुराम का भी तिरस्कार करता है" तक परशुराम और राघव का पूज्य- विषयक क्रोध को छिपाने के लिए परिहास- पूर्ण कथन के कारण नर्मद्युति है।

अथ प्रगमनम्–

तत् तु प्रगमनं यत् स्यादुत्तरोत्तरभाषणम् ।

(7) प्रगमन– (बीज के अनुकूल) उत्तरोत्तर (उत्तर-प्रत्युत्तर-युक्त) कथन प्रगमन कहलाता है।।४६पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) (४.७१)–

रामः – किं पुनरिमाः सर्वंकषा रोषवाचः।

सर्वत्यागी परिणतवयाः सप्तमः पद्मयोनेः
शिष्यः शम्भोरिति च यदि वः प्रश्रयी रामभद्रः ।
तत् किं भीमा भृकुटिघटना तामिमां नास्मि सोढा
वोढा वीरव्रतविधिमयं यद्गुरुव्रीडमेति ।।517।।

जैसे– वहीं (बालरामायण में)–

जामदग्न्यः – ततः किम् ।

रामः– (सखेदम्)

यस्याचार्यकमिन्दुमौलिरकरोत् सब्रह्मचारी चिरं
जातो यत्र गुहश्चकार च भुवं यद्गीतवीरव्रताम् ।

तत् कोदण्डरहस्यमद्य भगवन् द्रष्टैष रामः स ते
हेलाज्जृम्भितजृम्भकेण धनुषा क्षत्रं च नालं वयम् ।।518।।

जामदग्न्यः– साधु रे क्षत्रियडिम्भ साधु' इत्यन्तेन भार्गवराघवयोरुक्तिप्रत्युक्ति-कथनात् प्रगमनम्।

'राम– सबको दुःखी करने वाली ये रोषभरी वाणियाँ क्यों? आप सर्वत्यागी, वृद्ध, ब्रह्मा से सातवें तथा शङ्कर के शिष्य हैं। अतः राम आपके प्रति नत है तो फिर भङ्कर भृकुटि क्यों बना रहे हैं। वीरव्रत- विघ को ढोने वाला मैं यदि गुरु दुःखी न हो तो सहन नहीं कर सकता।(4.71)।।517।।

जामदग्न्य – तो फिर।

राम– (खेदपूर्वक)–

भगवान् शंकर जिसके गुरु रहे, जिसके सहपाठी चिरकाल तक कार्त्तिकेय थे, जो पृथ्वी को अपने वीरोचित आचरण के गुणगान से भर दिया, उस धनुर्वेद की शिक्षा को यह राम आज उपेक्षापूर्वक जृम्भकास्त्रों को प्रकट करने वाले धनुष से देखेगा, क्षात्रतेज का आश्रय नहीं लूँगा।(4.72) ।।518।।

जामदग्न्य– 'साधु रे क्षत्रिय बालक! साधु'' तक परशुराम और राघव का उत्तर प्रत्युत्तर- युक्त कथन होने से प्रगमन है।

अथ विरोधः –

यत्र व्यसनमायाति निरोधः स निगद्यते ।।४६।।

विरोध– जहाँ (हित में) रुकावट पड़ जाती है, वह विरोध कहलाता है।।४६उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)–

जामदग्न्यः –

पक्वकर्पूरनिष्पेषमयं निरपिषत् त्रयम् ।
मम व्रीडां च चण्डीशचापं च स्वं च जीवितम् ।(4.65)।।519।।

जनकः– कथं संन्यस्तशस्त्रस्यापि पुनरस्त्रग्रहणक्षणो वर्तते।

इत्युपक्रम्य (४.६७)–

'प्रणमति जनकस्त्वां देवि दिव्यास्त्रविद्ये
मम धनुषि पुराणे सन्निकर्षं कुरुष्व ।
परिभवति मदग्रे भार्गवो रामभद्रं
प्रहिणु तदिह बाणान् वार्द्धकं मां दुनोति ।।520।।

दशरथः– भोः सम्बन्धिन् कृतं कार्मुकपरिग्रहव्यसनेन' इत्यन्तेन जनकस्य भार्गवनिमित्तस्य जरानिमित्तस्य वा व्यसनस्य कथनाद् विरोधः।

जैसे वहीं (बालरामायण में)–

"**जामदग्न्य–** इसने पके कपूर की भाँति तीन को पीस डाला- मेरी लज्जा को, शिव के धनुष को अपने जीवन को।(4.66)।।519।।

जनक– "शस्त्र- ग्रहण जिसने छोड़ दिया, तथाभूत मेरे भी शस्त्र ग्रहण का समय कैसे आ गया?" यहाँ से लेकर—

"हे दिव्यास्त्रविद्ये! जनक तुम्हें प्रणाम करता है। मेरे प्राचीन धनुष पर सन्निकर्ष कर। मेरे समने परशुराम राम का तिरस्कार कर रहे हैं अतः बाणों का प्रहार करो। वार्धक्य मुझे दुःखी कर रहा है।(4.67)।।520।।

दशरथ– हे सम्बन्धी! शस्त्र- ग्रहण करके ही आपने पर्याप्त कर दिया" तक जनक के परशुराम के लिए अथवा जरा के लिए व्यसन (विरोध) का कथन होने से विरोध है।

अथ पर्युपासनम्–

रुष्टस्यानुनयो यः स्यात् पर्युपासनमितीरितम् ।

(9) **पर्युपासन–** रुष्ट व्यक्ति को प्रसन्न करने के लिए अनुनय-विनय करना पर्युपासन कहलाता है।।४७पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे ४.६९)–

विश्वामित्रः– (जामदग्न्यं प्रति)

रामः शिष्यो भृगुभवः भवान् भागिनेयीसुतो मे
वामे बाहाहुत तदितरे कार्यतः को विशेषः ।
दिव्यास्त्राणां तव परशुपतेरस्य लाभस्तु मत्त-
स्तत् त्वां चाये विरम कलहादार्यकर्मारभस्व ।।521।।

इत्यत्र रोषान्धस्य भार्गवस्यानुनयो विश्वामित्रेण कृत इति पर्युपासनम् ।

जैसे वहीं (बालरामायण ४.६९ में)–

"**विश्वामित्र– (परशुराम के प्रति)-**

हे परशुराम! राम मेरे शिष्य और आप मेरी बहन के पोते हैं, अतः आप दोनों मेरे बाएँ ओर दाहिने हाथ हैं- कार्य से कौन विशिष्ट कहा जाय? आपने दिव्यास्त्रों को शङ्कर से और इसने मुझसे प्राप्त किया है अतः आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कलह से रुकिए और सज्जन पुरुषों का आचरण धारण कीजिए।।521।।

यहाँ क्रोधान्ध परशुराम का विश्वामित्र द्वारा अनुनय किया गया है, अतः पर्युपासन है

अथ पुष्पम्–

यद्विशेषाभिधानार्थं पुष्पं तदिति संज्ञितम् ।।४७।।

(10) **पुष्प–** (बीजोद्‌घाटन के लिए प्रयुक्त) विशेषता से युक्त कथन पुष्प नाम से जाना जाता है।।४७उ०।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) तृतीयेऽङ्के (३.११)–

(प्रविश्य) कोहलः–

कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने ।
नमः शृङ्गारबीजाय तस्मै कुसुमधन्वने ।।522।।

इत्युपक्रम्य (3/16)–

'प्रकटितरामाम्भोजः कौशिकवान् सपदि लक्ष्मणानन्दी।
सुरचापनमनहेतोरयमवतीर्णः शरत्समयः ।।523।।

इत्यन्तेन रामचन्द्रलक्षणार्थविशेषाभिधानात् पुष्पम्।

जैसे वहीं (बालरामायण के तृतीय अङ्क ३/११ में)–

"(प्रवेश करके) कोहल–

जो शङ्कर का बीज कामदेव कपूर के समान जल कर भी प्रत्येक व्यक्ति में शक्तिमान् है, उस शृङ्गार के बीज रूप में विद्यमान पुष्पधन्वा (कामदेव) को नमस्कार है"।।522।। यहाँ से लेकर-

"देव शिव के धनुष के मर्दन हेतु यह शरत्समय उत्पन्न हो गया। इसमें राम रूप कमल प्रकट हो गया है। जिसमें विश्वामित्र रूपी आमोद है तथा लक्ष्मण रूपी हंस को आनन्द देने वाला है। (3.16)।।523।।

यहाँ तक रामचन्द्र विषयक विशेष कथन होने से पुष्प है।

अथ वज्रम्–

वज्रं तदिति विज्ञेयं साक्षान्निष्ठुरभाषणम् ।

(11) **वज्र–** प्रत्यक्षरूप से प्रयुक्त निष्ठुर वचन वज्र कहलाता है।।४८पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) चतुर्थेऽङ्के (४/६१)–

जामदग्न्यः– किञ्च रे निदर्शितलाघव! राघव! तदाकर्णय यत्ते करोमि-

त्रुटितनिबिडनाडीचक्रवालप्रणाली-
प्रसृतरुधिरधाराचर्चितोच्चण्डरुण्डम् ।
मडमडितमृडानीकान्तचापस्य भङ्क्तुः
परशुरमरवन्द्यः खण्डयत्यद्य मुण्डम् ।।524।।

इत्युपक्रम्य "यः प्रेतनाथस्यातिथिथ्यमनुभवितुकाम" इत्यन्तेन वज्रनिष्ठभाषणाद् वज्रम्।

जैसे वहीं (बालरामायण के) चतुर्थ अङ्क (४/६१ में)-

"**जानदग्न्य-** अरे अपने कर्णनगर्व का करने वाले और मेरी लघुता को प्रदर्शित करने वाले राघव! तो तुम्हारे लिए जो मैं कर रहा हूँ उसे सुनो—

देवताओं द्वारा वन्दित फरसा आज मरमराते हुए शिवधनुष को तोड़ने वाले (राम) के टूटे हुए सघन शिराओं के समूह से नालियों के समान बहती हुई रुधिर धाराओं से व्याप्त, भयङ्कर कबन्ध वाले शिर को काट डाले"(4.61)।।524।।

यहाँ से लेकर " जो यमराज के आतिथ्य का अनुभव करना चाहता है" यहाँ तक वज्र के समान कठोर कथन होने से वज्र है।

अथोपन्यासः

युक्तिभिः सहितो योऽर्थ उपन्यास स इष्यते ।।४८।।

(12) **उपन्यास-** युक्तियों (तर्कों) से युक्त कथन उपन्यास कहलाता है।।४८उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

'मातलिः- अयं हि पितृभक्त्यतिशयः परशुरामस्य यदुत रेणुकाशिरच्छेदः। (४.२९ पद्यादनन्तरम्)।

इत्युपक्रम्य-

दशरथः-

यच्छिन्नं जननीशिरः पितृवराद्भूयोऽपि यत्संहितं
तच्छिष्यस्य पिनाकिनो महदभूच्चित्रं चरित्रं किल ।
तेनैतेन कथाद्भुतेन तु वयं वाचापि लज्जामहे
यद्वा ते गुरवोऽविचिन्त्यचरितास्तेभ्योऽयमस्त्वञ्जलिः।।(4.33)525।।

इत्यन्तेन उपपत्तिभिः पितुर्निर्देशकरणादपि मातृवधकरणस्यैव प्रतिपादनाद्वा गुरूणामविचिन्त्यचरितत्वोपन्यासेन सर्वोपपन्नत्वप्रतिपादनत्वाद् वा उपन्यासः।

जैसे वहीं (बालरामायण के चतुर्थ अङ्क में)-

"**मातलि-** यह परशुराम की पितृभक्ति का अतिशय है, जो माता का सिर काट डाला" (४९पद्य से बाद) यहाँ से लेकर—

दशरथ-

जो माता का शिरच्छेदन हुआ और पिता के वर से जो पुनः जुड़ गया, यह शङ्कर-शिष्य परशुराम का विचित्र चरित्र है। इस अद्भुत कथा को वाणी से कहने में भी हम लज्जा का अनुभव कर रहे हैं अथवा यह महनीय लोग अचिन्त्य चरित्र वाले हैं- इन्हें प्रणाम

है।"।।(4.33)525।।

यहाँ तक तर्कों के द्वारा पिता के निर्देश होने के कारण भी माता के वध रूपी कार्य का प्रतिपादन होने से अथवा गुरुओं के अशोचनीय जीवन के तर्कपूर्ण उद्घाटन का प्रतिपादन होने से उपन्यास है।

अथ वर्णसंहारः-

सर्ववर्णोपगमको वर्णसंहार उच्यते ।

(13) **वर्णसंहार-** (ब्राह्मणादि) सभी वर्णों का एक स्थान पर इकट्ठा हो जाना वर्णसंहार कहलाता है।।४९पू.।।

तथा तत्रैव (बालरामायणे चतुर्थेऽङ्के)-

'**जामदग्न्यः-** (कर्णं दत्त्वा आकाशे) किं ब्रूथ? केन न वर्णितं दाशरथेः शङ्करकार्मुकारोपणम्। को न विस्मितस्तद्भङ्गेन। (सापेक्षम्) (केन न वर्णितमित्यादि पठति) शृणुत भोः।

यः कर्त्ता हरचापदण्डदलने यश्चानुमन्ता ननु
द्रष्टा यश्च परीक्षिता च य इह श्रोता च वक्ता च यः ।
सद्यः खण्डितकण्ठपीठवलयः केलिं करिष्यत्ययं
कीलालोल्लसितस्य तस्य परशुर्भर्गप्रसादीकृतः ।(4/56)।।526।।

इत्युपक्रम्य-

लूनक्षत्रियकण्ठमण्डलगलत्कीलालकुल्याभृत-
प्राग्भारेषु सरःसु यस्त्रिषु रुषा चक्रे निवापक्रियाम् ।
श्रुत्वा धूर्जटिचापदण्डदलनं नाम्नश्च सापत्नकं
रामो राममयं स्वयं गुहाध्यायी समन्विष्यति ।।(4/56)527।।

इत्यन्तेन हरचापदलनस्य निषिद्धया कर्तृतया अनुमन्तृतया स्तोतृतया च राघवविश्वामित्रपौरादिपरामर्शेन ब्राह्मणक्षत्रियादिवर्णानां संग्रहणाद् वर्णसंहारः।

जैसे वहीं (बालरामायण के चतुर्थ अङ्क में)-

"**जामदग्न्य-** (कान लगाकर आकाश की ओर मुँह करके) क्या कहते हो? कि राम के धनुष चढ़ाने का किसने वर्णन नहीं किया (अर्थात् सभी लोगों ने किया) और उसको टूटने से कौन विस्मित (चकित) नहीं हुआ। (सापेक्ष रूप से) (कौन वर्णन नहीं किया इत्यादि दुहराते हैं) तो हे लोगों! सुनों—

"जो शङ्कर चाप को तोड़ने वाला है जो अनुमति देने वाला है, जो दर्शक है, जो परीक्षक है और जो वक्ता है- उन सभी के रक्त से प्रसन्न यह शङ्कर- प्रदत्त परशु कण्ठों को काट कर क्रीडा करेगा"।।4.56।।526।।

यहाँ से लेकर-

"जिसने पहले काटे गये क्षत्रियों के कण्ठ से निकल रहे रक्तनालियों से बने तीन तालाबों में पितरों की निवाप क्रिया किया था वही कार्त्तिकेय का सहपाठी (परशुराम) स्वयं शङ्कर के चाप का दलन सुन कर नाममात्र के शत्रु राम को ढूँढ़ रहा है। (4.57)।।527।।

यहाँ तक शङ्कर जी के चाप के दलन, आदेश देने और निवेदन करने के कारण राघव, विश्वामित्र तथा नगरवासियों के परामर्श से ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि वर्णों को इकट्ठे होने के कारण वर्णसंहार है।

अथ गर्भसन्धिः-

दृष्टादृष्टस्य बीजस्य गर्भस्त्वन्वेषणं मुहुः ।।४९।।
आप्त्याशापताकानुरोधादङ्गानि कल्पयेत् ।

(३) गर्भ सन्धि- गर्भसन्धि वह होती है जिसमें दिखायी पड़ने के बाद फिर नष्ट हो गये बीज का बार-बार अन्वेषण होता है, इसमें पताका नामक अर्थकृति हो भी सकती है और नहीं भी, किन्तु (फल के) प्राप्ति की सम्भावना अवश्य होती है।।४९उ.५०पू.।।

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः ।।५०।।
सङ्ग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा ।
उद्वेगः सम्भ्रमाक्षेपौ द्वादशैषां तु लक्षणम् ।।५१।।

गर्भसन्धि के अङ्ग- (1) अभूताहरण, (2) मार्ग, (3) रूप, (4) उदाहरण (5) क्रम, (6) संग्रह, (7) अनुमान, (8) तोटक, (9) अधिबल, (10) उद्वेग, (11) सम्भ्रम और (12) आक्षेप - ये बारह अङ्ग होते हैं। इनका लक्षण कहा जा रहा है।।५०उ.-५१।।

अथाभूताहरणम्-

अभूताहरणं तत्स्यात् वाक्यं कपटाश्रयम् ।

(1) अभूताहरण- कपटाश्रित (कपटयुक्त) कथन अभूताहरण कहलाता है।।५२पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) उन्मत्तदशाननाम्नि पञ्चमाङ्के-

जैसा वहीं (बालरामायण के) उन्मत्तदशानन नामक पञ्चम अङ्क में-

'माल्यवान्- (हसित्वा) वृद्धबुद्धिर्हि प्रथमं पश्यति चरमं कार्यम्। यन्मया धूर्जटिधनुरनुक्षेपणतः प्रभृति मतिचक्षुषा दृष्टमेव यदुत दशकन्धरोऽनुसन्धास्यति सीताहरणम्।
मायामयः- ततस्ततः।

माल्यवान्- ततश्च मया मन्दोदरीपितुर्मायागुरोर्मयस्य प्रथमशिष्यो विशारदनामा यन्त्रकारः सबहुमानं नियुक्तः सीताप्रतिकृतिकरणाय। विरचिता च सा रावणोपच्छन्दनार्थम्। अभिहितं च-

सूत्रधारचलद्दारुगात्रेयं यन्त्रजानकी ।
वक्त्रस्थशारिकालापा लङ्केन्द्रं वञ्चयिष्यति ।(5.6)।।528।।

इत्युपक्रम्य-

"रावणः- (पुनर्निरूप्य) सारिकाधिष्ठितवत्रं सीताप्रकृतियन्त्रम्। अहोः मतिमान् मायामयः। छलितोऽस्मि जनकराजपुत्र्याः प्रतिकृर्तिसमर्पणेन।" (५.२० पद्यानन्तरम्) इत्यन्तेन माल्यवत्कपटवाक्यसंविधानाद् अभूताहरणम्।

"**माल्यवान्-** (हँसकर)। बूढ़ी बुद्धि वाला पहले देखता है तत्पश्चात् कार्य का दुर्योग होता है। जैसा कि मैंने शङ्कर के धनुष के अधिपेक्ष से ही बुद्धि की आँख से देखा है कि रावण सीता का हरण करेगा।

मायामय- तब तब! **माल्यवान्-** मैंने मन्दोदरी के पिता मायाचार्य मय के प्रथम शिष्य विशारद नामक यन्त्रकार को आदर से सीता की प्रतिकृति करने के लिए नियुक्त किया है और उसने उसे बना दिया है तथा रावण को वञ्चित करने के लिए उसने कहा है कि-

लकड़ी के शरीर वाली यह यन्त्र- निर्मित जानकी सूत्रधार के द्वारा चलेगी और मुख में स्थित सारिका द्वारा बोलेगी तथा इस प्रकार रावण की वञ्चना करेगी" (5.6)।।528।।

यहाँ से लेकर-

"**रावण-** (पुनः देखकर) अरे! यह तो मुख में सारिका बैठाया हुआ सीता की प्रतिकृति का यन्त्र है। अरे! मायामय बुद्धिमान् है, जनकराज पुत्री के प्रतिकृति निर्माण से मैं छला गया हूँ।" (५/२० पद्य के बाद) यहाँ तक माल्यवान् के कपट वाक्य का संविधान होने से अभूताहरण है।

अथ मार्गः-

वास्तविकार्थकथा मार्गः

(2) मार्ग- वास्तविक अर्थ का कथन मार्ग कहलाता है।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) निर्दोषदशरथनामनि षष्ठाङ्के-

"मायामयः- आर्य! किमपि। द्विषतामप्यावर्जकमुदात्तजनचरितम्। पश्य-

क्रूरक्रमं किमपि राक्षसजातिरेका
तत्रापि कार्यपरतेति मयि प्रकर्षः ।
रामेण तु प्रवसता पितुराज्ञयैव
बाष्पाम्भसामहमपीह कृतो रसज्ञः"।।(6/9)।।529।।

इत्युपक्रम्य-

"मायामयः- ततश्च वामदेवप्रभृतिभिर्मन्त्रिभिर्यथावृत्तममिधाय सपादोपग्रहं

निवारितोऽपि तदिदमभिधाय प्रस्थितः-

मया मूर्ध्नि प्रह्वे पितुरिति धृतं शासनमिदं
स यक्षो रक्षो वा भवतु भगवान् वा रघुपतिः ।
निवर्तिष्ये सोऽहं भरतकृतरक्षां रघुपुरीं
समाः सम्यङ्नीत्वा वनभुवि चतस्रश्च दश च ।।(6/11) ।।530।।

इत्यन्तेन रामप्रवासविषयस्य मायामयदुःखस्य सत्यस्यैव व्यक्तत्वाद् वा मायामयादेः कपटत्वज्ञानेऽपि रामचन्द्रेण सत्यतयाङ्गीकाराद् वा मार्गः।

जैसे वहीं (बालरामायण के) निर्दोषदशरथ नामक षष्ठ अङ्क में-

''**मायामय-** हे आर्य! शत्रु का श्रेष्ठ पुरुषों के योग्य चरित्र कितना हृदयकारी होता है। देखिये—

एक तो राक्षस जाति ही क्रूर है उसमें भी कार्याधीनतावश उसका मुझमें प्रकर्ष है पर पिता की आज्ञा से प्रवास कर रहे राम ने मुझे भी आँसुओं का रस बना दिया।।''(6.9)।।529।।

यहाँ से लेकर-

''**मायामय-** तदनन्तर वामदेव आदि के द्वारा यथावत् बात को बता कर पैर पकड़ कर रोके जाने पर भी वह यह कह कहकर (अपने निश्चय पर) अडिग रहा-

मैंने शिर नवाकर पिता का यह है, यह समझकर यह आज्ञा ग्रहण की है। चाहे वह यक्ष हो, या राक्षस या भगवान् या रघुपति दशरथ। भरत के द्वारा अपनी रक्षितपुरी में वह मैं वन में चौदह वर्ष सम्यक् बिताकर कर लौटूँगा।।(6.11)530।।'

यहाँ तक रामप्रवास— विषयक सत्य मायामय-दुःख के व्यक्त होने से अथवा मायामय इत्यादि के कपट को जानने पर भी रामचन्द्र द्वारा उसे सत्यतापूर्वक स्वीकार करने के कारण मार्ग है।

अथ रूपम्-

रूपं सन्देहकृद्वचः ।।५२।।

(3) रूप- सन्देहपूर्ण कथन रूप कहलाता है।।५२उ.।।

तथा तत्रैव (बालरामायण) षष्ठाङ्के-

''कैकेयी- (सोद्वेगम्) पणमामि भअवदिं सरऊं जा पुव्वं दीसमाणा णयणपीऊसगण्डूसकबलं करेंति असि। सा संपदं हालाहलकबडपडिरूबा पडिहाअदि। किं पुण मे अओज्झादंसणे वि अकारणपज्जाउलं हिअअं ता जदि वच्छाणं रामभद्दरद-लक्खणसत्तुग्घाणं वधूणं च सीदामण्डवीउम्मीलासुदकित्तीणं दंसणेण विव्वासइस्सादि। (प्रणमामि भगवतीं सरयूं, या पूर्वं दृश्यमाना नयनपीयूषगण्डूषकबलं कुर्वती आसीत्। सा साम्प्रतं हालाहलकबलप्रतिरूपा प्रतिभाति। किं पुनर्मे अयोध्यादर्शनेऽपि अकारणपर्याकुलं

हृदयम् यदि वत्सानां रामभद्रभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नानां वधूनां च सीतामाण्डव्युर्मिलाश्रुतिकीर्तिनां दर्शनेन निर्वासयिष्यति।

दशरथः– (अयि कैकेयि!)

एतच्छ्रान्तविचित्रचत्वरपथं विश्रान्तवैतालिक-
श्लाघाश्लोकमगुञ्जितमञ्जुमुरजं विध्वस्तगीतध्वनिः ।
व्यावृत्ताध्ययनं निवृत्तसुकविक्रीडासमस्यं नम-
द्विद्वद्वादकथं कथं पुरमिदं मौनव्रते वर्तते ।।(6/12)531।।

कैकेयीदशरथयोरयोध्याविषयविषादवितर्कविन्यासाद् रूपम्।

जैसे वहीं (बालरामायण के) षष्ठ अङ्क में–

"**कैकेयी–** (उद्वेगपूर्वक) आप सरयू को प्रणाम करती हूँ। जो सरयू पहले नयनामृत का ग्रास थी वही अब हालाकृत विष का ग्रास प्रातीत होती है। क्योंकि अयोध्या के दर्शन से मेरा हृदय अकारण व्याकुल हो रहा है- यह व्याकुलता राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न- इन पुत्रों तथा सीता, माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति- इन पुत्रवधुओं के दर्शन से जाएगी।

दशरथ– हे कैकेयी!"

यह चौराहा विचित्र रूप से थका हुआ है, यहाँ वैतालिकों का प्रशंसा स्वर, मुरज बाजा, गीत ध्वनि, अध्ययन, सुकवियों की समस्यापूर्ति, विद्वानों का वाद-विवाद बन्द हो गया है तथा यह मौनता क्यों है।।"(6.12) ।।531।।

यहाँ कैकेयी और दशरथ का अयोध्या— विषयक विषाद के वितर्क का विन्यास होने से रूप है।

अथोदाहरणम्–

सोत्कर्षवचनं यत्तु तदुदाहरणं मतम् ।

(4) उदाहरण– जो उत्कर्ष युक्त कथन होता है, वह उदाहरण कहलाता है।।५३पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) असमपराक्रमनाम्नि सप्तमेऽङ्के–

"विभीषणः- सखे: सुग्रीव! अतिशशाङ्कशेखरमिदमाचेष्टितं रामदेवस्य। यदनेन-

निर्वाणं जलपानपीडनबलैर्यस्मिन् युगान्तानलै-
र्यस्याभाति दुकूलमुर्मुरमृदुः क्रोडे शिखी बाडवः ।
तस्याप्यस्य कृशानुसङ्क्रमकृतज्योतिः शिखण्डैः शरै-
र्दत्तश्चण्डदवाग्निडम्बरविधिर्देवस्य वारांनिधेः ।।(7.32)532।।

इत्युपक्रम्य "समुद्रः- तर्हि बालरामायणं राममेवोपसर्पामः । न हि राका-मृगाङ्कमन्तरेण चन्द्रमणेरानन्दजलनिष्यन्दः" (७/३६ पद्यात्पूर्वम्) इत्यन्तेन समुद्रक्षोभकरामचन्द्रोत्साहोत्कर्षकथनादुदाहरणम्।

जैसे वही (बालरामायण के असमपराक्रमनामक सप्तम अङ्क में)-

"**विभीषण-** हे मित्र सुग्रीव! राम का यह कार्य शिव से भी बढ़ कर है, जो इन्होंने जिस सागर में जलपान से पीड़ित बल वाली प्रलय- कालीन अग्नियाँ शमित हो गयीं हैं, और जिस सागर की गोंद में बडवानल तुषानल के समान मृदु हो गया है उस समुद्र को भी राम के बाणों ने, जिनमें अग्नि के सङ्क्रमण से ज्योति की किरणें निकल रहीं हैं, दावानल का स्वरूप दे दिया है। (7.32)।।532।।

यहाँ से लेकर "**समुद्र-** तो बालभूत नारायण राम के पास चलें। पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के बिना चन्द्रकान्त मणि में आनन्द द्रव नहीं होता।" (७/३६ पद्य से पूर्व) यहाँ तक समुद्र को क्षुभित करने वाले रामचन्द्र के उत्साह के उत्कर्ष का कथन होने के कारण उदाहरण है।

अथ क्रमः-

भावज्ञानं क्रमो यद्वा चिन्त्यमानार्थसङ्गतिः ।।५३।।

(5) **क्रम-** भाव का ज्ञान अथवा चिन्त्यमान अर्थ (कार्य) का संक्षेप करना क्रम कहलाता है।।५३उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) षष्ठाङ्के (६/४ पद्यादनन्तरम्)-

"माल्यवान्- (स्मृतिनाटितकेन) न जाने किं हि वृत्तं कैकेयीदशरथयोः (उपसर्पितकेन)" मायामयः- जयतु आर्यः! शूर्पणखा- जेदु जेदु कणिट्ठमादामहो (जयतु-जयतु कनिष्ठमातामहः)। "माल्यवान्- अथ किं वृत्तं तत्र ? मायामयः- यथादिष्टमार्येण" इत्युपक्रम्य माल्यवान्- (सहर्षम्) तर्हि विस्तरतः कथ्यताम्" इत्यन्तेन माल्यवच्चिन्ता-समकालमेव शूर्पणखामायामययोरुपगमनाद्वा माल्यवतो विलम्बासहाभिप्राय-परिज्ञानवता मायामयेन निष्पन्नस्य कार्यस्य संक्षेपकथनाद् वा क्रमः।

जैसे वहीं (बालरामायण के) षष्ठ अङ्क (६/४ पद्य से बाद) में-

"**माल्यवान्-** (स्मृति का अभिनय करके) न जाने दशरथ और कैकेयी का क्या हुआ। (पास आकर) **मायामय-** आर्य की जय होवे। **शूर्पणखा-** छोटे नाना की जय हो। **माल्यवान्-** वहाँ क्या हुआ ?

'**मायामय-** जैसा आपने कहा था?" यहाँ से लेकर "**माल्यवान्-** (प्रसन्नतापूर्वक) तो विस्तार से कहो" तक माल्यवान् सोचने के साथ शूर्पणखा तथा मायामय के पहुँचने से अथवा माल्यवान् का विलम्ब न सहने के अभिप्राय को जान लेने वाले मायामय के द्वारा निष्पन्न कार्य का संक्षेप में कथन होने से क्रम है।

अथ सङ्ग्रहः-

सङ्ग्रहः सामदानार्थसंयोगः परिकीर्त्तितः ।

(6) **सङ्ग्रह–** साम दान और अर्थ (प्रिय वचन) का संयोग (संग्रह) कहलाता है।।५४पू.।।

यथा- तत्रैव (बालरामायणे) सप्तमाङ्के–

समुद्रः (साभ्यर्थनम्)–

इन्दुर्लक्ष्मीरमृतमदिरे कौस्तुभः पारिजातः
स्वार्मातङ्गः सुरयुवतयो, देव धन्वन्तरिश्च ।
मन्थाम्रेडैः स्मरसि तदिदं पूर्वमेव त्वयात्तं
सम्प्रत्यब्धि शृणु जलधनस्त्वां प्रपन्नः प्रशाधि ।। (7.36)532।।

रामः- (सगौरवम्) भगवन् रत्नाकर! नमस्ते'' इत्युपक्रम्य ''समुद्रः-यथाह सप्तमो वैकुण्ठावतारः'' (७/४४ पद्यात्पूर्वम्) इत्यन्तेन समुद्ररामचन्द्रयोः परस्परप्रियवचन-सङ्ग्रहात्सङ्ग्रहः ।

जैसे वही (बालरामायण के सप्तम अङ्क में)–

''**समुद्र**- (अभ्यर्थनापूर्वक)

हे देव! क्या आप को याद है कि आपने पहले ही मथ कर चन्द्रमा, लक्ष्मी, अमृत, मदिरा, कौस्तुभ, पारिजात, ऐरावत, अप्सराएँ तथा धन्वन्तरी को ले लिया था। अब तो समुद्र में मात्र जल ही है। मैं आप की शरण में आया हूँ, आज्ञा दीजिए। (7.46)।।533।।

राम– (सम्मानपूर्वक) भगवन् समुद्र! आप को नमस्कार है'' यहाँ से लेकर ''समुद्र- विष्णु के सातवें अवतार की जैसी आज्ञा हो (७.४४ पद्य से पूर्व) तक समुद्र और रामचन्द्र के परस्पर प्रियवचन का सङ्ग्रह होने से सङ्ग्रह है।

अथानुमानम्–

अर्थस्याभ्यूहनं लिङ्गादनुमानं प्रचक्षते ।।५४।।

अनुमान– लिङ्ग (चिह्न) से कार्य का ऊहापोह द्वारा निश्चय करना अनुमान कहलाता है।।५४उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे (७/२१ पद्यात्पूर्वम्)–

''प्रतीहारी- (समन्तादवलोक्य) कथमयमन्यादृश इव लक्ष्यतेऽम्बुराशिः। बन्दी- (सचमत्कारं पुरोऽवलोक्य) पश्य! विलीयमानजलमानुषमिथुनमत्यर्थकदर्यमानशङ्खिनीयूथम्'' इत्युपक्रम्य-

प्रतीहारी- (सवितर्कम्)

त्रैयक्षात्किंस्विदक्ष्णः क्षयसमयशिखीनिर्गतश्चञ्चदर्चिः
किंस्विद्भित्वार्णवार्णास्युपरि परिणतः सर्वतोऽप्यौर्वबह्निः ।
किंस्वित्कालाग्निरुद्रः स्थगयसि जगतीमेष पातालमूला-

दाज्ञातं धाम्नि वारां रघुपतिविशिखाः प्रज्ज्वलन्तः पतन्ति

।।(7/30)534।।

इत्यन्तेन समुद्रक्षोभलिङ्गानुमितरामोत्साहार्थकथनादनुमानम्।

जैसे- वहीं (बालरामायण के ७/२१ पद्य से पूर्व)-

"**प्रतिहारी-** (चारों ओर देखकर) यह समुद्र कुछ दूसरे प्रकार का दिखायी पड़ रहा है। **बन्दी-** (आश्चर्य- सहित सामने देख कर) चितकबरे जलमानुष की जोड़ी वाले, अत्यन्त कदर्थित शङ्खिनी समूह वाले" यहाँ से लेकर-

प्रतिहारी- (सोचते हुए)

क्या यह शङ्कर की तीसरी आँख से प्रलयकालिक अग्नि अपनी लपटों को फैलाती हुई निकली है, अथवा क्या यह समुद्र के जलों को छेद कर सभी ओर से और्व अग्नि ऊपर निकल आयी है, अथवा क्या यह भयङ्कर कालाग्नि पातालमूल से संसार को शिथिल कर रहा है- हाँ समझ गया, समुद्र में राम के जलते हुए बाण गिर रहे हैं।"(7/30)।।535।।

यहाँ तक समुद्र के क्षोभ- रूपी चिह्न से अनुमान लगाये गये राम के उत्साह का कथन होने से अनुमान है।

अथ तोटकम्-

ससंरम्भं तु वचनं सङ्गिरन्ते हि तोटकम्-

(४) तोटक- आरम्भ- पूर्वक कथन तोटक कहलाता है ।।५५पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

"**हनूमान्-** यथादिशति स्वामी। (सर्वतोऽवलोक्य)-

दृप्यद्विक्रमकेलयः कपिभटाः शृण्वन्तु सुग्रीवजाम्

आज्ञां मौलिनिवेशिताञ्जलिपुटाः सेतोरिह व्यूहने ।

दोर्दण्डद्वयताडनश्लथधराबन्धोद्धृतान् भूधरान्

आनेतुं सकलाः प्रयातककुभः किं नाम वो दुष्करम् ।।(7/46)535।।

इत्युपक्रम्य अङ्कपरिसमाप्तेः कपिराक्षसादिसंरम्भकथनात् तोटकम्।

जैसे वहीं (बालरामायण के सप्तम अङ्क में)-

"**हनूमान्-** आप स्वामी की जैसी आज्ञा। (चारों ओर देखकर)-

हे अहङ्कार युक्त पराक्रम क्रीडा वाले वानरों! शिर पर हाथ जोड़ कर सेतुबन्धन के कार्य में सुग्रीव की आज्ञा सुनो- हाथों के प्रहार से जिनके पृथ्वी के बन्धन टूट गये हैं। ऐसे पर्वतों को लाने के लिए आप लोग दिशाओं में जावें, आप के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है।" (7.46) ।।535।।

यहाँ से अङ्क समाप्त होने तक वानरों-राक्षसों इत्यादि के समारम्भ का कथन होने

से तोटक है।

अथाधिबलम्-

बुधैरधिबलं प्रोक्तं कपटेनातिवञ्चनम् ।।५५।।

(9) **अधिबल-** कपट-पूर्वक आचरण से (दूसरों को) धोखा देना अधिबल कहलाता है।।५५उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) षष्ठाङ्के (६/५ पद्यात्पूर्वम्)-

''मायामयः- अथैकदा दयितस्नेहमय्या कैकेय्या सममसुरानीकविजयाय पूरितसुहृन्मनोरथे दशरथे त्रिविष्टपतिलकभूतं पुरुहूतं प्रभाववति समुपस्थितवति तद्रूपधारिणौ कुवलयाभिरामं रामं सपरिच्छदं छलयितुमयोध्यां शूर्पणखा अहं च प्राप्तवन्तौ'' इत्युपक्रम्य ''माल्यवान्- किमसाध्यं वैदग्धस्य'' (६/८ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन मायामयशूर्पणखाभ्यां कपटवेषधारणेन रामवामदेववञ्चनादधिबलम्।

जैसे वहीं (बालरामायण के) षष्ठ अङ्क (६/५ से पूर्व)—

''**मायमय-** एक दिन राक्षससेना के विजय के लिए प्रिय के स्नेह से युक्त मित्र के मनोरथ को पूरा करने वाले प्रभावशाली राजा दशरथ के इन्द्र के पास जाने पर उन दोनों (दशरथ और कैकेयी) के रूप को धारण करने वाले हम दोनों शूर्पणखा और मैं कमलदल के समान अभिराम राम को छलने के लिए अयोध्या में गये।'' यहाँ से लेकर ''माल्यवान्- चतुर के लिए असाध्य क्या है'' यहाँ तक मायामय और शूर्पणखा द्वारा कपटवेष धारण कर राम और वामदेव को धोखा देने से अधिबल है।

अथोद्वेगः-

शत्रुचोरादिसम्भूतं भयमुद्वेग उच्यते ।

(10) **उद्वेग-** शत्रु, चोर इत्यादि से उत्पन्न भय उद्वेग कहलाता है।।५६पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे ६/५६ पद्यात्पूर्वम्)-

(ततः प्रविशति गगनार्धावतरणनाटितकेन रत्नशिखण्डः) रत्नशिखण्डः- स्वस्ति महाराजदशरथाय। दशरथः- अपि कुशलं वयस्यस्य जटायोः। रत्नशिखण्डः- प्रियसुहृदुपयोगेन- न पुनः शरीरेण। दशरथः- भद्र! समुपविश्य कथ्यताम् । व्याकुलोऽस्मि'' इत्युपपक्रम्य ''कौशल्या- हा देव्व तुए किदविडंबं समत्थिअं वणगदं राहवकुटुंबं (हा देव! त्वया कृतविडम्बं समर्थितं वनगतं राघवकुटुम्बकम्)। सुमित्रा- न केवलं वणगदं भुवणगदं वि (न केवलं वनगतं भुवनगतमपि)। (६/७० पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन मातृगतभीतेरुपन्यासाद् उद्वेगः।

जैसे वहीं (बालरामायण में ६/५६ पद्य से पूर्व)-

''(तत्पश्चात् बीच आकाश से उतरने का अभिनय करता हुआ तथा चोट खाया

हुआ रत्नशिखण्ड प्रवेश करता है) **रत्नशिखण्ड**- महाराज दशरथ की जय होवे। **दशरथ** - प्रियमित्र जटायु सकुशल तो है? **रत्नशिखण्ड**- प्रियमित्र (आप) का उपकार करने से उनका कुशल है किन्तु शरीर से कुशल नहीं हैं। **दशरथ**- हे भद्र! बैठ कर कहो। मैं व्याकुल हूँ'' यहाँ से लेकर ''**कौशल्या**- हा भाग्य! तुमने सम्पूर्ण राघव कुटुम्ब को दुर्दशाग्रस्त कर दिया। **सुमित्रा**- केवल वनगामी को ही नही प्रत्युत घर में रहने वाले मात्र को भी'' (६/७१ पद्य से बाद) तक माताओं के भय का कथन होने से उद्वेग है।

अथ सम्भ्रमः

शत्रुव्याघ्रादिसम्भूतौ शङ्कात्रासौ च सम्भ्रमः ।।५६।।

(11) सम्भ्रम- शत्रु और व्याघ्र इत्यादि से उत्पन्न शङ्का और भय सम्भ्रम कहलाता है।।५६उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)–

''वामदेवः - (सास्रं स्वगतम्)

हे मद्वाणि निजां विमुञ्च वसतिं द्राग्देहि यात्रां बहिः

(राजानं प्रति प्रकाशम्)-

देव स्तम्भय चेतनां श्रवणयोरभ्येति शुष्काशनिः ।

(दम्पतीशङ्कां नाटयतः) वामदेवः–

त्वद्रूपाद्विपिनाय चीवरधरो धन्वी जटी शासनं

रामः प्राप्य गतः कुतश्चन वनं सौमित्रिसीतासखः ।। (6/13)536।।

(उभौ मूर्च्छतः) वामदेवः- देव! समाश्वसिहि। दशरथः- (समाश्वस्य) केन पुनः कारणेन।'' इत्युपक्रम्य, ''दशरथः- वत्स रामभद्र! मन्ये ममेव मलयाचलनिवासिनः प्रियवयस्यस्य जटायोरपि शोकशङ्कुरयं सर्वंकषो भविष्यति'' (६/५५ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन कौसल्यादशरथादीनां रामप्रवासविषयशङ्कात्रासानुवृत्तिकथनात् सम्भ्रमः।

जैसे वहीं (बालरामायण के षष्ठ अङ्क में)–

वामदेव- (आँसू बहाते हुए अपने मन में) हे मेरी वाणि! अपने निवास को छोड़ो। शीघ्र बाहर निकलो। (राजा के प्रति) हे देव! चेतना और वचन को स्तम्भित कीजिए, सूखा वज्रपात हो रहा है। (दशरथ और कैकेयी आकुलता को प्रदर्शित करते हैं।)

वामदेव-

तुम्हारे रूपधारी से आज्ञा पाकर लक्ष्मण और सीता के साथ राम चीवर, धनुष और जटाधारण करके कहीं चले गये।।(6.13) 536।।

(दोनों मूर्च्छित हो जाते हैं) **वामदेव**– महाराज! आश्वस्थ होइए। **दशरथ**– किसलिए''

यहाँ से लेकर "**दशरथ-** बेटा रामभद्र! मालूम पड़ता है कि मलयाचल के निवासी मेरे प्रियमित्र जटायु के भी स्वामी होवोगे" (६/५५ पद्य से बाद) तक कौसल्या दशरथ इत्यादि लोगों का रामप्रवास— विषयक शङ्का और भय के अनुवर्तन के कथन के कारण सम्भ्रम है।

अथाक्षेपः-

गर्भबीजसमाक्षेपमाक्षेपं परिचक्षते ।

(12) आक्षेप- गर्भस्थ बीज का समाक्षेप (उद्भेदन) आक्षेप कहलाता है।।५४पू.।।

यथा तत्रैव(बालरामायणे) पञ्चमाङ्के (५/७४ पद्यादनन्तरम्)-

(प्रविश्यापटीक्षेपेण छिन्ननासा कृतावगुण्ठना) शूर्पणखा- (साक्रन्दं पादयोर्निपत्य)- अज्ज एक्कमादुअ पेक्ख तक्खअचूडामणी उप्पाडिदो। बडबाणलजालाकलापअं घुंतलिदं। दसकण्ठकणिट्ठबहिणिए अच्चाहिदं (आर्य एकमातृक प्रेक्षस्व तक्षकचूडामणिरुत्पाटितः। बडवानलज्वालाकलापकं चूर्णितम्। दशकण्ठकनिष्ठभगिन्याः अत्याहितम् ।" इत्युपक्रम्य, "रावणः-(प्रकाशम्) ततः किं तस्याः। शूर्पणखा- सापि लङ्केस्सरस्स समुचिदत्ति अवहरंती तेहिं कावालिअव्वजोग्गा किदंहि। (सापि लङ्केश्वरस्य समुचितेति व्यवहरन्ती ताभ्यां कापालिकव्रतयोग्या कृतास्मि)" इत्यन्तेन अङ्कान्तगतभागेन सकलदेवतातेज तिरस्करणरावणातिशयवर्णनागर्भीकृतस्य रामोत्साहस्य शूर्पणखा कर्णनासानिकृन्तनरूपेण समुद्भेदादाक्षेपः।

जैसे वहीं (बालरामायण के) पञ्चम अङ्क (५/७४ पद्य से बाद)में-

"(पटाक्षेप से प्रवेश करके कटी नाक वाली घूँघट काढ़े शूर्पणखा पैरों पर गिर कर) **शूर्पणखा-** हे एक माता वाले (सगे भाई) आर्य (रावण)! देखो, तक्षक का चूड़ामणि उखाड़ लिया गया। बड़वानल का ज्वाला- समूह चूर्णित कर दिया गया। रावण की बहन का अत्यधिक अहित हो गया"। यहाँ से लेकर "**रावण** (प्रकट रूप से) तो उसका क्या? **शूपर्णखा-** यह लङ्केश्वर (रावण) के लिए उचित ही है। (सोचकर) हरण करती हुई कपालिक के योग्य बना दी गयी हूँ।" अङ्क के अंन्तिम भाग यहाँ तक सभी देवताओं के तेज-तिरस्कार करने वाले रावण की अतिशय का वर्णन होने से गर्भस्य (बीज) रूप राम के उत्साह के शूर्पणखा के कान-नाक काटने रूपी उद्भेदन के कारण आक्षेप है।

अथ विमर्शसन्धिः-

अत्र प्रलोभनक्रोधव्यसनाद्यैर्विमृश्यते ।।५७।।
बीजार्थो गर्भनिर्भिन्नः सोऽवमर्श इतीर्यते ।

(४) विमर्श (अवमर्श) सन्धि- जहाँ प्रलोभन, क्रोध, व्यसन इत्यादि से (फलप्राप्ति के विषय में) गर्भसन्धि द्वारा पर्यालोचन किया जाय और प्रस्फुटित बीजार्थ का सम्बन्ध दिखलाया जाय उसे विमर्श (अवमर्श) सन्धि कहा जाता है।।५७उ.५८पू.।।

प्रकरीनियताप्त्यानुगुण्यादत्राङ्गकल्पनम् ।।५८।।
अपवादोऽथ सम्फेटो विद्रवद्रवशक्तयः ।
द्युतिप्रसङ्गौ छलनव्यवसायौ निरोधनम् ।।५९।।
प्ररोचना विचलनमादानं स्युस्त्रयोदश: ।

विमर्श सन्धि के अङ्ग- विमर्श सन्धि के प्रकरी, नियताप्ति और आनुगुण्य से उत्पन्न ये तेरह अंग होते हैं- (1) अपवाद, (2) सम्फेट, (3) विद्रव, (4) द्रव, (5) शक्ति, (6) द्युति, (7) प्रसङ्ग, (8) छलन, (9) व्यवसाय, (10) निरोधन (विरोधन), (11) प्ररोचना, (12) विचलन और (13) आदान।।५९उ.-६०पू.।।

तत्रापवादः-

तत्रापवादो दोषाणां प्रख्यापनमितीर्यते ।।६०।।

(1) अपवाद- दोष का प्रख्यापन (अर्थात् किसी पात्र के दोष का प्रचार करना) अपवाद कहलाता है।।६०उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) अष्टमाङ्के वीरविलासनाम्नि (आदौ)-

"(ततः प्रविशतो राक्षसौ) एकः - सखे दुर्मुख! किमपि महान् सत्त्वभ्रंशो दशकण्ठस्य। यत्कुमारसिंहनादवधमाकर्ण्य न शोकः कृतो नाप्यमर्षः" इत्युपक्रम्य "त्रिजटा- कहं देवेण दिण्णो लज्जादेवीए जलांजली। (कथं देवेन दत्तो लज्जा-देव्यै जलाञ्जलिः)" (८/१० पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन रावणगतदुर्बुद्धिदोष-प्रख्यापनादपवादः।

जैसे वहीं (बालरामायण के) वीरविलास नामक अष्टम अङ्क (आदि में)-

"(तत्पश्चात् दो राक्षस प्रवेश करते हैं) **एक-** हे मित्र! दुर्मुख! रावण का कुछ महान् सत्त्वनाश हो गया, जो सिंहनाद के वध को सुन कर भी न तो शोक ही किया और न अमर्ष ही।" यहाँ से लेकर "**त्रिजटा-** आर्य (रावण) ने लज्जा देवी को जलाञ्जलि दे दिया।" (८/१० पद्य के बाद) यहाँ तक रावण के दुर्बुद्धि- दोष के प्रचार के कारण अपवाद है।

सम्फेटः -

दोषसङ्ग्रथितं वाक्यं सम्फेट प्रचक्षते ।

(2) सम्फेट- दोष से भरा हुआ कथन सम्फेट कहलाता है।।६१ पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

सुमुखः - (जनान्तिकम्) सखे दुर्मुख! किमपि शौर्यातिरेको रामानुजस्य यदमुना निकुम्भिलां प्रस्थितस्य कुमारमेघनादस्य सन्दिष्टं यत्-

यावन्नैव निकुम्भिलायजनतः सिद्धे हविर्लेहिनि
प्राप्तस्यन्दनबाणचापकवचः स्वयं मन्यसे दुर्जयम् ।

वैदेहीविरहव्यथाविधुरितेऽप्यार्ये विधाय क्रुधो
वन्ध्यास्तावदयं स शक्रविजयिंस्त्वां लक्ष्मणो जेष्यति ।।(8.15)537।।

इत्युपक्रम्य-

''(नेपथ्ये)

सीताप्रियं च दलितेश्वरकार्मुकञ्च
वालिद्रुहं च रचिताम्बुधिबन्धनञ्च ।
रक्षोहरणं च विजिगीषुविभीषणं च
रामं निहत्य चरणौ तव वन्दिताहे ।।(8/41)538।।

इत्यन्तेन लक्ष्मणेन्द्रजित्कुम्भकर्णानां रोषवाक्यग्रथनात्सम्फेटः ।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

''**सुमुख**- (जनान्तिक) हे मित्र दुर्मुखः! रामानुज (लक्ष्मण) का वीर्यातिरेक अत्यन्त अधिक है कि उन्होंने निकुम्भिला को जा रहे मेघनाद को सन्देश दिया कि- हे इन्द्रजेता मेघनाद!

जब तक निकुम्भिला में यज्ञ द्वारा अग्नि के सिद्ध होने पर प्राप्त, अपने रथ, धनुष, बाण और कवच को दुर्जय नहीं मान रहे हो, उससे पूर्व ही सीता की विरहव्यथा से व्यथित आर्य राम में क्रोध व्यर्थ कर तुम्हें लक्ष्मण जीतेगा''।।(8.15)537।।

''नेपथ्य में-

सीता के प्रिय, शिव- धनुष को तोड़ने वाले, बालि के शत्रु, समुद्र में सेतु निर्माता, राक्षसों के शत्रु और विजयेच्छुओं के भयकारी राम को मार कर आप के चरणों की वन्दना करूँगा।'' (8.41)।।538।।

यहाँ तक लक्ष्मण, मेघनाद और कुम्भकर्ण के रोषपूर्ण कथन का ग्रन्थन होने के कारण सम्फेट है ।

अथ विद्रवः-

विरोधवधदाहादिर्विद्रवः परिकीर्तितः ।।६१।।

(3) विद्रव- विरोध, वध, दाह इत्यादि विद्रव कहलाता है।।६१उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे ८/४८ पद्यादनन्तरम्)-

''सुमुखः- देव पदातिलवः सुमुखस्तु मन्यते लक्ष्मणादिधृक्षया कुमारमेघनादेन पावकीयः शरः संहित इति तत् एव भुवनाप्लोषः'' इत्युपक्रम्य, ''(दक्षिणतः) सुमुखः- अयमपरः क्षते क्षरावसेकः-

आकर्णाकृष्टचापोन्मुखविशिखशिखाशेखरः शूलपाणि-

बिभ्राणो भैरवत्वं बहुलकलकलारावरौद्राट्टहासः ।
ध्यातः सौमित्रिणाथ प्रसरदुरुत्तरोत्तालवेतालमाल-
स्तद्वक्त्रादुत्पतद्भिः समजनि शिखिभिर्भस्मादिन्द्रजिच्च ।।(8/85)539।।

(रावणः मूर्च्छति सर्वे यथोचितमुपचरन्ति) रावणः- (मूर्च्छाविच्छेदनटितकेन)" इत्यन्तेन कम्पितसेनाविक्षोभसुग्रीवनिरोधकुम्भकर्णवधेन्द्रजिद्भस्मीकरणरावणमूर्च्छादिसङ्कथनाद् विद्रवः।

जैसे वहीं (बालरामायण में ८/४८ पद्य से बाद)-

"**सुमुख-** हे महाराज! कुमार मेघनाद द्वारा लक्ष्मण को जलाने के लिए छोड़ा गया आग्नेयास्त्र सामान्य पैदलों को सरल समझ रहा है, इसी से यह भुवन-दाह हो रहा है" यहाँ से लेकर "(दक्षिण की ओर से) **सुमुख-** यह जले पर दूसरा नमक पड़ा—

लक्ष्मण ने खींची धनुष पर ऊर्ध्वमुख बाण के अग्रभाग में भौमाकृति शिरोभूषण युक्त, उत्ताल वेताल मालाओं से युक्त शूलपाणि (शङ्कर) का ध्यान किया और उसके मुख से उत्पन्न हो रही अग्नियों से मेघनाद भस्मशात् हो गया।। (8.85)।।539।।

(रावण मूर्च्छित हो जाता है सभी यथायोग्य उपचार करते हैं) (**रावण-** मूर्च्छा दूर होने के अभिनय के साथ)" यहाँ तक काँपती हुई सेना के विक्षोभ, सुग्रीव के निरोध, कुम्भकर्ण के वध, मेघनाद के भस्मीकरण, रावण की मूर्च्छा इत्यादि का कथन होने से विद्रव है।

अथ द्रवः-

गुरुव्यतिक्रमं प्राह द्रवं तु भरतो मुनिः ।

(4) द्रव- गुरुजनों के व्यतिक्रम (तिरस्कार) को भरतमुनि ने द्रव कहा है।।६२पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

करङ्कः-

धिक् शौण्डीर्यमदोद्धतं भुजवनं धिक् चन्द्रहासं च ते
धिक् वक्त्राणि निकृत्तकण्ठवलयप्रीतेन्दुमौलीनि च ।
निद्रालावतिघस्मरे प्रतिदिनं स्वापान्महामेदुरे
प्रत्याशा चिरविस्मृतायुधविधौ यत्कुम्भकर्णे स्थिता ।।(8/14)540।।

इत्यत्र स्वामिनोर्दशकण्ठकुम्भकर्णयोरनुजीविना राक्षसेन निन्दाकरणाद् द्रवः।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

करङ्क-

तुम्हारी वीर्यमद से उद्धत भुजाओं को धिक्कार है, तुम्हारी चन्द्रहास तलवार को धिक्कार है, काटे गये कण्ठ- मण्डलों से शङ्कर को प्रसन्न करने वाले तुम्हारे मुखों को धिक्कार

है क्योंकि आप की आशा निद्रालु, अतिभोजी, अहर्निश सोने से स्थूल और बहुत दिनों से अस्त्रविधि को भूले हुए कुम्भकर्ण पर टिकी है।।(8.14)।।540।।

यहाँ सेवक- राक्षसों द्वारा स्वामी दशकण्ठ (रावण) और कुम्भकर्ण की निन्दा करने के कारण द्रव है।

अथ शक्तिः-

उत्पन्नस्य विरोधस्य शमनं शक्तिरिष्यते ।।६२।।

(5) **शक्ति**- उत्पन्न विरोध का शमन करना शक्ति कहलाता है।।६२उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) रावणवधनामनि नवमाङ्के (९/४९ पद्यात्पूर्वम्)-
''पुरन्दरः- यत्कुलाचलसन्दोहदहनकर्मणि भगवान् कालाग्निरुद्रः''
इत्युपक्रम्य ''(नेपथ्ये)-

बाणैर्लाञ्छितकेतुयष्टिशिखरो मूर्च्छानमत्सारथि-
र्मांसास्वादनलुब्धगृधविहगश्रेणीभिरासेवितः ।
रक्षोनाथमहाकबन्धपतनक्षुण्णाक्षदण्डो हयै-
र्हेषित्वा स्मृतमन्दुरास्थितिहृतैर्लङ्का रथो नीयत ।।(9/56)541।।

इत्यन्तेन निरवशेषप्रतिनायकभूतरावणकण्ठोत्सादनकथनेन विरोधशमनात् शक्तिः।

जैसे वहीं (बालरामायण के) रावणवध नामक नवम अङ्क में (९/४९ पद्य से पूर्व)-

''**पुरन्दर**- कुलपर्वतों के समूह को जलाने में जो प्रलय- कालिक कालाग्निमय भगवान् रुद्र करते हैं'' से लेकर-

''(नेपथ्य में)

राम के बाणों से विक्षत ध्वजदण्ड वाला, मूर्छित सारथि वाला, मांस खाने के लोभी गृध पक्षियों से सेवित तथा राक्षसराज रावण के कबन्ध (धड़) के गिरने से नष्ट अक्षदण्ड वाला रावण का रथ अश्वों द्वारा अश्वशाला की यादवश हिंकार करते हुए लङ्का को ले जाया जा रहा है।।''

यहाँ तक पूर्ण रूप से प्रतिनायक बने रावण के कण्ठ के विनाश के कथन से विरोध का शमन होने के कारण शक्ति है।

अथ द्युतिः -

द्युतिर्नाम समुद्दिष्टा तर्जनोद्वेजने बुधैः ।

(7) **द्युति**- तर्जन (अर्थात् डाँटना) और उद्वेजन (भययुक्त बनाकर उद्वेलित कर

देने) को आचार्यों ने द्युति कहा है।।६३पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) अष्टमाङ्के-

"**रावणः**- (ऊर्ध्वमवलोक्य) किमयमतिसत्वरः सुरसमाजः। शङ्के कतिपय-यातुधानवधात् तापसं प्रति प्रीयते। (सक्रोधतर्जनम्)—

हर्षोत्कर्षः किमयममराः क्षुद्ररक्षोवधाद् व-
स्तन्मे दोष्णां विजितजगतां विक्रमं विस्मृताः स्थ ।
किं चाद्यैव प्रियरणरसो बोध्यते कुम्भकर्ण-
स्तूर्णं जेता स च दिविषदां बोध्यते मेघनादः ।।(8/12)542।।

इत्युपक्रम्य "(नेपथ्ये) विरएह केलिआकड्ढणपाडणिज्जं गोउरदुवारं। वोढेह विविहप्पहरणसण्णाहदहसहस्साइं। (विरचयत केलिकाकर्षणपातनीयं गोपुरद्वारम्। वहत विविधप्रहरणसन्नाहदशसहस्राणि" (८/१२ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन देवतातर्जनलङ्कापुर-जनोद्वेजनकथनाद्द्युतिः।

जैसे वहीं (बाल रामायण के) अष्टम अङ्क में-

"**रावण**- (ऊपर देखकर) यह देव समाज अत्यधिक शीघ्रता में क्यों है? मालूम पड़ता है कुछ राक्षसों के मारे जाने से तपस्वी (राम) के प्रति ये प्रेमयुक्त हो गये हैं। (क्रोधपूर्वक डाँटते हुए)-

हे देवों! क्षुद्रराक्षसों के वध से तुम्हें यह कैसा हर्ष हो रहा है। संसार को जीतने वाले मेरी भुजाओं के पराक्रम को तुम लोग भूल गये? और क्या रणप्रेमी कुम्भकर्ण आज ही जगाया जा रहा है अथ देवजेता मेघनाद शीघ्र ही बुलाया जा रहा है।।542।।

यहाँ से लेकर (नेपथ्य में) कील से खींचने वाले गोपुर के द्वार को बनाओ, विविध अस्त्रों के समूहों को एकत्र करो" (८/१२से बाद) यहाँ तक देवताओं को डाटने और लङ्का-निवासियों को उत्साहित करने का कथन होने से द्युति है।

अथ प्रसङ्गः-

प्रस्तुतार्थस्य कथनं प्रसङ्गः परिकीर्तितः ।।६३।।
प्रसङ्ग कथयन्त्यन्ये गुरूणां परिकीर्तनम् ।

(7) **प्रसङ्ग**- प्रस्तुत-कार्य का कथन प्रसङ्ग कहलाता है। अन्य कतिपय (धनञ्जय आदि) लोग गुरुओं (सम्मानीय लोगों) के गुण-कीर्तन को प्रसङ्ग कहते हैं।।६३उ.-६४पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) नवमाङ्के (आदौ)-

"(प्रविश्य) यमपुरुषः- तत्रभवतो लुलायलक्ष्मणः सकलप्राणिभृतां विहितनाशस्य कीनाशस्य किमपि विश्वातिशायिनी प्रभविष्णुता" इत्युपक्रम्य "दशरथः- भगवन् गीर्वाणनाथ' सप्रसादमितो निधीयन्तां दृष्टयः। (९.१८ पद्यात्पूर्वम्) इत्यन्तेन यमपुरन्दरादि-

पूज्यसङ्कीर्तनाद् वा प्रस्तुतराक्षसवधरूपस्यार्थस्य प्रसञ्जनाद्वा प्रसङ्गः।

जैसे वहीं बालरामायण के नवम अङ्क के प्रारम्भ में-

"(प्रवेश करके) **यमदूत**- महिषचिह्न वाले और सभी प्राणियों के विनाशक आदरणीय यमराज की प्रभावशालिता विश्व में बढ़ कर है" यहाँ से लेकर "**दशरथ** -भगवान देवराज! कृपा करके इधर दृष्टि डालिए"(९/१८ पद्य से पूर्व) तक यम, इन्द्र इत्यादि सम्माननीय लोगों के कीर्तन अथवा प्रस्तुत राक्षस वध रूपी कार्य को उपभोग में लाने से प्रसङ्ग है।

अथ छलनम् -

अवमानादिकरणं कार्यार्थं छलनं विदुः ।।६५।।

(8) छलन- कार्य (प्रयोजन) के लिए तिरस्कार (अपमान) करना छलन कहलाता है।।६५उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामयणे)-

"चारणः- (कर्णं दत्वा आकाशे) किमाह रामभद्रः। रे रे राक्षसपुत्र!

यद् गौरीचरणाब्जयोः प्रथमतस्त्यक्तप्रणामक्रियं
प्रेमार्द्रेण सविभ्रमेण च पुरा येनेक्षिता जानकी ।
लूनं ते तदिदं च राक्षसशिरो जातं च शान्तं मनः
शेषच्छेदविधिस्तु सम्प्रति परं स्वर्बन्दिमोक्षाय मे ।। (9.40)543।।

किमाह रावणः। रे रे क्षत्रियापुत्र! सुलभविभ्रमचर्मचक्षुरसि" इत्युपक्रम्य- "रामः- तदित्थमभिधानमपवित्रं ते वक्त्रम्। इतो निर्विशतु वधशुद्धिम्"। (९/४६ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन रामरावणाभ्यां परस्परावमानकरणाच्छलनम्।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

"**चारण**- (ध्यान से सुनकर आकाश में) रामभद्र ने क्या कहा? अरे-अरे राक्षसीपुत्र!

जिसने प्रथमतः पार्वती के चरण रूपी कमलों में प्रणाम- क्रिया को तोड़ दिया और पहले जिसने प्रेमार्द्र होकर तथा विलास के साथ जानकी को देखा था तुझ राक्षस का वह मुख काट दिया गया और मेरा मन शान्त हो गया अब शेष मुखों का काटना तो स्वर्ग लोक के बन्दियों को मुक्त करने के लिए है। (9.40)।।543।।

रावण ने क्या कहा! अरे-अरे क्षत्रिय पुत्र! जिसमें भ्रान्ति सहज सम्भव है, ऐसे चर्ममय नेत्र वाले हो" से लेकर "**राम**- इस प्रकार कहने से अपवित्र हुआ तुम्हारा मुख है। तो वह वध रूपी पवित्रता को प्राप्त करे"(९/४६ से बाद) तक राम और रावण के द्वारा परस्पर अपमान करने के कारण छलन है।

अथ व्यवसायः-

व्यवसायः स्वसामर्थ्यप्रख्यापनमितीर्यते ।

(9) **व्यवसाय-** अपनी सामर्थ्य (शक्ति) का प्रदर्शन करना व्यवसाय कहलाता है॥६६पू.॥

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

भो लङ्केश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते
कोऽयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किञ्चिद् गतम् ।
नैवं चेत् खरदूषणत्रिशिरसां कण्ठासृजा पङ्किलः
पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्याबन्धबन्धूकृतः ।।(9/19)544।।

इत्युपक्रम्य, "किमाह रावणः। रे रे मानुषीपुत्र! अयमसौ अक्षत्रियो रावणः। क्षत्रियो रामः। तदत्र दृश्यताम्। कतरो विनेयः। कतरो विनेता इति- किमाह रामभद्रः। हैं हो अमानुषीपुत्र! क्षत्रियो रामः। अयमसौ अक्षत्रियो रावणः। तदत्र दृश्यताम्, कतरो विनेयः। कतरो विनेता।" (९/२६ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन रामरावणाभ्यां स्वसामर्थ्यप्रख्यापनाद्व्यवसायः।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

हे रावण! सीता को दे दीजिए। राम स्वयं याचना कर रहे हैं। आप का यह कौन सा मतिविभ्रम है। नीति को स्मरण कीजिए। अब भी कुछ नहीं गया (बिगड़ा) है। यदि ऐसा नहीं करते तो खर-दूषण और त्रिशिरा के रक्त से सिक्त मेरा यह बाण जो धनुष की प्रत्यञ्चा के बन्धन से मित्र बना हुआ है, सहन नहीं करेगा।।(9.19)544।।

यहाँ से लेकर "रावण ने क्या कहा! हे मनुष्य! यह रावण अक्षत्रिय है और तुम राम क्षत्रिय हो। तो देखो कौन नम्र हो रहा है और कौन नम्रकर्त्ता है। रामभद्र ने क्या कहा? हे अमनुष्य! यह क्षत्रिय राम है तुम अक्षत्रिय रावण हो तो देखे कौन विनेता और कौन विनत होता है।"(९/२६ पद्य से बाद) यहाँ तक राम और रावण का परस्पर अपने सामर्थ्य का प्रदर्शन करने से व्यवसाय है।

अथ विरोधनम्-

विरोधनं निरोधोक्तिः संरब्धानां परस्परम् ।।६५।।

(10) **विरोधन** - परस्पर पराक्रम के कथन को विरोधन कहते हैं॥६५ उ.॥

यथा तत्रैव (बालरामायणे ९/२६ पद्यादनन्तरम्)-

"चारणः- (विलोक्य) कथममर्षणदर्पिताभ्यां रामरावणाभ्यां परस्परं प्रत्युपक्रान्तमिषुवर्षाद्वैतम्।" इत्युपक्रम्य, "चारणः नन्वयमोंकारो रावणशिरोमण्डलच्छेदनविद्यायाः" (९/३१ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन संरब्धयो रामरावणयोः दिव्यास्त्रप्रयोगरूपपरस्परसंरोधकथनाद् विरोधनम्।

जैसे (वहीं बालरामायण में ९/२६ पद्य से बाद में)-

"**चारण-** (देखकर) क्या क्रोध से भरे राम और रावण ने परस्पर बाण वर्षा का द्वैतयुद्ध प्रारम्भ कर दिया?" यहाँ से लेकर "**चारण-** यह रावण के शिरोमण्डल की छेद-विद्या का प्रणव (प्रारम्भ) है" (९/३९ पद्य से बाद) तक पराक्रम वाले राम और रावण के दिव्यास्त्र प्रयोगरूप परस्पर पराक्रम का कथन होने से विरोधन है।

अथ प्ररोचना-

सिद्धवद्भाविनोऽर्थस्य सूचना स्यात्प्ररोचना ।

(11) **प्ररोचना-** किसी सिद्धपुरुष के समान भविष्य में होने वाले कार्य की सूचना देना प्ररोचना कहलाता है।।६६पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) अष्टमाङ्के (८/१३ पद्यादनन्तरम्)

"करङ्कः- (जनान्तिकम्) सखे कङ्कालक! देवः कुम्भकर्णं प्रबोधयति। न पुनरात्मानम्। किञ्च प्रयत्नेन बोधितोऽप्यसौ रामेण पुनः शायितव्य एव। कङ्कालकः- मण्णे विभीसणं वज्जिअ सव्वस्सावि एसा गई (मन्ये विभीषणं वर्जयित्वा सर्वस्याप्येषा गतिः)।

करङ्कः- तथैव" इत्यत्र भविष्यतः कुम्भकर्णादिराक्षसनाशस्य कङ्कालककरङ्काभ्यां सिद्धवद् निश्चित्य सूचनात् प्ररोचना ।

जैसे वहीं (बालरामायण के अष्टम अङ्क ८/१३ पद्य से बाद में)-

"**करङ्क-** (जनान्तिक) हे मित्र कङ्कालक! स्वामी (रावण) कुम्भकर्ण को जगा रहे हैं क्योंकि प्रयत्न से जगाये जाने पर ये राम के द्वारा दीर्घ निद्रा को प्राप्त करेंगे।**कङ्कालक-** मैं समझता हूँ कि विभीषण को छोड़ कर सभी की यही गति होगी।"

करङ्क- "ठीक है।" यहाँ होने वाले कुम्भकर्ण इत्यादि राक्षसों के नाश का कङ्कालक और करङ्क के द्वारा सिद्धपुरुष की भाँति निश्चय करके सूचना होने से प्ररोचना है।

अथ विचलनम्-

आत्मश्लाघा विचलनम्

(12) **विचलन-** आत्म-प्रशंसा को विचलन कहते हैं।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

करङ्कः- (प्रकाशम्) किमाह कुम्भकर्णः ।

आस्तां धनुः किमसिना परतो भुसुण्डी-
चक्रैरलं भवतु पट्टिशमुद्गराद्यैः ।
धावत्प्लवङ्गपृतनाकबलक्रमेण
यास्याम्यहं सुहिततां च रिपुक्षयं च ।।(8.37)545।।

रावणः– "साधु वत्स साधु। सत्यं ममानुजोऽसि" इत्युपक्रम्य—

अनेन लङ्का यदकारि मत्पुरी
हनूमतो गात्रगतेन भस्मसात् ।
निजापराधप्रशमाय तद्ध्रुवं
निषेवितुं मामुपयाति पावकः ।।(8.48)546।।

इत्यन्तेन रावणकुम्भकर्णाभ्यामात्मश्लाघा कृतेति विचलनम्।

जैसे वहीं (बालरामायण में)—

"**करङ्कक**– (प्रकट रूप से) कुम्भकर्ण ने क्या कहा?

धनुष को छोड़ो। भुसुण्डी (भुजाली) का समूह, पट्टिश और मुद्गर दूर करो! मैं दौड़ रही वानरी सेना को खाते हुए तृप्ति तथा शत्रुक्षय करूँगा।(8.36)।।545।।

रावण— ठीक है वत्स! ठीक है। सचमुच मेरे भाई हो।" यहाँ से लेकर-

हनुमान् के शरीर में लगने पर इस अग्नि ने जो मेरी पुरी लङ्का को भस्मसात् कर दिया था उस अपने अपराध की शान्ति के लिए यह अग्नि मेरी सेवा करने आ रहा है।।(8.48) 546।।

यहाँ तक रावण और कुम्भकर्ण द्वारा आत्मप्रशंसा की गयी है अत: विचलन है।

अथादानम्

आदानं कार्यसंग्रहः ।।६६।।

(13) **आदान**- कार्य -संग्रह (अर्थात् नाटक के विस्तार को समेटना) आदान कहलाता है।।६६उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) नवमाङ्के–

पुरन्दरः– सखे दशरथ! कथमयमनन्यसदृशाकारो रामभद्रपुरुषाकारः।

अतश्च–

निर्दग्धत्रिपुरेन्धनोऽस्तु गिरिशः क्रौञ्चाचलच्छेदने
पाण्डित्यं विदितं गुहस्य किमु तावज्ञातयुद्धोत्सवौ ।
लूत्वा पङ्कजलावमाननवनं वीरस्य लङ्कापते-
र्वीराणां चरितादृभुतस्य परमे रामः स्थितः सीमनि ।।(9.57)547।।

इत्युपक्रम्य–

"रणरसिकसुरस्त्रीमुक्तमन्दारदामा
स्वयमयमवतीर्णो लक्ष्मणन्यस्तहस्तः ।
विरचितजयशब्दो वन्दिभिः स्यन्दनाङ्काद्

दिनकरकुललक्ष्मीवल्लभो रामभद्रः ।।(9.59)548।।

इत्यन्तेन निखिलभुवनबाधाशमनरूपरावणवधसम्पादितधर्मादिलक्षणकार्यविशेष-सङ्ग्रहणादादानम्।

जैसे वहीं (बालरामायण के नवम अङ्क में)-

पुरन्दर- हे मित्र दशरथ! रामभद्र का यह पौरुष अद्वितीय है। अत:—

शङ्कर त्रिपुररूपी इन्धन के पूर्णतः जलाने वाले रहें और कार्त्तिकेय का पण्डित्य क्रौञ्चपर्वत के भेदन में विदित रहे किन्तु उन दोनों को संग्राम- उत्सव का ज्ञान नहीं है। इस लङ्कापति रावण के मुख रूपी वन को कमल की कटाई की भाँति काट कर राम वीरों के अद्‌भुत चरित्र की सीमा पर स्थित हो गये हैं।(9.57)।।547।।

"रणप्रेमी देवाङ्गनाओं के द्वारा जिन पर मन्दार की माला बरसायी गयी है, लक्ष्मण पर जो हाथ रखे हैं, बन्दियों ने जिसका जयकार किया है और सूर्यकुल की लक्ष्मी के जो वल्लभ हैं, वे रामचन्द्र रथ से स्वयं उतर गये"।(9.59)।।548।।

यहाँ तक सभी भुवनों के विघ्न शमन रूपी रावण के वध से सम्पादित धर्मादि रूपी कार्य विशेष के संक्षेप होने के कारण आदान है।

अथ निर्वहणसन्धिः

मुखसन्ध्यादयो यत्र विकीर्णा बीजसंयुतः ।
महाप्रयोजनं यान्ति तन्निर्वहणमुच्यते ।।६७।।

(५) निर्वहण सन्धि- (स्थान-स्थान पर) बिखरे हुए बीज वाली मुख इत्यादि सन्धियाँ जहाँ प्रधान- प्रयोजन को प्राप्त करती हैं, तब उसे निर्वहण सन्धि कहा जाता है।।६७।।

विमर्श- बीज से सम्बन्धित मुख इत्यादि पूर्व कथित चारों सन्धियों में स्थान-स्थान पर विखरे हुए अर्थ जब प्रधान- प्रयोजन की सिद्धि के लिए समेट लिये जाते हैं तब उसे निर्वहण सन्धि कहा जाता है।

सन्धिविबोधौ ग्रथनं निर्णयपरिभाषणे प्रसादश्च ।
आनन्दसमयकृतयो भाषोपनिगूहने तद्वत् ।।६८।।
अथ पूर्वभावसयुजावुपसंहारप्रशस्ती च ।
इति निर्वहणस्याङ्गान्याहुरमीषां तु लक्षणं वक्ष्ये ।।६९।।

निर्वहण सन्धि के अङ्ग- निर्वहण सन्धि के ये (चौदह) अङ्ग होते हैं— (1) सन्धि, (2) विबोध, (3) ग्रन्थन, (4) निर्णय, (5) परिभाषण, (6) प्रसाद, (7) आनन्द, (8) समय, (9) कृति, (10) भाषा, (11) उपगूहन, (12) पूर्वभाव (13) उपसंहार और (14) प्रशस्ति।

इनके लक्षण कहे जा रहे हैं।।६८-६९।।

अथ सन्धिः-

सन्धिर्बीजोपगमः

(1) **सन्धि-** बीज का उपगम (पुनरान्वेषण)सन्धि कहलाता है।

यथा तत्रैव (बालरामायणे) राघवानन्दनामनि दशमाङ्के (आदौ)-

"(ततः प्रविशति सशोका लङ्का) लङ्का- हा दुद्धरतवविसेस परितोसिदारविन्दासण तिहुवणेक्कमल्ल दसकण्ठ हा हेलाबन्दीकिदमहिन्द मेहनाद हा समरसंरंभसुप्पसण्ण कुंभकण्ण कहिंसि देहि मे पडिवअणं। (हा दुर्धरतपोविशेष परितोषितारविन्दासन त्रिभुवनैकमल्ल दशकण्ठ! हा हेलाबन्दी कृतमहेन्द्र मेघनाद! हा समासंरम्भसुप्रसन्न कुम्भकर्ण! क्वासि देहि मे प्रतिवचनम्" इत्युपक्रम्य "(प्रविश्य सत्वरा)" अलका- सखि धर्मजेतरि विभीषणेऽपि नेतरि तत्रभवती सशोकशङ्कुरिव। लङ्का- जं तिणेत्तमित्तस्स णअरी भणदी। (यत् त्रिनेत्रमित्रस्य नगरी भणाति)" (१०.२पद्यात्पूर्वम्) इत्यन्तेन दुष्टराक्षसशिक्षारूपरामोत्सा-हबीजोपगमनात् सन्धिः।

जैसे वहीं (बालरामायण के) राघवानन्दनामक दशम अङ्क में (प्रारम्भ से)-

"(तत्पश्चात् शोक- युक्त लङ्का प्रवेश करती है) **लङ्का-** हाय! दुश्चर तपस्या से कमलासन (ब्रह्मा) को प्रसन्न करने वाले रावण! हाय, अनायास ही महेन्द्र को बन्दी बनाने वाले मेघनाद! हाय, भीषण-संग्राम में प्रसन्न होने वाले कुम्भकर्ण! कहाँ हो? प्रत्युत्तर दो!" यहाँ से लेकर "**अलका-** हे सखी! धर्म से विजय प्राप्त करने वाले तथा भयङ्करों को भयभीत करने वाले विभीषण के शासन में आदरणीया आप क्यों चिन्तित हैं। **लङ्का-** शङ्कर के मित्र (कुबेर) की नगरी जैसा आप कहें" यहाँ तक दुष्ट राक्षस की शिक्षा रूप राम के उत्साह रूपी बीज के पुनरन्वेषण होने से सन्धि है।

अथ विबोधः-

कार्यस्यान्वेषणं विबोध स्यात् ।

(2) **विबोध-** कार्य (फल) का अन्वेषण विबोध कहलाता है।।१६१पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

"(नेपथ्ये)

रुद्राणि लक्ष्मि वरुणानि सरस्वति द्यौः
सावित्रि धात्रि सकलाः कुलदेवताश्च ।
शुद्ध्यर्थिनी विशति शुष्मणि रामकान्ता
तत्सन्निधत्त सहसा सह लोकपालैः ।।" (10/20)।।549।।

इत्युपक्रम्य "लङ्का- अहो देवदाणं वि सीदापक्खवादो। अथवा सव्वो गुणेसु रज्जदि ण सरीरेसु। (अहो देवानामपि सीतापक्षपातः अथवा सर्वो गुणेषु रज्यति। न शरीरेषु (१०/८ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन सीताशुद्धिरूपकार्यान्वेषणाद् विबोधः।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

"(नेपथ्य में)

हे पार्वती! हे लक्ष्मी! हे वरुण-पत्नी! हे सरस्वती! हे स्वर्ग देवता! हे सावित्री! हे पृथ्वी! तथा हे समस्त कुलदेवियों! राम की पत्नी सीता आत्मशुद्धि के लिए अग्नि में प्रविष्ट हो रही है अतः आप लोग इन्द्रादि लोकपालों के सहित सभी सावधान हो जाँए।(10/2)।।549।।

यहाँ से लेकर "**लङ्का**- अहा! देवताओं का भी सीता के प्रति पक्षपात है अथवा सभी लोग गुणों से ही पूज्य होते हैं, शरीर से नहीं।" यहाँ तक सीता- शुद्धि रूप कार्य के अन्वेषण के कारण विबोध है।

अथ ग्रथनम्-

ग्रथनं तदुपक्षेपः

(3) **ग्रन्थन**- कार्य के उपक्षेप (उपसंहार) को ग्रन्थन कहा जाता है

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

बद्धः सेतुर्लवणजलधौ क्रोधवह्नेः समित्त्वं
नीतः रक्षःकुलमधिगताः शुद्धिमन्तश्च दाराः ।
तेनेदानीं विपिनवसतावेषपूर्णप्रतिज्ञो
दिष्ट्यायोध्यां व्रजति दयिताप्रीतये पुष्करेण ।।(10/15)550।।

तद्भोः सकलप्लवङ्गयूथपतयः" इत्यारभ्य-

"सम्प्रेषितश्च हनुमान् भरतस्य पार्श्वं
लङ्काङ्गनाचकितनेत्रनिरीक्षितश्रीः ।
यात्येष वारिनिधिलङ्घनदृष्टसारो
राज्याभिषेकसमयोचितकार्यसिद्धेः ।।(10/16)551।।

इत्यन्तेन रामाभिषेकरूपपरमकार्योपक्षेपाद् ग्रथनम् ।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

इस राम ने लवण समुद्र पर सेतु बाँधा, राक्षस-कुल को क्रोधाग्नि की समिधा बनाया तथा अग्नि से शुद्ध की गयी पत्नी को भी प्राप्त किया। अतः सौभाग्य से वनवास की प्रतिज्ञा को पूरा करके प्रेयसी सीता की प्रीति के लिए पुष्पक विमान से अयोध्या को जा रहे हैं।(10.15)।।550।।

तो हे सभी वानर समूहों के स्वामीगण" यहाँ से लेकर-

"समुद्र लङ्घन से प्रकट सामर्थ्य वाले तथा लङ्का की स्त्रियों द्वारा चकित नेत्रों से देखे गये हनुमान् राज्याभिषेक के अवसर पर उपयुक्त कार्यों के सम्पादन के लिए भरत के पास जा रहे हैं।"(10.16)।।551।।

यहाँ तक राम के राज्याभिषेक रूप परम कार्य के उपसंहार के कारण ग्रथन है।

अथ निर्णयः-

स्यादनुभूतस्य निर्णयः कथनम् ।।६०।।

(4) **निर्णय-** किये गये अनुभव का कथन निर्णय कहलाता है।।६०उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

रामः- (अपवार्य)

अय्यस्मदग्रकरयन्त्रनिपीडितानां
धाराम्भसां स्मरसि मज्जनकेलिकाले ।
सुभ्रू त्वया निजकुचाभरणैकयोग्य-
मत्राब्जवल्लिदलमावरणाय दत्तम् ।।(10/76)552।।

किञ्च-

तदिह कलहकेलौ सैकते नर्मदायाः
स्मरसि सुतनु किञ्चिन्नौ पराधीनसुप्तम् ।
उषसि जलसमीरप्रेङ्खणाचार्यकार्यं
तदनु मदनमुद्रां तच्च गाढोपगूढम् ।। (10/66)।।553।।

इत्यत्र रामेण एवानुभूतार्थकथनान्निर्णयः।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

राम- (छिपाकर)—

हे सुन्दर भौंहों वाली (सीता)! यहाँ जलावगाहन की क्रीडा में मेरे कराग्र रूपी यन्त्र से आहत जल की धाराओं को रोकने के लिए तुमने अपने स्तनों के आच्छादन के लिए एक मात्र उपयुक्त कमल के पत्र को रख लिया था।।(10.76)552।।

और भी-

हे सुन्दरी! इस नर्मदा के बालुकामय तट पर प्रणय-कलह में वह पराङ्मुख शयन, सजल हवा का स्पन्दन रूपी आचार्यत्व (मान छोड़ों की शिक्षा) तथा उसके बाद काम का आवेश और वह गाढ़ आलिङ्गन क्या याद है।।(10.66)553।।

यहाँ राम के द्वारा अपने अनुभव किये गये अर्थ का कथन होने से निर्णय है।

अथ परिभाषणम्-

परिभाषणं त्वन्योऽन्यं जल्पनमथवा परीवादः।

(५) परिभाषण- परस्पर की बातचीत अथवा निन्दा करना परिभाषण कहलाता है।।७१पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे १०/९२ पद्यादनन्तरम्)-

सीता-अज्जउत्त! दसकण्ठणिसूअण वाराणसीसंकित्तणेण सुमराविदम्हि अक्खिआणइं जणणीभूदं मिहिलां महाणअरीं। (आर्यपुत्र! दशकण्ठनिषूदन! वाराणसीसङ्कीर्तनेन स्मारितास्मि अक्ष्यानन्दं मिथिलां महानगरीम्" इत्युपक्रम्य "विभीषणः- इह हि खलु क्षत्रियान्तकरस्य भङ्गो भार्गवमुनेर्दत्तः।

सुग्रीवः-

अपां फेनेन तृप्तोऽसौ स्नातश्चन्द्रिकया च सः ।
यदप्रसूतकौशल्यं क्षत्रं क्षपितवान् मुनिः ।।(10/94)554।।

इत्यन्तेन सीतारामविभीषणसुग्रीवाणामन्योऽन्यसञ्जल्पनेन वा सुग्रीवेण भार्गवपरीवादसूचनाद्वा परिभाषणम्।

जैसे वहीं (बालरामायण में १०/९२ पद्य से बाद)—

"**सीता-** हे आर्यपुत्र दशकण्ठषूदन! वाराणसी की चर्चा से नेत्रों को आनन्द देने वाली मातृतुल्य महानगरी मिथिला की याद आ रही है" यहाँ से लेकर "**विभीषण**- यहाँ पर महाराज राम ने क्षत्रियों के विनाशक परशुराम मुनि को पराभूत किया था।

सुग्रीव-

वे मुनि जल के फेन में तृप्त हुए तथा चन्द्रिका से स्नान किये जिन्होंने कौशल्या से उत्पन्न क्षत्रियों के अतिरिक्त क्षत्रियों का विनाश किया।"(10.94)।।554।।

यहाँ तक सीता, राम, विभीषण और सुग्रीव की परस्पर बातचीत अथवा परशुराम की निन्दा की सूचना के कारण परिभाषण है।

अथ प्रसादः-

शुश्रूषादिप्राप्तं प्रसादमाहुः प्रसन्नत्वम् ।।७१।।

(5) प्रसाद- सेवा इत्यादि से प्रसन्न करने के प्रयत्न को प्रसाद कहते हैं।।७१उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

"**रामः- (हस्तमुद्यम्य)**

हं हो पुष्पक वायुवेग मुनिना धूमः पुरः पीयते
छायां मा कुरु कोऽप्ययं दिनमणावेकाग्रदृष्टिः स्थितः ।

दूरादत्र भव प्रदक्षिणगतिः स्थाणोरिदं मन्दिरं
किञ्चित् तिष्ठ तपस्विनस्तव पुरो यावत्प्रयान्त्यध्वनः ।।(10/59)555।।

इत्युपक्रम्य-

''अगस्त्यः-

का दीयतां तव रघूद्वह सम्यगाशी—
निष्कण्टकानि विहितानि जगन्ति येन ।
आशास्महे ननु तथापि सह स्ववीरै-
र्भूकाश्यपोपमसुतद्वितया वधूः स्यात् ।।(10/64)556।।

रामः- परमनुगृहीतं रघुकुलम्।'' इत्यन्तेन अगस्त्यदत्ताशीर्वादरूपप्रसाद-कथनात् प्रसादः।

जैसे वहीं (बालारामायण में)-

"हे वायु के समान वेग वाले पुष्पक! आगे कोई मुनि घर्म का पान कर रहा है अतः तुम छाया मत करो, क्योंकि कोई मुनि सूर्य पर एकाग्र दृष्टि लगाकर स्थित है। यह शिव का मन्दिर है, यहाँ प्रदक्षिणा करो। तुम्हारे आगे से तपस्वी लोग जब तक अन्यत्र चले जॉय तब तक कुछ देर ठहरो'' ।(10.59)।।555।।

यहाँ से लेकर—

''अगस्त्य-

हे रघुश्रेष्ठ! मैं आपको कौन सा आशीर्वाद दूँ जिसने संसार को निष्कण्टक बना दिया है तथापि आशा करता हूँ कि अपने सुग्रीवादि वीरों के साथ ही वधू (सीता) पृथिवी के इन्द्र (दशरथ) के समान दो पुत्रों वाली होगी। (10.64)।।556।।

राम- रघुकुल अत्यन्त अनुगृहीत हुआ'' यहाँ तक अगस्त्य द्वारा दिये गये आशीर्वाद रूप प्रसन्नता के कथन के कारण प्रसाद है।

अथानन्दः-

अभिलषितार्थसमागममानन्दं प्राहुराचार्याः ।

(6) आनन्द- अभिलषित वस्तु के समागम (मिल जाने) को आचार्य लोग आनन्द कहते हैं।।६२।।पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

''रामः- हं हो विमानराज! विमुच्य वसुधासविधवर्तिनीं गतिं किञ्चदुच्चैर्भव कुतूहलिनी जानकी दिव्यलोकदर्शनव्यतिकरस्य । (ऊर्ध्वगतिनाटितकेन)

यथा यथारोहति बद्धवेगं
व्योम्नः शिखां पुष्पकमानताङ्गि ।

महाम्बुधीनां वलयैर्विशालै-
स्तथा तथा सङ्कुचितेव पृथ्वी ।।(10/22)557।।

सुरचारणकिन्नरविद्याधरकुलसङ्कुलं गगनगर्भमीक्षस्व। (प्रविश्य) विद्याधरः- अतः परमगम्या अस्मादृशां भुवः। स च ब्रह्मलोक इति श्रूयते।'' इत्यन्तेन सीतादीनामभिलषित-दिव्यलोकदर्शनरूपार्थसिद्धेरानन्दः।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

राम- हे विमान राज! पृथ्वी के समीप गमन को त्याग कर कुछ ऊपर हो जाओ। सीता को स्वर्ग की वस्तुओं को देखने का कौतूहल है। (ऊपर जाने का अभिनय करते हुए)—

हे सुन्दरी (सीता)! वेगशील पुष्पक जैसे-जैसे ऊपर आकाश की चोटी पर चढ़ रहा है, वैसे ही पृथ्वी महासागरों के विशाल मण्डलों के साथ सङ्कुचित सी होती जा रही है।(10.22)।।557।।

गन्धर्वों, किन्नरों और विद्याधरों से व्याप्त आकाश को देखो। (प्रवेश करके) **विद्याधर-** हे रामभद्र! हम लोगों के लिए यह पृथ्वी अगम्य है। ऊपर ब्रह्मलोक है, ऐसा सुना जाता है'' यहाँ तक सीता इत्यादि लोगों का अभिलषित दिव्यलोक दर्शन रूप अर्थ सिद्धि के कारण आनन्द है।

अथ समयः-

समयो दुःखापगमः ।

(8) **समय-** दुःख के दूर हो जाने को समय कहते हैं।

यथा तत्रैव (बालरामायणे १०/१०० पद्यात्पूर्वम्)-

''भरतः- आर्य रावणविद्रावण! भरतोऽहमभिवादये।'' इत्युपक्रम्य, ''(भरत-सुग्रीवविभीषणाः परस्परं परिष्वजन्ते)'' इत्यन्तेन बन्धूनामन्योऽन्यावलोकनपरिष्वङ्गादिभिर्दुः-खापगमकथनात् समयः।

जैसे वहीं (बालरामायण में १०/१०० पद्य से पूर्व)-

''**भरत-** हे रावण संहारक आर्य (राम)! मैं भरत अभिवादन कर रहा हूँ'' यहाँ से लेकर ''भरत, सुग्रीव और विभीषण परस्पर गले मिलते हैं''। १०/१०० पद्य से पूर्व) यहाँ तक भाइयों का परस्पर एक दूसरे को देखने, आलिङ्गन आदि द्वारा दुःख के दूर हो जाने के कथन के कारण समय है।

अथ कृतिः-

कृतिरपि लब्धार्थसुस्थिरीकरणम् ।। ७३।।

(9) **कृति-** प्राप्त अर्थ का स्थिरीकरण कृति कहलाता है।

यथा तत्रैव (बालरामायणे १०/९६ पद्यात्पूर्वम्)-

''(प्रविश्य) हनूमान्- देव मत्तः श्रुतवृत्तान्तो वसिष्ठः समं भरतशत्रुघ्नाभ्यामन्या-

भिश्च प्रकृतिभिर्भवदभिषेकसज्जास्तिष्ठति" इत्युपक्रम्य, "वशिष्ठः- (का दीयतां तव रघूद्वहः (१०/९८) सम्यगाशीरित्यादि पठति) रामः- आर्षं हि वचनं विभिन्नवक्तृकमपि न विसंवदति यदगस्त्यवाचा वसिष्ठोऽपि ब्रूते"(१०/९८ पद्यादनन्तरम्) इत्यन्तेन अगस्त्य-लब्धाशीर्वादस्य वसिष्ठवचनसंवादेन स्थिरीकरणात् कृतिः।

जैसे वहीं (बालरामायण में १०/९६) पद्य से पूर्व-

"(प्रवेश करके), **हनूमान-** महाराज मेरे द्वारा समाचार सुन कर भरत, शत्रुघ्न तथा अन्य प्रजाओं के साथ वसिष्ठ आप के अभिषेक करने के लिए तैयार बैठे हैं।" यहाँ से लेकर "**वसिष्ठ-** हे रघुकुलश्रेष्ठ तुम्हें क्या दिया जाय (१०/९८) इत्यादि आशीर्वाद को पढ़ते हैं। **राम-** ऋषिवचन विभिन्न वक्ताओं द्वारा भी विसंवादित नहीं होता। जो अगस्त्य की वाणी थी, वही वसिष्ठ भी बोलते हैं"(१०.९८ पद्य के बाद) यहाँ तक अगस्त्य द्वारा प्राप्त आशीर्वाद का वसिष्ठ के संवाद द्वारा स्थिरीकरण होने से कृति है।

अथ भाषणम्-

मानाद्याप्तिर्भाषणम्

(10) भाषण- सम्मान इत्यादि की प्राप्ति को भाषण कहते हैं।

तथा तत्रैव (बालरामायणे)-

वसिष्ठः-

रामो दान्तदशाननः किमपरं सीता सतीष्वग्रणीः
सौमित्रिः सदृशोऽस्तु कस्य समरे येनेन्द्रजिन्निर्जितः ।
किं ब्रूमो भरतञ्च रामविरहे तत्पादुकाराधकं
शत्रुघ्नः कथितोऽग्रजस्य च गुणैर्वन्द्यं कुटुम्बं रघोः ।।(10/102)558।।

इत्यत्र वसिष्ठेन रामकुटुम्बस्य रामचन्द्रादिसत्पुरुषोत्पत्तिस्थानतया तल्लक्षण-बहुमानप्राप्तिकथनाद्भाषणम्।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

वसिष्ठ- राम ने रावण का वध किया, अधिक क्या कहें— सीता सतियों में श्रेष्ठ है और लक्ष्मण के समान कौन है जिसने युद्ध में मेघनाद को परास्त किया । भरत का क्या कहना है जो राम के विरह में उनकी पादुका की आराधना किये हैं, शत्रुघ्न की तो प्रशंसा अपने ज्येष्ठ भाई के ही गुणों से हो गयी।(10.102)।।558।।

यहाँ वसिष्ठ के द्वारा रामचन्द्र इत्यादि सत्पुरुषों की उत्पत्ति के कारण राम के कुटुम्बियों की अत्यधिक सम्मान प्राप्ति के कथन से भाषण है।

अथोपगूहनम्-

उपगूहनमद्भुतप्राप्तिः ।

(11) उपगूहन– अद्भुत वस्तु की प्राप्ति उपगूहन कहलाती है।।७४पू.।।

यथ तत्रैव (बालरामायणे)–

"अलका- अहो नु खलु भोः पतिव्रतामयं ज्योतिः अनभिभवनीयं ज्योतिरन्तरैः। यतः–

प्रविशन्त्या चितावक्त्रं जानक्या परिशुद्धये ।
न भेदः कोऽपि निर्णीतः पयसः पावकस्य च ।।(10/9)559।।

(विचिन्त्य)" इत्युपक्रम्य–

"(नेपथ्ये)

योगीन्द्रश्च नरेन्द्रश्च यस्याः स जनकः पिता ।
विशुद्धा रामगृहिणी बभौ दशरथस्नुषा ।।(10/14)560।।

इत्यन्तेन सीतायाः निःशङ्कज्वलनप्रवेशनिरपायनिर्गमन-रूपाश्चर्यकथनादुपगूहनम्।

जैसे वही (बालरामायण में)–

"**अलका**– अहो! पातिव्रत तेज अन्य तेजो से अभिभूत नहीं होता। क्योंकि—

आत्मशुद्धि के लिए समित्समिद्ध अग्नि के मुख में प्रवेश करती हुई सीता को जल और अग्नि में कोई भेद का कोई निश्चित ज्ञान नहीं हो रहा है।।(10.9)।।559।।

(सोचकर) यहाँ से लेकर–

"(नेपथ्य में)

योगीश्वर और नरेन्द्र जिसके पिता हैं, वह राम की गृहिणी, दशरथ की पुत्रवधू, अग्नि में शुद्ध हो गयी"।।(10.14)560।।

यहाँ तक सीता के निःशाङ्क अग्नि में प्रवेश तथा यथावत् रूप में बाहर निकल आने रूप आश्चर्य का कथन होने से उपगूहन है।

अथ पूर्वभावः–

दृष्टक्रमकार्यस्य स्याद् पूर्वभावस्तु ।। ७४।।

(12) **पूर्वभाव**– कार्य के दर्शन को पूर्वभाव कहते हैं।।७४उ.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे १०/१०२ पद्यादनन्तरम्)–

"वत्स रामभद्र! प्रशस्तो मुहूर्तो वर्तते। तदध्यास्व पित्र्यं सिंहासनम्।"इत्युपक्रम्य "वसिष्ठः- रामभद्र! धन्योऽसि। यस्य ते भगवान् कुबेरोऽर्थी" इत्यन्तेन वसिष्ठेन रामभद्रस्याभिषेकाङ्गीकरणकुबेरविमानप्रत्यर्पणरूपयोरर्थयोर्दर्शनात् पूर्वभावः।

जैसे वहीं (बालरामायण में १०/१०२ पद्य से पूर्व)–

"बेटा रामभद्र! शुभ मुहूर्त है तो अपने पिता के सिंहासन पर बैठो।" यहाँ से लेकर "**वसिष्ठ**- रामभद्र! तुम धन्य हो कि भगवान् कुबेर तुमसे माँगने आये हैं" यहाँ तक वसिष्ठ

के द्वारा रामभद्र के अभिषेक को स्वीकार करना और कुबेर के विमान को वापस करना रूप कार्य के दर्शन के कारण पूर्वभाव है।।

अथोपसंहारः-

धर्मार्थाद्युपगमनादुपसंहारःकृतार्थताकथनम् ।

(13) **उपसंहार-** धर्म, अर्थ इत्यादि की प्राप्ति की कृतज्ञता ज्ञापित करना उपसंहार कहलाता है।।७५पू.।।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

वसिष्ठः- वत्स रामभद्र! किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि। रामः— किमतः परं प्रियमस्ति—

रुग्णं चाजगवं न चापि कुपितो भर्गः सुरग्रामणी
सेतुश्च ग्रथितः प्रसन्नमधुरो दृष्टश्च वारांनिधिः ।
पौलस्त्यश्चरमः स्थितश्च भगवान् प्रीतःश्रुतीनां कविः
प्राप्तं यानमिदं च याचितवते दत्तं कुबेराय च ।(10/104)561।।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

वसिष्ठ- बेटा रामभद्र! फिर तुम्हारा और कौन सा उपकार करूँ। **राम-** इससे अधिक प्रिय और क्या हो सकता है—

आजवगव धनुष को भङ्ग किया, देवश्रेष्ठ शिवजी क्रुद्ध भी नहीं हुए, सेतु भी बाँध दिया तथा समुद्र सौम्य और प्रसन्न ही दिखलायी पड़े, रावण का वध किया तथापि वेद प्रणेता भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न ही रहे और इस विमान को प्राप्त किया तथा याचना करने वाले कुबेर को दान भी कर दिया।।(10.104)561।।

इत्यत्र रुग्णं चाजगवम् इत्यनेन भूतपतिधनुर्दलनेन सीताधिगमरूपकामप्राप्तेः, पौलस्त्यश्चरमः स्थितः इत्यनेन शरणागतरक्षणेन धर्मप्राप्तेः प्राप्तं यानमिदं चेत्यत्र विमानरत्नलाभेनार्थप्राप्तेश्च न चापि कुपितो भर्गः सुरग्रामणीरित्यादिभिःपदान्तवाक्यैः रामचन्द्रेण स्वकृतार्थताकथनादुपसंहारः।

किञ्च रुग्णं चाजगवं सेतुश्च ग्रथित इत्यादिभ्यां युद्धोत्साहसिद्धेः पौलस्त्यश्चरमः स्थितिः इत्यत्र विभीषणस्य पालनेन दयावीरसिद्धेः याचितवते दत्तं कुबेराय चेत्यनेन दानवीरसिद्धेश्च रामभद्रेण स्वकृतार्थताकथनाद्वा उपसंहारः।

यहाँ 'आजगवभङ्ग हुआ' इससे राजा जनक के धनुर्भङ्ग से सीता की प्राप्ति रूप कामप्राप्ति, विभीषण चरम स्थान पर स्थित है' इससे शरणागत की रक्षा करने से धर्म प्राप्ति और ' यह यान प्राप्त हुआ'' से विमानरत्न की प्राप्ति से अर्थ प्राप्ति का कथन हुआ है। और परशुराम जी क्रोधित नहीं हुए' इत्यादि पदान्त वाक्यों से रामचन्द्र के द्वारा अपने किये गये

कार्य का कथन होने से उपसंहार है।

अथवा और क्या! आजगवभङ्ग हुआ, सेतु बाँधा गया इत्यादि से युद्धोत्साह की सिद्धि, 'विभीषण चरम स्थान पर है' से विभीषण की रक्षा करने से दयावीर, 'याचक कुबेर को विमान दिया' से दानवीर की सिद्धि रामभद्र के द्वारा अपने किये गये की सार्थकता के कथन से उपसंहार है।

अथ प्रशस्तिः

भरतैश्चराचराणामाशीराशंसनं प्रशस्तिः स्यात् ।। ७४।।

(14) **प्रशस्ति-** भरत के अनुसार सभी चराचरों के लिए आशीर्वाद की अनुशंसा करना प्रशस्ति कहलाता है।

यथा तत्रैव (बालरामायणे)-

तथा चेदमस्तु भरतवाक्यम्-

सम्यक्संस्कारविद्याविशदमुपनिषद्भूतमर्थाद्भुतानां
गथ्नन्तु ग्रन्थबन्धं वचनमनुपतत्सूक्तिमुद्राः कवीन्द्राः ।
सन्तः सन्तर्पितान्तःकरणमनुगुणं ब्रह्मणः काव्यमूर्ते-
स्तत्तत्त्वं सात्विकैश्च प्रथमपिशुनितं भावयन्तोऽर्चयन्तु ।।562।।

इत्यत्र कवीन्द्राणां निर्दोषसूक्तिग्रथनाशंसनेन भावकानां च तद्ग्रन्थभावनाशंसनेन च सकलव्यवहारप्रवर्तकवाङ्मयरूपजगन्मङ्गलकथनात् प्रशस्तिरिति सर्वं प्रशस्तम्।

जैसे वहीं (बालरामायण में)-

तो भी ऐसा हो (भरतवाक्य) —

अभिनिवेश- पूर्वक सूक्ति रूपी मोतियों से युक्त, सन्त लोग अद्भुत अर्थों के रहस्य स्वरूप, संसार के भय को दूर करने वाले ग्रन्थिभूत वाक्यों की रचना करें तथा काव्यमूर्ति वेद के अन्तःकरण को प्रिय, अनुरूप तथा सात्त्विक कवियों द्वारा पहले से सूचित (निबद्ध) उस प्रसिद्ध तत्त्व का चिन्तन करते हुए प्रशंसा करें।।562।।

यहाँ कवीन्द्रों की निर्दोष-सूक्ति ग्रन्थन की प्रशंसा से तथा भावकों की उस ग्रथन की भावना की प्रशंसा से सम्पूर्ण व्यवहार को प्रवर्तित करने वाले वाङ्मयरूप जगत् कल्याण के कथन के कारण प्रशस्ति है इसलिए सब प्रशस्त है।

रसभावानुरोधेन प्रयोजनमपेक्ष्य च ।
साकल्यं कार्यमङ्गानामित्याचार्याः प्रचक्षते ।। ७५।।
केषाञ्चितदेषामङ्गानां वैकल्यं केचिदूचिरे ।
मुखादिसन्धिष्वङ्गानां क्रमोऽयं न विवक्षितः ।।७६।।

क्रमस्यानादृतत्वेन भरतादिभिरादिमैः ।
लक्ष्येषु व्युक्रमेणापि कथनेन विचक्षणैः ।।७७।।
चतुःषष्ठिकलामर्मवेदिना सिंहभूभुजा ।
लक्षिता च चतुष्षष्टिबालरामायणे स्फुटम् ।।७८।।

सन्ध्यङ्ग- योजन में मतभेद- अभिलाषा से प्रयोजन की उपेक्षा करके (सन्धि के) अङ्गों के सम्पूर्ण कार्य को आचार्यों ने बतलाया है। कुछ लोग इन अङ्गों के क्रम में कुछ भेद करते हैं तथा मुख इत्यादि सन्धियों में अङ्गों का यह क्रम नहीं मानते। अङ्गों के क्रम की उपेक्षा के कारण भरत इत्यादि प्राचीन विचक्षण आचार्यों के द्वारा लक्ष्यों में व्युत्क्रम (विपरीतक्रम) में होने से भी चौसठ कलाओं के मर्म को जानने वाले शिङ्गभूपाल ने बालरामायण में (सन्धियों के) चौसठ अङ्गों को स्पष्ट तथा लक्षित किया है।।७५-७८।।

अथ सन्ध्यन्तराणि-

मुखादिसन्धिष्वङ्गानामशैथिल्यं प्रतीतये ।
सन्ध्यन्तराणि योज्यानि तत्र तत्रैकविंशतिः ।।७९।।
आचार्यान्तरसम्मत्या चमत्कारो विधीयते ।
वक्ष्ये लक्षणमेतेषामुदाहृतिमपि स्फुटम् ।।८०।।

सन्ध्यन्तर- मुखादि सन्धियों में जहाँ अङ्गों की शिथिला प्रतीत होती है, वहाँ सन्ध्यन्तरों को जोड़ देना चाहिए। ये इक्कीस सध्यन्तर होते हैं। आचार्यों की सम्मति से (आचार्यों के मत के अनुसार) इन (सन्ध्यन्तरों) के काव्यसौन्दर्य को तथा लक्षण और उदाहरण को भी स्पष्ट रूप से निरूपित किया जा रहा है।।७९-८०।।

सामदाने भेददण्डौ प्रत्युत्पन्नमतिर्वधः ।
गोत्रस्खलितमोजश्च धीः क्रोधः साहसं भयम् ।।८१।।
माया च संहृतिर्भ्रान्तिर्दूत्यं हेत्ववधारणम् ।
स्वप्नलेखौ मदश्चित्रमित्येतान्येकविंशतिः ।।८२।।

सन्ध्यन्तरों की सङ्ख्या- इक्कीस सेन्ध्यक्षर ये हैं— (1) साम, (2) दान, (3) भेद, (4) दण्ड, (5) *प्रत्युत्पन्नमति*, (6) *वध*, (7) *गोत्रस्खलित*, (8) ओज, (9) धी, (10) क्रोध, (11) साहस, (12) भय, (13) माया, (14) संहृति, (15) निर्भ्रान्ति, (16) दूत्य, (17) हेत्ववधारण, (18) स्वप्न, (19) लेख, (20) मद, और (21) चित्र।।८१-८२।।

तत्र साम-

तत्र साम प्रियं वाक्यं स्वानुवृत्तिप्रकाशनम् ।

(१) साम– अपनी अनुवृत्ति को प्रकाशित करने वाला प्रिय वाक्य कहना साम कहलाता है॥८३पू.॥

यथा मालविकाग्निमित्रे–

जैसे (मालविकाग्निमित्र) में–

राजा– अये! न भेतव्यम्। मालविका– (सावष्टम्भम्) जो ण भअदि सो मए भट्टिणीदंसणे दिट्ठसामत्थो भट्टा (यो न बिभेति स मया भट्टिनीदर्शने दृष्टसामर्थ्यो भर्ता)।

राजा–

दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि! नायकानां कुलव्रतम् ।
तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्त्वदाशानिबन्धनाः ॥(4/14)563॥

इत्यत्र राज्ञो वचनं साम।

राजा– अरे मत डरो। **मालविका**— (उलाहना के साथ) आप नहीं डरते हैं, यह मैं इरावती के सामने देख चुकी हूँ।

राजा– हे बिम्ब फल के समान होठों वाली! दाक्षिण्य उत्तम नायकों का कुलव्रत है। किन्तु हे विशाल आँखों वाली! हमारे ये प्राण तुम्हारी आशा पर ही निर्भर है॥(4.14)563॥

यहाँ राजा का कथन साम है।

अथ दानम्–

दानमात्मप्रतिनिधिर्भूषणादिसमर्पणम् ॥८३॥

(२) दान– अपने प्रतिनिधि के रूप में आभूषण इत्यादि को समर्पित करना दान कहलाता है॥८३उ.॥

यथा मालतीमाधवे (६/११ पद्यादनन्तरम्)–

मालती– पिअसहि! सव्वदा सुमरिदव्यम्हि। एसा वि माहसहत्थणिम्माण-मणोहरा वउलमाला मालदीणिव्विसेसं पिअसहीए दट्ठव्वा सव्वदा हिअएण धारणि-जवेत्ति। (प्रियसखि! सर्वदा स्मर्तव्यास्मि! एषा च माधवस्वहस्तनिर्माणमनोहरा वकुलमाला मालतीनिर्विशेषं प्रियसख्या द्रष्टव्या। सर्वदा हृदयेन च धारणीया इति)। (इति स्वकण्ठादुन्मुच्य माधवस्य कण्ठे वकुलमालां विन्यस्यन्ती सहसापसृत्य साध्वसोत्मकम्पं नाटयति।)'

अत्र मालत्या भर्तुकामाया: प्रतिनिधितया लवङ्गिकायां कुवलयमालासमर्पणं दानम्।

जैसे मालतीमाधव (६/११पद्य से बाद में)–

मालती– हे प्रियसखी! तुम्हें सदा मेरा स्मरण (याद) करना चाहिए। माधव जी के शोभा-सम्पन्न हाथों द्वारा बनाये जाने से मनोहर बकुलमाला को प्रियसखी मालती के समान देखो और सदा ही हृदय से धारण भी करो। (ऐसा कहकर अपने गले से उतारकर वकुलमाला को माधव के हृदय में पहनाती हुई सहसा हटकर लज्जाजनित कम्प का अभिनय करती है।)

यहाँ पति की कामना करने वाली मालती की प्रतिनिधि होने के कारण लवङ्गिका के प्रति कुवलयमाला को समर्पित करना दान है।

अथ भेदः-

भेदस्तु कपटालापैः सुहृदां भेदकल्पना ।

(३) **भेद-** कपट युक्त बातों द्वारा मित्रों में विभेद उत्पन्न करना भेद कहलाता है।।८४पू.।।

यथा मालतीमाधवे (२.८)-

कामन्दकी-

"राज्ञः प्रियाय सुहृदे सचिवाय कार्याद्
दत्त्वात्मजां भवतु निर्वृतिमानमत्याः ।
दुर्दर्शनेन घटतामियमप्यनेन
धूमग्रहेण विमला शशिनः कलेव ।।(564)"

मालती- (स्वगतम्) हा ताद तुमं पि णाम मम एव्वं ति सव्वहा जिदं मोअतिणा (हा तात! त्वमपि नाम ममैवमिति सर्वथा जितं भोगतृष्णया)।

इत्यत्र कामन्दक्या मालतीतज्जनकयोर्भेदकल्पनं भेदः।

जैसे मालतीमाधव (२.८) में-

कामन्दकी-

हे मन्त्री जी! (भूरिवसु) राजा के प्रिय मन्त्री (नन्दन) को कार्य के उद्देश्य से कन्यादान करके सुखी हों। दोषयुक्त दर्शन वाले धूमकेतु ग्रह से निर्मल चद्र-कला के समान यह (मालती) भी अनिष्ट श्रम वाले इन (नन्दन) से सम्बद्ध हों-।।564।।

मालती- (अपने मन में) हाँ पिता जी! आप भी इस प्रकार से मेरे जीवन में निरपेक्ष हैं, भोगतृष्णा ने सब प्रकार से जीत लिया है।

यहाँ कामन्दकी के द्वारा मालती और उसके पिता में भेद उत्पन्न करना भेद है।

अथ दण्डः-

दण्डस्त्वविनयादीनां दृष्ट्या श्रुत्याथ तर्जनम् ।।८४।।

(4) **दण्ड-** देखने द्वारा अथवा सुनने से दुष्टों को डाँटना दण्ड कहलाता है।।८४उ.।।

दृष्ट्या यथा मालतीमाधवे (५.३१)-

माधवः-'रे रे पाप!

प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाधिगतै-

ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत् ।
वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपतः
पततु शिरस्यकाण्डयमदण्ड इवैष भुजः ।।565।।

अत्रोघोरघण्टस्याविनयदर्शनेन माधवकृततर्जनं दण्डः।

देखने से जैसे मालतीमाधव (५/३१) में-

माधव- अरे-अरे पापी!

प्रणय-युक्त सखीजनों के परिहास में राग से प्राप्त कोमल शिरीषपुष्पों के प्रहारों से जो (मालती का) शरीर म्लान हो जाता है, उस शरीर में मारने के लिए शस्त्र गिराने वाले तुम्हारे शिर पर आकस्मिक रूप से पतनशील यमदण्ड के समान यह मेरी भुजा चले।।565।

यहाँ अघोरकण्ट की दुष्टता देखने से माधव द्वारा किये गये तर्जन (डाँटने) के कारण दण्ड है।

श्रुत्या यथा शाकुन्तले (१.२१)-

'राजा- (सहसोपसृत्य)

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् ।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ।।566।।

अत्राविनयश्रुत्या दुष्यन्तेन कृतं तर्जनं दण्डः ।

सुनने से जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल के १/२४ में-

राजा- (अचानक समीप में जाकर)

उद्दण्डों को सीख देने वाले पौरव (पुरुवंशी) के पृथ्वी पर शासन करते (रहने पर) कौन है यह जो भोली तापस कन्याओं के प्रति अनुशासनहीनता का आचरण करता है।।566।।

यहाँ दुष्टता को सुनकर दुष्यन्त द्वारा किया गया तर्जन दण्ड है।

अथ प्रयुत्पन्नमतिः-

तात्कालिकी तु प्रतिभा प्रत्युत्पन्नमतिः स्मृता ।

(5) प्रत्युत्पन्नमति- (किसी काम के आने पर) उस समय उत्पन्न प्रतिभा प्रत्युत्पन्नमति कहलाती है।

यथा मालविकाग्निमित्रे। (४/५ पद्यादमन्तरम्)-

'राजा- तयोर्द्वयोः किन्निमित्तो मोक्ष इति, किं देव्याः परिजनमतिक्रम्य भवान् सन्दिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम्। विदूषकः- णं पुच्छिदो ह्मि। पुणो मन्दस्स वि मे पच्चुप्पण्णं आसि तस्सिं मदी । (ननु पृष्टोस्मि पुनर्मन्दस्यापि मे तस्मिन् प्रत्युत्पन्ना मतिरासीत्)। राजा- कथ्यताम्। विदूषकः- भणिदं मए देव्वचिन्तएहि विण्णाविदो राआ। सोवसग्गं वो णक्खत्तं

ता अवस्सं सव्वबन्धणमोक्खो करीअदु त्ति। एदं सुणिअ देवीए इरावदीए चित्तं रक्खन्तीए राआ किल मोएदित्ति अहं सन्दिट्ठो त्ति ततो जुज्जदित्ति ताए इव्वं संवादिदो अत्थो।' (भणितं मया- दैवचिन्तकैर्विज्ञापिता राजा सोपवर्गं वो नक्षत्रम् तदवश्यं सर्वबन्धमोक्षक्रियताम्। एतत् श्रुत्वा देव्या इरावतीचित्तं रक्षन्त्या राजा किल मोचयतीत्यहं सन्दिष्टः इति। ततो युज्यते इति तयैवं सम्पादितोऽर्थाः।) राजा- (विदूषकं परिष्वज्य) सखे! प्रियो भव।

इत्यत्र विदूषकस्य समुचितोत्तरप्रतिभा प्रत्युत्पन्नमतिः।

जैसे मालविकाग्निमित्र में (४/५ पद्य से बाद)-

राजा- क्या कहकर तुमने उन दोनों को मुक्त कराया उसने पूछा होगा कि इतने सेवकों के रहते हुए देवी ने आप ही को क्यों भेजा। **विदूषक-** यह तो पूछा ही था किन्तु मुझ मूर्ख की उस समय प्रत्युत्पन्नबुद्धि हो गयी। **राजा-** क्या, कहो। **विदूषक-** मैनें कहा कि ज्योतिषियों ने महाराज से कहा है कि आप के ग्रह अनिष्टकारी हैं अत एव इस समय सभी बन्दियों को मुक्त करा दीजिए। यह सुन कर देवी धारिणी ने इरावती का मन रखने के लिए अपने किसी परिजन को न भेज कर मुझे भेजा है जिससे इरावती यह समझे कि राजा ही मुक्त कर रहे हैं। **राजा**— (विदूषक के गले मिलकर) हे मित्र! मैं निश्चिय ही तुम्हारा प्रिय हूँ।

यहाँ विदूषक की समुचित उत्तर देने की प्रतिभा प्रत्युत्पन्नमति है।

अथ वधः-

वधस्तु ज्ञापिता द्रोहक्रिया स्यादाततायिनः ।।८५।।

(6) **वध-** आततायियों की द्रोहक्रिया को ज्ञापित करना वध कहलाता है।।८५उ.।।

यथा वेणीसंहारे (६/४४ पद्यादनन्तरम्)-

वासुदेवः- अहं पुनश्चार्वाकेण व्यकुलीभूतं भवन्तमुपलभ्यार्जुनेन सहत्वरितमागतः। युधिष्ठिरः- किं नाम चार्वाकेण रक्षसा वयमेव विप्रलब्धाः। भीमः- (सरोषम्) भगवन्! क्वासौ धार्तराष्ट्रसखश्चार्वाको नाम राक्षसः। येनार्यस्य महानयं चित्तविभ्रमः कृत। वासुदेवः- निगृहीतो दुरात्मा कुमारनकुलेन। युधिष्ठिरः- प्रियं नः प्रियम्'।

इत्यत्र चार्वाकनिग्रहो वधः।

जैसे वेणीसंहार (६/४४ पद्य से बाद)-

वासुदेव- मैं तो आपको चार्वाक द्वारा ठगा गया सुन कर अर्जुन के साथ अतिशीघ्र आ गया हूँ। **युधिष्ठिर-** क्या चार्वाक राक्षस द्वारा हम लोग इस प्रकार ठगे गये हैं। **भीमसेन-** (क्रोधपूर्वक) कहाँ है वह धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन का मित्र अधम चार्वाक राक्षस जिसने आर्य (आप) को महान् बुद्धि- व्यामोह पैदा किया है। **वासुदेव-** नकुल के द्वारा वह दुरात्मा पकड़ लिया गया है। **युधिष्ठिर-** प्रिय है हमारा प्रिय है।

यहाँ चार्वाक का निग्रह-वध है।

अथ गोत्रस्खलितम्–

तद् गोत्रस्खलितं यत्तु नाम व्यत्ययभाषणम् ।

(7) **गोत्रस्खलित–** नामपरिवर्तन (किसी के नाम के स्थान पर दूसरे का नाम ले लेने) के साथ कहा गया कथन गोत्रस्खलित कहलाता है।।६५पू.।।

यथा- विक्रमोव्रशीये (तृतीयाङ्के आदौ)–

(ततः प्रविशतो भरतशिष्यौ) प्रथमः– अये सदोषावकाश इव ते वाक्यशेषः। द्वितीयः– आम्! तहिं उव्वसीए वअणं पमादक्खलिदं आसी। (आम् तत्र उर्वश्याः वचनं प्रमादस्खलितमासीत्)। प्रथमः– कथमिव? द्वितीयः– लच्छीभूमिआए वट्टमाणा उव्वसी वारुणीभूमिआए वट्टमाणाए मेणआए पुच्छिदा। सहि समाअदा एदे तेल्लोक्कपुरिसा सकेसवा लोअवाला। कदमस्सिं दे भावाहिणिवेसोत्ति। (लक्ष्मीभूमिकायां वर्तमाना उर्वशी वारुणीभूमिकायां वर्तमानया मेनकया पृष्टा सखि! समागता एते त्रैलोक्यपुरुषाः सकेशवा लोकपालाः। कतमस्मिंस्ते भावाभिनिवेश इति। प्रथमः– ततस्ततः। द्वितीयः– तदो ताए पुरिसोत्तमेत्ति भणिदव्वे पुरूरवसि त्ति निग्गदा वाणी। (ततस्तस्याः पुरुषोत्तम इति भणितव्ये पुरुरवसीति निर्गता वाणी।)

जैसे विक्रमोर्वशीय तृतीय अङ्क में (प्रारम्भ से)–

(तत्पश्चात् भरत के दो शिष्य प्रवेश करते हैं, **प्रथम–** तुम्हारा अधूरा वाक्य किसी त्रुटि को सूचित कर रहा है। **द्वितीय–** हाँ! उसमें उर्वशी का संवाद प्रमादवश कुछ अशुद्ध हो गया था। **प्रथम–** वह कैसे? **द्वितीय–** लक्ष्मी का अभिनय कर रही उर्वशी से वारुणी का अभिनय कर रही मेनका ने पूछा- हे सखी! ये त्रैलोक्य श्रेष्ठ पुरुष और भगवान् विष्णु के साथ सम्पूर्ण लोकपाल यहाँ पधारे हुए हैं। इनमें से तुम किसे चाहती हो? **प्रथम–** तब क्या हुआ? **द्वितीय–** तब कहना चाहिए था- पुरुषोत्तम, किन्तु उसके मुख से निकल गया- 'पुरुरवा'।

इत्यत्र नामव्यतिक्रमः स्फुट एव ।

यहाँ नाम का परिवर्तन स्पष्ट है।

अथौजः–

ओजस्तु वागुपन्यासो निजशक्तिप्रकाशकः ।।८६।।

(8) **ओज–** अपनी शक्ति को प्रकाशित करने वाला कथन ओज कहलाता है।।-८६उ.।।

यथा उत्तररामचरिते (६.१६)–

'कुशः- सखे! दण्डायन!

आयुष्मतः किल लवस्य नरेन्द्रसैन्यै-
रायोधनं ननु किमात्थ सखे! तथेति ।

अद्यास्तमेतु भुवनेषु स राजशब्दः
क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः शममद्य यान्तु ।।567।।

इत्यत्र ओजः स्पष्टमेव।

जैसे उत्तररामचरित (६.१६) में-

कुश- हे मित्रदाण्डायन!

मित्र चिरञ्जीवी लव का राजा की सेना के साथ युद्ध हो रहा है क्या? क्या ऐसा कह रहे हो? हो रहा है, आज लोकों में राजा शब्द विनाश को प्राप्त हो और आज क्षत्रिय की शस्त्ररूपी अग्नि शान्त हो जाय।।567।।

यहाँ ओज स्पष्ट है।

अथ धीः-

इष्टार्थसिद्धिपर्यन्ता चिन्ता धीरिति कथ्यते ।

(९) धी— अभीष्ट कार्य की सिद्धि होने तक होने वाली चिन्ताा धी कहलाती है।।८७पू.।।

यथा मालविकाग्निमित्रे चतुर्थेऽङ्के (४/२ पद्यादनन्तरम्)-

'राजा- (निःश्वस्य सपरामर्शम्) सखे! किमत्र कर्त्तव्यम्। विदूषकः- (विचिन्त्य) अत्थि एत्थ उवाओ (अस्त्यत्रोपायः)। राजा- क इव। विदूषकः- (सदृष्टिक्षेपम्) को वि अदिट्ठो सुणिस्सदि। ता कण्णे कहेमि। (इत्युपश्लिष्य कर्णे) (एवं विअ! कोऽप्यदृष्टः श्रोष्यति। कर्णे ते कथयामि एवमिव तथा करोति)। राजा- (सहर्षम्) सुष्ठु प्रयुज्यतां सिद्धये'।

जैसे मालविकाग्नि-मित्र के चतुर्थ अङ्क में (४/२ पद्य से बाद)-

राजा- (लम्बी साँस लेकर और कुछ सोचकर) हे मित्र! अब क्या किया जाय?

विदूषक- (सोचकर) एक उपाय है? **राजा-** क्या उपाय है? **विदूषक-** (इधर-उधर देख कर) यह हो सकता है। **राजा-** (प्रसन्न होकर ठीक है, प्रयोजन सिद्धि के लिए काम में लग जाओ।

इत्यत्र विदूषकेण धारिणीहस्तमणिमुद्रिकाकर्षणहेतुभूतस्य भुजगविषवेगकपटस्य चिन्तनं धीः।

यहाँ विदूषक के द्वारा धारिणी के हाथ की मणिमुद्रिका के कारणभूत सर्प के विष-वेग रूप कपट का चिन्तन धी है।

अथ क्रोधः-

क्रोधस्तु चेतसो दीप्तिरपराधादिदर्शनात् ।।८७।।

(10) **क्रोध**– अपराध इत्यादि देखने के कारण चित्त का दीप्त (उत्तेजित) हो जाना क्रोध है॥८७उ.॥

यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के (३/१९ पद्यात्पूर्वम्)–

'वासवदत्ताः– हञ्जे कंचणमालिए! एदेण एव्व लदापासेण बन्धिअ उवणेहि णं बह्मणं। एदं वि दुट्ठ कण्णआं अग्गदो करेहि' (हञ्जे काञ्चनमाले! एतेनैव लतापाशेन बध्वा गृहाणैनं ब्राह्मणम् । इमामपि दुष्टकन्यकां च अग्रतः कुरु)।

इत्यत्र वासवदत्ताया रोषः क्रोधः ।

जैसे रत्नावली के तृतीय अङ्क में (३/१९ पद्य से पूर्व)—

वासवदत्ता– (क्रोध सहित) हे काञ्चनपाले! इस लतापाश से ही बाँध कर इस ब्राह्मण को पकड़ों और इस दुष्टा कन्या (सागरिका) को आगे करो।

यहाँ वासवदत्ता का रोष क्रोध है।

अथ साहसम्–

स्वजीवितनिराकङ्क्षो व्यापारः साहसं भवेत् ।

(11) **साहस**– अपने जीवन के प्रति आकांक्षा-रहित व्यापार साहस कहलाता है॥८८पू.॥

यथा मालतीमाधवे (५/१२)–

'अशस्त्रपातमव्याज-पुरुषाङ्गोपकल्पितम् ।
विक्रीयते महामासं गृह्यतां गृह्यतामिति ।।559।।

जैसे मालतीमाधव (५/१२) में–

शस्त्र से अस्पृष्ट छलरहित और मरे हुए किसी पुरुष के किसी अवयव से सम्पादित महामांस (नरमांस) बेचता हूँ, ले लो, ले लो।।568।।

अत्र माधवस्य महामांसविक्रयव्यापारः साहसम् ।

यहाँ माधव का महामांस बेचने का कार्य साहस है।

अथ भयम्–

भयं त्वाकस्मिकत्रासः

(12) **भय**– आकस्मिक त्रास भय कहलाता है।

यथाभिरामराधवे द्वितीयाङ्के–

(प्रविश्यापटीक्षेपेण सम्भ्रान्तः) बटुः– अय्य! परित्ताअहि परित्ताअहि। अच्चहिदे पडिदो ह्मि। (आर्य परित्रायस्व परित्रायस्व। अत्याहिते पतितोऽस्मि) (इत्यभिद्रवति।)

इत्यादौ वटुत्रासो भयम् ।

जैसे अभिरामराघव के द्वितीय अङ्क में-

(बिना पर्दा हटाये प्रवेश करके घबड़ाया हुआ) **बटु-** हे आर्य! रक्षा करो- रक्षा करो। अत्यधिक विपत्ति में फँस गया हूँ।

इत्यादि में वटु का त्रास भय है।

अथ माया-

माया कैतवकल्पना ।।८८।।

(13) **माया-** (इन्द्रजाल इत्यादि) धूर्तता की कल्पना करना माया कहलाती है।।८८।।

यथा रत्नावल्याम् (४.११)-

'**राजा-** (आसनादवतीर्य) वयस्य!

एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शङ्करोऽयं
दोर्भिर्दैत्यान्तकोऽयं सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भिः ।
एषोऽप्यैरावतस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि! देवास्तथैते
नृत्यन्ति व्योम्नि चैताश्चलचरणरणन्नूपुरा दिव्यनार्यः ।।569।।

जैसे रत्नावली (४/११) में-

राजा- (आसन से उठकर) हे मित्र!

आश्चर्य है, आश्चर्य है। हे मित्र ! (देखो)— आकाश में कमल पर यह ब्रह्मा जी हैं। चन्द्रकला को सिर पर धारण करने वाले यह शङ्कर जी हैं, धनुष, तलवार, गदा तथा चक्र— चार चिह्नों वाली भुजाओं से दैत्यों का विनाश करने वाले यह भगवान् विष्णु हैं। ऐरावत हाथी पर बैठे हुए यह देवराज इन्द्र हैं तथा अन्य यह देवता हैं। यह चञ्चल चरणों में बजते हुए नुपूरों वाली दिव्याङ्गनाएँ नाच रहीं हैं।।569।।

इत्यत्र ऐन्द्रजालिकल्पितं कैतवं माया ।

यहाँ इन्द्रजाल से सम्बन्धित धूर्तता माया है।

अथ संवृतिः-

संवृतिः स्वयमुक्तस्य स्वयं प्रच्छादनं भवेत् ।

(14) **संवृति-** स्वयं कही गयी बात को छिपाना संवृति कहलाता है।।८७पू.।।

यथा शाकुन्तले (२.१८)-

'राजा- (स्वगतम्) अतिचपलोऽयं वटुः। कदाचिदिमां कथामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवत्वेवं तावत्-।

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः ।

परिहासविजल्पितं सखे! परमार्थेन न गृह्यतां वचः ।।570।।

अत्र दुष्यन्तेन स्वयमुक्तस्य शकुन्तलाप्रसङ्गस्य स्वयं प्रच्छादनं संवृतिः।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् (२/१८में)-

राजा- (अपने मन में) यह वटु (विदूषक) अत्यन्त चञ्चल है, कहीं अन्तःपुर की रानियों से न कह दे। अतः अच्छा इससे इस प्रकार कहता हूँ।

हे मित्र! कहाँ हरिण- शावकों के साथ बढ़ा हुआ व्यक्ति जिससे कामदेव दूर है। मजाक में की गयी बड़बड़ को सत्य रूप में ग्रहण मत कर लेना।।570।।

यहाँ दुष्यन्त द्वारा स्वयं कहे गये शकुन्तलाविषयकप्रसङ्ग को स्वयं छिपाना संवृति है।

अथ भ्रान्तिः-

भ्रान्तिर्विपर्ययज्ञानं प्रसङ्गस्याविनिश्चयात् ।।८९।।

(15) **भ्रान्ति-** प्रसङ्ग का निश्चित ज्ञान न होने के कारण विपरीत- ज्ञान भ्रान्ति कहलाता है।।८९।।

यथा वेणीसंहारे द्वितीयाङ्के (२/१० पद्यादनन्तरम्)-

'भानुमती- तदो अहं तस्स अदिइददिव्वरूविणो णउलस्स दंसणेण उस्सुआ जादा हिअआ अ। तदो उज्झिअ तं आसण्णट्ठाणं लदामण्डपपरिसरं पविट्ठा। (ततोऽहं तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता हृतहृदया च। ततः उज्झित्वा तदासनस्थानं लतामण्डपं प्रविष्टा)। राजा- किं नामातिशयदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जातेति। तत् कथमनया माद्रीसुतानुरक्तया वयमेवं विप्रलब्धाः। मूर्ख! दुर्योधन! कुलटाविप्रलब्ध-मात्मानं बहुमन्यमानोऽधुना' किं वक्ष्यसि। 'किं कण्ठे शिथिलीकृत (३/९) इत्यदि पठित्वा (दिशो विलोक्य) तदर्थं च तस्याः प्रातरेव विविक्तस्थानाभिलाषः सखीजनसङ्कथासु बद्धः पक्षपातः। दुर्योधनस्तु मोहादविज्ञातबन्धकीहृदयसारः क्वापि परिभ्रान्तः।'

इत्यत्र देवीस्वप्नस्यानिश्चियाद् दुर्योधनस्य विपरीतज्ञानं भ्रान्तिः।

जैसे वेणीसंहार के द्वितीय अङ्क में (२.१० पद्य से बाद)-

भानुमती- तब मैं देवताओं से भी अतिशयित रूप वाले नकुल को देखने के लिए उत्सुक हृदय वाली हो गयी। तब उस स्थान को छोड़ कर लतामण्डप में प्रवेश करने लगी। **राजा-** क्या देवों से भी अधिक रूप- सम्पन्न नकुल को देखने से उत्कंठित (कामपीड़ित) हो गयी। तो क्या माद्री के पुत्र (नकुल) पर अनुरक्त इस पापिनी के द्वारा हम इस प्रकार धोखा दिये गये हैं। मूर्ख दुर्योधन! कुलटा (छिनार स्त्री) के द्वारा छला जाता हुआ (भी) अपने आप बहुत मानने वाला (तू) अब क्या कहेगा? 'किं कण्ठे' (२/९) इत्यादि को पढ़ कर (चारों ओर देखकर) इसीलिए प्रातः काल ही इसकी—

निर्जनस्थान (के सेवन) की इच्छा तथा सखियों के साथ स्वच्छन्द बातचीत करने

की इच्छा हुई है। दुर्योधन तो अज्ञान के कारक कुलटा (भानुमती) के हृदय तत्त्व को न जान कर कहीं और भटका हुआ था।

यहाँ देवी (भानुमती) की स्वप्नावस्था का निश्चय न करने के कारण दुर्योधन का विपरीत ज्ञान भ्रान्ति है।

अथ दूत्यम्–

दूत्यं तु सहकारित्वं दुर्घटे कार्यवस्तुनि ।

(१६) दूत्य– दुष्कर कार्य में सहयोग करना दूत्य है।।९०पू.।।

यथा मालविकाग्निमित्रे (३.१ पद्यादनन्तरम्)–

विदूषकः– अलं भवदो धीरदं उज्झिअ परिदेविदेण। दिट्ठा खु मए तत्त-होदीए मालविआए पिअसही वउलावलिआ। सुणाविदाअ मह जं भवदा संदिट्ठं। (अलं भवतो धीरताम् उज्झित्वा परिदेवितेन। दृष्टा खलु मया तत्रभवत्या मालविकायाः प्रियसखी वकुलावलिका। श्राविता च मया यद्भवता सन्दिष्टम्)। राजा– ततः किमुक्तवती? विदूषकः– विणावेहि भट्टारअं। (विज्ञापय भट्टारकम्)..... तह वि जइस्सम् (तथापि यतिष्ये)।

जैसे मालाविकाग्निमित्र में (३/१ पद्य के बाद)–

"**विदूषक–** आप धैर्य का परित्याग करके विलाप न करें। सौभाग्य से मुझे मालविका की प्रियसखी वकुलावलिका मिल गयी थी। मैंने उससे आपका संदेश कह दिया है। **राजा–** इस पर उसने क्या कहा? **विदूषक–** स्वामी से निवेदन कर देना फिर भी मैं यत्न करूँगी।

अत्र वकुलावलिकया मालविकाग्निमित्रयोर्घटने सहकारित्वमङ्गीकृतमिति दूत्यम्।

यहाँ वकुलावलिका द्वारा मालविका और अग्निमित्र को मिलाने में सहयोग स्वीकार किया गया है अतः दूत्य है।

अथ हेत्ववधारणम्–

निश्चयो हेतुनार्थस्य मतं हेत्ववधारणम् ।।९०।।

(१७) हेत्ववधारण– कारण द्वारा अर्थ का निश्चय कर लेना हेत्ववधारण है।।९०उ.।।

यथा अभिज्ञानशाकुन्तले (५/२२ में)–

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
सन्दृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ।।571।।

अत्र परभृतनिदर्शनोपबृंहितेन स्त्रीत्वहेतुना मृषा-भाषणलक्षणस्यार्थस्य निश्चयो

हेत्त्ववधारणम्।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल (५/ २२) में-

स्त्रियों में जो बिना सीखे चतुरता होती है वह मनुष्य- अतिरिक्त स्त्रियों में (भी) देखी जाती है। जो ज्ञानवान् (मनुष्ययोनि की) स्त्रियाँ हैं, उनका तो कहना ही क्या, उदाहरणार्थ कोयलें आकाश में जाने (जन्म देने के बाद उड़ने) से पहले अपनी सन्तानों के समूह का अन्य पक्षियों से पालन-पोषण करवाती हैं।।571।।

यहाँ कोयल के उदाहरण से उपबृंहित स्त्रीत्व के कारण झूठ बोलने रूपी अर्थ का निश्चय हेत्त्ववधारण है।

अथ स्वप्नः-

स्वप्नो निद्रान्तरे मन्तुभेदकृद् वचनं मतम् ।

(18) **स्वप्न-** निद्रा में अपराध को प्रकट करने वाला कथन स्वप्न कहलाता है।।९१पू.।।

यथा मालविकाग्निमित्रे (४/ १५पद्यादनन्तरम्)-

विदूषकः- (उत्स्वप्नायते) भोदि मालविए (भवति मालविके)। निपुणिका- सुदं भट्टिणीए। कस्स एसो अत्तणिओअसंपादणे विस्ससणिज्जो हदासो। सव्वकालं इदो एव्व सोत्थिआवणमोदएहिं कुच्छिं पूरिअ संपदं मालविअं उस्सिविणावेदि (श्रुतं भट्टिन्या। कस्यैष आत्मनियोगसम्पादने विश्वसनीयो हताशः। सर्वकालमित एव स्वस्तिवाचनमोदकैः कुक्षिं पूरयित्वा साम्प्रतं मालविकाम् उत्स्वप्नायते)। विदूषकः- इरावदिं अदिक्कमंती होहि। (इरावतीमतिक्रामन्ती भव)।

इत्यत्रं विदूषकस्योत्स्वप्नायितं स्वप्नः ।

जैसे मालविकाग्निमित्र में (४/ १५ पद्य से बाद)-

विदूषक- (स्वप्न में प्रलाप करता है) हे देवि मालविके! **निपुणिका-** क्या देवी (आप) ने सुना। अपना कार्य सिद्ध कराने के लिए इस अभागे पर कौन विश्वास करेगा? हमेशा तो यह आप के दिये हुए पूजा के मोदकों से पेट भरता है और आज स्वप्न में भी मालविका सूझ रही है। **विदूषक-** इरावती को पराजित करने वाली बनो।

यहाँ विदूषक स्वप्न में प्रलाप (द्वारा अपराध को प्रकट) कर रहा है।

अथ लेखः-

विवक्षितार्थकलिता पत्रिका लेख ईरितः ।।९१।।

(१९) लेख- अभीष्ट अर्थ (कार्य) का पत्र लिखना लेख कहलाता है।

यथा विक्रमोर्वशीये (२.११ पद्यादन्तन्तरम्)-

'राजा- (विभाव्य) सखे! भूर्जपत्रगतोऽयमक्षरविन्यासः।' इत्यारभ्य 'अयं प्रियायाः स्वहस्तलेख' इत्यत्रोर्वशीप्रहितपत्रिकार्थो लेखः।

जैसे विक्रमोर्वशीय में (२/११ पद्य से बाद)-

"राजा— (देख कर) हे मित्र! साँप की केंचुल नहीं हैं। भोजपत्र पर लिखा हुआ अक्षर विन्यास है" यहाँ लेकर "यह प्रिया के अपने हाथों से लिखा गया लेख है" तक उर्वशी द्वारा प्रेषित पत्रिका वाला लेख है।

अथ मदः-

मदस्तु मद्यजः

(२०)**मद-** मद मदिरा- पान से उत्पन्न होता है॥

यथा मालविकाग्निमित्रे (३.१२ पद्यादनन्तरम्-

("ततः प्रविशति युक्तामदा इरावती चेटी च।")

इत्यत्रेरावतीमदः ।

जैसे मालविकाग्निमित्र में (३/१२ से बाद)-

(तत्पश्चात् मदयुक्त इरावती और चेटी प्रवेश करती हैं)

यहाँ इरावती का मद है।

अथ चित्रम्-

चित्रं त्वाकारस्य विलेखनम् ।

(21) **चित्र-** आकार (स्वरूप) का विलेखन चित्र कहलाता है।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले (६/१३ पद्यादन्तरम्)-

"राजा- प्रिये सखे! अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावदनुकम्प्यातामयं जनः पुनर्दर्शनेन। इत्यारम्य,

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।
स्मृतिकारिणा त्वया में पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥(6.21)572॥

इत्यन्तेन चित्रं स्फुटम्।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में (१६/१३ पद्य से बाद में)-

"**राजा-** हे प्रिये! विना कारण (तुम शकुन्तला के) परित्याग के कारण पश्चाताप से सन्तप्त हृदय वाले इस व्यक्ति (मुझ दुष्यन्त) को फिर से दर्शन देकर अनुगृहीत करो।"

यहाँ से लेकर—

राजा-

"तन्मय हृदय से मानो साक्षात् दर्शन के सुख का अनुभव करने वाले मुझको, "यह

चित्र है ऐसा' स्मरण करा देने वाले तुम्हारे (विदूषक के) द्वारा मेरी प्रिया (शकुन्तला) फिर से चित्र बना दी गयी है।।6.21)572।।

यहाँ तक स्पष्ट चित्र है।

भावकल्पनयाङ्गानां मुखप्रमुखसन्धिषु ।।९२।।
प्रत्येकं नियत्वेन योज्या तत्रैव कल्पना ।
सन्ध्यन्तराणां विज्ञेयः प्रयोगस्त्वविभागतः ।।९३।।
तथैव दर्शनादेषामनैयत्येन सन्धिषु ।
तदेषामविचारेण कथितो दशरूपके ।।९४।।
सन्ध्यन्तराणामङ्गेषु नान्तर्भावो मतो मम ।
सामाद्युपायदक्षेण सन्ध्यादिगुणशोभिना ।।९५।।
निर्व्यूढं शिङ्गभूपेन सन्ध्यन्तरनिरूपणम् ।

सन्ध्यङ्गों और सन्ध्यन्तरों के प्रयोग में मतभेद– भावकल्पना के अनुसार मुख इत्यादि सन्धियों में संन्धियों के अङ्गों की नियत योजनीय कल्पना करनी चाहिए। वही विभाग के बिना सन्ध्यन्तरों का प्रयोग भी समझना चाहिए। उन सन्ध्यन्तरों पर विचार किये बिना ही सन्धियों (के मध्य) में (सन्ध्यन्तरों के) दिखलायीं पड़ने के कारण दशरूपक में (धनञ्जय ने) अनियतता- पूर्वक (सन्ध्यन्तरों को सन्धियों में ही) कहा है।(९२-९४उ.)

सन्ध्यन्तरों का (सन्धियों के) अङ्गों में अन्तर्भाव नहीं होता- ऐसा मेरा (शिङ्गभूपाल का) मत है। इसीलिए साम इत्यादि उपायों के प्रयोग में कुशल और सन्धि इत्यादि गुणों से सुशोभित शिङ्गभूपाल के द्वारा पूर्ण रूप से सन्ध्यन्तरों का निरूपण किया गया है।।९४-९६पू.।।

भूषणानि–

एवमङ्गैरुपाङ्गैश्च सुश्लिष्टं रूपकश्रियः ।।९६।।
शरीरं वस्त्वलङ्कुर्यात् षट्त्रिंशद्भूषणैः स्फुटम् ।

भूषण— इस प्रकार अङ्गों और उपाङ्गों से रूपक की शोभा के सुश्लिष्ट शरीर रूपी कथावस्तु को छत्तीस भूषणों से स्पष्ट रूप से अलंकृत करना चाहिए।(९६उ.-९७पू.)।।

भूषणाक्षरसङ्घातौ हेतुः प्राप्तिरुदाहृतिः ।।९७।।
शोभा संशयदृष्टान्तावभिप्रायो निदर्शनम् ।
सिद्धिप्रसिद्धी दक्षिण्यमर्थापत्तिर्विशेषणम् ।।९८।।
पदोच्चयस्तुल्यतर्कौ विचारस्तद्विपर्ययः ।
गुणातिपातोऽतिशयो निरुक्तं गुणकीर्तनम् ।।९९।।
गर्हणानुनयो भ्रंशो लेशक्षोभौ मनोरथः ।

अनुक्तसिद्धिः सारूप्यं माला मधुरभाषणम् ।।१००।।
पृच्छोपदिष्टदृष्टानि षट्त्रिंशद्भूषणानि हि ।

छत्तीस भूषण– छत्तीस भूषण ये हैं- (१) भूषण (२) अक्षरसंघात (३) हेतु (४) प्राप्ति (५) उदाहृति (६) शोभा (७) संशय (८) दृष्टान्त (९) अभिप्राय (१०) निदर्शन (११) सिद्धि (१२) प्रसिद्धि (१३) दाक्षिण्य (१४) अर्थापत्ति (१५) विशेषण (१६) पदोच्चय (१७) तुल्यतर्क (१८) विचार (१९) विचार- विपर्यय (२०) गुणातिपात (२१) अतिशय (२२) निरुक्त (२३) गुणकीर्तन (२४) गर्हणा (२५) अनुनय (२६) भ्रंश (२७) लेश (२८) क्षोभ (२९) मनोरथ (३०) अनुक्तसिद्धि (३१) सारूप्य (३२) माला (३३) मधुर- भाषण (३४) पृच्छा (३५) उपदिष्ट (३६) दृष्ट।। ९७उ.-१०१पू.।।

तत्र भूषणम्–

गुणालङ्कारबहुलं भाषणं भूषण मतम् ।।१०१।।

(१) भूषण– (श्लेषादि) गुण और (उपमादि) अलङ्कार की अधिकता वाला कथन भूषण कहलाता है।।१०१उ.।।

यथा रामानन्दे–

खं वस्ते कलविङ्ककण्ठमलिनं कादम्बिनीकम्बलं
चर्चां वर्णयतीव दर्दुरकुलं कोलाहलैरुन्मदम् ।।
गन्धं मुञ्चति सिक्तलाजसुरभिर्वर्षेण सिक्ता स्थली
दुर्लक्षोऽपि विभाव्यते कमलिनीहासेन भासां पतिः ।।573।।

अत्र श्लेषप्रसादसमाधिसमतादीनां गुणानामुपमारूपकोत्प्रेक्षाहेतूनामलङ्काराणां च सम्भवादिदं भूषणम्।

जैसे रामानन्द में–

सूखे कण्ठ वाले पक्षी आकाश से बादल के जल की याचना करते हैं, उन्मत्त मेढ़कों का समूह कोलाहलों से मानों स्वर की आवृत्ति कररहा है, गीले धान की सुगन्ध (अपनी) गन्ध को फैला रही है, वर्षा से (शुष्क) भूमि गीली हो गयी है, (बादलों के कारण) न दिखायी देता हुआ भी सूर्य कमल के खिलने के का करण प्रकट हुआ (उदित हुआ) प्रतीत होता है।।573।।

यहाँ श्लेष, प्रसाद, समाधि, समता आदि गुणों और उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और हेतु अलङ्कारों के होने के कारण यह भूषण है।

अथाक्षरसङ्घातः–

वाक्यमक्षरसङ्घातो भिन्नार्थं श्लिष्टवर्णकम् ।

(२) अक्षरसङ्घात– भिन्न-भिन्न अर्थ वाले श्लिष्ट वर्णों वाला कथन अक्षरसङ्घात कहलाता है।।१०२पू.।।

यथा अभिज्ञानशाकुन्तले (७/२० पद्यादन्तरम्)-

"राजा- (स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि। अथवा अन्याय्यः परदारव्यवहारः।" इत्युपक्रम्य "(प्रविश्य मृन्मयूरहस्ता) तापसी- सव्वदमण सउंदलावण्णं पेक्ख। (सर्वदमन शकुन्तलावण्य प्रेक्षस्व)। बालः- (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं वा में अज्जू। (कुत्र वा मम माता)। उभे- णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छलो। (नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः)। द्वितीया- वच्छ इमस्स मित्तिआमोरस्स रंमत्तणं देख त्ति भणिदोऽसि। (वत्स! अस्य मृतिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि)। राजा- (आत्मगतम्) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्याः)" इत्यन्तम् शकुन्तलावण्यमित्यत्र शकुन्तलानामाक्षराणां प्रातिभानादयमक्षरसङ्घातः।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल (७/२० पद्य से बाद में)-

"**राजा-** (अपने मन में) यह चर्चा निश्चित ही मुझको लक्ष्य बना रही है। तो इस बच्चे की माता का नाम पूछता हूँ। अथवा परायी स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार अन्याय है।" यहाँ से लेकर "(हाथ में मिट्टी का बना हुआ मोर हाथ लिए प्रवेश करके) **तापसी-** हे सर्वदमन्!इस शकुन्तक (पक्षी) की सुन्दरता को देखो। **बालक-** (इधर-उधर दृष्टि डालते हुए) मेरी माँ कहाँ है। **दोनों-** माता से प्रेम करने वाला नाम की समानता के कारण ठगा गया है। **दूसरी तापसी-** बेटा! इस मिट्टी से बने मोर की सुन्दरता को देखो- ऐसा कहे गये हो। **राजा-** (अपने मन में) क्या शकुन्तला इसकी माता का नाम है।" यहाँ तक 'शकुन्तक-लावण्य' यहाँ शकुन्तला के नाम का प्रतिभान होने से अक्षरसङ्घात है।

अथ हेतुः-

स हेतुरिति निर्दिष्टो यः साध्यार्थप्रसाधकः ।।१०२।।

(३) हेतु- जो साध्य के अर्थ की सिद्धि को सिद्ध करता है, वह हेतु कहलाता है ।।१०२उ.।।

यथा रत्नावल्याम् (२.६)-

राजा- (तथा कृत्वा श्रुत्वा च)

स्पष्टाक्षरमिदं यत्नान्मधुरं स्त्रीस्वभावतः ।
अल्पाङ्गत्वादनिर्ह्रादि मन्ये वदति शारिका ।।574।।

अत्र शारिकालाप-साधनाय यत्नस्पष्टाक्षरत्वादिहेतूनां कथनादयं हेतुः।

जैसे रत्नावली (२/६) में-

राजा- (उसी प्रकार करके और सुनकर) यह स्पष्ट अक्षर व स्त्री स्वभाव से मधुर तथा लघुकाय होने के कारण अधिक दूर तक न सुनाई देने वाला है अतः अनुमान है कि मैना बोल रही है।।574।।

यहाँ सारिका के बोलने को सिद्ध करने के लिए अस्पष्ट अक्षर होने के कारणों का कथन होने से हेतु है।

अथ प्राप्तिः–

एकदेशपरिज्ञानात् प्राप्तिः शेषाभियोजनम् ।

(४) प्राप्ति– एक स्थान पर जानकारी हो जाने के कारण अन्य स्थान पर उसे जोड़ना (लागू करना) प्राप्ति कहलाता है।।१०३पू.।।

यथा विक्रमोर्वशीये (४.१७)–

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता ।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।।575।।

इत्यत्र हंसे प्रियागमनमात्रविभाव्यप्रियाहरणाभियोगः प्राप्तिः।

जैसे विक्रमोर्वशीय (४/१७) में–

राजा– (हाथ जोड़कर)

हे मराल, मेरी प्यारी मुझे लौटा दो, तुमने उसकी गति का अपहरण किया है, (मैंने अपनी प्रिया की वस्तु उस गति का प्रत्यभिज्ञा कर लिया है), क्योंकि जिसके पास चोरी का कुछ भी सामान उपलब्ध हो जाता है वह पूरी अपहृत पूँजी का देनदार होता है।।575।।

यहाँ हंस के प्रति प्रिया के आगमन को समझकर प्रिया के हरण का अभियोग प्राप्ति है।

अथोदाहरणम् –

वाक्यं यद् गूढतुल्यार्थं तदुदाहरणं मतम् ।।१०३।।

(५) उदाहरण– (साभिप्राय) समान गूढ़ अर्थ वाला वाक्य उदाहरण कहलाता है।।१०३उ.।

यथा भिज्ञानशाकुन्तले (१/२१ पद्यात्पूर्वम्)–

'राजा– (स्वगतम्) कथमात्मापहारं करोमि। भवतु, एवं तावदेनां वक्ष्ये। (प्रकाशम्) भवति यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमविघ्नक्रियोप-लम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।' इत्यारभ्य 'शकुन्तला- तुम्हे अवेध। किं वि हिअए करिअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। (युवामपेतम् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि' इत्यन्तम् अत्र साभिप्रायगूढार्थतया तदिदमुदाहरणम्।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में (१/२५ पद्य से पूर्व)–

"**राजा–** (अपने मन में) इस समय मैं अपने को किस प्रकार प्रकट करूँ अथवा अपने को किस प्रकार छिपाऊँ। अच्छा इनसे इस प्रकार कहता हूँ। (प्रकट रूप से)

हे आदरणीये! जो पुरुवंशोत्पन्न राजा (दुष्यन्त) के द्वारा धर्माधिकारी नियुक्त किया गया है, वह मैं निर्विघ्न (तपस्वियों की धार्मिक) क्रियाओं को जानने के लिए इस तपोवन में आया हूँ'' यहाँ से लेकर ''**शकुन्तला–** तुम दोनों हट जाओ। (तुम दोनों) कुछ मन में रख कर (ऐसा) कह रही हो। तुम दोनों की बातें नहीं सुनूँगी'' यहाँ तक साभिप्राय गूढ़कथन से यह उदाहरण है।

अथ शोभा–

शोभा प्रभावप्राकट्यं यूनोरन्योन्यमुच्यते ।

(६) शोभा– युवकों (नायक-नायिका) का परस्पर एक दूसरे का प्रभाव प्रकट करना शोभा कहलाता है॥१०४ पू.॥

यथा रत्नावल्यां (२/१६ पद्यात्पूर्वम्)–

सागरिका– (राजानं दृष्ट्वा सहर्षं ससाध्वसं सकम्पं च स्वगतम्) एणं पेक्खिअ अदिसद्धसेण ण सक्कणोमि पदादो पदं वि गन्तुं। ता किं वा एत्थ करिस्सं। (एनं प्रेक्ष्य अतिसा-ध्वसेन न शक्नोमि पदात्पदमपि गन्तुम्। तत् किं वात्र करिष्यामि)।

विदूषकः– (सागरिकां दृष्ट्वा) अहो भो वअस्स अच्चरिअं अच्चरियं। ईरिसं रूपं माणुसलोए ण पुण दीसदि! तह तक्केमि पआवइणोवि इमं णिम्माअ पुणो पुणो विह्मओ संवुत्तेत्ति। (अहो भो वयस्य! आश्चर्यमाश्चर्यम्। ईदृशं कन्यारत्नं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते। तत्तर्कयामि प्रजापतेरप्येतन्निर्माय विस्मय समुपन्नः।) राजा– सखे! ममाप्येतदेव मनसि वर्तते।'

इत्यत्र सागरिकावत्सराजयोरन्योऽन्यनिर्वर्णनेन रूपातिशयप्रकटनं शोभा।

जैसे रत्नावली (२/१५ पद्य से पूर्व में)–

''**सागरिका–** (राजा को देख कर) हाय हाय, इन्हें देखकर अत्यन्त भय के कारण मुझसे तो एक कदम भी नहीं चला जाता! तो अब मैं क्या करूँ।

विदूषक– (सागरिका को देखकर) हे मित्र! अहा आश्चर्य है आश्चर्य है। ऐसा कन्यारत्न मनुष्य लोक में नहीं दिखलायी पड़ता। मैं समझता हूँ कि विधाता को भी इन्हें बना कर विस्मय हुआ होगा। **राजा–** यही बात मेरे भी मन में आ रही है।''

यहाँ सागरिका और वत्सराज (उदयन) का परस्पर एक दूसरे का वर्णन करने के कारण सौन्दर्य की अधिकता का प्रकटन होने से शोभा है।

अथ संशयः–

अनिश्चयान्तं यद् वाक्यं संशयः स निगद्यते ॥१०४॥

(७) संशय– अनिश्चय में अन्त होने वाला कथन संशय कहलाता है॥१०४उ.॥

यथा मालतीमाधवे (८.१४)-

'मकरन्दः (स्वगतम्)-

याता भवेद् भगवतीभवनं सखी सा
जीवन्त्यथैष्यति न वेत्यभिशङ्कितोऽस्मि ।
प्रायेण बान्धवसुहृत्प्रियसङ्गमादि-
सौदामनीस्फुरणचञ्चलमेव सौख्यम् ।।576।।

इत्यत्र मालती कामन्दक्याः गृहं गता वा जीवति वा न वेति संशयेन वाक्यसमाप्तेरयं संशयः ।

जैसे मालतीमाधव (८.१४)में-

मकरन्द- (अपने मन में)

यह सखी (मालती) भगवती-भवन को गयी होंगी, 'तत्पश्चात् जीती जागती आएँगी अथवा नहीं' इस विषय में मैं शङ्कायुक्त हूँ। बान्धव, मित्र और अभीष्टजन इनका समागम आदि सुख प्रायः बिजली के चमकने के समान है।।576।।

यहाँ कामन्दकी के घर गयीं हुई मालती जीवित रहेगी अथवा नहीं इस संशय के साथ कथन की समाप्ति होने के कारण संशय है।

अथ दृष्टान्तः-

सपक्षे दर्शनं हेतोर्दृष्टान्तः साध्यसिद्धये ।

(८) दृष्टान्त- साध्य (उद्देश्य) की सिद्धि के लिए अपने पक्ष में कारण को दिखाना दृष्टान्त कहलाता है।।१०५पू.।।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले (२/७)-

राजा-

शमप्रधानेषु तपोधनेषु
'गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-
स्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति ।।577।।

इत्यत्र तपोधनेषु गूढदाहात्मकतेजसः सद्भावे साध्ये साधकस्यान्य-तेजस्तिरस्कार-जनिततेजस्समुद्गाररूपस्य हेतोः सूर्यकान्तेषु दर्शितत्वाद् दृष्टान्तः ।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल २/६ में-

राजा-

शान्ति की प्रधानता वाले तपस्वियों में निश्चय ही दाह-स्वभाव वाला तेज छिपा रहता

है। वे छूने लायक सूर्यकान्त (मणि) की तरह दूसरे तेज के पराभव से वह (तेज) उगल देते हैं।।577।।

यहाँ तपस्वियों में छिपे हुए दाहात्मक तेज होने पर साध्य (शकुन्तला) में साधक (दुष्यन्त) सम्बन्धित तेज तिरस्कार से उत्पन्न तेज का समुद्गार के हेतु (कारण) सूर्यकान्त में देखने के कारण दृष्टान्त है।

अथाभिप्रायः-

अभिप्रायस्त्वभूतार्थो हृद्यः साम्येन कल्पितः ।।१०५।।
अभिप्रायं परे प्राहुर्ममतां हृद्यवस्तुनि ।

(९) अभिप्राय- समानता के कारण हृदयग्राही अभूतार्थ की कल्पना अभिप्राय है। कुछ अन्य आचार्य हृदयग्राही वस्तु में ममता को अभिप्राय कहते हैं।।१०५उ.-१०६पू.।।

यथा रत्नावल्याम् (३/१३)-

राजा-

किं पद्मस्य रुचिं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं
वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् ।
वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरुज्जृम्भते
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्यस्त्येव बिम्बाधरे ।।578।।

इत्यत्र चन्द्रसाम्येन मुखेऽमृतकल्पनादयमभिप्रायः। अथवा तत्रैवातिहृद्यबिम्बाधरे राज्ञो ममत्वमभिप्रायः।

जैसे रत्नावली (३/१३) में-

राजा-

तुम्हारा मुखकमल क्या कमल की कान्ति को दूर नहीं करता है अर्थात् अवश्य करता है। क्या वह नयनों को आनन्दित नहीं करता अपितु करता ही है। दर्शनमात्र से क्या कामवृद्धि नहीं करता (अथवा- समुद्र में बाढ़ नहीं लाता है) अर्थात् करता ही है, जो कि तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान है जैसे कि वह दूसरा चन्द्रमा ही निकल आया है। यदि चन्द्रमा को अपने में अमृत होने का अभिमान है तो वह भी तुम्हारे इस बिम्बाधर में है ही।।578।।

यहाँ चन्द्रमा से समानता के कारण मुख में अमृत की कल्पना होने से अभिप्राय है। अथवा यहीं पर दूसरे आचार्यों के अनुसार अति हृदयग्राही बिम्बाधर में राजा का ममत्व होना अभिप्राय है।

अथ निदर्शनं-

यत्रार्थानां प्रसिद्धानां क्रियते परिकीर्तनम् ।।१०६।।

परापेक्षाव्युदासार्थं तन्निदर्शनमुच्यते ।

(१०) निदर्शन– जहाँ दूसरे की उपेक्षा के प्रतिषेध के लिए प्रसिद्ध अर्थों की कल्पना की जाती है वह निदर्शन कहलाता है॥१०६उ.-१०७पू.॥

यथाभिज्ञानशाकुन्तले (१/२५)–

मनषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः ।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।।579।।

अत्र प्रतिवस्तुन्यायेन सदृशवस्तुकीर्तनं निदर्शनम् ।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल १/२५ में–

भला कैसे मानुषियों में इस सौन्दर्य की उत्पत्ति हो सकती है। प्रकाश से चञ्चल ज्योति (बिजली) पृथ्वी-तल से उदित नहीं होती।।579।।

यहाँ दूसरी वस्तु के न्याय से समान वस्तु का कथन होना निदर्शन है।

अथ सिद्धिः–

अतर्कितोपपन्नः स्यात् सिद्धिरिष्टार्थसङ्गमः ।।१०६।।

(११) सिद्धि– अचानक प्राप्त हुए अभीष्ट अर्थ (उद्देश्य)का समागम सिद्धि कहलाता है॥१०७उ.॥

यथा मालविकाग्निमित्रे (३/५पद्यादनन्तरम्)–

'विदूषकः– (दृष्ट्वा) ही हीवअस्स एदं क्खुसीहुपाणुव्वेजिदस्य मछंडिआ उवणदा, (आश्चर्यमाश्चर्य वयस्य एतत्खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यपिण्डकोपनता)। राजा- अये किमेतत्। विदूषकः– एसा णादिपरिक्खिदवेसा ऊसुअवअणा एआइणी मालविआ अदूरे वट्टइ- (एषा नातिपरिष्कृतवेषोत्सुकवदनैकाकिनीमालकिकाऽदूरे वर्तते)। राजा– (सहर्षम्) किं मालविका।

विदूषकः– अह इं (अथ किम्) 'राजा– शक्यमिदानीं जीवितमवलम्बितुम्'। इत्यत्रेरावतीसङ्केतं गच्छतो राज्ञो मालविकादर्शनसिद्धिरचिन्तिता सिद्धिः।

जैसे मालविकाग्निमित्र में ३/५ पद्य से पूर्व—

विदूषकः– (देखकर) आश्चर्य है महान् आश्चर्य है। यह तो मदमस्त व्यक्ति के समक्ष मानो मिश्री रखी हुई है। **राजा–** अरे! यह क्या? **विदूषक–** साधारण वेष में तथा उत्कण्ठित मुख लिये हुए अकेली मालविका अत्यधिक निकट ही विद्यमान है। **राजा—** (प्रसन्नता पूर्वक)- अरे! क्या मालविका यहाँ है। **विदूषक–** और क्या ? **राजा–** अब मैं जीवन-धारण करने में समर्थ हो सकता हूँ।

यहाँ इरावती द्वारा दिये गये संङ्केतस्थल पर गये हुए राजा का मालविका के दर्शन की सिद्धि अचिन्तित सिद्धि है।

अथ प्रसिद्धिः-

प्रसिद्धिर्लोकविख्यातैर्वाक्यैरर्थप्रसाधनम् ।

(१२) प्रसिद्धि- लोक- विख्यात कथनों से अर्थ को सजाना प्रसिद्धि कहलाता है।।१०८पू.।।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले (१/२०)-

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।।580।।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल (१/२०) में-

सिवार से घिरा हुआ होकर भी कमल रमणीय होता हैं। कलङ्क काला होकर भी चन्द्रमा की शोभा बढ़ाता है। वल्कल से भी यह कृशाङ्गी बहुत कमनीय है। भला कौन सी वस्तु है जो मधुर शरीरों का भूषण नहीं होती।।580।।

अत्र शैवालाद्यनुरोधेऽपि रमणीयतया प्रसिद्धानां सरसिजादीनां कथनेन शकुन्तलामनोज्ञता साधनं प्रसिद्धिः।

यहाँ शैवाल इत्यादि के द्वारा रुकावट होने पर भी रमणीयता के कारण प्रसिद्ध सरसिज इत्यादि के कथनों से शकुन्तला की मनोहता को सिद्ध करना प्रसिद्धि है।

अथ दाक्षिण्यं-

चित्तानुवर्तनं यत्र तद् दाक्षिण्यमितीरितम् ।।१०८।।

(१३) दाक्षिण्य- जिसमें चित्त की अनुरूपता होती है वह दाक्षिण्य कहलाता है।।१०८ उ.।।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले-

'सेनापतिः- जयतु स्वामी। राजा- भद्र! सेनापते! भग्नोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माढव्येन। सेनापतिः- (विदूषकं प्रति जनान्तिकम्) सखे! स्थिरप्रतिज्ञो भव। अहं तावत् स्वमिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये' (प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधेयः ननु प्रभुरेव निदर्शनम्।

मेदच्छेदकृशोदरं लघुभवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः।।(2.5)581।।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में-

सेनापति- महाराज की जय हो। **राजा-** हे भद्र सेनापति! मृगया (आखेट) का

विरोध करने वाले माढव्य द्वारा हतोत्साह कर दिया गया हूँ। सेनापति— (विदूषक के प्रति) हे मित्र! अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो। तब तक मैं महाराज की चित्तवृत्ति का अनुवर्तन कर रहा हूँ। (प्रकट रूप से) यह मूर्ख बकता रहे । इस विषय में आप स्वामी ही प्रमाण है—

(शिकार खेलने से) चर्बी कम होने से पतले उदर वाला शरीर हल्का और उद्योग (परिश्रम) करने योग्य हो जाता है। प्राणियों (जीवों) के भय और क्रोध की अवस्थाओं में (उनके) विकारयुक्त (क्षुब्ध) मन (चित्त) का भी ज्ञान हो जाता है। धनुर्धारियों के लिए यह गौरव का विषय है कि चलते-फिरते लक्ष्य पर भी (उनके) बाण सफल होते हैं। लोग शिकार खेलने को व्यर्थ में ही दुर्गुण कहते हैं, इस प्रकार का मनोरञ्जन (अन्यत्र) कहाँ हो सकता है।।(2.5)।।581।।

अत्र सेनापतेः राजचित्तानुवर्तनं दाक्षिण्यम् ।

यहाँ सेनापति का राजा के चित्त का अनुवर्तन दाक्षिण्य है।

अथार्थापत्तिः-

उक्तार्थानुपपत्यान्यो यस्मिन्नर्थः प्रकल्प्यते ।
वाक्यमाधुर्यसंयुक्ता सार्थापत्तिरुदीरिता ।।१०९।।

(१३) अर्थापत्ति- कहे गये अर्थ को उपपत्ति (प्रमाणपूर्वक) वाक्य की मधुरता से सम्पन्न अन्य अर्थ की कल्पना करना अर्थापत्ति कहलाता है।।१०९३.।।

यथा रत्नावल्याम्-

विदूषकः- भोः एसा क्खु अपुव्वा सिरि तुए समासादिदा (भोः एषा खलु त्वया अपूर्वा श्रीः समासादिता)। राजा- वयस्य सत्यम्-

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।।(2/17)582।।

अत्र स्वेदच्छद्मामृतद्रवोत्पत्तेरन्यथानुपपत्या पारिजातपल्लवकथनादियमर्थापत्तिः।

जैसे रत्नावली में-

विदूषक- हे महाराज! आप ने यह अपूर्व श्री को प्राप्त कर लिया है। **राजा—** हे मित्र! ठीक ही है-

'यह सुन्दरी लक्ष्मी है। इसका हाथ भी परिजात का किसलय है, यदि ऐसा नहीं है तो यह पसीने के बहाने अमृत द्रव कहाँ से टपक रहा है'।।(2.17)582।।

यहाँ स्वेद के छद्म से अमृत के द्रव की उत्पत्ति का अन्यथा प्रमाण द्वारा पारिजात के पल्लव का कथन होने से अर्थापत्ति है।

अथ विशेषणम्-

सिद्धान् बहून् प्रधानार्थानुक्त्वा यत्र प्रयुज्यते ।

विशेषयुक्तं वचनं विज्ञेयं तद् विशेषणम् ।।११०।

(१५) **विशेषण**– जिसमें बहुत प्रसिद्ध मुख्य अर्थ को कह कर विशेष रूप से वचन का प्रयोग होता है उसे विशेषण जानना चाहिए।।११०।।

यथा मालतीमाधवे–

माधवः– (चिराद् आभिलिख्य प्रदर्शयति)। मकरन्दः– (सकौतुकम्) कथमचिरेणैव निर्माय लिखितः श्लोकः। (वाचयति)–

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये ।
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ।।(1.39)583।।

इत्यत्रेन्दुकलादीन्मनोमदहेतुतया प्रसिद्धानुक्त्वा तत्समानमाधुर्यायामपि मालत्यां विशेषकथनादिदं विशेषणम्।

जैसे मालतीमाधव में–

माधव– (बहुत समय के बाद लिख कर दिखलाता है) **मकरन्द**- कैसे थोड़े समय में बना कर श्लोक भी लिख दिया। (बाँचता है)—

लोक में अत्यधिक प्रसिद्ध नवीन चन्द्रकला इत्यादि पदार्थ जयशील है। स्वभाव से सुन्दर और भी पद हैं ही जो मन को प्रसन्न करते हैं परन्तु जो यह नेत्र-चन्द्रिका लोक में मेरे नेत्रविषय को प्राप्त हो गयी है, जन्मशील पदार्थों में एक वहीं सौख्य का कारण है।।(1.39)583।।

यहाँ मन के मद के कारण चन्द्रकला इत्यादि प्रसिद्ध (अर्थों) को कह कर उसके समान माधुर्य वाली मालती में विशेषरूप रूपकथन होने से विशेषण हैं।

अथ पदोच्चयः–

बहूनां तु प्रयुक्तानां पदानां बहुभिः पदैः ।
उच्चयः सदृशार्थो यः स विज्ञेयः पदोच्चयः ।।१११।।

(१६) **पदोच्चय**– अनेक प्रयुक्त पदों का अनेक पदों से जो सदृशार्थ (समान अर्थ) सङ्ग्रहित (संग्रह किया हुआ) होता है, वह उसे पदोच्चय समक्षना चाहिए।।१११।।

यथा कर्पूरमञ्जर्याम् (२/९)–

राजा– (वाचयति)

सह दिअहणिसाहिं दीहरा सासदंडा
सह मणिवलएहिं बाहधारा गलंति ।
सुहअ! तुह विओए तीए उत्तंमिरीए
सहअ तणुलदाए दुब्बला जीवीदासा।।584।।

(सह दिवसनिशाभ्यांदीर्घाः श्वासदण्डाः
सह मणिवलयैर्बाष्पधारा गलन्ति ।
सुभग! तव वियोगे तस्या उत्ताम्यन्त्याः
सह च तनुलतया दुर्बला जीविताशा।।)

इत्यत्र श्वासदण्डादीनां दीर्घभावादिविक्रियासु दिवसनिशादिभिः सह समावेशादयं पदोच्चयः।

जैसे कर्पूरमञ्जरी (२/९) में-

राजा- (बाँचता है)-

हे प्रिय! तुम्हारे वियोग में कर्पूरमञ्जरी के लिए दिन और रात अत्यधिक लम्बे हो गये हैं तथा वह लम्बीं लम्बी साँसे छोड़ती है। विरह में दुबले हो जाने से मणिजटित कङ्कण उसके हाथ से गिर पड़ते हैं। इसी प्रकार इसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहती रहती है। जैसे-जैसे उसका शरीर दुबला होता जाता है उसके जीवन की आशा घटती जाती है।।584।।

यहाँ श्वाँस दण्ड इत्यादि का दीर्घभाव इत्यादि विक्रियाओं में दिन-रात्रि इत्यादि के साथ समावेश होने से पदोच्चय है।

अथ तुल्यतर्कः-

रूपकैरुपमाभिर्वा तुल्यार्थाभिः प्रयोजितः ।
अप्रत्यक्षार्थसंस्पर्शस्तुल्यतर्क इतीरितः ।।११२।।

(१७) तुल्यतर्क- रूपकों और उपमाओं के द्वारा समान अर्थ के आशय से प्रयुक्त अप्रत्यक्ष अर्थ का संस्पर्श तुल्यतर्क कहलाता है।।११२।।

यथा मालतीमाधवे (३.५)-

'माधवः- (सहर्षम्) दिष्ट्या लवङ्गिकाद्वितीया मालत्यपि परागता ।

आश्चर्यमुत्पलदृशो वदनामलेन्दु-
सान्निध्यतो मम पुनर्जडिमानमेत्य ।
जात्येन चन्द्रमणिनेव महीधरस्य
सम्भाव्यते द्रवमयो मनसो विकारः ।।585।।

इत्यत्रेन्दुचन्द्रकान्ताद्युपमयाऽप्रत्यक्षस्य स्नेहरूपस्य विकारस्य कथनं तुल्यतर्कः।

जैसे मालतीमाधव (३.५)में-

माधव- (प्रसन्नतापूर्वक) भाग्य से लवङ्गिका के साथ मालती भी आ गयी।

कमल के समान आँखों वाली मालती के चन्द्रमुख के सामीप्य से मेरे मन से चन्द्रमा के सामीप्य से पर्वत के विशुद्ध जाति में उत्पन्न चन्द्रकान्तमणि के समान बार-बार जाड्य (या जलप्रकृति को) प्राप्त कर द्रव- प्रचुर अथवा जलमय विकार को धारण किया जाता है, यह आश्चर्य है।।585।।

यहाँ चन्द्रमा और चन्द्रकान्त इत्यादि उपमा से प्रत्यक्ष स्नेहरूप के विकार का कथन तुल्यतर्क है।

अथ विचारः-

विचारस्त्वेकसाध्यस्य बहूपायोपवर्णनम् ।

(१८) विचार- एक ही साध्य का अनेक उपायों से वर्णन विचार कहलाता है॥११३पू.॥

यथा मालतीमाधवे (१.३५)-

मकरन्दः- वयस्य माधव सर्वथा समाश्वसिहि-

या कौमुदी नयनयोर्भवतः सुजन्मा
तस्या भवानपि मनोरथलब्धबन्धुः ।
तत्सङ्गमं प्रति सखे! न हि संशयोऽस्ति
यस्मिन् विधिश्च मदनश्च कृताभियोगः ।।586।।

अत्र सङ्गमरूपसाध्यार्थसिद्धये परस्परानुरागसिद्धिमदनरूपाणामुपायानां सद्भाव-कथनाद् विचारः।

जैसे मालतीमाधव (१.३५) में-

मकरन्द- हे मित्र माधव! धैर्य धारण करो—

जो (मालती) आप के नेत्रों की चाँदनी है, सुन्दर जन्म वाले (आप) भी उसके अनुराग प्रबन्ध के आश्रय हैं। हे मित्र! मालती के समागम के प्रति सन्देह नहीं है, जिस (समागम) में ब्रह्मा और कामदेव ने अभिनिवेश किया है।।586।।

यहाँ समागम रूप साध्यार्थ की सिद्धि के लिए परस्पर अनुराग सिद्धि कामरूप उपायों का सद्भाव कथन होने से विचार है।

अथ तद्विपर्ययः-

विचारस्यान्यथाभावो विज्ञेयस्तद्विपर्ययः ।।११३।।

(१९) तद्विपर्यय- विचार का अन्यथाभाव (अभाव) को तद्विपर्यय (उस विचार की विपरीतता) समझना चाहिए॥११३उ.॥

यथा रामानन्दे (उत्तररामचरिते ३/४५)-

व्यर्थं यत्र कवीन्द्रसख्यमपि मे वीर्यं कपीनामपि
प्रज्ञा जाम्बवतोऽपि यत्र न गतिः पुत्रस्य वायोरपि ।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरपि पत्रिणामविषयस्तत्र प्रिया क्वासि मे ।।587।।

अत्र बहूपायसामर्थ्याभावकथनाद् विचारविपर्ययः स्पष्ट एव।

जैसे (उत्तररामचरित ३/४५ में)-

हे प्रिये! जिस स्थान में मेरी सुग्रीव के साथ की गयी मित्रता भी व्यर्थ है, बन्दरों का पराक्रम भी निरर्थक है, जाम्बवान् की बुद्धि भी समर्थ नहीं है, हनुमान् की भी गति नहीं है, जहाँ पर विश्वकर्मा के पुत्र नल भी मार्ग (पुल) बनाने में समर्थ नहीं हैं, कि बहुना मेरे भाई लक्ष्मण के भी बाणों से अगम्य ऐसे किस स्थान में तुम विद्यमान हो।।587।।

यहाँ अनेक उपाय के सामर्थ्य के अभाव का कथन होने से तद्विपर्यय है।

अथ गुणातिपातः-

गुणातिपातमन्यत्र गुणाख्यानमुदाहृतम् ।

(२०) **गुणातिपात-** गुणों का आख्यान (प्रचार) करना गुणतिपात कहलाता है।।११४पू.।।

यथा वेणीसंहारे (५/३६)-

(ततः प्रविशतौभीमार्जुनौ) भीमः- अलमलमाशङ्कया-

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपरः पाण्डवा यस्य दासाः ।
राजा दुश्शासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रं
क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः ।।588।।

अत्र अधिक्षेपवाक्यत्वाद्व्यत्यस्तगुणाख्यानं स्पष्टमेव ।

जैसे (वेणीसंहार ५/२६ में)-

(तत्पश्चात् भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं) **भीम-** अरे, अरे, शङ्का करना व्यर्थ है—

द्यूत-कपटों का कर्त्ता, लाह- निर्मित भवन को जलाने वाला, द्रौपदी के केश तथा सिर एवं वक्षस्थल को ढ़कने वाले वस्त्र को दूर हटाने में वायु तुल्य, घमण्डी, पाण्डव लोग जिसके दास हैं, दुःशासन आदि सौ भाईयों के समूह में श्रेष्ठ, कर्ण का मित्र, राज्य का अधिपति वह दुर्योधन कहाँ है? (तुम लोग) बतलाओ, क्रोध से नहीं, (अपितु) दर्शन करने के लिए (हम दोनों) आये हुए हैं।।588।।

यहाँ अधिक्षेप वाक्यों द्वारा गुणों का आख्यान (प्रकटन) स्पष्ट है।

अथातिशयः-

बहून् गुणान् कीर्तयित्वा सामान्यजनसंश्रितान् ।।११४।।
विशेषः कीर्त्यते यत्र ज्ञेयः सोऽतिशयो बुधैः ।

(२१) **अतिशय-** जिसमें सामान्य लोगों के आश्रित अनेक गुणों को कह कर विशेषरूप से कहा जाता है उसे आचार्यों ने अतिशय कहा है।।११५उ.-११६पू.।।

यथा विक्रमार्वशीये(४.२५)-

'राजा- अहह अनेन प्रियोपलब्धिशंसिना मन्दकण्ठगर्जितेन समाश्वासितोऽस्मि। साधर्म्याच्च त्वयि मे भूयसी प्रीतिः। कथमिव,

मामाहुः पृथिवीभुजामधिपतिं नागाधिराजो भवा-
नव्युच्छिन्नपृथुप्रवृत्ति भवतो दानं ममाप्यर्थिषु ।
स्त्रीरत्नेषु ममोर्वशी प्रियतमा यूथे तवेयं वशा
सर्वं मामनु ते प्रियाविरहजां त्वं तु व्यथां मानुभूः ।।589।।

इत्यत्र स्वधर्मानुधर्मिणि गजाधिराजे पुरुरवसा प्रियाविरहाभाव-कथनादतिशयः।

जैसे (विक्रमोर्वशीय में)-

राजा- अहा! प्रिया की सूचना स्वीकार करने वाले आप के धीर- गम्भीर गर्जन से मुझे आश्वासन मिला। समानता के कारण आपमें मुझे अत्यधिक प्रेम जाग्रत हो रहा है।

जैसे कि मुझे लोग पृथ्वी-पालक राजाओं का स्वामी (अर्थात् चक्रवर्ती नरेश) कहते हैं और आप कुञ्जरकुल के नरेश हैं। जिस प्रकार आपमें अनवरत दान जलसेक की धारा बहती है उसी प्रकार मेरी याचकों के मध्य में अनवरत दान देने की आदत बनी रहती है। तो सम्पूर्ण करियूथ में अलबेली यह हथिनी भी आप की वशवर्तिनी (प्रिया) के रूप में है। तुम्हारी सभी स्थितियाँ मेरे समान हैं। किन्तु (प्रिया वियोग में) जैसे मैं दुःखी हो रहा हूँ (वैसी स्थिति तुम्हारी न हो) तुम्हें अपनी प्रेयसी के विरह का दुःख न भोगना पड़े। (4.25)।।589।।

यहाँ अपने गुण के समान गुण वाले गजराज में पुरुरवा के द्वारा प्रिया के विरह के अभाव का कथन होने से अतिशय है।

अथ निरुक्तम्-

निरुक्तिर्निरवद्योक्तिर्नामान्यर्थप्रसिद्धये ।।११५।।

(२२) निरुक्त- नाम की अन्यर्थता (अन्वर्थता) की प्रसिद्धि के लिए निर्दोष (आपत्तिरहित) कथन निरुक्त कहलाता है।।११५ उ.।।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले (१/१८ पद्यात्पूर्वम्)-

'प्रियंवदा- हला! सउन्दले! एत्थ दाव मुहुत्तअं चिट्ठ, जाव तुए उवगदाए एसो लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि(हला शकुन्तले! अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ। यावत् त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति)। शकुन्तला- (हला! अदो खु पिअंवदा सि तुम (अत' खलु प्रियंवदासि त्वम्)।

अत्र प्रियंवदायाः प्रियभाषणादिदं नामधेयमित्युक्तिर्निरुक्तिः।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में (१/१८ पद्य से पूर्व)-

प्रियंवदा- हे शकुन्तला! तो यहीं थोड़ी देर तक रुको जिससे तुमसे संलग्न होने

के कारण यह केसरवृक्ष लता से सनाथ प्रतीत हो रहा है। **शकुन्तला–** इसी लिए तुम प्रियंवदा (प्रिय बोलने वाली हो)।

यहाँ प्रियंवदा का प्रिय भाषण इत्यादि से यह नाम निर्वचन निरुक्ति है।

अथ गुणकीर्तनम्–

लोके गुणातिरिक्तानां बहूनां यत्र नामभिः ।
एकोऽपि शब्द्यते तत्तु विज्ञेयं गुणकीर्तनम् ।।११६।।

(२३) गुणकीर्तन– लोक में गुणों के अतिरेक वाले अनेक नामों से जब एक ही व्यक्ति का कथन किया जाता है तो उसे गुणकीर्तन जानना चाहिए।।११६।।

यथा उत्तररामचरिते (३/२६)–

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ।।590।।

इत्यत्रामृतकौमुदीप्रभृतिनामभिः सीताशंसनं गुणकीर्तनम् ।

जैसे उत्तररामचरित (३/२६ में)–

तुम मेरा जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरी आँखों में चाँदनी हो, तुम शरीर पर अमृत हो' इत्यादि सैकड़ों प्रिय वचनों से भोली सीता को अनुनय करके उन्हीं को- अथवा बस, इसके आगे कहने से क्या लाभ है?।।590।।

यहाँ अमृत और कौमुदी इत्यादि नामों द्वारा सीता की प्रशंसा करना गुणकीर्तन है।

अथ गर्हणम्–

यत्र सङ्कीर्तयन् दोषान् गुणमर्थेन दर्शयेत् ।
गुणान् वा कीर्तयन् दोषान् दर्शयेद् गर्हणं तु तत् ।।११७।।

(२४) गर्हण– जहाँ दोषों का कथन करते हुए गुणों को प्रदर्शित किया जाय अथवा गुणों का कथन करते हुए दोषों को दिखलाया जाय वह गर्हण कहलाता है।।११७।।

यथा मालतीमाधवे (६/१५ पद्यात्पूर्वम्)–

(लवङ्गिका– भअवदि! किसण चउद्दसीरअणिमहामसाणसंचारणिब्बविसमडिअवसाओणिट्ठाविदव्चण्डपासंडुद्दण्डसाहसो साहसिओ क्खु एसो। अदो क्खु पिअसही उक्कंपिदा। (भगवति! कृष्णचतुर्दशीरजनीमहाश्मसानसञ्चार-पृथग्भूतविषमव्यवसायो निष्ठापितचण्डपाषण्डोद्दण्डभुजदण्डसाहसः साहसिकः खलु एषः। अतः खलु मे सखी उत्कम्पिता।) मकरन्दः– (स्वगतम्) 'साधु लवङ्गिके! साधु। स्थाने खल्वनुरागोपकारयोर्गरीयसोरुपन्यासः'।

इत्यत्र महामांसविक्रयस्य साहसस्य दोषरूपेण कथनेऽपि माधवानुरागोत्पादनं गुणतया पर्यवसितम्। इदं गुणगर्हणत्वाद् गर्हणम् ।

जैसे मालतीमाधव में (६/५ पद्य से पूर्व)-

लवङ्गिका- हे भगवति! कृष्णपक्ष की रात में श्मसान में जाकर अध्यवसाय करने वाले और प्रचण्ड पाखण्डी अघोरघण्ट के साहस को समाप्त करने वाले ये (माधव) साहसिक पुरुष हैं। इस कारण से प्रिय सखी (मालती) कम्पित हुई है। **मकरन्द-** (अपने मन में) ठीक है लवङ्गिके ठीक है। **कामन्दकी—** तुमने उचित समय में गुरुतर अनुराग और उपकार का उपस्थापन किया है।

यहाँ मांस- विक्रय के साहस का दोष के रूप में कथन होने पर भी माधव के प्रति अनुराग की उत्पत्ति के गुण के कारण मुख्य गर्हणीयता से यह पर्यवसित हो गया ।

गुणसङ्कीर्तनेन दोषपर्यवसानं यथा मालतीमाधवे (सप्तमाङ्के उपक्रमे)-

'मदयन्तिका- (तथा कृत्वा) दुम्मणा अदि इअं वामसीला। (दुर्मनायते वा इयं वामशीला)।

लवङ्गिका- कहं णाम णववहूविस्सम्भणोवअजाणअं लडहं विअड्ढमहुरभासणं अरोसणं अकादरं दे भादरं भत्तारं समासादिअ ण दुम्मणाइस्सदि मे पिअसही। (कथं नाम नववधूविस्रम्भणोपायभिज्ञं लडहं विदग्धं मधुरभा-षणमरोषणं अकातरं ते भ्रातरं भर्त्तारमासाद्य न दुर्मनायिष्यते मे प्रियसखी) मदयन्तिका- पेक्ख बुद्धरक्खिदे! विप्पदीवो उवालम्भीआमो। (प्रेक्ष्य बुद्धिरक्षिते! विप्रतीपमुपालभ्यामहे।)

इत्यत्र प्रमुखतो गणुकीर्तनमप्यन्ततो दोषायेति गर्हणमिदम्।

गुण के कीर्तन और दोष का पर्यवसान होने पर जैसे (मालतीमाधव में)-

लवङ्गिका- नववधू के विश्वास की उत्पत्ति के उपायों को जान कर सुन्दर, निपुण, मधुरभाषी और क्रोध न करने वाले आप के भाई को पति पाकर मेरी प्रिय सखी क्या दुखित मन वाली नहीं होगी। **मदयन्तिका—** देखो बुद्धिरक्षिते! इन्होंने हमें विपरीत रूप से उलाहना दिया है।

यहाँ मुख्य रूप से गुणकीतन भी दोष के लिए है, अत: गर्हण है।

अथानुनयः-

अभ्यर्थनापरं वाक्यं विज्ञेयोऽनुनयो बुधैः।

(२५) **अनुनय-** प्रार्थना- युक्त वाक्य अनुनय कहलाता है।।११९पू.।।

यथा वेणीसंहारे (५.४१)-

धृतराष्ट्रः- *सञ्जय! मद्वचनाद् ब्रूहि भारद्वाजमश्वत्थामानम्-*

स्मरति न भवान् पीतं स्तन्यं चिराय सहामना

मम तु मृदितं बाल्ये क्षौमं त्वदङ्गविवर्तनैः ।
अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाद् भयाद्
वचनविकृतिस्तस्य क्रोधो मुधा क्रियते त्वया ।।591।।

इत्यत्राश्वत्थामप्रार्थनमनुनयः ।

जैसे वेणीसंहार (५.४१) में-

धृतराष्ट्र- हे संजय! मेरी ओर से भारद्वाज के कुल में उत्पन्न अश्वत्थामा से कहो इस इस (दुर्योधन) के साथ बाँट कर (इसकी माँ गान्धारी का) दूध पिया गया था तथा बचपन में तुम्हारे अङ्गों की लोट-पोट से मेरा रेशमी वस्त्र रौंदा गया था- इसको आप नहीं याद कर रहे हैं। भाई (दुःशासन) की मृत्यु के बढ़े शोक से अथवा (कर्ण के विषय में) अधिक प्रेम होने के कारण भी (कहे गये इसके) अनुचित वचनों पर जो क्रोध तुम्हारे द्वारा किया जा रहा है, वह व्यर्थ हैं।।(5.41)591।।

यहाँ अश्वत्थामा के प्रति प्रार्थना अनुनय है।

अथ भ्रंशः-

पतनं प्रकृतादर्थादन्यस्मिन् भ्रंश ईरितिः ।।११८।।

(२६) भ्रंश- प्रकृत (मूल) अर्थ से अन्य (अर्थ) में जाना भ्रंश कहलाता है। अर्थात् शब्द के मूल अर्थ को छोड़ कर अन्य अर्थ से जोड़ना भ्रंश है।।११८उ.।।

यथा प्रसन्नराघवे (१/३२ पद्यादनन्तरम्)-

रावणः- (संवृतनिजरूपः पुरुषरूपेण प्रविष्टः) कथय क्व तावत् कर्णान्तिनिवेशनीयगुणं कन्यारत्नं कार्मुकं च। मञ्जीरकः- इदं तावत् कार्मुकम्। कन्या तु चरमं लोचनपथमवतरिष्यति। रावणः- (ससंरम्भम्) धिङ्मूर्ख! रे! रे! नक्षत्रपाठकानामपि गोष्ठीमदृष्टवानसि । तेऽपि कन्यामेव प्रथमं प्रकाशयन्ति। चरमं धनुः। मञ्जीरकः- (स्वगतम्) कथमयं वाचालतामेव प्रकटयति' इत्यत्र रावणेन (पुरुषरूपेण प्रविष्टेन) धनुःकन्ययोः प्रकृतमर्थं परित्यज्य राशिलक्षणस्यार्थस्य प्रसञ्जनादयं भ्रंशः।

जैसे प्रसन्नराघव में (१/३२ पद्य से बाद)-

रावण- (अपने रूप को छिपाकर पुरुष के रूप में प्रवेश किया हुआ) तो बताओ, कान के द्वारा सुनने योग्य गुणों वाली श्रेष्ठ कन्या और कान के पास तक खींच कर ले जाने योग्य धनुष कहाँ है? **मञ्जीरक-** धनुष तो यह है और कन्या (धनुष चढ़ाने के) बाद नेत्रों के सामने आएगी। **रावण-** (क्रोध के साथ) मूर्ख! तुम्हें धिक्कार है। क्यों रे! राशि और नक्षत्र पढ़ाने वाले (ज्योतिषियों) की सभा (तूने) नहीं देखा है। वे भी कन्या (राशि) को पहले प्रकट करते हैं और धनु (राशि) को बाद में । **मञ्जीरक-** (अपने मन में) यह कैसी वाचालता को प्रकट कर रहा है।

यहाँ (पुरुष रूप में प्रविष्ट) रावण के द्वारा धनु और कन्या का प्रकृत अर्थ छोड़कर राशि वाले अर्थ को प्रकट करने के कारण यह भ्रंश है।

अथ लेशः-

लेशः स्यादिङ्गितज्ञानकृद्विशेषणवद्वचः ।

(२७) **लेश-** विशेषण- युक्त सङ्केतित ज्ञान से किया गया कथन लेश कहलाता है।।११९३.।।

यथा मालतीमाधवे (२.११)-

असौ विद्वान् धीरः शिशुरपि विनिर्गत्य भवना-
दिहायातः सम्प्रत्यविकलशरच्चन्द्रमधुरः ।
यदालोकस्थाने भवति परमोन्मादतरलैः
कटाक्षैर्नारीणां कुवलयितवातायनमिव ।।592।।

इत्यत्र कामन्दक्या मालत्यनुरागज्ञाननिवेदनस्योन्मादतरलैरिति विशेषणस्य कथनाल्लेशः।

जैसे मालतींमाधव (२/११) में-

शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले बाल्यावस्था में विद्याशाली ये (माधव) भवन से निकल कर यहाँ आये हुए हैं जिनके दर्शन- योग्य स्थान में नगर उन्माद से चञ्चल सुन्दरियों के कटाक्षों रूपी नील-कमलों से युक्त वातायनों से सम्पन्न के समान हो जाता है।।592।।

कामन्दकी द्वारा मालती के ज्ञात अनुराग के निवेदन का 'उन्माद से द्रवीभूत' इस विशेषण के साथ कथन होने से उल्लेख है।

अथ क्षोभः-

क्षोभस्त्वन्यमते हेतावन्यस्मिन् कार्यकल्पनम् ।।११९।।

(२८) **क्षोभ-** कारण के अन्यगत (दूसरे में) होने पर (उससे) अन्य (दूसरे) में कार्य का उत्पन्न होना क्षोभ कहलाता है।।११९३.।।

विमर्श- कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है किन्तु जब कारण अन्यत्र (अन्यगत) तथा कार्य (उससे) अन्यत्र हो तो वह क्षोभ कहलाता है।

यथा रत्नावल्याम् (३/१६)-

राजा- (उपसृत्योद्बन्धनमपनीय) देवि! कमिदमकार्यं क्रियते।

मम कण्ठगताः प्राणाः पाशे कण्ठगते तव ।
अनर्थार्थप्रयत्नोऽयं त्यज्यतां साहसं प्रिये! ।।593।।

अत्र पाशे वासवदत्ताकण्ठगते तत्कार्यभूतस्य प्राणानां कण्ठगतत्वस्य वत्सराजेन

स्वस्मिन् कल्पनात् क्षोभः।

जैसे रत्नावली (३/१६) में-

राजा- (आगे बढ़कर गले का फंदा निकालता हुआ) अरी साहस करने वाली! तू यह अकार्य क्यों कर रही हो?

फन्दा तुम्हारे गले में पड़ने पर मेरे प्राण ही निकले जा रहे हैं। अतः (फाँसी लगा कर) मरने से हटाने का यह प्रयत्न स्वार्थ (अपने को बचाने के लिए) भी है। हे प्रिये! इस अकार्य (फाँसी लगाने) को छोड़ दो।।593।।

यहाँ (कारण) वासवदत्ता के गले में फन्दा होने पर उससे उत्पन्न कार्यभूत प्राणों का गले तक आना उदयन द्वारा अपने में कल्पित होने के कारण क्षोभ है।

अथ मनोरथः-

मनोरथस्तु व्याजेन विवक्षितनिवेदनम् ।

(२९) मनोरथ- बहाने से अपने मनोरथ का निवेदन (सङ्केत) मनोरथ कहलाता है।।१२०पू.।।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले (३/२१ पद्यादनन्तरम्)-

'शकुन्तला- (पदान्तरं गत्वा परिवृत्य प्रकाशम्) भो लदावल्लअ! संदावहारअ आमंतेमि तुमं पुणो परिभोअस्य' (भो अतावलय सन्तापहारक आमन्त्रये त्वां पुनः परिभोगाय)।

अत्र लतामण्डपव्याजेन दुष्यन्तामन्त्रणं मनोरथः ।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में (३/२१ पद्य के बाद)-

शकुन्तला- (कुछ पग जाकर पुनः पीछे की ओर मुख करके प्रकट रूप से) हे कष्ट को दूर करने वाले लतासमूह! तुम्हे फिर उपभोग के लिए आमन्त्रित करती हूँ। यहाँ लतामण्डप के बहाने दुष्यन्त को आमन्त्रित करना मनोरथ है।

अथानुक्तसिद्धिः-

प्रस्तावेनैव शेषार्थो यत्रानुक्तोऽपि गृह्यते ।।१२०।।
अनुक्तसिद्धिरेषा स्यादित्याह भरतो मुनिः ।

(३०) अनुक्तसिद्धि- प्रस्ताव के द्वारा ही शेष अनुक्त- अर्थ के ग्रहण हो जाने को आचार्य भरत ने अनुक्तसिद्धि कहा है।।१२०उ.१२१पू.।।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले (१/२५ पद्यात्पूर्वम्)-

'अनसूया- अज्ज! पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किं वि जादसंकेहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्घकारिणी पेसिदा। (आर्य पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नाम अप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रेषिता'। राजा- अस्त्येवान्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्। ततस्ततः। अनसूया- तदो वसन्तोदाररमणीए

समए ताए उम्मादइत्तअं रूवं दक्खिअ। (ततो वसन्तोदाररमणीये समये तस्याः उन्मादायितृकंरूपं प्रेक्ष्य)। '(इत्योंक्ते लज्जया विरमति) राजा– भवतु, परस्ताद्विभाव्यत एव।'

इत्यत्रानुक्तस्यापि मेनकाविश्वामित्रसङ्गमस्य प्रतीतेरियमनुक्तसिद्धिः।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में (१/२५ पद्य से पूर्व)–

अनसूया– हे आर्य! पहले उस राजर्षि के उग्र तपस्या में लीन होने पर कुछ उत्पन्न शङ्का वाले देवताओं के द्वारा नियम (व्रत) भङ्ग करने वाली मेनका नामक अप्सरा भेजी गयी। **राजा–** दूसरों की तपस्या (समाधि) से देवताओं का भयभीत होना सुना जाता है। तब-तब फिर। **अनसूया–** तत्पश्चात् वसन्त के रमणीय समय में उसके उन्मादक रूप को देख कर (इस आधी बात को कह कर लज्जा के कारण रुक जाती है)। **राजा-** ठीक है, आगे का समाचार ज्ञात हो गया।

यहाँ अनुक्त मेनका और विश्वामित्र के समागम की प्रतीति अनुक्त-सिद्धि है।

अथ सारूप्यम्–

दृष्टश्रुतानुभूतार्थकथनादिसमुद्भवम् ।।१२१।।
सादृश्यं यत्र संक्षोभात् तत् सारूप्यं निरूप्यते ।

(३१) सारूप्य– भ्रम के कारण देखने, सुनने या अनुभूत अर्थ के कथन से उत्पन्न जो सादृश (समानता) है वह सारूप्य कहलाता है।।१२१उ.-१२२पू.।।

यथा वेणीसंहारे (६.२८)–

'(प्रविश्य गदापाणिः भीमः) भीमः– तिष्ठ-तिष्ठ! भीरु! क्वेदानीं गम्यते। (केशेषु ग्रहीतुमिच्छति)। युधिष्ठिरः– (बलाद् भीममालिङ्ग्य) दुरात्मन्! भीमार्जुनशत्रो! दुर्योधनहतक!

आशैशवादनुदिनं जनितापराधः
क्षीबो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्र!
आसाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपञ्जरस्य
जीवन् प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ।।594।।

भीमः– अये कथमार्यः सुयोधनशङ्कया निर्दयं मामलिङ्गति।

इत्यत्र चार्वाकशापितदुर्योधनविजयसङ्कथनसंक्षोभेण युधिष्ठिरादीनां भीमे सुयोधनबुद्धिकथनादिदं सारूप्यम्।

जैसे वेणीसंहार में–

(हाथ में गदा लिये हुए प्रवेश करके) **भीम–** रुको-रुको, अरे डरपोक! अब कहाँ जा रहे हो? (बालों को पकड़ना चाहता है) **युधिष्ठिर–** (बलपूर्वक भीम का आलिङ्गन करके) हे दुष्ट! भीम और अर्जुन का शत्रु नीच दुर्योधन!

हे पापी! वचपन से लेकर प्रतिदिन अपराधों को करने वाला, भुजाओं के बल से मतवाला, (अर्जुन और भीम रूप) राजपुत्रों को मारने वाला आज तुम मेरे भुजा रूपी पिजड़े के

इस मध्यभाग को प्राप्त करके (अर्थात् मेरी भुजाओं के मध्य भाग में आकर) जीते जी एक पग (भी) नहीं जा सकता।।(6.28)।।594।।

भीम- अरे! क्या आर्य दुर्योधन की शङ्का से क्रोधवश निर्दयता पूर्वक मेरा आलिङ्गन कर रहे हैं।

यहाँ चार्वाक द्वारा दिये गये वर वाले दुर्योधन के विजय के कथन से क्रोध के कारण से युधिष्ठिर इत्यादि का भीम को दुर्योधन समझना सारूप्य है।

अथ माला-

ईप्सितार्थप्रसिद्ध्यर्थं कथ्यन्ते यत्र सूरिभिः ।।१२२।।
प्रयोजनान्यनेकानि सा मालेत्यभिसंज्ञिता ।

(३२) माला- अभीष्ट अर्थ की प्रसिद्धि के लिए जहाँ अनेक प्रयोजन कहे जाते हैं, आचार्यों ने उसे माला नाम से अभिहित किया है।।१२२उ.१२३पू.।।

यथा धनञ्जयविजये (१६)-

गोरक्षणं समदशात्रवमानभङ्गः
प्रीतिर्विराटनृपतेरुपकारितश्च ।
पर्याप्तमेकमपि मे समरोत्सवाय
सर्वं पुनर्मिलितमत्र ममैव भाग्यैः ।।595।।

जैसे धनञ्जयविजय (१६) में-

गायों की सुरक्षा, मदयुक्त शत्रुओं का मानभङ्ग, विराट् राजा का प्रेम और (उनका) उपकार (इनमें से) एक ही मेरे युद्ध में उत्सव के लिए पर्याप्त है, फिर यहाँ ये सभी मेरे भाग्य से मिल गये हैं।।595।।

अथ मधुरभाषणम् -

यत्प्रसन्नेन सारूप्यं यत्र पूजयितुं वचः ।।१२३।।
स्तुतिप्रकाशनं तत्तु स्मृतं मधुरभाषणम् ।

(३३) मधुरभाषण- प्रसन्तापूर्वक सम्मान करने के लिए अनुरूप स्तुति का प्रकाशन मधुरभाषण कहलाता है।।१२३उ.१२४पू.।।

यथा अनर्घराघवे-

'दशरथः- (सप्रश्रयम्) भगवन्! विश्वामित्र!

क्वचित्कान्तारभाजां भवति परिभवः कोऽपि शौवापदो वा
प्रत्यूहेन क्रतूनां न खलु मखभुजो भुञ्जते वा हवींषि ।
कर्तुं या कच्चिदन्तर्वसति वसुमतीदक्षिणः सप्ततन्तु-

यत्सम्प्राप्तोऽसि किं वा रघुकुलतपसामीदृशोऽयं विवर्तः ।।(1.25)596।

विश्वामित्रः-(विहस्य)-

जनयति त्वयि वीर दिशां पती-

नपि गृहाङ्गणमात्रकुटुम्बिनः ।

रिपुरिति श्रुतिरेव न वास्तवी

प्रतिभयोन्नतिरस्तु कुतस्तु नः ।।(1.26)588।।

इत्यादावन्योन्यं पूजावचनं मधुरभाषणम् ।

जैसे अनर्घराघव में-

दशरथ- (विनम्रतापूर्वक) हे भगवान् विश्वामित्र!

क्या वनवासियों को श्वापदों ने किसी प्रकार का कष्ट दिया है, क्या यज्ञ में कुछ बाधा हुई है, जिससे देवों को हवि नहीं प्राप्त हो रही है। क्या आप के हृदय में सारी पृथ्वी दक्षिणा में देकर कोई यज्ञ करने की इच्छा हो रही है जो आप हमारे पास पधारे हैं या यह रघुवंशियों के तप का ही परिणाम है।(1/25)।।596।।

विश्वामित्र (हँसकर)—

हे वीर! आपने जब सभी असुरों को परास्त करके देवों को भी घर भर में नियतवासी बना रखा है तब हम लोगों को कैसा भय। भय तो केवल सुनने की बात रह गयी है, वस्तुतः वह कोई वस्तु नहीं।(1.26)।।597।।

इत्यादि में परस्पर सम्मान-कथन मधुरभाषण है।

अथ पृच्छा-

प्रश्नेनैवोत्तरं यत्तु सा पृच्छा परिकीर्तिता ।।१२४।।

(३४) पृच्छा- प्रश्न के द्वारा ही जो उत्तर मिलता है वह पृच्छा कहलाता है।।१२४उ.।।

यथा (विक्रमोर्वशीये ४/५१)-

सर्वक्षितिभृतां नाथ! दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ।

रामा रम्ये वनान्तेऽस्मिन् मया विरहिता त्वया ।।598।।

इत्यत्र पर्वतानां नाथ! मया विरहिता प्रिया त्वया दृष्टेति प्रश्ने राज्ञां नाथ! त्वया विरहिता मया दृष्टेत्युत्तरस्य प्रातीयमानत्वादियं पृच्छा।

हे सभी पर्वतों के अधिराज! क्या तुमने सभी अवयवों से मनोहर, मन को रमण कराने वाली (मेरी प्रिया) को इस वन में बिछुड़ी हुई भटकती हुई देखा है क्या।।598।।

यहाँ 'हे पर्वतों के नाथ मेरी विरहित प्रिया को देखा है क्या? इस प्रकार प्रश्न करने पर 'नाथ! तुम्हारे द्वारा विरहित प्रिया मेरे द्वारा देखी गयी है' इस उत्तर के प्रतीत होने से यह

पृच्छा है।

अथोपदिष्टम्–

प्रतिगृह्य तु शास्त्रार्थं यद् वाक्यमभिधीयते ।
विद्वन्मनोहरं स्वन्तमुपदिष्टं तदुच्यते ।।१२५।।

(३५) उपदिष्ट– शास्त्रार्थ से ग्रहण करके अपने तथा विद्वानों के लिए मनोहर जो वाक्य कहा जाता है, वह उपदिष्ट कहलाता है।।१२५।।

यथाभिज्ञानशाकुन्तले–

'शकुन्तला'– (भयं नाटयन्ती) पौरव रक्ख अविणअं। मिअणसन्तत्ता वि अत्तणो ण पहवाभि (पौरव रक्ष अविनयम्। मदनसन्तप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि)। राजा– अलं गुरुजनाद् भयेन। न ते विदितधर्मा हि भगवान् दोषमत्र ग्रहीष्यति। पश्य–

गान्धर्वेण विवाहेन बहवो राजर्षिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ता पितृभिश्चाभिनन्दिताः ।।(3/20)599।।

इत्यत्र शास्त्रानुरोधेनैव प्रवृत्तत्वादिदमुपदिष्टम् ।

जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में–

शकुन्तला– (भय का अभिनय करती हुई) हे पौरव मर्यादा (अविनय) की रक्षा करो। काम से पीड़ित भी मैं अपनी स्वामिनी नहीं हूँ। **राजा**- गुरुजन का भय मत करो। धर्म को जानने वाले भगवान् (कण्व) इस विषय में तुमसे रुष्ट नहीं होंगे। देखो— बहुत सी राजर्षियों की लड़कियाँ गान्धर्वविवाह द्वारा विवाहित हुई और बाद में पिताओं (गुरुजनों) द्वारा समादरित भी हुई, ऐसा सुना जाता है।(3.20)।।599।।

यहाँ शास्त्र के अनुसार प्रवृत्त होने से यह उपदिष्ट है।

अथ दृष्टम्

यथादेशं यथाकालं यथारूपं च वर्ण्यते ।
यत्प्रत्यक्षं परोक्षं वा तद् दृष्टं दृष्टवन्मतम् ।।१२६।।

(३६)- स्थान, समय तथा रूप के अनुसार जो प्रत्यक्ष या परोक्ष वर्णन किया जाता है, वह दृष्ट के समान दृष्ट कहलाता है।।१२६।।

(प्रत्यक्षदृष्टं) यथा मालविकाग्निमित्रे (२.६)–

'राजा– अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभान्तरं पुष्यति।

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम् ।

पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृन्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम् ।।600।।

इत्यत्रेतरसमक्षं स्थितायाः संस्थानजातिवर्णनादिदं प्रत्यक्षदृष्टम्।

(प्रत्यक्षदृष्ट) जैसे (मालविकाग्निमित्र २/६ में)-

राजा- 'अहो! सभी अवस्थाओं में मनोहरता दूसरी शोभाओं को पुष्ट करती है।

इसने अपना बायाँ हाथ अपने नितम्ब पर रख लिया है अत एव हाथ का कड़ा पहुँचे पर रुक कर चुप हो गया है। दूसरा हाथ श्यामा की डाली के सामान ढीला लटका हुआ है। आँखें नीची करके पैर के अँगूठे से धरती पर बिखरे हुए फूलों को सरका रही है। इस प्रकार खड़ी होने से ऊपर का शरीर लम्बा और सीधा हो गया है। नाचने के समय भी यह ऐसी सुन्दर नहीं लगती थी जैसी अब लग रही है।।600।।

अप्रत्यक्षदृष्ट यथा पद्मावत्याम्-

व्यत्यस्तपादकमलं वलितत्रिभङ्गी-
सौभाग्यमंसविरलीकृतकेशपाशम् ।
पिच्छावतंसमुररीकृतवंशनालं
व्यामोहनं नवमुपैमि कृपाविशेषम् ।।601।।

इत्यात्राप्रत्यक्षस्यैव गोपालसुन्दरस्य संस्थानविशेषजातिवर्णनादपि दृष्टवदाभासना-दिदमप्रत्यक्षदृष्टम्।

अप्रत्यक्षदृष्ट जैसे पद्मावती में-

पदकमल को एक दूसरे पर चढ़ाये हुए घुमावदार त्रिभङ्गिमा से मनोहर, कन्धों पर बिखरे हुए केशसमूह वाले, मोर के पंख के आभूषण वाले, वक्षस्थल पर वंशनाल (बाँसुरी) वाले, व्यामोहित कर लेने वाले, नूतन कृपाविशेष से युक्त (कृष्ण) के पास जा रही हूँ।।600।।

यहाँ अप्रत्यक्ष (अविद्यमान) सुन्दर गोपाल के स्थिति- विशेष के समूह के वर्णन होने से भी दृष्टवत् आभास के कारण यह अप्रत्यक्षदृष्ट है।

श्रीशिङ्गभूपेन कवीश्वराणां
विश्राणितानेकविभूषणेन ।
षट्त्रिंशदुक्तानि हि भूषणानि
सलक्ष्मलक्ष्याणि मुनेर्मतेन ।।१२७।।

कवीश्वरों से प्रदान किये गये अनेक विभूषण (उपाधियों) वाले श्रीशिङ्गभूपाल के द्वारा मुनि (भरत) के मत के अनुसार लक्षण और उदाहरण सहित छत्तीस भूषणों का निरूपण किया गया।।१२७।।

साक्षादेवोदेशेन प्राप्तधर्मसमन्वयात् ।
अङ्गाङ्गिभावसम्पन्नसमस्तरससंश्रयात् ।।१२८।।
प्रकृत्यवस्थासन्ध्यादिसम्पत्त्युपनिबन्धनात् ।
आहुः प्रकरणादीनां नाटकं प्रकृतिं बुधाः ।।१२९।।

नाटक का प्राकृतत्व– साक्षात् रूप से उपदिष्ट, प्राप्त धर्मों से समन्वित, अङ्गाङ्गिभाव से सम्पन्न, सभी रसों के विश्राम का स्थल तथा प्रकृति, अवस्था, सन्धि इत्यादि सम्पत्ति से उपबन्धित होने के कारण विद्वानों ने नाटक को सभी प्रकरण इत्यादि (अन्य रूपकों) का मूल कहा है।।१२८-१२९।।

(रूपकान्तराणां नाटकं प्रति विकृतत्त्वम्)–

अतिदेशबलप्राप्तनाटकाङ्गोपजीवनात् ।
अन्यानि रूपकाणि स्युर्विकारा नाटकं प्रति ।।१३०।।

अन्य रूपकों का नाटक के प्रति विकारत्व– अतिदेश (एक वस्तु के धर्म का दूसरी पर आरोपण) से प्राप्त नाटकाङ्गों (नाट्य के अङ्गों) की वृत्ति के कारण (अर्थात् नाट्य के सभी तत्त्वों से युक्त होने के कारण नाटक से) अन्य रूपक नाटक के प्रति विकार होते हैं।।१३०।।

अतो हि लक्षणं पूर्वं नाटकस्याभिधीयते
दिव्येन वा मानुषेण धीरोदात्तेन संयुतम् ।।१३१।।
शृङ्गारवीरान्यतरप्रधानरससंश्रयम् ।
ख्यातेतिवृत्तसम्बद्धं सन्धिपञ्चकसंयुक्तम् ।।१३२।।
प्रकृत्यवस्थासन्ध्यङ्गसन्ध्यतरविभूषणैः ।
पताकास्थानकैर्वृत्तितदङ्गैश्च प्रवृत्तिभिः ।।१३३।।
विष्कम्भकादिसंयुक्तं नाटकं तु त्रिवर्गदम् ।

नाटक का लक्षण– सभी रूपकों की प्रकृति (मूल) होने के कारण सबसे पहले नाटक का लक्षण कहा जा रहा है— नाटक दिव्य अथवा मानुष धीरोदात्त (नायक) से समन्वित होता है। शृङ्गार तथा वीर में से किसी प्रधान रस के आश्रित होता है। (नाटक का) इतिवृत्त (कथावस्तु) प्रख्यात होती है। (मुख इत्यादि) पाँचों सन्धियों से युक्त होता है। प्रकृति-अवस्था, सन्ध्यङ्ग, सन्ध्यन्तर तथा भूषणों से युक्त, पताकास्थानक, वृत्ति और उनके अङ्गों तथा प्रवृत्ति से (समन्वित) होता है। विष्कम्भक इत्यादि से संयुक्त नाटक त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) को प्रदान करने वाला होता है।।१३१-१३४पू.।।

(नारकारम्भः)–

तदेतन्नाटकारम्भप्रकारो वक्ष्यते मया ।।१३४।।
विधेर्यथैव सङ्कल्पो मुखतां प्रतिपद्यते ।

प्रधानस्य प्रबन्धस्य तथा प्रस्तावना स्मृता ।।१३५।।

नाटक का प्रारम्भ– उस नाटक को प्रारम्भ करने का प्रकार मेरे (शिङ्गभूपाल) द्वारा कहा जा रहा है- विधि (यज्ञ) में जिस प्रकार प्रारम्भ में सङ्कल्प किया जाता है उसी प्रकार प्रधान-प्रबन्ध (नाटक) के प्रारम्भ में प्रस्तावना की जाती है अर्थात् प्रस्तावना से नाटक का प्रारम्भ होता है।।१३४उ.-१३५।।

प्रस्तावना–

अर्थस्य प्रतिपाद्यस्य तीर्थं प्रस्तावनोच्यते ।
प्रस्तावनायास्तु मुखे नान्दी कार्या शुभावहा ।।१३६।।

प्रस्तावना– प्रतिपादित होने वाले कार्य के मार्ग को प्रस्तावना कहा जाता है। प्रस्तावना के प्रारम्भ में शुभ देने वाली (मङ्गलप्रद) नान्दी को करना चाहिए।।१३६उ.।।

(अथ नान्दी)–

आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशान्यतमा स्मृता ।
चन्द्रनामाङ्किता प्रायो मङ्गलार्थपदोज्ज्वला ।।१३७।।
अष्टाभिर्दशभिः चेष्टा सेयं द्वादशभिः पदैः ।
समैर्वा विषमैर्वापि प्रयोज्येत्यपरे जगुः ।।१३८।।

नान्दी– नान्दी आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक या अन्य विषय से युक्त होती है जिसमें चन्द्रमा इत्यादि नामों से चिह्नित प्रायः मङ्गल अर्थ के कारण चमत्कृत तथा आठ दश या बारह (अक्षरों वाले) पदों समन्वित नान्दी श्रेष्ठ होती है। कुछ लोग सम अथवा विषम (अक्षरों) वाले पदों से समन्वित नान्दी का प्रयोग होना चाहिए-ऐसा मानते हैं।।१३६-१३८।।

तत्राशीरन्विता नान्दी यथा अभिरामराघवे (१.१)-

क्रियासुः कल्याणं भुजगशयनादुत्थितवतः
कटाक्षाः कारुण्यप्रणयरसवेणीलहरयः ।
हरेर्लक्ष्मीलीलाकमलदलसौभाग्यसुहृदः
सुधासारस्मेराः सुचरितविशेषैकसुलभाः ।।602।।

अशीर्वादात्मक नान्दी जैसे अभिरामराघव(१.१) में–

शेषनाग वाली शय्या से उठते हुए भगवान् (विष्णु) की कटाक्ष, करुणता के प्रणय रस वाली चोटी की लहरें, लक्ष्मी की लीला रूपी कमल-समूह के सौभाग्य (विकसित होने) के लिए मित्र होना तथा सच्चरितों के लिए विशेष रूप से सुलभ सुधासिक्त मुस्कान तुम लोगों के कल्याण करने के लिए अभिलाषा होवें।।602।।

नमस्क्रियावती नान्दी यथोत्तररामचरिते (१.१)–

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे ।

वन्देमहि च तां वाणीममृतामात्मनः कलाम् ।।603।।

नमस्कारात्मकनान्दी जैसे उत्तररामचरित (१/१ में-

पहले के वाल्मीकि आदि कवियों को नमस्कार कर 'ब्रह्मा की सनातन अंशभूत देवी वाणी को हम लोग पावें' ऐसी प्रार्थना करते हैं।।603।।

वस्तुनिर्देशवती नान्दी यथा प्रबोधचन्द्रोदये (१.१)-

अन्तर्नाडीनियमितमरुल्लङ्घितब्रह्मरन्ध्रं
स्वान्ते शान्तिप्रणयिनि समुन्मीलदानन्दसान्द्रम् ।
प्रत्यग्ज्योतिर्जयति यमिनः स्पष्टललाटनेत्र-
व्याजव्यक्तीकृतमिव जगद्व्यापि चन्द्रार्धमौलेः ।।604।।

वस्तुनिर्देशात्मक नान्दी जैसे प्रबोधचन्द्रोदय(१.१) में-

सिर पर अर्ध चन्द्र धारण करने वाले योगस्थ (शिव) की सुषुम्ना- नाड़ी में नियन्त्रित वायु के द्वारा अतिक्रान्त ब्रह्मरन्ध्र (मूर्धा में एक प्रकार का विवर जहाँ से जीव इस शरीर को छोड़ कर निकल जाता है) वाली अपने भीतर शान्ति से प्रणय करने वाली (शान्ति से परिपूर्ण) प्रकाशमान आनन्द से सिक्त ललाट (नेत्र के) बहाने (रूप से) स्पष्टरूप मानो व्यक्त की जाती हुई तथा विश्व-व्याप्य अन्तर्ज्योति सफल (विजयी) होती है।।604।।

अष्टपदान्विता यथा महावीरचरिते (१.१)-

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने ।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः ।।605।।

अष्ट (अक्षर वाले) पद वाली नान्दी जैसे महावीरचरित में-

स्वर में अवस्थित, सनातन, पापविनाशक, उत्पत्त्यादि-क्रमशून्य, ज्ञानस्वरूप तेज परब्रह्म को नमस्कार है।।605।।

दशपदान्विता यथा अभिरामराघवे- 'क्रियासुः कल्याणं- इत्यादि।

दश (अक्षर वाले) पदों वाली नान्दी जैसे अभिरामराघव में- *क्रियासुः कल्याणं इत्यादि।*

द्वादशपदान्विता यथानर्घराघवे (१.१)-

निष्प्रत्यूहमुपास्महे भगवतः कौमोदकीलक्ष्मणः
कोकप्रीतिचकोरपारणपटुज्योतिष्मती लोचने ।
याभ्यामर्धविबोधमुग्धमधुरश्रीरर्धनिद्रायितो
नाभीपल्वलपुण्डरीकमुकुलः कम्बोः सपत्नीकृतः ।।606।।

अत्रैव मङ्गलार्थपदप्रायत्वं चन्द्रनामाङ्कितत्वं च द्रष्टव्यम् ।

द्वादश (अक्षरों वाले) पदों वाली नान्दी जैसे अनर्घ राघव (१/१)में-

विघ्नशान्ति के लिए कौमोदकी नामक गदा से शोभायमान भगवान् विष्णु के उन नेत्रों की उपासना करते हैं जिनमें कोक की प्रीति तथा चकोर के व्रतान्त भोजन में उपयुक्त सूर्य की चन्द्रात्मक ज्योति विद्यमान है, जिन सूर्य-चन्द्रात्मक नेत्रों के सम्पर्क से आधा विकसित तथा आधा मुकुलित भगवान् का नाभिकमल शंख की समानता को प्राप्त करा दिया जाता है।।606।।

यहीं पर चन्द्र नाम से चिह्नित मङ्गलार्थ पद की अधिकता को भी देख लेना चाहिए।

नान्द्यन्ते तु प्रविष्टेन सूत्रधारेण धीमता ।
प्रसाधनाय रङ्गस्य वृत्तिर्योज्या हि भारती ।।१३९।।

भारती वृत्तियोजना- नान्दी के अन्त में बुद्धिमान् सूत्रधार के द्वारा प्रवेश करके रङ्गमञ्च (तथा नटों) को तैयार करने (सजाने) के लिए भारती वृत्ति को जोड़ना चाहिए।।१३९।।

अङ्गान्यस्याश्च चत्वारि भरतेन बभाषिरे ।
प्ररोचनामुखे चैव वीथीप्रहसने इति ।।१४०।।
वीथी प्रहसनं स्वस्वप्रसङ्गे वक्ष्यते स्फुटम् ।

भारती वृत्ति के अङ्ग - भरत ने भारती वृत्ति के चार अङ्गों को कहा है- (१) प्ररोचना (२) आमुख (३) वीथी और (४) प्रहसन। इनमें से वीथी और प्रहसन का निरूपण आगे उन-उन प्रसङ्गों में किया जाएगा।।१४०-१४१पू.।।

सदस्यचित्तवृत्तीनां सम्मुखीकरणं च यत् ।
प्ररोचना तु सा प्रोक्ता प्राकृतार्थप्रशंसया ।।१४१।।

(१) प्ररोचना- प्रस्तुत की प्रशंसा के द्वारा सामाजिकों की चित्त-वृत्तियों का जो सम्मुखीकरण (उत्कण्ठित कर देना) है वह प्ररोचना कहलाता है।।१४१उ.१४२पू.)।।

प्रशंसा तु द्विधा ज्ञेया चेतनाचेतनाश्रया ।।१४२।।

प्रशंसा के प्रकार- चेतन और अचेतन के आश्रय (आधार) से प्रशंसा दो प्रकार की होती है— (चेतनाश्रित और अचेतनाश्रित) ।।१४२उ.।।

अचेतनौ देशकालौ कालो मधुशरन्मुखः ।

अचेतन- वसन्त, शरद् इत्यादि समय तथा स्थान अचेतन कहलाते हैं।।143पू.।।

तत्र वसन्तप्रशंसया प्ररोचना यथा पद्मावत्याम्-

राजत्कोरककण्टका मधुकरीझङ्कारहुङ्कारिणी-
रालोलस्तबकस्तनीरविरलाधूतप्रवालाधराः ।
आलिङ्गन्ति लतावधूरतितरामासन्नशाखाकरै-
रत्यारूढरसानुभूतिरसिकाः कान्ते वसन्तोदये ।।607।।

वसन्त की प्रशंसा से प्ररोचना जैसे पद्मावती में-

रमणीय वसन्त के उदित (प्रारम्भ) होने पर शोभायमान कलियों से रोमाञ्चित, भ्रमरियों के गुञ्जार के झङ्कृत, चञ्चल (पुष्प) के गुच्छों में स्थित जल से विरल, चञ्चल मूँगे के समान अधर वाली लता रूपी वधू अत्यधिक विनम्र शाखा रूपी हाथों से अत्यधिक बढ़े हुए रस की अनुभूति से रसिक होकर आलिङ्गन कर रही है।।607।।

शरत्प्रशंसया यथा वेणीसंहारे (१.६)-

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः ।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ।।608।।

शरद् की प्रशंसा से प्ररोचना जैसे वेणीसंहार (१.६) में -

१. सुन्दर पंखवाले, मीठी बोली वाले, दिशाओं को सुशोभित करने वाले, हर्ष के कारण उद्दाम व्यापार (क्रीड़ा) करने वाले हंस (शरद् ऋतु के) समय के कारण भूतल पर उतर रहे हैं।

2. श्रेष्ठ सेना वाले अथवा उत्तम व्यक्तियों की सहायता से सम्पन्न, मधुरभाषी, दिशाओं को वश में करने वाले, अहङ्कार के कारण धृष्टतापूर्ण कार्य करने वाले, धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधनादि) मृत्यु के कारण भूतल पर (मर कर) गिर रहे हैं।।608।।

(अथ देशः)

देशस्तु देवताराजतीर्थस्थानादिरुच्यते ।।१४३।।
तदद्य कालनाथस्य यात्रेत्यादिषु लक्ष्यताम् ।

देश (स्थान)- देवता अथवा राजा से सम्बन्धित तीर्थ या स्थान इत्यादि देश कहा जाता है। उसे 'कालनाथ की यात्रा' इत्यादि को समझना चाहिए।।१४३उ.१४४पू.।।

चेतनास्तु कथानाथकविसभ्यनटाः स्मृताः ।।१४४।।

चेतन- कथानाथ, कवि, सभ्य और नट ये चेतना कहलाते हैं।।१४४उ.।।

कथानाथास्तु धर्मार्थरसमोक्षोपयोगिनः ।
धर्मोपयोगिनस्तत्र युधिष्ठिरनलादयः ।।१४५।।
अर्थोपयोगिनो रुद्रनरसिंहनृपादयः ।
रसोपयोगिनो विद्याधरवत्सेश्वरादयः ।।१४६।।
मोक्षोपयोगिनो रामवासुदेवादयो मताः ।
एके त्वभेदमिच्छन्ति धर्ममोक्षोपयोगिनोः ।।१४७।।

कथानाथ (कथानायक)- कथानाथ धर्म, अर्थ, रस और मोक्ष के लिए उपयोगी हैं। युधिष्ठिर, नल इत्यादि धर्म के लिए उपयोगी हैं। रुद्र, नृसिंह इत्यादि राजा अर्थ के लिए उपयोगी हैं।

विद्याधर, वत्सेश्वर (उदयन) इत्यादि रस के लिए तथा राम कृष्ण इत्यादि मोक्ष में लिए उपयोगी हैं। कतिपय आचार्य धर्म और मोक्ष में उपयोगी (नायकों में भेद नहीं मानते॥१४५-१४७॥

(चतुर्विधा कवयः-)

कवयस्तु प्रबन्धाद्यैस्ते भवेयुश्चतुर्विधाः ।

चार प्रकार के कवि- प्रबन्ध कवि चार प्रकार के होते हैं- (१) उदात्त, (२) उद्धत (३) प्रौढ़ और (४) विनीत॥१४८ पू.॥

उदात्त उद्धतः प्रौढो विनीत इति भेदतः॥१४८॥

(१) **उदात्त कवि-** छिपे हुए अभिमान- युक्त उक्ति वाला कवि उदात्त कहलाता है।

(तत्रोदात्तः)-

अन्तर्गूढाभिमानोक्तिरुदात्त इति गीयते ।

यथा मालविकाग्निमित्रे (१/२)-

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ॥
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥609॥

अत्र सन्तः परीक्ष्येत्यनेन स्वकृतेः परीक्षणसमत्वकल्पितो निजगर्वः कालिदासेन विवासित इति तस्योदात्तत्वम्।

जैसे (मालविकाग्निमित्र १/२ में)-

पुराने होने से ही न तो सब अच्छे हो जाते हैं, न नऐ होने से सब बुरे हो जाते हैं। समझदार लोग तो दोनों के गुण- दोषों की पूर्ण रूप से विवेचना करके, उनमें से जो अच्छा होता है, उसे अपना लेते हैं और जिनके पास अपनी समझ नहीं होती है, उन्हें तो जैसा दूसरे समझा देते हैं, उसे ही वे ठीक मान लेते हैं॥609॥

यहाँ (गुण दोष की विवेचना करने वाले) समझदार लोग परीक्षाकर लें इसके द्वारा अपनी कृति की परीक्षण- क्षमता से उत्पन्न गर्व कालिदास के द्वारा कहा गया है- यह उनका उदात्तत्व है॥

परापवादात् स्वोत्कर्षवादी तूद्धत उच्यते ॥१४९॥

(२) **उद्धतकवि-** दूसरे की निन्दा से अपने उत्कर्ष (प्रशंसा) का कथन करने वाला कवि उद्धत कहलाता है॥१४९उ.॥

यथा मालतीमाधवे (१.६)-

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां

जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।610।।

अत्र जानन्ति ते किमपीति परापवादाद् मम तु कोऽपि समानधर्मेत्यात्मोत्कर्षवचनाच्च भवभूतेरुद्धतत्वम्।

जैसे मालतीमाधव (१.६) में-

जो कोई मेरी इस (कृति) पर हमारी अवज्ञा को प्रकाशित करते हैं वे अज्ञान या मात्सर्य से कल्पित कुछ अनिर्वचनीय रहस्य को जानते हैं, ऐसे अज्ञानी अथवा मत्सरी लोगों के लिए मेरी यह कृति नहीं हैं परन्तु मेरे समान गुणवाला कोई पुरुष उत्पन्न होगा, क्योंकि यह काल सीमा रहित है और पृथ्वी भी विस्तीर्ण है।।610।।

'कुछ अनिवर्चनीय को जानते हैं' इस दूसरे की निन्दा से 'मेरे समान गुण वाला' इस आत्मोत्कर्ष के कथन के कारण भवभूति की उद्धतता है।

अथ प्रौढः:-

यथोचितनिजोत्कर्षवादी प्रौढ इतीरितः।

(३) **प्रौढ़ कवि**- अपने यथोचित उत्कर्ष को कहने वाला कवि प्रौढ़ कहलाता है।।१५०३.।।

यथा करुणाकन्दले-

कविर्भारद्वाजो जगदवधिजाग्रन्निजयशा
रसश्रेणीमर्मव्यवहरणहेवाकरसिकः ।
यदीयानां वाचां रसिकहृदयोल्लासनविधा-
वमन्दानन्दात्मा परिणमति सन्दर्भमहिमा ।।611।।

अत्र रसप्रौढिसन्दर्भप्रसादयोर्नाटकनिर्माणोचितयोरेव कथनान्निजोत्कर्षं प्रकटयन्नयं कविः प्रौढ इत्युच्यते।

जैसे करुणाकन्दल में-

सभी रसों के आन्तरिक व्यवहार को प्रयोग करने की उत्कट इच्छा वाले रसिक वे कवि भारद्वाज अपने यश के कारण (द्वारा) उस समय तक जागृत (जीवित) रहेंगे। जब तक यह संसार रहेगा। जिनकी वाणी (शब्द के) निबन्ध का कौशल (काव्य कौशल) रसिकों के हृदय को उल्लसित करने की क्रिया में आत्मा को अत्यधिक आनन्दित कर देता है।।611।।

यहाँ नाटक- निर्माण के लिए उचित रस की प्रौढ़ता और प्रसादादि (गुणों) के कथन से अपने उत्कर्ष को प्रकट करता हुआ यह प्रौढ़ कवि है।

युक्त्या निजोत्कर्षवादी प्रौढ इत्यपरैः स्मृतः ।।१५०।।

प्रौढ़ कवि के लक्षण के विषय में कुछ आचार्यों के मत– तर्क के द्वारा अपने उत्कर्ष को कहने वाला कवि प्रौढ़ कहलाता है- यह दूसरे आचार्यों का मत है॥१५०॥

यथा ममैव (रसार्णवसुधाकरे १/५५)–

नेदानीन्तनदीपिका किमु तमस्सङ्घातमुन्मूलये-
ज्ज्योत्स्ना किं न चकोरपारणकृते तत्कालसंशोभिनी ।
बाला किं कमलाकरान् दिनमणिर्नोल्लासयेदञ्जसा
तत्सम्प्रत्यपि मादृशामपि वचः स्यादेव सत्प्रीतये ।।612।।

अत्र ज्योत्स्नादिदृष्टान्तमुखेन माधुर्यौजप्रसादाख्यानां गुणानां स्वसाहित्ये रसौचित्येन सत्त्वं प्रतिपादयन्नयं कविः प्रौढ़ इत्युच्यते।

जैसे मेरे द्वारा (रसर्णवसुधाकर १/५५में)–

अब तक कोई ऐसी दीपिका नहीं थी जो अन्धकार के समूह को जड़ से विनष्ट कर दे। तत्काल शोभायमान चाँदनी से क्या लाभ जो चकोर (के पान करने) के लिए उपयुक्त न हो। उस बाल सूर्य से क्या लाभ जो अपनी चमक से कमलों के समूह को प्रफुल्लित न करे तो इस समय मुझ जैसे की वाणी सज्जन लोगों को प्रसन्न करने के लिए समर्थ होवे।।612।।

यहाँ ज्योत्स्ना इत्यादि दृष्टान्त द्वारा माधुर्य, ओज, प्रसाद, नामक गुणों का अपने साहित्य में रसौचित्य से सत्त्व के प्रतिपादन के कारण यह कवि प्रौढ़ है।

अथ विनीतः–

विनीतो विनयोत्कर्षात् स्वापकर्षप्रकाशकः ।

(४) विनीत कवि– विनय के उत्कर्ष के कारण अपने अपकर्ष का प्रकाशन करने वाला कवि विनीत होता है॥१५१पू.॥

यथा रामानन्दे–

गुणो न कश्चिन्मम वाङ्निबन्धे
लभ्येत यत्नेन गवेषितोऽपि ।
तथाप्यमुं रामकथाप्रबन्धं
सन्तोऽनुरागेण समाद्रियन्ते ।।613।।

इत्यत्र विनयोत्कर्षमात्मन्यारोपयन् अयं कविर्विनीत इत्युच्यते।

जैसे रामानन्द में–

प्रयत्न द्वारा खोजे जाने पर भी मेरे प्रबन्ध में कोई गुण नहीं मिल सकता तथापि इस रामकथा के प्रबन्ध को सन्त लोग अनुराग- पूर्वक आदर देते हैं।।613।।

यहाँ अपने पर विनयोत्कर्ष को अरोपित करता हुआ यह कवि विनीत है।

(अथ सभ्याः)-

सभ्यास्तु विबुधैर्ज्ञेया ये दिदृक्षान्विता जनाः ।।१५१।।
तेऽपि द्विधा प्रार्थनीयाः प्रार्थका इति च स्फुटम् ।

सभ्य-

जो (नाटक) देखने की इच्छा वाले व्यक्ति होते हैं उन्हें आचार्यों ने सभ्य कहा है। वे भी दो प्रकार के होते हैं- (१) प्रार्थनीय और (२) प्रार्थक।।१५१-१५०पू.।।

(तत्र प्रार्थनीया)-

इदं प्रयोक्ष्ये युष्माभिरनुज्ञा दीयतामिति ।।१५२।।
सम्प्रार्थ्याः सूत्रधारेण प्रार्थनीया इति स्मृताः ।

(१) प्रार्थनीय- वे सभ्य प्रार्थनीय सभ्य कहलाते हैं जिससे सूत्रधार प्रार्थना करता है कि आप लोग आदेश दीजिए कि मैं (नाटक का) प्रयोग करूँ।।१५२उ.-१५३पू.।।

(अथ प्रार्थकाः)-

त्वया प्रयोगः क्रियतामित्युत्कण्ठितचेतसः ।।१५३।।
ये सूत्रिणं प्रार्थयन्ते ते सभ्या प्रार्थकाः स्मृताः ।

(२) प्रार्थक- प्रार्थक सभ्य वे कहलाते हैं जो सूत्रधार से उत्कण्ठित चित्त होकर प्रार्थना करते हैं कि आप (नाटक का) प्रयोग कीजिए।।१५३उ.-१५४पू.।।

(अथ नटाः)-

रङ्गोपजीविनः प्रोक्ता नटास्तेऽपि त्रिधा स्मृताः ।।१५४।।
वादका गायकाश्चैव नर्तकाश्चेति कोविदैः ।

नट-रङ्गशाला के आश्रय से जीविकोपार्जन करने वाले नट कहलाते हैं, वे प्राज्ञों द्वारा तीन प्रकार के कहे गये हैं। (१) वादक (२) गायक और (३) नर्तक ।।१५४उ.-१५५पू.।।

(तत्र वादकाः)-

वीणावेणुमृदङ्गादिवादका वादकाः स्मृताः ।।१५५।।

वादक- वीणा, वेणु (बाँसुरी), मृदङ्ग आदि के बजाने वाले वादक कहलाते हैं।।१५५उ.।।

(अथ गायकाः)-

आलापनध्रुवागीतगायका गायका मताः ।

गायक- आलाप- सहित ध्रुपद इत्यादि गीत गाने वाले गायक कहलाते हैं।।१५६पू.।।

(अथ नर्तकाः)-

नाना प्रकाराभिनयकर्तारो नर्तकाः स्मृताः ।।१५६।।

नर्तक- अनेक प्रकार के अभिनय करने वाले नर्तक कहलाते हैं।१५६।।

(तद्देवम्)-

विस्तरादुत सङ्क्षेपात् प्रयुञ्जीत प्ररोचनाम् ।

प्ररोचना का प्रयोग- नाटक में विस्तार से अथवा संक्षेप से प्ररोचना का प्रयोग करना चाहिए।।१५७पू.।।

संक्षिप्ता प्ररोचना यथा रत्नावल्यां (१/५)-

श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।
वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुन-
र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ।।614।।

अत्र कथानायककविसभ्यनटानां चतुर्णां संक्षेपेण वर्णनादियं संक्षिप्त प्ररोचना।

संक्षिप्त प्ररोचना जैसे रत्नावली के १/५ में-

श्रीहर्ष निपुण कवि हैं, यह परिषद् (दर्शक, सभा) भी गुणों को ग्रहण करने वाली है, वत्सराज उदयन का चरित्र अतीव हृदयहारी है तथा हम सब नाट्य- कर्म में दक्ष हैं। एक-एक गुण का होना भी वाञ्छितफल (सफलता) को दिखलाने वाला होता है तो फिर यहाँ हमारे सौभाग्य से समस्त गुण एकत्र प्राप्त हो रहे हैं।।614।।

यहाँ कथानक, कवि, सभ्य और नट चारों का संक्षेप में वर्णन होने के कारण संक्षिप्त प्ररोचना है।

विस्तरात्तु बालरामायणादिषु द्रष्टव्या ।

विस्तार वाली प्ररोचना को बालरामायण इत्यादि में देख लेना चाहिए।

एवं प्ररोचयन् सभ्यान् सूत्रीकुर्यादथामुखम् ।।१५७।।

इस प्रकार सभ्यों को प्ररोचित (आगे आने वाली बात का रोचक वर्णन) करते हुए सूत्रधार को आमुख प्रस्तावना करना चाहिए।।१५७उ.।।

(अथामुखम्)-

सूत्रधारो नटीं ब्रूते स्वकार्यं प्रति युक्तितः ।
प्रस्तुताक्षेपचित्रोक्त्या यत्तदामुखमीरितम् ।।१५८।।

आमुख- प्रस्तुत विषय पर आक्षिप्त (सूचना देने वाली) विचित्र उक्तियों द्वारा (युक्ति- पूर्वक) सूत्रधार नटीं से अपने कार्य के प्रति (नाटक को प्रारम्भ करा देने को) कहता है, वह आमुख है।।१५८।।

(अथामुखाङ्गानि)-

त्रीण्यामुखाङ्गान्युच्यन्ते कथोद्घातः प्रवर्तकः ।
प्रयोगातिशयश्चेति तेषां लक्षणमुच्यते ।।१५९।।

आमुख के अङ्ग- ये तीन आमुख कहे गये हैं— (१) कथोद्घात (२) प्रवर्तक और (३) प्रयोगातिशय । उनका लक्षण कहा जा रहा है।।१५९।।

(तत्र कथोद्घातः)-

सूत्रिणो वाक्यमर्थं वा स्वेतिवृत्तसमं यदा ।
स्वीकृत्य प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातो द्विधा मतः ।।१६०।।

(१) कथोद्घात- अपनी कथा के सदृश सूत्रधार के मुख से निकले हुए वाक्य अथवा वाक्यार्थ को स्वीकार (ग्रहण) करके पात्र प्रवेश करता है तो वह कथोद्घात कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है- (अ) वाक्य-ग्रहण करके पात्र का प्रवेश करना और (आ) वाक्यार्थ ग्रहण करके पात्र का प्रवेश कराना।।१६०।।

तत्र वाक्येन कथोद्घातो यथा रत्नावल्याम् (१/७)-

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।।615।।

अत्र च वाक्येन कथोद्घातः।

वाक्य से जैसे रत्नावली के (१/७) में—

अनुकूल भाग्य दूसरे द्वीप से, समुद्र के मध्य से तथा दिशाओं के छोर से भी लाकर अभीष्ट वस्तु (अथवा व्यक्ति) को शीघ्रता से मिला देता है।।615।।

यहाँ वाक्य से कथोद्घात है।

अर्थेन कथोद्घातो यथा वेणीसंहारे (१०७)-

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन ।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च-
स्वस्था भवन्तु धृतराष्ट्रसुताः सभृत्याः ।।616।।

वाक्यार्थ से जैसे वेणी संहार (१/७ में)-

(१) सूत्रधार द्वारा कहा गया अर्थ- शत्रुओं के शान्त हो जाने के कारण शत्रुता-रूपी आग को शान्त कर लेने वाले पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर इत्यादि) कृष्ण के साथ आनन्द करें। चाहने वाले (पाण्डवों) को भूमि प्रदान करने वाले, शान्त युद्ध वाले कौरव (दुर्योधन इत्यादि) भी सेवकों के सहित स्वस्थ रहें।

(2) पात्र द्वारा गृहीत अर्थ- शत्रुओं को विनष्ट हो जाने के कारण शत्रुता रूपी अग्नि को शान्त कर देने वाले पाण्डव (युधिष्ठिर इत्यादि) कृष्ण के साथ आनन्द करें। अपने खून से पृथ्वी को अलङ्कृत करने वाले, क्षतविक्षत शरीर वाले कौरव भी सेवकों के सहित स्वर्गवासी हों ।।616।।

अत्रोत्तरार्धे सूत्रधारेण धार्तराष्ट्राणां स्वर्गस्थितिनिरुपद्रवलक्षण-योरर्थयोर्विवक्षितयोः सतोर्भीमेन 'स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्रा' इति निरुपद्रवलक्षणस्यैवार्थविशेषस्य ग्रहणेन प्रवेशः कृत इत्ययमर्थेन कथोद्घातः।

यहाँ उत्तरार्ध में सूत्रधार द्वारा कौरवों के स्वर्ग- गमन की स्थिति उपद्रव- रहित अर्थ के विवक्षित होने पर भीमसेन द्वारा- 'मेरे रहते कौरव क्या स्वस्थ्य रहेंगे' इस उपद्रव- रहित अर्थ विशेष का ग्रहण करके प्रवेश किया गया। इसलिए यह अर्थ से कथोद्घात है।

अथ प्रवर्तकः-

आक्षिप्तः कालसाम्येन प्रवेशः स्यात् प्रवर्तकः ।

(२) प्रवर्तक- जहाँ पर किसी काल (ऋतु) के वर्णन की समानता के द्वारा (पात्र के) प्रवेश का आक्षेप (सूचना) हो वह प्रवर्तक होता है।।१६१पू.।।

यथा प्रियदर्शिकायाम्-

घनबन्धननिर्मुक्तः कन्याग्रहणात् तुलां प्राप्य ।
रविरधिगतस्वधामा प्रतपति किल वत्सराज इव ।।617।।

अत्र शरत्कालसामान्येन वत्सराजस्याक्षेपप्रवेशात् प्रवर्तकः।

जैसे प्रियदर्शिका (१/५) में-

यह सूर्य मेघ के बन्धन से मुक्त होकर कन्या-राशि में रहने के बाद तुला-राशि को प्राप्त करके अपने तेज से युक्त पुनः उसी प्रकार तप रहा है जैसे वत्सराज दृढ़ कारागार से मुक्त होकर (प्रद्योत की) कन्या (वासवदत्ता) को ग्रहण करने से परम उत्कर्ष को प्राप्त होकर अपनी राजधानी में पहुँचकर प्रलय से तप रहें हैं।।617।।

यहाँ शरत्काल की समानता से वत्सराज के सूचित (सूचना प्राप्त) प्रवेश के कारण प्रवर्तक है।

अथवा यथा बालरामायणे (१.१६)-

प्रकटितरामाम्भोजः कौशिकवान् सपदि लक्ष्मणानन्दी ।
शरचापनमनहेतोरयमवतीर्णः शरत्समयः ।।618।।

अत्र विश्वामित्ररामलक्ष्मणानां शरद्वर्णनसाम्येन प्रवेशः प्रवर्तकः।

अथवा जैसे बालारामायण (३.१६) में-

(शिव के) धनुष के मर्दन- हेतु यह शरत्काल अविर्भूत हो गया है। इससे राम रूपी

कमल प्रकट हो गये हैं जिसमें विश्वामित्र रूपी आमोद है तथा जो लक्ष्मण रूपी हंस को आनन्द देने वाला है।।617।।

यहाँ शरत्काल के वर्णन की समानता से विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का प्रवेश प्रवर्तक है।

अथ प्रयोगातिशयः-

एषोऽयमित्युपक्षेपात् सूत्रधारप्रयोगतः ।।१६१।।
प्रवेशसूचनं यत्र प्रयोगातिशयो हि सः ।

(३) प्रयोगातिशय- 'यह वह है' इस प्रकार के सूत्रधार के वाक्य से सूचित होकर जहाँ पात्र का प्रवेश होता है, वह प्रयोगातिशय नामक आमुख होता है।।१६१ उ. १६२पू.।।

यथा मालविकाग्निमित्रे (१.३)-

शिरसा प्रथमगृहीतामाज्ञामिच्छामि परिषदः कर्तुम् ।
देव्या इव धारिण्याः सेवादक्षः परिजनोऽयम् ।।619।।

अत्रायमित्युपक्षेपेणाक्षिप्तः परिजनप्रवेशः प्रयोगातिशयः।

जैसे मालविकाग्निमित्र (१/३) में-

सभा ने मुझे पहले ही जो आज्ञा दे रखी है, उसका मैं वैसे ही आदर के साथ पालन करना चाहता हूँ जैसे आदर से यह स्वामिनी भक्त-दासी अपनी स्वामिनी महारानी धारिणी की आज्ञापालन करने के लिए इधर चली आ रही है।।619।।

यहाँ 'यह है' इस प्रकार के (सूत्रधार के) वाक्य द्वारा सूचित परिजन का प्रवेश प्रयोगातिशय है।

तथा च शाकुन्तले (१/५)-

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ।।620।।

इत्यत्र एष इत्युपक्षेपणाक्षिप्तो दुष्यन्तप्रवेशः प्रयोगातिशयः ।

और जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल (१/५) में-

तुम्हारा मनोहर गीत- राग जबर्दस्ती मुझे वैसे ही खींच ले गया है जैसे अत्यन्त वेग वाला हिरन इस राजा दुष्यन्त को (खींच ले गया है) ।।620।।

यहाँ 'यह है' इस प्रकार के वाक्य द्वारा सूचित दुष्यन्त का प्रवेश प्रायोगतिशय है।

(अथामुखस्य द्वैविध्यम्)

प्रस्तावना स्थापनेति द्विधा स्यादिदमामुखम् ।।१६२।।

आमुख के दो भेद- आमुख दो प्रकार का होता है- (१) प्रस्तावना और (२)

स्थापना॥१६२उ.॥

(तत्र प्रस्तावना)–

विदूषकनटीपारिपार्श्विकैः सह सँल्लपन् ।
स्तोकवीथ्यादिसहितान्यामुखाङ्गानि सूत्रकृत् ।।१६३।।
योजयेद् यत्र नाट्यज्ञैरेषा प्रस्तावना स्मृता ।

(१) प्रस्तावना– विदूषक, नटी और पारिपार्श्विक के साथ संलाप करता हुआ सूत्रकार (सूत्रधार) थोड़े वीथी इत्यादि के सहित आमुख के अङ्गों को जोड़ता है, उसे नाट्यज्ञों ने प्रस्तावना कहा है॥१६३-१६४पू.॥

(अथ स्थापना)–

सर्वामुखाङ्गवीथ्यङ्गसमेतैर्वाक्यविस्तरैः ।।१६४।।
सूत्रधारो यत्र नटीविदूषकनटादिभिः ।
सँल्लपन् प्रस्तुतं चार्थमाक्षिपेत् स्थापना हि सा ।।१६५।।

(२) स्थापना– आमुखों के सभी अङ्गों से युक्त वीथी के अङ्गों के साथ वाक्य विस्तार-पूर्वक जहाँ नटी, विदूषक तथा नट के साथ संलाप करता हुआ सूत्रधार प्रस्तुत अर्थ का प्रयोग करता है, वह स्थापना होती है॥१६४-१६५पू.॥

(अथ नाट्ये आमुखस्य योजनम्)–

शृङ्गारप्रचुरे नाट्ये योज्यः स्यादामुखक्रमः ।
रत्नावल्यादिके प्रायो लक्ष्यतां कोविदैरयम् ।।१६६।।
वीराद्भुतादिप्राये तु प्रायः प्रस्तावनोचिता ।
अनर्घराघवाद्येषु प्रायशो वीक्ष्यतामियम् ।।१६७।।
हास्यबीभत्सरौद्रादिप्राये तु स्थापना मता ।
वीरभद्रविजृम्भादौ स प्रायेण निरीक्ष्यताम् ।।१६८।।

नाट्य में आमुख की योजना– शृङ्गार रस की प्रचुरता वाले नाट्य में आमुखक्रम (प्रस्तावना) को जोड़ना चाहिए। (जैसे) रत्नावली इत्यादि में इसे देख लेना चाहिए। वीर और अद्भुत (रस) की अधिकता वाले (नाट्य) में प्रस्तावना का योजन ही उचित है। अनर्घराघव इत्यादि में इसे देख लेना चाहिए। हास्य, बीभत्स और रौद्र इत्यादि की प्रचुरता वाले (नाट्य) में स्थापना (का योजन) माना जाता है। वीरभद्रविजृम्भण इत्यादि में स्थापना को देख लेना चाहिए॥१६६-१६८॥

(अथ वीथ्यङ्गानि)

कथितान्यामुखाङ्गानि वीथ्यङ्गानि प्रचक्ष्महे ।
आमुखेऽपि च वीथ्यां च साधारण्येऽपि सम्मते।।१६९।।

वीथ्यङ्गसंप्रथा तेषां वीथ्यामावश्यकत्वतः ।
उद्घात्यकावलगिते प्रपञ्चत्रिगते छलम् ।।१७०।।
वाक्केल्यधिबले गण्डमवस्यन्दितनालिके ।
असत्प्रलापव्याहारौ मृदवं च त्रयोदश ।।१७१।।

वीथी के अङ्ग-

आमुख के अङ्गों को कहा जा चुका है। अब वीथी के अङ्गों को कहा जा रहा है जो आमुख में और वीथी में सामान्य रूप से सम्मत है। उस वीथी में आवश्यकता से (१) उद्घात्यक, (२) अवलगित (३) प्रपञ्च (४) त्रिगत, (५) छल (६) वाक्केलि (७) अधिबल (८) गण्ड (९) अवस्यन्दित (१०) नालिका (११) असत्प्रलाप (१२) व्याहार और (१३) मार्दव ये तेरह अङ्ग होते हैं।।१६९-१७१।।

(अथोद्घात्यकः)-

तत्रोद्घात्यकमन्योन्यालापमाला द्विधा हि तत् ।
गूढार्थपदपर्यायक्रमात् प्रश्नोत्तरक्रमात् ।।१७२।।

(१) उद्घात्यकः- गूढार्थपद के पर्याय के क्रम से तथा प्रश्नोत्तर के क्रम से दो व्यक्तियों की परम्परा बातचीत श्रंखला उद्घात्यक कहलाती है। वह दो प्रकार की होती है— (१) गूढ़ार्थ पदपर्याय क्रम से, (२) प्रश्नोत्तर क्रम से।।१७२।।

तत्र गूढार्थपदपर्यायादुद्घात्यकं यथा वीरभद्रविजृम्भनामनि डिमे-

सखे कोऽयं रौद्रः कथय महितः कोऽपि हि रसो
रसो नामायं कः स्मृतिसुरभिरास्वादमहिमा ।
समास्वादः कोऽयं क्रमगलितवेद्यान्तरमति-
र्मनोऽवस्था ज्ञातं ननु गदसि निद्रान्तरमिति ।।621।।

अत्र रौद्ररसस्वरूपविवेचनाय रसास्वादावस्थालक्षणैर्गूढार्थपद-पर्यायैर्नटसूत्रधारयोः सँल्लापादिदमुद्घात्यकम्।

गूढ़ार्थपदपर्याय से उद्घात्यक जैसे वीरभद्रविजृम्भणनामक डिम में-

हे मित्र! बताओ यह रौद्र क्या है? यह सम्मानित कोई रस है। यह रस नाम की क्या (वस्तु) है? स्मृति (याद) से मनोहर आस्वादन की महिमा है। यह समास्वाद क्या है? क्रमगलित मति की अवस्था है। अब मैं समझ गया कि मन की अवस्था क्या है यह पूछने पर कहोगे- निद्रा की अवस्था (मन की अवस्था है)।।621।।

यहाँ रौद्र के स्वरूप विवेचन के लिए रसास्वाद की अवस्था के लक्षण वाले गूढार्थ- पद पर्याय से नट और सूत्रधार का यह वार्तालाप उद्घात्यक है।

प्रश्नोत्तरक्रमाद् यथा तत्रैव डिमे-

सेव्यं किं परमुत्तमस्य चरितं लोकोत्तरः कः पुमान्
श्रीशिंगः स तु कीदृशो वद निधिर्धर्मस्य धर्मस्तु कः ।
सत्योक्तिर्वचनं तु किं कविनुतं को नाम तादृक् कवि-
र्विश्वेशः स तु कीदृशो विजयते विश्वेषु विश्वेशवत् ।।622।।

अत्र गूढार्थपदपर्यायरहितप्रश्नोत्तरक्रमेण नटसूत्रधारयोः संल्लापात् प्रकृतकवि-वर्णनोपयुक्तमिदमुद्घात्यकम् ।

प्रश्नोत्तर क्रम से उद्घात्यक जैसे वही (वीरभद्रजृम्भण नामक) डिम में-

(प्रश्न) सेवनीय (आचरण करने योग्य) क्या है? (उत्तर) उत्तम (लोगों) का लोकोत्तर (परम) चरित्र। (प्रश्न) कौन व्यक्ति लोकोत्तर है? (उत्तर) श्रीशिङ्ग। (प्रश्न) बताओ वे कैसे हैं? (उत्तर) धर्म की निधि हैं? (प्रश्न) धर्म क्या है? (उत्तर) सत्योक्ति वचन। (प्रश्न) सत्योक्ति वचन क्या है। (उत्तर) कवियों द्वारा कहा गया वचन। (प्रश्न) वैसा कवि कौन है।(उत्तर) विश्वेश (शङ्कर)। (प्रश्न) विश्वेश कैसे हैं? (उत्तर) जो विश्व पर विश्वेश के समान विजयी होता है।।622।।

यहाँ गूढार्थ— पद पर्याय से रहित प्रश्नोत्तरक्रम से नट और सूत्रधार के संलाप के कारण प्रकृत कवि की वर्णना के लिए उपयुक्त उद्घात्यक है।

अथावलगितम्-

द्विधावलगितं प्रोक्तमर्थावलगनात्मकम् ।
अन्यप्रसङ्गादन्यस्य संसिद्धिः प्रकृतस्य वा ।।१७३।।

(२) अवलगित- (एक ही क्रिया के द्वारा) एक (अन्य कार्य), के प्रसङ्ग से (विवक्षित) प्रयोजन वाले अन्य (कार्य) या मूल (कार्य) की सिद्धि अवलगित कहलाती है। अवलगनात्मक अवलगित दो प्रकार का कहा गया है- (१) अन्य प्रसङ्गों से अन्य की तथा (२) अन्य प्रसङ्ग से मूल की सिद्धि।

अन्यप्रसङ्गादन्यस्य सिद्ध्यावलगितं यथाभिरामराघवे अनपोतनायकीये-

अन्य प्रसङ्ग से अन्य की सिद्धि जैसे अभिरामराघव के अनपोतनायकीय में—

हन्त सारस्वतं चक्षुः कवीनां क्रान्तदर्शिनाम् ।
अतिशय्य प्रवर्तेत नियतार्थेषु वस्तुषु ।।623।।

अत्र सूत्रधारेण कवीनां सारस्वतं चक्षुरिति कविसामान्यवर्णनेन स्वाभिलषितकवि-विशेषोत्कर्षसंसाधनरूपात् प्रकृतार्थावलगनादवगलितमिदम्।

क्रान्तदर्शी कवियों की दृष्टि सारस्वत (सरस्वती से सम्बन्धित) होती है जो नियतार्थ वस्तुओं के प्रति आधिक्य होकर प्रवर्तित होती है।।623।।

यहाँ 'कवियों की सारस्वत दृष्टि' इस प्रकार कवि सामान्य के वर्णन से स्वाभिलषित कवि-विशेष के उत्कर्ष के संसाधन रूप से प्रकृतार्थ का कथन होने से अवलगित है।

अन्यप्रसङ्गेन प्रकृतस्य सिद्धिर्यथानर्घराघवे-

सूत्रधारः- मारिष! स्थाने खलु भवतः कुतूहलम्। ईदृशमेवेतत्।

तत्तादृगुज्ज्वलककुत्स्थकुलप्रशस्ति-
सौरभ्यनिर्भरगभीरमनोहराणि ।
वाल्मीकिवागमृतकूपनिपानलक्ष्मी-
मेतानि बिभ्रति मुरारिकवेर्वचांसि ।।(1.12)624।।

अत्राप्रकृतवाल्मीकिवर्णनप्रसङ्गेन प्रकृतमारिषकुतूहलोत्कर्षसंसाधनरूपात् प्रकृतनाट्यावलगनादिदं द्वितीयमवलगितम्।

अन्य प्रसङ्ग से प्रकृति की सिद्धि जैसे अनर्घराघव में-

सूत्रधार- हे मारिष! आप का कुतूहल ठीक ही है। यह ऐसा ही है-

उन अवर्णनीय काकुत्स्थकुल की प्रशंसा से सुरभित गम्भीर तथा मनोहर मुरारि की कविताएँ वाल्मीकि के वचनरूप अमृत के लिए कूप-निपान की शोभा धारण करती हैं।(1.12)।।624।।

यहाँ अप्राकृत वाल्मीकि-वर्णन के प्रसङ्ग में प्रकृत मारिष के कौतूहल के उत्कर्ष-संसाधन रूप प्रकृत नाट्य का कथन होने से यह द्वितीय अवलगित (अन्य प्रसङ्ग से प्रकृत की सिद्धि) है।

अथ प्रपञ्चः-

प्रपञ्चस्तु मिथःस्तोत्रमसद्भूतं च हास्यकृत् ।

(३) प्रपञ्च- प्रपञ्च परस्पर हास्यकृत् संस्तवन से उत्पन्न होता है।।१७४पू.।।

विमर्श- निन्दनीय (परदाराभिगमन) आदि की निपुणता से की गयी जो एक दूसरे की स्तुति का हास्य है, वही प्रपञ्च कहलाता है।

यथा वीरभद्रविजृम्भणे-

नाट्याचार्यस्त्वमसि सुहृदां त्वादृशानां प्रसादात्
कोऽयं गीतश्रमविधिरहो भिन्नकण्ठोऽद्य जातः ।
ज्ञातं ज्ञातं परिहससि मां भाषितैर्भावगर्भै-
र्मैवं वाच्यं त्वमसि हि गुरुस्तत्र चेष्टिः प्रमाणम् ।।625।।

अत्र नटसूत्रधारयोरयथार्थस्यान्योऽन्यस्तोत्रस्य हास्यायैव प्रवृत्तत्वात् प्रपञ्चः।

जैसे वीरभद्रजृम्भण में-

तुम नाट्याचार्य हो और तुम जैसों की कृपा से यह गीत के परिश्रम का विधान कैसा? फिर भी आश्चर्य है कि आज यह कण्ठ में परिवर्तन हो गया है। समझ गया, समझ गया कि भावगर्भित वचन से मेरा परिहास कर रहे हो। किन्तु (मुझे) ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि तुम गुरु हो, इस विषय में चेष्टि (अङ्गभङ्गिमा) प्रमाण है।।625।।

यहाँ नट और सूत्रधार का परस्पर एक दूसरे का अयथार्थ संस्तव का हास्य के लिए प्रवृत्त होने से प्रपञ्च है।

अथ त्रिगतम्-

श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजनं त्रिगतं भवेत् ।।१७४।।

(४) त्रिगत- शब्द की समानता के कारण अनेक अर्थों की योजना (कल्पना) करना त्रिगत कहलाता है।।१७४उ.।।

यथाभिरामराघवे-

'पारिपार्श्विकः'-

वाणीमुरजक्वणितं श्रुतिसुभगं किं सुधामुचः स्तनितम् ।
जलदस्य किमाज्ञातं तव मधुरगभीरवग्विलासोऽयम् ।।626।।

अत्र सूत्रधारवाग्विलासे मुरजजलदध्वनिवितर्कसम्भावनात् त्रिगतम्।

जैसे अभिरामराघव में-

पारिपार्श्विक-

मृदङ्ग की ध्वनियुक्त कानों के लिए रमणीय यह वाणी क्या है? क्या यह अमृत वर्षा करने वाले बादल की गर्जना है। समझ गया यह मधुर और गम्भीर वाग्विलास है।।626।।

यहाँ सूत्रधार के वाग्विलास में मृदङ्ग और बादल की ध्वनि में वितर्क से उत्पन्न होने से त्रिगत है।

अथ छलम्-

प्रोक्तं छलं ससोत्प्रासैः प्रियाभासैर्विलोभनम् ।

(५) छल- ऊपर से प्रिय लगने वाले किन्तु अप्रिय वाक्यों द्वारा लुभा लेना छल कहलाता है।।१७५पू.।।

यथाभिरामराघवे-

विद्वानसौ कलावानपि रसिको बहुविधप्रयोगज्ञः ।
इति च भवन्तं विद्मो निर्व्यूढं साधु तत् त्वया सर्वम् ।।627।।

अत्र विपरीतलक्षणया प्रहेलिकार्थमजानतः पारिपार्श्विकस्योपालम्भनाच्छलम्।

जैसे अभिरामराघव में-

यह विद्वान्, कलावान्, रसिक तथा अनेक प्रकार के प्रयोग (व्यवहार) को जानने वाला है- इस प्रकार मैं आप को जानता हूँ कि आपने (तुमने) सब कुछ अच्छी प्रकार से पूरा कर लिया है।।627।।

यहाँ विपरीत लक्षण वाली प्रहेलिका के अर्थ को न जानने वाले पारिपार्श्विक के उपालम्भ (उलाहने) के कारण छल है।

अथ वाक्केलिः-

साकाङ्क्षस्यैव वाक्यस्य वाक्केलिः स्यात् समाप्तितः ।।१७५।।

(६) वाक्केलि- समाप्ति पर्यन्त साकाङ्क्ष (प्रकरण- प्राप्त) वाक्य को बदल देने (वाक्केलि) को वाक्केलि कहते हैं।।१७५उ.।।

यथा महेश्वरानन्दे-

कुलशोकहरं कुमारमेकं
कुहनाभैरवपारणोन्मुखाभ्याम् ।
अपहूय कृतादरं पितृभ्या -
मुपरि प्रस्तुतमोन्नमश्शिवाय ।।628।।

जैसे महेश्वरानन्द में- भीषण सर्प को खाने के लिए उन्मुख पिता और माता के द्वारा कुल के शोक को हरने वाले इकलौते पुत्र को आदर-पूर्वक बुला कर 'ओं नमः शिवाय' (यह शब्द) प्रस्तुत किया गया (कहा गया)।।628।।

अत्र वाक्ये साकाङ्क्षे विशेषांशमनुक्त्वा नमश्शिवायेति समाप्तिकथनाद् वाक्केलिः।

यहाँ साकाङ्क्ष वाक्य में विशेष भाग को न कहकर 'ओम् नमः शिवाय' इस समाप्ति को कहने से वाक्केलि है।

अथाधिबलम्-

स्पर्धयान्योन्यसामर्थ्यव्यक्तिस्त्वधिबलं भवेत् ।

(७) अधिबल- दो व्यक्तियों का स्पर्धा से परस्पर सामर्थ्य की व्यक्ति (अभिव्यक्ति = बातचीत करना) अधिबल होता है।।१७६उ.।।

यथा वीरभद्रविजृम्भणे-

मा भूच्चिन्ता तवेयं मयि सति कुशले दुष्करः किं प्रयोगो-
मानिन् जानासि किं त्वं किमपि न विदिता चातुरी मे त्वया किम् ।
आस्तां स्वस्तोत्रकन्था कृतमिह कथितैर्भूतपूर्वैः प्रसङ्गैः
पत्न्याहं वश्यकर्मा सपदिनटविधावेष सज्जीभवामि ।।629।।

अत्र नटसूत्रधारयोः परस्परस्पर्धया स्वस्वप्रयोगसामर्थ्यप्रकाशनादधिबलम्।

जैसे वीरभद्रविजृम्भण में-

(नट-) मुझ जैसे निपुण (अभिनय-कुशल) व्यक्ति के रहते हुए आप को (अभिनय की सफलता के लिए) चिन्ता नहीं करनी चाहिए। कौन सा अभिनय मेरे लिए दुष्कर है? अर्थात् मेरे लिए कोई भी अभिनय दुष्कर नहीं है। (सूत्रधार-) हे गर्व करने वाले क्या तुम कुछ भी नहीं जानते? तुमने मेरी (अभिनय-विषयक) कुशलता के विषय में कुछ भी नहीं जानते? (नटी)- तुम लोगों के कहे गये प्रसङ्ग द्वारा अपनी प्रशंसा की कथा बनी रहे (अर्थात् तुम लोगों की अपनी-अपनी प्रशंसा करने से मेरा कोई मतलब नहीं है) मैं अभिनय के सभी कार्यों को अपने वश में रखने वाली पत्नी (नटी) हूँ। इसलिए अभिनय क्रिया में यह मैं शीघ्र तैयार हूँ।।629।।

यहाँ नट और सूत्रधार का परस्पर स्पर्धा से अपने अभिनय के सामर्थ्य को प्रकट करने से अधिबल है।

अथ गण्डम्-

गण्डं प्रस्तुतसम्बन्धि भिन्नार्थं सहसोदितम् ।।१७६।।

(८) गण्ड- प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित किन्तु उससे भिन्न अर्थ का अकस्मात् कथन गण्ड है ॥१७६उ.॥

यथा वेणीसंहारे (१.७)-

निर्वाण वैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनया सह माधवेन ।
रक्तप्रसाधितभुवः सतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः।।630।।

जैसे वेणीसंहार (१/७)में-

(१) सूत्रधार द्वारा कथित अर्थ- शत्रुओं के शान्त हो जाने के कारण शत्रुता रूपी आग को शान्त कर लेने वाले पाण्डव कृष्ण के साथ आनन्द करें। चाहने वाले (पाण्डवों) को भूमि प्रदान करने वाले, शान्त युद्ध वाले (कौरव) भी सेवकों सहित स्वस्थ रहें।

(2) (भिन्न अर्थ)- शत्रुओं के विनष्ट हो जाने के कारण शत्रुता रूपी आग को शान्त कर लेने वाले पाण्डव कृष्ण के साथ आनन्द करें। अपने खून से पृथ्वी को अलङ्कृत करने वाले, क्षत-विक्षत शरीर वाले कौरव भी सेवकों-सहित स्वर्गवासी हों।।630।।

अत्र सूत्रधारेण विवक्षिते स्वर्गस्थितिलक्षणार्थसूचकस्य रक्तप्रसाधितभुव इत्यादिश्लिष्टवाक्यस्य सहसा प्रस्तुतसम्बन्धितया भावितत्वाद् गण्डम् ।

यहाँ सूत्रधार के द्वारा विवक्षित अर्थ में स्वर्ग में निवास की लक्षणा वाले अर्थ से

सूचित रक्त से अलङ्कृत इत्यादि श्लिष्ट-वाक्य के सहसा प्रस्तुत करने से सम्बन्धित कथन के कारण गण्ड है।

अथावस्यन्दितम् –

पूर्वोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दितं हि तत् ।

(९) अवस्यन्दित– जो पहले कहे गये वचन की दूसरी प्रकार से करना अवस्यन्दित है।।१७७पू.।।

यथा वेणीसंहारे (१.७)–

'सूत्रधारः–

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः ।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ।।631।।

जैसे वेणीसंहार (१.७)में–

सूत्रधार–

(1) सुन्दर पङ्खवाले, मीठी बोली वाले, दिशाओं को सुशोभित करने वाले, हर्ष के कारण उद्दाम व्यापार (क्रीडा) वाले हंस (शरद् ऋतु के) समय के कारण भूतल पर उतर आये हैं। (दूसरा अर्थ समझना) श्रेष्ठ सेना वाले अथवा उत्तम व्यक्तियों से सम्पन्न, मधुरभाषी, दिशाओं को वश में करने वाले, अहङ्कार के कारण धृष्टतापूर्ण कार्य करने वाले, धृतराष्ट्र के पुत्र मृत्यु के कारण भूतल पर (मरकर) गिर रहे हैं।।631।।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः) पारिपार्श्विकः- शान्तं पापम्। प्रतिहतममङ्गलम्।

सूत्रधारः– मा भैषीः। ननु शरत्समयवर्णनाशंसया हंसान् धार्तराष्ट्रा इति व्यपदिशामि।

अत्र पूर्वोक्तस्य सुयोधनादिनिपातस्य हंसपात त्वेन व्याख्यानादिदमव-स्यन्दितम्।

(प्रवेश करके घबराहटपूर्वक) **पारिपार्श्विक–** आर्य पाप शान्त हो, अमङ्गल विनष्ट हो। **सूत्रधार–** (लज्जा और मुस्कराहट के साथ) हे मारिष (आदरणीय)! शरद् ऋतु के वर्णन के अभिप्राय से हंस को धार्तराष्ट्र- ऐसा कह रहा हूँ (अर्थात् हंसों को धार्तराष्ट्र कहा जा रहा है)।

यहाँ पूर्वोक्त सुयोधन इत्यादि के भूमि पर गिरने का हंस के उतरने का व्याख्यान करने से यह अवस्यन्दित है।

अथ नालिका–

प्रहेलिका निगूढार्था हास्यार्थं नालिका स्मृता ।।१७७।।
अन्तर्लापा बहिर्लापेत्येवा द्वेधा समीरिता ।

(१०) नालिका– हास्य के लिए प्रयुक्त गूढ़ अर्थ वाली पहेलिका नालिका

कहलाती है। यह (१) अन्तर्लाप तथा (२) बहिर्लाप-दो प्रकार की कही गयी है।।१७७उ.-१७८पू.।।

तत्रान्तर्लापा यथा प्रसन्नराघवे (१.७)-

प्रत्यङ्कमङ्कुरितसर्वरसावतार-
नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम् ।
घर्मेतरांशुमिव वक्रतयाभिरम्यं
नाट्यप्रबन्धमतिमञ्जुलसंविधानम् ।।632।।

अत्र प्रसन्नराघवनामेत्युत्तरस्य सप्ताक्षराष्टपङ्क्तिक्रमेण लिखितेऽस्मिन्नेव श्लोके मृग्यत्वादन्तर्लापा नामेयम्।

अन्तर्लाप जैसे प्रसन्नराघव (१.७) में-

प्रत्येक अङ्क में (शृङ्गारादि) सभी रसों की प्ररुढ़ अवतारणा से युक्त, अभिनव प्रसून पंक्तियों के समान सुकुमार, ललित और अशिथिल पद-विन्यास वाले, चन्द्रमा के समान वक्रता (कुटिलता, वक्रोक्ति) से अत्यधिक सुरम्य और अत्यधिक मनोज्ञ कथानक से सम्पन्न नाटक को आप द्वारा अभिनीत होता देखेंगे।।632।।

'प्रसन्नराघवनाम' इस (पद) में सातवें अक्षर को अष्टपंक्ति क्रम से लिखने पर इस श्लोक में खोजने से अन्तर्लाप है।

बहिर्लापा यथा बालरामायणे (१.५)-

पारिपार्श्विकः-

कमवड्ढन्तविलासं रसाअले कं करेइ कन्दप्पो ।
(क्रमवर्धमानविलासं रसातले किं करोति कन्दर्पः।)

सूत्रधार- अये प्रश्नोत्तरम्, सेयमस्मत्प्रीतिरिति देवादेशः। तत् स्वमेव वाचयामि। (वाचयति)-

निर्भरगुरुर्व्यधत्त च वाल्मीकिकथां किमनुसृत्य ।।633।।

इत्यत्र बालरामायणमित्युत्तरस्य बहिरेव मृग्यत्वाद् बहिर्लापा नाम नालिकेयम्।

बहिर्लाप जैसे बालरामायण (१.५) में-

परिपार्श्विक- पृथ्वी पर कामदेव किसे बढ़ते हुए विलासों वाला बनाता है? **सूत्रधार-** अरे प्रश्नोत्तर! तो स्वामी का आदेश मेरे लिए है तो स्वयं लेकर बाँचू (बाँचता है) निर्भर-राज का गुरु (राजशेखर) वाल्मीकि की कथा का क्या अनुसरण करके बनाया।।633।।

यहाँ 'बालरामायण इस उत्तर का बाहर से खोजने के कारण बर्हिलाप नामक नालिका है।

अथासत्प्रलापः–

असम्बद्धकथालापोऽसत्प्रलाप इतीरितः ।।१७८।।

(११) असत्प्रलाप– (प्रायः एक के बाद) दूसरी असम्बद्ध (बेसिर पैर की बात) असत्प्रलाप कहलाती है।।१७८उ.।।

यथा वीरभद्रविजृम्भणे–

'नटः –

पत्नी परिलम्बिकुचा तनया मम दन्तुरापि तरुणवयाः ।
क्रीडाकविरस्ति गृहे तदहं नाट्यप्रयोगमर्मज्ञः ।।634।।

अत्र नटेन स्वकीयनाट्य– प्रयोगमर्मज्ञत्वे हेतुतया कथितानां क्रीडाकविसद्भावादीनामसम्बद्धत्वादयमसत्प्रलापः ।

जैसे वीरभद्रजृम्भण में–

मेरी पत्नी लटकने वाले स्तनों से युक्त है और कन्या लम्बे-लम्बे दाँतों वाली होने पर भी तरुणी है। (इस प्रकार) घर में क्रीडा कवि ही है तो मैं नाट्य के अभिनय का मर्मज्ञ हूँ।।624।।

यहाँ नट के द्वारा अपनी नाट्य के अभिनय में मर्मज्ञता होने में सकारण कहे गये क्रीडा-कवि के सद्भाव इत्यादि का असम्बद्ध (बे सिर-पैर का) होने से यह असत्प्रलाप है।

अथ व्याहारः–

अन्यार्थं वचनं हास्यकरं व्याहार उच्यते ।

(१२) व्याहार– जिसका प्रयोजन कुछ और होता है, ऐसे हास्यपूर्ण वचन को व्याहार कहते हैं।।१७९पू.।।

यथानन्दकोशनामनि प्रहसने–

'(प्राविश्य) नटी– अय्य! को णिओओ। (आर्य को नियोगः)। सूत्रधारः– आर्ये! गर्गरिके! नूनमानन्दकोशसन्दर्शनाभिलाषिणी परिषदियम् ।

नटी– ता दंसेदु अय्यो, तदो कि विलंबेण (तद्दर्शयत्वार्यः। ततः किं विलम्बेन)। सूत्रधारः- अयि– गायिके! गर्गरिके! भवत्या मुखव्यापारेण बीजोत्थापनानुसन्धायिना भवितव्यम्।

नटी– (सहर्षम्) कीरिसो सो मुहवावारो। (कीदृशः स मुखव्यापारः)।

सूत्रधारः– नन्वमुमेव शिशिरमधिकृत्य ध्रुवामानरूपः'

जैसे आनन्दकोश प्रहसन में–

(प्रवेश करके) **नटी–** क्या काम है? **सूत्रधार–** हे आर्य गर्गरिके! यह सभा निश्चित ही आनन्दकोश (प्रहसन) को देखना चाहती है। **नटी–** तो आप दिखलाइए।

इसमें विलम्ब करने से क्या लाभ? **सूत्रधार–** हे गाने वाली गर्गरिके! तुम्हारे मुख

से बीज के उत्थापन को खोजना चाहते हैं। **नटी–** (प्रसन्नतापूर्वक) वह मुख का व्यापार कैसा हो? **सूत्रधार–** निश्चित ही इस शिशिर (ऋतु) का सहारा लेकर मानरूपी ध्रुव (गीत गाओ)।

इत्यत्रानन्दकोशबीजोत्थापनमुखव्यापाराणां रूपकबीजोत्थापन ध्रुवागानार्थानामपि अन्यार्थप्रतीत्या हास्यकरत्वादयं व्याहारः।

यहाँ आनन्दकोश (प्रहसन) के बीज की उत्थापना के लिए मुखव्यापार रूपी बीजोत्थापन निमित्त ध्रुवगान के अर्थों की अन्यार्थ प्रतीति के कारण हास्यकर होने से व्याहार है।

अथ मृदवम्–

दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत् ।।१७९।।

(१३) मृदव– जहाँ दोष गुण रूप में और गुण दोष रूप में प्रस्तुत होता है, वह मृदव कहलाता है।।१७९३.।।

यथा–

नार्हाः केवलवेदपाठविधिना कीरा इव च्छान्दसाः
शास्त्रीयाभ्यसनाच्छुनामिव नृणामन्योऽन्यकोलाहलः ।
व्यर्थं काव्यमसत्यवस्तुघटनात् स्वप्नेन्द्रजालादिवद्
व्याकीर्णव्यवहारनिर्णयकृते त्वेकैव कार्या स्मृतिः ।।635।।

अत्र आर्यादिषु गुणरूपेष्वपि दोषत्वकथनान्मृदवमिदम्।

केवल वेदपारायण करने के कारण शुकों के समान छन्द को जानने वाले (वेदज्ञ) लोग समर्थ नहीं हैं, (रटकर) शास्त्र का अभ्यास करने के कारण मृदुताल या घंटी के समान लोगों (पुरुषों) का परस्पर कोलाहल होता है और असत्य कथावस्तु के संघटन के कारण स्वप्न में इन्द्रजाल के समान काव्य व्यर्थ है, अस्तव्यस्त व्यवहार के निर्णय के लिए तो केवल स्मरण ही किया जाता है।।635।।

यहाँ आर्या (छन्द) इत्यादि गुण के रूपों में भी दोषत्व का कथन होने से यह मृदव है।

(वस्तुप्रपञ्चनोचितः कालः)-

एवमामुखमायोज्य सूत्रधारे सहानुगे ।
निष्क्रान्तेऽथ तदाक्षिप्तैः पात्रैर्वस्तु प्रपञ्चयेत् ।।१८०।।

कथावस्तु प्रदर्शन का समय– इस प्रकार आमुख का आयोजन करके साथियों के साथ सूत्रधार के निकल जाने पर उसके द्वारा सङ्केतित विषयवस्तु का पात्रों द्वारा प्रदर्शन किया जाना चाहिए।।१८०।।

(वस्तुनो द्वैविध्यम्)-

वस्तु सर्वं द्विधा सूच्यरूपमसूच्यमिति भेदतः ।

कथावस्तु के दो प्रकार- वस्तु सदा सूच्य और असूच्य भेद से दो प्रकार की होती है।।१८१पू.।।

(तत्र सूच्यवस्तु)-

रसहीनं भवेद् यत्तु वस्तु तत् सूच्यमुच्यते ।।१८१।।

सूच्य वस्तु- जो वस्तु रसहीन होती है, वह सूच्य कहलाती है।।१८१उ.।।

(सूच्यवस्तुसूचकाः)-

यद्वस्तु नीरसं तत्तु सूचयेत् सूचकास्त्वमी ।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकाः ।।१८२।।

सूच्य वस्तु के सूचक- जो नीरस वस्तु है, उसकी सूचना देनी चाहिए। (१) विष्कम्भक (२) चूलिका (३) अङ्कास्य (४) अङ्कावतार और (५) प्रवेशक— ये पाँच सूचक होते हैं।।१८२।।

(तत्र विष्कम्भकः)-

तत्र विष्कम्भको भूतभाविवस्त्वंशसूचकः ।
अमुख्यपात्ररचितः संक्षेपप्रतियोजितः ।।१८३।।

(१) विष्कम्भक- बीते (भूत) और आने वाले कथांशों का सूचक, साधारण (अप्रधान) पात्र द्वारा प्रयोजित तथा संक्षिप्ता से युक्त अर्थ वाला विष्कम्भक होता है।।१८३।।

(विष्कम्भकस्य प्रकारद्वयम्)-

स शुद्धो मिश्र इत्युक्तः

विष्कम्भक के प्रकार- वह विष्कम्भक शुद्ध और मिश्र भेद से दो प्रकार का कहा गया है।

(अथ मिश्रः)-

मिश्रः स्यान्नीचमध्यमैः ।
सोऽयं चेटीनटाचार्यसंल्लापपरिकल्पितः ।।१८४।।
मालविकाग्निमित्रस्य प्रथमाङ्के निरूप्यताम् ।

मिश्र विष्कम्भक- नीच और मध्यम पात्र द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक मिश्र विष्कम्भक होता है। वह चेटी और नटाचार्य की बातचीत से परिकल्पित होता है। वह मालविकाग्निमित्र के प्रथम अङ्क में प्रयुक्त किया गया है।।१८४उ.-१८५पू.।।

शुद्धः केवलमध्योऽयमेकानेककृतो द्विधा ।।१८५।।
रत्नावल्यामेकशुद्धः प्राप्तयौगन्धरायणः ।

अनेकशुद्धो विष्कम्भः षष्ठाङ्केऽनर्घराघवे ।।१८६।।
निरूप्यतां सम्प्रयुक्तो माल्यवच्छुकसारणैः ।

शुद्ध विष्कम्भक- केवल मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक शुद्ध विष्कम्भक होता है। वह दो प्रकार का होता है- एककृत् और अनेककृत्। एककृत् शुद्ध विष्कम्भक रत्नावली में यौगन्धरायण द्वारा प्रयुक्त है और अनेककृत शुद्ध विष्कम्भक अनर्घराघव के षष्ठ अङ्क में प्रयुक्त हुआ है जो माल्यवान्, शुक तथा सारण द्वारा प्रयुक्त है।

अथ चूलिका-

वन्दिमागधसूताद्यैः प्रत्याशीरन्तरस्थितैः ।।१८७।।
अर्थोपक्षेपणं यत्तु क्रियते सा हि चूलिका ।

(२) चूलिका- नेपथ्य में स्थित चारण मागध, सूत इत्यादि के द्वारा जो अर्थ का सङ्केत (उपक्षेपण) किया जाता है वह चूलिका कहलाता है।

सा द्विधा चूलिका खण्डचूलिका चेति भेदतः ।।१८८।।

चूलिका के प्रकार- वह चूलिका और खण्डचूलिका भेद से दो प्रकार की होती है।।१८८उ.।।

(तत्र चूलिका)-

पात्रैर्जवनिकान्तःस्थैः केवलं या तु निर्मिता ।
आदावङ्कस्य मध्ये वा चूलिका नाम सा स्मृता ।।१८९।।
प्रवेशनिर्गमाभावादियमङ्काद् बहिर्गता ।।

(अ) चूलिका- नेपथ्य में स्थित पात्रों के द्वारा अङ्क के प्रारम्भ में अथवा मध्य में जो अर्थोक्षेपण (अर्थ का सङ्केत) होता है वह चूलिका नाम से प्रसिद्ध है। प्रवेश तथा निर्गमन के न होने से यह अङ्क के बाहर होती है।।१८९उ.-१९०पू.।।

अङ्कादौ चूलिका यथानर्घराघवे सप्तमाङ्के (७.१)-

(नेपथ्ये)-

तमिस्रामूर्च्छालत्रिजगदगदङ्कारकिरणे
रघूणां गोत्रस्य प्रसवितरि देवे सवितरि ।
पुरस्स्थे दिक्पालैः सह परगृहावासवचनात्
प्रविष्टा वैदेही दहनमथ शुद्धा च निरगात् ।।636।।

अङ्क के प्रारम्भ में चूलिका जैसे (अनर्घराघव ७.१) में-

(नेपथ्य में)- अन्धकार में डूबे लोकत्रय को प्रकाशित करने वाली किरणों से युक्त भगवान् सूर्य के उदित होने पर जो सूर्य रघुवंश के आदि पुरुष है उनके प्रकाशित होते ही, समस्त

दिक्पालों के सामने, सूर्य को साक्षी रखकर राक्षस गृहवासरूप निन्दा-वचन से मुक्ति पाने के लिए वैदेही ने आग में प्रवेश किया और शुद्ध होकर निकल आयीं। अग्नि-परीक्षा में अपने को शुद्ध साबित करके प्रमाणित कर दिया कि उसके प्रति प्रचारित कलङ्क की बात केवल कल्पनामात्र थी।।636।।

इत्यादौ नेपथ्यगतैरेव पात्रैः सीताज्वलनप्रवेशनिर्गमादीनामर्थानांप्रयोगानुचितानां सूचनादियं चूलिका ।

इत्यादि में नेपथ्य में स्थित पात्रों द्वारा सीता के अग्नि में प्रवेश तथा उससे निकलने इत्यादि अर्थों के प्रयोग के अनौचित्य की सूचना देने से यह चूलिका है।

अङ्कमध्ये यथा रत्नावल्यां द्वितीयाङ्के (२.२)-

(नेपथ्ये कलकलः)

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्षन्
क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किङ्किणीचक्रवालः ।
दत्ताशङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः सम्भ्रमादश्वपालैः
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः ।।637।।

अत्र नेपथ्यगतैः पात्रैः प्रयोगानुचितस्य वानरविप्लवाद्यर्थस्य सूचनादियं मध्यचूलिका।

अङ्क के मध्य में चूलिका- जैसे (रत्नावली (२.२) में-

(नेपथ्य में कोलाहल होता है-) गले में टूटने से बची हुई सुनहली जंजीर को नीचे भूमि पर खींचते हुए, उछलकूद के कारण चञ्चल चरणों में बजते इस घुँघरुओं वाला, दरवाजा को लाँघकर (अन्तःपुर की) स्त्रियों को आतंकित करने वाला, घबराकर अश्व-रक्षकों द्वारा पीछा किया जाता हुआ घुड़सवार से छूटकर भागा हुआ यह वानर राजमहल में प्रवेश कर रहा है।।637।।

यहाँ नेपथ्य में स्थित पात्रों द्वारा वानरों द्वारा कृत विप्लव इत्यादि अर्थ के प्रयोग के अनौचित्य की सूचना देने से यह अङ्क के मध्य में चूलिका है।

अथ खण्डचूलिका-

रङ्गनेपथ्य संस्थायिपात्रसंल्लापविस्तरैः ।।१९०।।
आदौ केवलमङ्कस्य कल्पिता खण्डचूलिका ।
प्रवेशनिर्गमाप्राप्तेरियमङ्काद् बहिर्गता ।।१९१।।

(आ) खण्डचूलिका- केवल अङ्क के प्रारम्भ में रङ्गमञ्च नेपथ्य में स्थित पात्रों के संलाप (बातचीत) के विस्तार से सङ्केतित (कल्पित) चूलिका खण्ड- चूलिका होती है। (पात्रों के) प्रवेश और निर्गमन की प्राप्ति न होने से यह अङ्क से बाहर होती है।।१९०उ.-१९१पू.।।

यथा बालरामायणे सप्तमाङ्कस्यादौ–

(ततः प्रविशति वैतालिकः कर्पूरचन्द्रः समन्तादवलोक्यनेपथ्यं प्रति) वैतालिकः:- भद्र! चन्दनखण्ड! परित्यज निद्रामुद्राम्! विमुञ्च निजोटजाभ्यन्तरम् । (नेपथ्ये) अय्य! कप्पूरचंड! एसा मिट्ठा पभादणिद्दा। सुविस्सं दाव (आर्य कर्पूरचण्ड। एषा मिष्टा प्रभातनिद्रा। स्वप्स्यामि तावत्)। कर्पूरचण्डः- अहो! उत्साहशक्तिर्भवतोऽमन्त्रशीलो महीपतिरपरप्रबन्धदर्शी कविरपाठरुचिश्च वन्दी न चिरं नन्दति। (नेपथ्ये) ता एत्थ संत्थरत्थिदो णिमीलिदणअणो जेव्व सुप्पभादं पठिस्सं (तदत्र संस्तरस्थितो निमीलितनयन एव सुप्रभातं पठिष्यामि । कर्पूरचण्डः- एतदपि भवतो भूरि। तदुपश्लोकयावो रामभद्रम्। (किञ्चिदुच्चैः)-

मार्तण्डैककुलप्रकाण्डतिलकस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
र्विश्वामित्रमहामुनेर्निरुपधिः शिष्यो रघुग्रामणीः ।
रामस्ताडितताटकः किमपरं प्रत्यक्षनारायणः
कौसल्यानयनोत्सवो विजयतां भूकाश्यपस्यात्मजः ।।(7/3)638।।

(नेपथ्ये)

कन्दप्पुद्दामदप्पप्पसमणगुरुणो ब्रह्मणो कालदण्डे
पाणिं देंतस्स गंगातरलिदससिणो पव्वईवल्लहस्स ।
चावं चंण्डाहिसिञ्जारवहरिदणहं कर्षणारुद्धमज्झं
जं भग्गं तस्य सद्दो णिसुणिति हुअणे वित्थरन्तोणमाई ।।(7.4)639।।
(कन्दर्पोद्दामदर्पप्रशमनगुरोर्ब्रह्मणः कालदण्डे
पाणिं दातुर्गङ्गातरलितशशिनः पार्वतीवल्लभस्य ।
चापं चण्डाभिशिञ्जारवभरितनभः कर्षणारुद्धमध्यं
यद् भग्नं तस्य शब्दो निःश्रूयते भुवने विस्तरन् न भाति ।।)

अत्र प्रविष्टेन कर्पूरचण्डेन यविनिकान्तर्गतेन चन्दनचण्डेन च पर्यायप्रवृत्तवाग्विलासैस्ताटकावधादिविभीषणाभयप्रदानान्तस्य रामभद्रचरितस्य बाहुल्यात् प्रयोगानुचितस्य सूचनादियं खण्डचूलिका ।

जैसे बालरामायण के सप्तम अङ्क के प्रारम्भ में–

(तत्पश्चात् वैतालिक कपूरचन्द्र प्रवेश करके चारों ओर देखकर नेपथ्य की ओर)

वैतालिक– हे भद्र चन्दनचण्ड! निद्रा छोड़ो! अपनी कुटी से बाहर आओ। (नेपथ्य में) आर्य कर्पूरचन्द्र! यह प्रभात निद्रा मधुर है अतः सो रहा हूँ। **कर्पूरचण्ड–** आप की उत्साह-शक्ति धन्य है। मन्त्रणाविहीन राजा, दूसरे का काव्य देखने वाला कवि और पाठ में अरुचि रखने वाला चारण चिरकाल तक प्रसन्न नहीं रह सकते। (नेपथ्य में) तो यह विस्तर पर पड़ा हुआ और आँखे बन्द किये हुए ही प्रभात पढूँगा। **कर्पूरचण्ड–** यह भी आप के लिए

पर्याप्त है। तो रामभद्र का गुणगान करूँ। (कुछ जोर से)-

कौशल्यानन्दन भूकाश्यप (दशरथ) के पुत्र राम की जय हो जो सूर्यवंश के महान् तिलक हैं, त्रैलोक्य की रक्षा के लिए मणिसदृश हैं, महामुनि विश्वामित्र के निष्कपट शिष्य हैं, रघुवंश में श्रेष्ठ हैं, ताडका को मारने वाले हैं और अधिक क्या साक्षात् नारायण हैं।।(7/3)638।।

(नेपथ्य में)-

कामदेव के उत्कट अहङ्कार भ्रष्ट करने के आचार्य, ब्रह्मा के कालदण्ड में हाथ देने वाले अर्थात् ब्रह्मा के शिरच्छेदक, शिरस्थगङ्गा से चञ्चल चन्द्रमा वाले पार्वतीपति के प्रचण्ड वासुकी की प्रत्यञ्चा के शब्द वाले धनुष को खींचते हुए (राम ने) जो बीच में ही तोड़ डाला उसका शब्द त्रैलोक्य में सुना जा रहा है और वह फैलता हुआ त्रैलोक्य में समा नहीं पा रहा है।।(7/4)639।।

यहाँ प्रवेश किये कर्पूरचण्ड के द्वारा यवनिका के भीतर स्थित चन्दनचण्ड के साथ पर्याय-प्रवृत्त वाग्विलास से ताडकावध इत्यादि द्वारा विभीषण को अभय प्रदान करने वाले रामचरित का बहुलता से प्रयोग के अनौचित्य की सूचना देने के कारण यह खण्डचूलिका है।

(खण्डचूलिका विषयकान्यमतनिराकरणम्)-

एनां विष्कम्भमेवान्ये प्राहुर्नैतन्मतं मम ।
अप्रविष्टस्य संल्लापो विष्कम्भे नहि युज्यते ।।१९२।।
तद्विष्कम्भशिरस्कत्वान्मतेयं खण्डचूलिका ।

खण्डचूलिका विषयक अन्य मत का निराकरण-

इस (खण्डचूलिका) को कुछ आचार्य विष्कम्भक ही मानते हैं किन्तु मेरा ऐसा मत नहीं है क्योंकि रङ्गमञ्च पर प्रवेश न करने वाले पात्र के संलाप को विष्कम्भक में कहना उचित नहीं है। विष्कम्भक का निराकरण हो जाने से यह खण्डचूलिका है।

अथाङ्कास्यम्

पूर्वाङ्कान्ते सम्प्रविष्टैः पात्रैर्भाव्यङ्कवस्तुनः ।।१९३।।
सूचनं तदविच्छित्त्यै यत् तदङ्कास्यमीरितम् ।
तथा हि वीरचरिते द्वितीयाङ्कावसानके ।।१९४।।
प्रविष्टेन सुमन्त्रेण सूचितं रामविग्रहे ।
वसिष्ठविश्वामित्रादिसमाभाषणलक्षणम् ।।१९५।।
वस्तूत्तराङ्के पूर्वार्थाविच्छेदेनैव कल्पितम् ।

(३) अङ्कास्य- कथानक की अविच्छिन्नता के लिए पूर्ववर्ती अङ्क के अन्त में प्रविष्ट पात्रों द्वारा परवर्ती अङ्क की कथावस्तु की सूचना देना अङ्कास्य कहलाता है। जैसे महावीरचरित के रामविग्रह (नामक) द्वितीय अङ्क के अन्त (अवसान) में प्रवेश करने वाले सुमन्त्र के द्वारा उत्तरवर्ती

(तृतीय) अङ्क में पूर्ववर्ती (द्वितीय अङ्क) की कथावस्तु (अर्थ) के अविच्छेद (तारतम्य न टूटने) के कारण वसिष्ठ, विश्वामित्र इत्यादि लोगों के समाभाषण (परस्पर बातचीत) की सूचना देना कल्पित किया गया है। अतः यह अङ्कास्य है॥१९३उ.-१९६पू.॥

अथाङ्कावतारः-

अङ्कावतारः पात्राणां पूर्वकार्यानुवर्तिनाम् ॥१९६॥
अविभागेन सर्वेषां भाविन्यङ्के प्रवेशनम् ।
द्वितीयाङ्के मालविकाग्निमित्रे स निरूप्यताम् ॥१९७॥
पात्रेणाङ्कप्रविष्टेन केवलं सूचितत्वतः ।
भवेदाङ्कादबाह्यत्वमङ्कास्याङ्कावतारयोः ॥१९८॥

(४) अङ्कावतार- पूर्ववर्ती (अङ्क) के कार्यों का अनुसरण करने वाले सभी पात्रों का परवर्ती अङ्क में अविभाग (पूर्ववर्ती अङ्क के कथानक का विच्छेद किये बिना) ही प्रवेश करना अङ्कावतार कहलाता है। जैसे मालविकाग्निमित्र के द्वितीय अङ्क में (सपरिवार राजा का प्रथम अङ्क से द्वितीय अङ्क में प्रवेश करने को) देख लेना चाहिए॥१९६उ.-१९७पू.॥

अङ्कास्य और अङ्कावतार में अङ्क में प्रविष्ट पात्र द्वारा दूसरे अङ्क के (कथावस्तु की) सूचना होने से वह पूर्ववर्ती अङ्क से बाहर नहीं होता।

अथ प्रवेशकः-

यन्नीचैः केवलं पात्रैर्भाविभूतार्थसूचनम् ।
अङ्कयोरुभयोर्मध्ये स विज्ञेयः प्रवेशकः ॥१९९॥
सोऽयं चेटीद्वयालापसंविधानोपकल्पितः ।
मालतीमाधवे प्राज्ञैर्द्वितीयाङ्के निरूप्यताम् ॥२००॥

प्रवेशक- केवल निम्न पात्रों द्वारा दो अङ्कों के बीच में भावी आने वाले और भूत (बीत हुए) कार्य की सूचना देने को प्रवेशक समझना चाहिए। यह दो चेटियों की बातचीत के विधान द्वारा उपकल्पित होता है। जैसे मालती-माधव के द्वितीय अङ्क (के प्रारम्भ) में प्राज्ञों को समझ लेना चाहिए॥२००॥

(असूच्यवस्तु)-

असूच्यं तु शुभोदात्तरसभावनिरन्तरम् ।

असूच्य वस्तु- असूच्य वस्तु निरन्तर शुभ और उदात्त रसभाव से युक्त होती है॥२०१पू.॥

(क्वचिदङ्कस्यैव कल्पनम्)-

प्रारम्भे यद्यसूच्यं स्यादङ्कमेवात्र कल्पयेत् ॥२०१।

रसालङ्कारवस्तूनामुपलालनकाङ्क्षिणाम् ।

कहीं अङ्क की ही कल्पना– प्रारम्भ में शुभ और उदात्त रसभाव की निरन्तर असूच्य (कथावस्तु) की प्रवृत्ति हो जाय तो पहले आमुख का विधान करके (बीज आदि से आक्षिप्त) रस, अलङ्कार और कथावस्तु के उपलालन की अभिलाषा करने वाले नाटक के कवियों को अङ्क का विधान कर देना चाहिए।।२०१उ.-२०२पू.।।

(अङ्कलक्षणम्)–

जनन्यङ्कवदाधारभूतत्वादङ्क उच्यते ।।२०२।।

अङ्क का लक्षण– जिस प्रकार माता का अङ्क (गोंद) बच्चे के बैठने का आश्रय होता है उसी प्रकार अङ्क भी रस, अलङ्कार और कथा के उपलालन का आश्रय कहा जाता है।।२०२उ.।।

(अङ्कप्रदर्शनयोग्यवस्तु)

अङ्कस्तु पञ्चषैर्द्वित्रैरङ्गिनोऽङ्गस्य वस्तुनः ।
रसस्य वा समालम्बभूतैः पात्रैर्मनोहरः ।।२०३।।
संविधानविशेषः स्यात् तत्रासूच्यं प्रपञ्चयेत् ।

अङ्क प्रदर्शन योग्य कथावस्तु– जहाँ अङ्गी अथवा अङ्ग कथावस्तु के रस की वासना के आलम्बनभूत पाँच-छः या दो-तीन पात्रों द्वारा मनोहर संविधान-विशेष होता है उसी में असूच्य कथावस्तु का प्रदर्शन करना चाहिए।।२०३-२०४पू.।।

(अथासूच्यविभागः)–

असूच्यं तद् द्विधा दृश्यं श्राव्यं चाद्यं तु दर्शयेत् ।।२०४।।

असूच्य कथावस्तु का विभाग– असूच्य कथावस्तु दो प्रकार की होती है- दृश्य और श्रव्य । पहले वाली (दृश्य कथावस्तु) को दिखा देना चाहिए।।२०४उ.।।

(श्राव्यस्य द्वैविध्यम्)–

द्वेधा द्वितीयं स्वगतं प्रकाशं चेति भेदतः ।

श्रव्य के भेद– दूसरी श्रव्य (कथावस्तु) स्वगत और प्रकाश भेद से दो प्रकार की होती है।

(तत्र स्वगतम्)–

स्वगतं स्वैकविज्ञेयम्–

स्वगत– कथावस्तु केवल अपने द्वारा ही जानने योग्य होती है। (इसे पात्र दर्शकों को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि यह मन से सोची हुई बात के समान अन्य पात्रों को मालूम नहीं है)।

सर्वप्रकाशं नियतप्रकाशं चेति भेदतः ।

प्रकाश– सर्वप्रकाश और नियत प्रकाश भेद से प्रकाश दो प्रकार का होता है॥२०५पू.॥

(तत्र सर्वप्रकाशम्)–

सर्वप्रकाशं सर्वेषां स्थितानां श्रवणोचितम् ॥२०६॥

सर्वप्रकाश– सर्वप्रकाश (कथावस्तु रङ्गमञ्च पर) स्थित सभी (पात्रों) द्वारा श्रवणीय होती है॥२०५उ.॥

(नियतप्रकाशम्)–

द्वितीयं तु स्थितेष्वप्येष्वेकस्य श्रवणोचितम् ।

नियत प्रकाश– नियत प्रकाश रङ्गमञ्च पर विद्यमान सभी पात्रों में से एक पात्र के सुनने योग्य होता है॥२०७पू.॥

(नियतप्रकाशस्य द्वैविध्यम्)–

द्विधा विभाव्यतेऽन्यच्च जनान्तमपवारितम् ॥२०७॥

नियतप्रकाश के भेद– अन्य (नियत प्रकाश) वाली (कथावस्तु) दो प्रकार की होती है- जनान्त (जनान्तिक) और अपवारित॥२०५उ.॥

(तत्र जनान्तिकम्)–

त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ।
अन्येनामन्त्रणं यत् स्यात् तज्जनान्तिकमुच्यते ॥२०८॥

जनान्तिक– त्रिपताका-कार हाथ से ओट करके अन्य (पात्रों) से छिपकर बीच की कथावस्तु की जो अन्य (दूसरे पात्र) से मन्त्रणा की जाती है वह जनान्तिक कहलाता है॥२०८॥

(अथापवारितम्)–

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् ।

अपवारित– जो लौटकर अन्य (दूसरे पात्र) के रहस्य (गूढ़ बात) को कहा जाता है वह अपवारित है॥२०९पू.॥

(अङ्कान्ते पात्राणां निष्क्रमणम्)–

इदं श्राव्यं च दृश्यं च प्रविश्य सुसमाहितैः ॥२०९॥
पात्रैर्निष्क्रमणं कार्यमङ्कान्ते सममेव हि ।

अङ्क के अन्त में पात्रों का निष्क्रमण– अङ्क के अन्त में प्रवेश करके इस श्रव्य और दृश्य (असूच्य कथावस्तु) को (सङ्केतित) करना चाहिए और वहाँ (पहले से) इकट्ठे अन्य पात्रों के साथ ही निष्क्रमण करना चाहिए (निकल जाना चाहिए)॥२०९उ.-२१०पू.॥

(अथाङ्कच्छेदनम्)-

अङ्कच्छेदश्च कर्तव्यः कालावस्थानुरोधतः ।।२१०।।

अङ्क की समाप्ति- काल (समय) अवस्था के अनुरूप अङ्क को विच्छेद (अङ्क की समाप्ति) करना चाहिए।।२१०उ.।।

(अथाङ्कप्रतिपाद्यवस्तुस्वभावः)-

दिनार्धदिनयोर्योग्यमङ्के वस्तु प्रवर्तयेत् ।

अङ्क में प्रतिपाद्य वस्तु का स्वभाव- दिन अथवा दिनार्ध (दोपहर) के योग्य कथावस्तु को अङ्क में प्रवर्तित करना चाहिए।।२०४-२०५।।

(अथ गर्भाङ्कलक्षणम्)-

अङ्कप्रसङ्गाद् गर्भाङ्कलक्षणं वक्ष्यते मया ।।२११।।
रसनायकवस्तूनां महोत्कर्षाय कोविदैः ।
अङ्कस्य मध्ये योऽङ्कः स्यादयं गर्भाङ्क ईरतः ।।२१२।।
वस्तुसूचकनान्दीको दिङ्मात्रामुखसङ्गतः ।
अर्थोपक्षेपकैर्हीनश्चूलिकापरिवर्जितैः ।।२१३।।
अनेष्यद्वस्तुविषयः पात्रैस्त्रिचतुरैर्युतः ।
नातिप्रपञ्चेतिवृत्तः स्वाधाराङ्कान्तशोभितः ।।२१४।।
प्रस्तुतार्थानुबन्धी च पात्रनिष्क्रमणावधिः ।
प्रथमाङ्के न कर्त्तव्यः सोऽयं काव्यविशारदैः ।।२१५।।
सोऽयमुत्तररामे तु रसोत्कर्षाय कथ्यताम् ।
नेतुरुत्कर्षको ज्ञेयो बालरामायणे त्वयम् ।।२१६।।
अमोघराघवे सोऽयं वस्तूत्कर्षैककारणम् ।

गर्भाङ्क का लक्षण- अङ्क के प्रसङ्ग के कारण मैं गर्भाङ्क का लक्षण कह रहा हूँ। रस, नायक अथवा कथावस्तु के महान् उत्कर्ष के लिए कुशल (कवियों) के द्वारा (नाटक के) अङ्क के मध्य में जो अङ्क (का विधान) किया जाता है, वह गर्भाङ्क कहलाता है। वह गर्भाङ्क वस्तुसूचक नान्दी से युक्त, सङ्केतमात्र आमुख से सङ्गत, अर्थोक्षपक से रहित, चूलिका से परिवर्जित (हीन), अल्पकथानक वाला, अपने आधार वाले (मुख्य) अङ्कान्त से सुशोभित, प्रस्तुत अर्थ (कार्य) के अनुबन्ध से युक्त तथा पात्रों के निकलने के समय तक चलने वाला होता है। काव्य (नाट्य) के निष्णात (कवियों) द्वारा यह (गर्भाङ्क) (नाटक के) प्रथम अङ्क में नहीं किया जाना चाहिए। जैसे यह गर्भाङ्क उत्तर (रामचरित) में रस के उत्कर्ष के लिए, बालरामायण में (नायक) के उत्कर्ष के लिए तथा अमोघराघव में कथावस्तु के उत्कर्ष के

प्रयुक्त हुआ है- ऐसा कहना चाहिए।।२१९उ.-२१७पू.।।

(नाटकेऽङ्कनियमः)

नाटकेऽङ्का न कर्तव्याः पञ्चन्यूना दशाधिकाः ।।२१७।।

तदीदृशगुणोपेतं नाटकं भुक्तिमुक्तिदम् ।

नाटक में अङ्क का विधान्- नाटक में पाँच से कम और दश से अधिक अङ्क नहीं करना (बनाना) चाहिए।।२१७उ.।।

उपर्युक्त गुणों से युक्त नाटक भोग और मोक्ष दोनों को देने वाला होता है।।२१८पू.।। जैसा कि भरत ने कहा है-

तथा च भरतः-

धर्मार्थसाधनं नाट्यं सर्वदुःखापनोदकृत् ।

आसेवध्वं तदृषयस्तस्योत्थानं तु नाटकम् ।।इति।।

"नाटक धर्म और अर्थ को प्राप्त करने का साधन है तथा सभी दुःखों को समाप्त (दूर) करने वाला है। इसीलिए ऋषिगण उसका सेवन करते हैं। नाटक उस (नाट्य) का उत्थान है।

(नाटकस्य पूर्णादिभेदाननङ्गीकारः)

नाटकस्य तु पूर्णादिभेदाः केचन कल्पिताः ।।२१८।।

तेषां नातीव रम्यत्वादपरीक्षाक्षमत्वतः ।

मुनिनानादृतत्वाच्च नानुद्देष्टुमुदास्महे ।।२१९।।

नाटक के पूर्ण इत्यादि भेदों की अस्वीकृति- कुछ आचार्य नाटक के पूर्ण इत्यादि भेदों की कल्पना करते हैं। उन (कल्पनाओं) के रमणीय न होने तथा परीक्षा में असमर्थ होने और मुनि (भरत) द्वारा समादृत न होने के कारण उसका निरूपण करने के प्रति हम उदासीन है।।२१८उ.२१९पू.।।

अथ प्रकरणम्-

यत्रेतिवृत्तमुत्पाद्यं धीरशान्तश्च नायकः ।

रसः प्रधानं शृङ्गारः शेषं नाटकवद् भवेत् ।।२२०।।

(२) प्रकरण- जहाँ कथावस्तु (कवि द्वारा) उत्पादित (कल्पित) होती है, नायक धीरप्रशान्त होता है, प्रधान (अङ्गी) रस शृङ्गार होता है, तथा शेष लक्षण नाटक के समान होते हैं, वह प्रकरण कहलाता है।।२२०।।

(प्रकरणभेदाः)-

तत्तु प्रकरणं शुद्धं धूर्तं मिश्रं च तत् त्रिधा ।

प्रकरण के भेद– प्रकरण तीन प्रकार का होता है— शुद्ध धूर्त तथा मिश्र॥२२१पू.॥

(तत्र शुद्धप्रकरणम्)–

कुलस्त्रीनायिकं शुद्धं मालतीमाधवादिकम् ।।२२१।।

शुद्ध प्रकरण–शुद्ध प्रकरण वह होता है जिसमें नायिका कुलस्त्री होती है। जैसे- मालतीमाधव इत्यादि।

(अथ धूर्तप्रकरणम्)–

गणिकानायिकं धूर्तं कामदत्ताह्वयादिकम् ।

धूर्तप्रकरण– जिसमें गणिका नायिका होती है, वह धूर्तप्रकरण कहलाता है, जैसे- कामदत्ताह्वय इत्यादि।

(अथ मिश्रप्रकरणम्)–

कितवद्यूतकारादिव्यापारं त्वत्र कल्पयेत् ।।२२२।।
मिश्रं तत् कुलजावेश्ये कल्पिते यत्र नायिके ।
धूर्तशुद्धक्रमोपेतं तन्मृच्छकटिकादिकम् ।।२२३।।

मिश्र प्रकरण– मिश्रप्रकरण वह होता है जिसमें धूर्त (कपटी), जुवाड़ी आदि के व्यापार की कल्पना होती है तथा कुलजा (कुलस्त्री) और वेश्या- ये दो नायिकाएँ होती हैं। धूर्त और शुद्ध गुणों से युक्त मृच्छकटिक इत्यादि इसका उदाहरण है॥२२२उ.-२२३॥

(नाटिकाया अपृथग्रूपत्वम्)–

नाटिका त्वनयोर्भेदो न पृथग् रूपकं भवेत् ।
प्रख्यातं नृपतेर्वृत्तं नाटकादाहृतं यतः ।।२२४।।
बुद्धिकल्पितवस्तुत्वं तथा प्रकरणादपि ।

नाटिका की अभिन्नता– नाटिका (नाटक और प्रकरण) दोनों का भेद है इसलिए अलग रूपक नहीं है क्योंकि नाटिका में प्रख्यात राजा का इतिवृत्त होने से नाटक से भिन्न नहीं है। कवि की बुद्धि से कल्पित इतिवृत्त होने के कारण प्रकरण से भिन्न नहीं है॥२२४-२२५पू.॥

विमर्शसन्धिराहित्यं भेदकं चेन्न तन्मतम् ।।२२५।।
रत्नावल्यादिके लक्ष्ये तत्सन्धेरपि दर्शनात् ।

प्रश्न– नाटिका में विमर्श सन्धि नहीं होती?।

उत्तर– ऐसी बात नहीं है। रत्नावली इत्यादि नाटिका है। और उस लक्ष्य में वह (विमर्श सन्धि) दिखलायी पड़ती है॥२२५उ.-२२६पू.॥

स्त्रीप्रायचतुरङ्कादिभेदकं चेन्न तन्मतम् ।।२२६।।
एकद्वित्र्यङ्ककपात्रादिभेदेनानन्तता यतः ।
देवीवशात् सङ्गमेन भेदश्चेत् तन्न युज्यते ।
मालविकाग्निमित्रादौ नाटिकात्वप्रसङ्गतः ।।२२७।।

प्रश्न– नाटिका में स्त्री (पात्रों) की अधिकता होती है और चार ही अङ्क वाली होती है? **उत्तर**– ऐसी बात नहीं है। एक, दो या तीन अङ्कों (का विभाजन) और पात्र इत्यादि के भेद के कारण भेद करने पर रूपकों की संख्या अनन्त हो जाएगी।।२२६उ.२२७पू.।।

प्रश्न– (नाटिका में नायक और नायिका का) समागम देवी (महारानी) के वशवर्ती होता है? **उत्तर**– यह ठीक नहीं है क्योंकि मालविकाग्निमित्र इत्यादि में भी नायक और नायिका का मिलन महरानी के वशवर्ती ही है, इससे ये भी नाटिकाएँ हो जाएँगे।।२२७।।

प्रकरणिकानाटिकयोरनुसरणीया हि नाटिकासरणिः।
अत एव भरतमुनिना नाट्यं दशधा निरूपितं पूर्वम्।।२२८।।

नाटिका की अनुसरणि (रचनाविधा)के लिए प्रकरण और नाटक का अनुसरण करना चाहिए। अर्थात् नाटक और प्रकरण के अनुसार ही नाटिका की भी रचना होती है। इसलिए भरतमुनि ने दश प्रकार के ही रूपकों का निरूपण किया है।।२२८।।

अथाङ्क–

ख्यातेन वा कल्पितेन वस्तुना प्राकृतैर्नरैः ।
अन्वितैः कैशिकीहीनः सात्त्वत्यारभटीमृदुः ।।२२९।।
स्त्रीणां विलापव्यापारैरुपेतः करुणाश्रयः ।
नानासङ्ग्रामसन्नाहप्रहारमरणोत्कटः ।।२३०।।
मुखनिर्वाहवान् यः स्यादेकद्वित्र्यङ्क इच्छया ।
उत्सृष्टिकाङ्कः स ज्ञेयः सविष्कम्भप्रवेशनः ।।२३१।।
अस्मिन्नमङ्गलप्राये कुर्यान्मङ्गलमन्ततः ।
प्रयोज्यस्य वधः कार्यः पुनरुज्जीवनावधिः ।।२३२।।
उज्जीवनादप्यधिकं मनोहरफलोऽपि वा ।
विज्ञेयमस्य लक्ष्यं तु करुणाकन्दलादिकम् ।।२३३।।

अङ्क– अङ्क प्रख्यात अथवा कवि कल्पित विषय-वस्तु से युक्त तथा साधारण पुरुष के नायक वाला, कैशिकी वृत्ति से रहित और अल्प सात्त्वती और आरभटी वृत्ति वाला होता है। यह करुण रस के आश्रित स्त्रियों के विलाप-व्यापार से युक्त होता है। अनेक प्रकार के सङ्ग्रामों वाली सेना के प्रहार से मृत्यु के कारण उत्कट होता है। मुख

तथा निर्वहण सन्धि से युक्त तथा (कवि की) इच्छा के अनुसार जो एक, दो अथवा तीन अङ्कों से समन्वित होता है। इसमें विष्कम्भक के साथ (रङ्गमञ्च पर पात्रों का) प्रवेश होता है। प्रायेण अमङ्गल युक्त इस (उत्सृष्टिकाङ्क) के अन्त में मङ्गल का (समायोजन) करना चाहिए। इसमें प्रयोजक (नायक) का पुनर्जीवित होने तक बध कार्य को दिखलाना चाहिए अथवा पुनजीर्वित होने से भी अधिक मनोहर फल का विधान करना चाहिए। करुणाकन्दल इत्यादि को इसका उदाहरण जानना चाहिए।।२२९-२३३।।

अथ व्यायोगः-

ख्यातेतिवृत्तसम्पन्नो निस्सहायकनायकः ।
युक्तो दशावरैः ख्यातैरुद्धतैः प्रतिनायकैः।।२३४।।
विमर्शगर्भरहितो भारत्यारभटीस्फुटः ।
हास्यशृङ्गाररहित एकाङ्को रौद्रसंश्रयः ।।२३५।।
एकवासरवृत्तान्तः प्राप्तविष्कम्भचूलिकः ।
अस्त्रीनिमित्तसमरो व्यायोगः कथितो बुधैः ।।२३६।।
विज्ञेयमस्य लक्ष्यं तु धनञ्जयजयादिकम् ।

व्यायोग- *व्यायोग प्रख्यात (इतिहास पुराण प्रसिद्ध) इतिवृत्त वाला होता है,* नायक सहायकों से रहित होता है, दश से कम प्रख्यात उद्धत प्रतिनायकों युक्त होता है। यह विमर्श और गर्भ (सन्धि) से रहित होता है, भारती और अरभटी प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है। हास्य और शृंगार (रस) से रहित तथा रौद्र (रस) से युक्त होता है, एक अङ्क वाला होता है जिसमें एक दिन का वृत्तान्त होता है तथा विष्कम्भक और चूलिका से युक्त होता है। इसमें स्त्री के लिए युद्ध नहीं होता किन्तु सङ्ग्राम होता है- ऐसे रूपक को विज्ञों व्यायोग कहा है। धनञ्जयजय इत्यादि इसके उदाहरण हैं।।२३४-२३७पू.।।

अथ भाणः-

स्वस्य वान्यस्य वा वृत्तं विटेन निपुणोक्तिना ।।२३७।।
शौर्यसौभाग्यसंस्तुत्या वीरशृङ्गारसूचकम् ।
बुद्धिकल्पितमेकाङ्कं मुखनिर्वहणान्वितम् ।।२३८
वर्ण्यते भारतीवृत्त्या यत्र तं भाणमीरते ।
एकपात्रप्रयोज्येऽस्मिन् कुर्यादाकाशभाषितम् ।।२३९।।

(५) **भाण-** भाण में विट अपने अथवा दूसरे के वृत्तान्त को निपुणता-पूर्वक कथन द्वारा (वर्णन करता है), शौर्य और सौभाग्य के वर्णन द्वारा वीर तथा शृङ्गार रस की सूचना देता है, (कथावस्तु कवि की) बुद्धि से कल्पित होती है, एक अङ्क वाला होता है, मुख और निर्वहण सन्धि से युक्त होता है, (प्रायः) भारती (कहीं कहीं कैशिकी) वृत्ति से युक्त होता

है, वह भाण कहलाता है। एक पात्र द्वारा अभिनीत इस (भाण) में आकाशभाषित का प्रयोग करना चाहिए।।२३७उ.-२३९।।

(आकाशभाषितम्)-

अन्येनानुक्तमप्यन्यो वचः श्रुत्वेव यद् वदेत् ।
इति किं भणसीत्येतद् भवेदाकाशभाषितम् ।।२४०।।

आकाशभाषित—

दूसरे के द्वारा अनुक्त (बिना कही गयी) बात को मानो सुन कर जो कहता है कि 'क्या कहते हो' यह आकाशभाषित कहलाता है'।।२४०।।

(भाणे लास्यसंयोजनम्)

लास्याङ्गानि दशैतस्मिन् संयोज्यान्यत्र तानि तु ।

भाण में लास्य का संयोजन- भाण में लास्य के दस अङ्गों का भी संयोजन करना चाहिए।।२४१पू.।।

(लास्यस्याङ्गानि)-

गेयपदं स्थितपाठ्यमासीनं पुष्पगन्धिका ।।२४१।।
प्रच्छेदकस्त्रिमूढं च सैन्धवाख्यं द्विमूढकम् ।
उत्तमोत्तमकं चान्यदुक्तप्रत्युक्तमेव च ।।२४२।।

लास्य के दस अङ्ग- लास्य के ये दस अङ्ग हैं— (१) गेयपद (२) स्थितपाठ्य (३) आसीन (४) पुष्पगन्धिका (५) प्रच्छेदक (६) त्रिमूढ़ (७) सैन्धव (८) द्विमूढक (९) उत्तमोत्तमक और (१०) उक्त-प्रत्युक्त ।।२४१-२४२।।

अथ गेयपदम्-

वीणादिवादनेनैव सहितं यत्र भाव्यते ।
ललितं नायिकागीतं तद् गेयपदमुच्यते ।।२४३।।

(१) गेयपद- वीणा इत्यादि के साथ जो नायिका के द्वारा ललित गान गाया जाता है, वह गेयपद कहलाता है।।२४३।।

(अथ स्थितपाठ्यम्)-

चञ्चत्पुटादिना वाक्याभिनयो नायिकाकृतः ।
भूमिचारीप्रचारेण स्थितपाठ्यं तदुच्यते ।।२४४।

(२) स्थितपाठ्य- भूमि पर विचरण के साथ चञ्चल पलक इत्यादि द्वारा नायिका का किया गया वाक्य का अभिनय स्थितपाठ्य कहलाता है।।२४४।।

(अथ आसीनम्)–

भ्रूनेत्रपाणिचरणविलासाभिनयादिकम् ।
योज्यमासीनया पाठ्यमासीनं तदुदाहृतम् ।।२४५।।

(३) **आसीन–** बैठी हुई नायिका द्वारा भौंह, नेत्र, हाथ, पैर के विलास द्वारा किया गया वाक्य अभिनय आसीन कहलाता है।।२४५।।

(अथ पुष्पगन्धिका)–

नानाविधेन वाद्येन नानाताललयान्वितम् ।
लास्यं प्रयुज्यते यत्र सा ज्ञेया पुष्पगन्धिका ।।२४६।।

(४) **पुष्पगन्धिका–** अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्रों के साथ अनेक ताल और लय से समन्वित जो लास्य होता है, वह पुष्पगन्धिका कहलाता है।।२४६।।

(अथ प्रच्छेदकम्)–

अन्यासङ्गमशङ्किन्या नायकस्यातिरोषया ।
प्रेमच्छेदप्रकटनं लास्यं प्रच्छेदकं विदुः ।।२४७।।

(५) **प्रच्छेदक–** (नायक के) दूसरी (नायिका) के साथ समागम की शङ्का करने वाली नायिका के द्वारा अत्यधिक रोष से प्रेम के विच्छेद (टूटने) को प्रकट किये जाने वाला लास्य प्रच्छेदक कहलाता है।।२४७।।

(अथ त्रिमूढकम्)–

अनिष्ठुरश्लक्ष्णपदं समवृत्तैरलङ्कृतम् ।
नाट्यं पुरुषभावाढ्यं त्रिमूढकमुदाहृतम् ।।२४८।।

(६) **त्रिमूढक–** पुरुष भाव से सम्पन्न और समवृतों से सुशोभित तथा कोमल श्लक्ष्ण पद वाले नाट्य को त्रिमूढक कहा जाता है।।२४८।।

(अथ सैन्धवम्)–

देशभाषाविशेषेण चलद्वलयशृङ्खलम् ।
लास्यं प्रयुज्यते यत्र तत् सैन्धवमिति स्मृतम् ।।२४९।।

(७) **सैन्धव–** स्थान और भाषा की विशेषता के साथ चञ्चल कङ्गन और करधनी वाला लास्य सैन्धव कहलाता है।।२४९।।

(द्विमूढकम्)–

चारीभिर्ललिताभिश्च चित्रार्थाभिनयान्वितम् ।
स्पष्टभावरसोपेतं लास्यं यत्तद् द्विमूढकम् ।।२५०।।

(८) **द्विमूढक**– स्वेच्छाचारिणी सेविकाओं द्वारा विचित्र अर्थ और अभिनय वाला तथा स्पष्ट भाव और रसों वाला लास्य द्विमूढक कहलाता है॥२५०॥

(अथ उत्तमोत्तमकम्)–

अपरिज्ञातपार्श्वस्थं गेयभावविभूषितम् ।
लास्यं सोत्कण्ठवाक्यं तदुत्तमोत्तमकं भवेत् ॥२५१॥

(९) **उत्तमोत्तमक**– अज्ञात सहचर वाला, गेयभाव से विभूषित और उत्त्कण्ठा युक्त वाक्य उत्तमोत्तक होता है॥२५१॥

(अथोक्तप्रत्युक्तम्)–

कोपप्रसादजनितं साधिक्षेपपदाश्रयम् ।
वाक्यं तदुक्तप्रत्युक्तं यूनोः प्रश्नोत्तरात्मक ॥२५२॥

(१०) **उक्तप्रत्युक्त**– युवकों (युवक-युवती) का क्रोध और प्रसन्नता से उत्पन्न उपालम्भ वाले पद के आश्रयभूत, प्रश्नोत्तरात्मक वाक्य उक्तप्रयुक्त कहलाता है॥२५२॥

शृङ्गारमञ्जरीमुख्यमस्योदाहरणं मतम् ।
लास्याङ्गदशकं तत्र लक्ष्यं लक्ष्यविचक्षणैः ॥२५३॥

इस (लास्य) का प्रमुख उदाहरण शृङ्गारमञ्जरी है। लक्ष्य-विचक्षणों द्वारा उसमें लास्य के दस अङ्गों को लक्षित किया गया है॥२५३॥

अथ समवकारः–

प्राख्यातेनेतिवृत्तेन नायकैरपि तद्विधैः ।
पृथक्प्रयोजनासक्तैर्मिलितैर्देवदानवैः ॥२५४॥
युक्तं द्वादशभिर्वीरप्रधानं कैशिकीमृदु ।
त्र्यङ्कं विमर्शहीनं च कपटत्रयसंयुतम् ॥२५५॥
त्रिविद्रवं त्रिशृङ्गारं विद्यात् समवकारकम् ।

६. **समवकार**– समवकार (इतिहास पुराण द्वारा) प्रख्यात कथावस्तु, उस (कथावस्तु) के अनुसार देव और दानवों से मिश्रित पृथक्पृथक् प्रयोजनों वाले बारह नायकों से युक्त होता है। कैशिकी वृत्ति की न्यूनता वाला, तीन अङ्कों वाला, विमर्श- सन्धि से रहित, तीन कपटों (के वर्णन) से युक्त, तीन विद्रवों (उपद्रव) वाला तथा तीन शृङ्गारों वाला होता है॥२५४-२५६पू.॥

(प्रसङ्गवशात् यहाँ कपटत्रय, विद्रवत्रय और शृङ्गारत्रय का भी निरूपण किया जा रहा है)—

मोहात्मको भ्रमः प्रोक्तः कपटस्त्रिविधस्त्वयम् ॥२५६॥
सत्वजः शत्रुजो दैवजनितश्चेति सत्त्वजः ।

क्रूरप्राणिसमुत्पन्नः शत्रुजस्तु रणादिजः ।।२५७।।
वात्यावर्षादिसम्भूतो दैवजः कपटः स्मृतः ।
उदाहरणमेतेषामावेगे लक्ष्यतां बुधैः ।।२५८।।

कपटत्रय– मोहात्मक भ्रम कपट कहलाता है। कपट तीन प्रकार का होता है- सत्त्वज, शत्रुज और दैवज। **सत्वज–** क्रूर प्राणि से उत्पन्न कपट सत्त्वज कहलाता है। **शत्रुज–** युद्ध इत्यादि से उत्पन्न कपट शत्रुज कपट कहलाता है और **देवजनित–** आँधी-वर्षा इत्यादि से उत्पन्न कपट दैवज कहलाता है। इनका उदाहरण आवेग के निरूपण के दिया जा चुका है, वहाँ इन्हें देख लेना चाहिए।।२५७-२५८।।

(विद्रवत्रयम्)–

जीवग्राहोऽथ मोहो वा कपटाद् विद्रवः स्मृतः ।
कपटत्रयसम्भूतेरयं च त्रिविधो मतः ।।२५९

विद्रवत्रय– कपट से जीवग्राह, मोह अथवा विद्रव होता है। उपयुक्त तीन प्रकार के कपटों से उत्पन्न होने के कारण विद्रव भी तीन प्रकार का होता है- क्रूरप्राणि समुत्पन्न विद्रव, शत्रुज विद्रव और दैवज विद्रव।।२५९।।

(शृङ्गारत्रयम्)–

धर्मार्थकामसम्बद्धस्त्रिधा शृङ्गार ईरितः ।

शृङ्गारत्रय– धर्म, अर्थ और काम से सम्बन्धित शृङ्गार तीन प्रकार का होता है- धर्मशृङ्गार, अर्थशृङ्गार और कामशृङ्गार-(२६०पू.)।

(तत्र धर्मशृङ्गारः)

व्रतादिजनितः कामो धर्मशृङ्गार ईरितः ।।२६०।।
पार्वतीशिवसम्भोगस्तदुदाहरणं मतम् ।

धर्मशृङ्गार– व्रत इत्यादि से उत्पन्न शृङ्गार धर्मशृङ्गार कहलाता है। पार्वती और शिव का सम्भोग इसका उदाहरण है।।२६०उ.-२६१पू.।।

(अथार्थशृङ्गारः)–

यत्र कामेन सम्बद्धैरर्थैरर्थानुबन्धिभिः ।।२६१।।
भुज्यमानैः सुखप्राप्तिरर्थशृङ्गार ईरितः ।
सार्वभौमफलप्राप्तिहेतुना वत्सभूपतेः ।।२६२।।
रत्नावल्या समं भोगो विज्ञेया तदुदाहृतिः ।

अर्थशृङ्गार– जहाँ काम के साथ-साथ राज्य इत्यादि अर्थ की अनुबद्धता से सम्बन्धित सम्पत्ति इत्यादि के भोग के कारण प्राप्त सुख अर्थशृङ्गार कहलाता है। जैसे

सार्वभौम (राज्य रूपी) फल प्राप्ति के लिए वत्सराज (उदयन) का रत्नावली के साथ सम्भोग उसका उदाहरण समझना चाहिए।।२६१उ.-२६३पू.।।

(अथ कामशृङ्गारः)-

दुरोदरसुरापानपरदारादिकेलिजः ।।२६३।।
तत्तदास्वादललितः कामशृङ्गार ईरितः ।
तदुदाहरणं प्रायो दृश्यं प्रहसनादिषु ।।२६४।।

कामशृङ्गार- जुवाड़ी, सुरापान और परस्त्री इत्यादि की क्रीडा से उत्पन्न तथा तत्तत् (जुआ इत्यादि) के आस्वाद से प्रिय शृङ्गार कामशृङ्गार कहलाता है। इसका उदाहरण प्रायेण प्रहसन इत्यादि में देख लेना चाहिए।।२६३उ.-२६४।।

(समवकाररचनायां विशेषाः)-

शृङ्गारत्रितयं यत्र नात्र बिन्दुप्रवेशकौ ।
मुखप्रतिमुखे सन्धी वस्तु द्वादशनाडिकम् ।।२६५।।
प्रथमे कल्पयेदङ्के नाडिका घटिकाद्वयम् ।
मुखादिसन्धित्रयवांश्चतुर्नाडिकवस्तुकः ।।२६६।।
द्वितीयाङ्कस्तृतीयस्तु द्विनाडिकथाश्रयः ।
निर्विमर्शचतुस्सन्धिरेवमङ्कास्त्रयः स्मृताः ।।२६७।।
वीथीप्रहसनाङ्गानि कुर्यादत्र समासतः ।
प्रस्तावनायाः प्रस्तावे प्रोक्तो वीथ्यङ्गविस्तरः ।।२६८।।
दशप्रहसनाङ्गानि तत्प्रसङ्गे प्रचक्ष्महे ।
उदाहरणमेतस्य पयोधिमथनादिकम् ।।२६९।।

समवकार की रचना में विशेष- समवकार में यह शृङ्गार त्रय होता है। बिन्दु (नामक अर्थप्रकृति) और प्रवेशक (नामक अर्थोक्षेपक) नहीं होता। इसके प्रथम अङ्क में मुख और प्रतिमुख दो सन्धियाँ होती है जिसकी कथावस्तु बारह नाडिका वाली होती है। एक नाडिका दो घटी (घड़ी) वाली होती है। (इस प्रकार इसकी कथावस्तु चौबीस घटी वाली होती है)। इसका दूसरा अङ्क चार नाडिका अर्थात आठ घड़ी की कथावस्तु वाला होता है तथा मुख इत्यादि तीन सन्धियाँ होती हैं। तृतीय अङ्क की कथावस्तु दो नाडिका (४ घड़ी) की होती है तथा विमर्श से रहित चारों सन्धियाँ होती हैं। इस प्रकार समवकार में कुल तीन अङ्क होते हैं। यहाँ संक्षेप में वीथी और प्रहसन के अङ्गों का योजन करना चाहिए। वीथ्यङ्गों का विवेचन प्रस्तावना के निरूपण के समय विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। प्रहसन के अङ्गों को प्रहसन के निरूपण के प्रसङ्ग में आगे किया जाएगा। पयोधिमथन इत्यादि समवकार का उदाहरण है।।२६५-२६९।।

अथ वीथी–

सूच्यप्रधानशृङ्गारा मुखनिर्वहणान्विता ।
एकयोज्या द्वियोज्या वा कैशिकीवृत्तिनिर्भरा ।।२७०।।
वीथ्यङ्गसहितैकाङ्का वीथीति कथिता बुधैः ।
अस्यां प्रायेण लास्याङ्गदशकं योजयेन्न वा ।।२७१।।
सामान्या परकीया वा नायिकात्रानुरागिणी ।
वीथ्यङ्गप्रायवस्तुत्वान्नोचिता कुलपालिका ।।२७२।।
लक्ष्यमस्यास्तु विज्ञेयं माधवीवीथिकादिकम् ।

(७) **वीथी–** वीथी शृङ्गार रस की प्रधानता वाली, मुख और निर्वहण सन्धि से समन्वित, एक या दो पात्रों द्वारा प्रयोज्य तथा कैशिकी वृत्ति पर आश्रित होती है। यह वीथी के अङ्गों (जिनका निरूपण प्रस्तावना के प्रसङ्ग में किया जा चुका है) के सहित एक अङ्क वाली होती है। इसमें प्रायः लास्य के दसों अङ्गों (जिसका विवेचन भाण के निरूपण के प्रसङ्ग में किया जा चुका है) को संयोजित करना चाहिए। यह संयोजन नहीं भी किया जा सकता है। इसमें अनुरागिणी सामान्या (वेश्या) अथवा परकीया नायिका होती है। वीथ्यङ्गों की प्रधानता होने के कारण कुलपालिका (कुलजा) नायिका नहीं हो सकती है। माधवी वीथिका इत्यादि को इसका उदाहरण समझना चाहिए।।२७०-२७३पू.।।

अथ प्रहसनम्–

वस्तुसन्ध्यङ्कलास्याङ्गवृत्तयो यत्र भाणवत् ।।२७३।।
रसो हास्यप्रधानः स्यादेतत् प्रहसनं स्मृतम् ।
विशेषेण दशाङ्गानि कल्पयेदत्र तानि तु ।।२७४।।
अवलगितमवस्कन्दो व्यवहारो विप्रलम्भमुपपत्तिः ।
भयमनृतं विभ्रान्तिर्गद्गदवाक् च प्रलापश्च ।।२७५।।

(८) **प्रहसन–** प्रहसन हास्यप्रधान रस वाला तथा भाण के समान कथावस्तु, सन्ध्यङ्क, लास्याङ्ग तथा वृत्तियों से युक्त होता है। विशेष रूप से इसमें दश अङ्गों की कल्पना करनी चाहिए। वे दश अङ्ग ये हैं— (१) अवगलित (२) अवस्कन्द (३)व्यवहार (४) विप्रलम्भ (५) उपपत्ति (६) भय (७) अनृत (८) विभ्रान्ति (९) गद्गद्वाक् और (१०) प्रलाप।।२७३उ.-२७५।।

तत्रावलगितम्–

पूर्वमात्मगृहीतस्य समाचारस्य मोहतः ।

दूषणं त्यजनं चात्र द्विधावलगितं मतम् ।।२७६।।

(१) अवगलित– पहले अपने ग्रहण किये गये व्यवहार (आचरण) का मोहवशात दूषण (निन्दा करना) और त्यजन (छोड़ देना) अवगलित कहलाता है। यह दो प्रकार का होत है- दूषण और त्यजन।।२७६।।

दूषणम्य थानन्दकोशनाम्नि प्रहसने–

मिथ्यातीर्थः–

यानि घ्नन्ति गलादधः सुकृतिनो लोम्नां च तेषा स्थितिं
यान्यूर्ध्वं परिपोषयन्ति पुरुषास्तेषां मुहुः खण्डनम् ।
कृत्वा सर्वजगद्विरुद्धविधिना सञ्चारिणां मादृशां
श्रीगीता च हरीतकी च हरतो हन्तोपभोग्यं वयः ।।640।।

अत्र केनापि यतिभ्रष्टेन स्वगृहीतस्य यत्याश्रमस्य दूषणादिदमवलगितम्।

दूषण से जैसे आनन्दकोश नामक प्रहसन में–

मिथ्यातीर्थ–

जो (कार्य) सज्जनों के अन्तःकरण में प्रकाशमान (रुचिकर) होते हैं (मेरे लिए) उनकी स्थिति रोएँ (बाल) के समान थी और सत्पुरुष जिन (बातों) को ऊपर से परिपुष्ट करते हैं उनका बार-बार खण्डन करके सम्पूर्ण संसार का विरोध करने के साथ घूमते हुए मेरे समान गीता और हरीतकी को ढोते हुए लोगों की सम्पूर्ण अवस्था (उम्र) व्यतीत कर दी गयी, यह खेद है।।640।।

यहाँ किसी भ्रष्ट यति (सन्यासी) द्वारा अपने द्वारा ग्रहण किये गये यति- आश्रम (सन्यास- आश्रम) को दूषण (निन्दा) इत्यादि करने के कारण अवगलित है।

क्षपणकः–

अयि पीणघणत्थणसोहणि! पलितत्थकुलंगविलोअणि! ।
जदि लमसि कावालिणीभावेहिं किं कलिस्सदि शापकः ।।641।।
(अयि पीनघनस्तनशोभने! परित्रस्तकुरङ्गविलोचने! ।
यदि रमसे कापालिनीभावै किं करिष्यति श्रावकः ।।

(स्वगतम्) अहो कावालिणीए दस्सणं एव्वं एक्कं सौक्खमोक्खसाहणं (प्रकाशम्) भो आआलिए! हग्गे तुज्झ संपदं दासो संवुत्तो मं पि महाहुलवाणं सासणे दिक्खेसु।

(अहो! कापालिनीदर्शनमेव एकं सौख्यमोक्षसाधनम् (प्रकाशम्) भोः कापालिक! अहं तव साम्प्रतं दासः संवृत्तः। मामपि महाभैरवानुशासने दीक्षय)। इत्यादौ क्षपणकस्य स्वमार्गपरिभ्रंशोऽवलगितम्।

त्यजन से जैसे प्रबोधचन्द्रोदय (३.१९) में–

क्षपणक–

हे स्थूल (मांसल) और घने स्तनों वाली तथा भयभीत मृगी के समान चञ्चल नेत्रों वाली (कापालिनी)! यदि तुम कापालिनी के भाव में ही विचरण करोगी तो (यह) श्रावक (भिक्षु) क्या करेगा।।641।।

(अपने मन में) अहा! यह केवल कापालिनी का दर्शन ही सौख्य (आनन्द) और मोक्ष देने का साधन है। (प्रकट रूप से) हे कापालिक! इस समय में आप का दास हो गया हूँ। मुझको भी महाभैरव के अनुशासन में दीक्षित कर लीजिए।

इत्यादि में यहाँ क्षपणक का अपने-मार्ग को छोड़ना अवगलित है।

अथावस्कन्दः–

अवस्कन्दस्त्वनेकेषामयोग्यस्यैकवस्तुनः ।
सम्बन्धाभासकथनात् स्वस्वयोग्यत्वयोजना ।।२७७।।

(२) अवस्कन्द– एक ही आयोग्य वस्तु का अनेक लोगों द्वारा सम्बन्धों के आभास के कथन के कारण अपनी-अपनी योग्यतानुसार समायोजन करना अवस्कन्द कहलाता है।।२७७।।

यथा (आनन्दकोशनाम्नि प्रहसने)–

यतिः-साक्षाद्भूतं वदति कुचयोरन्तरं द्वैतवादं
बौद्धः-दृष्ट्योर्भेदः क्षणिकमहिमा सौगते दत्तपादः ।
जैनः-बाह्वोर्मूले नयति शुचितामार्हती कापि दीक्षा
सर्वे-नार्भेर्मूलं प्रथयति फलं सर्वसिद्धान्तसारम् ।।642।।

अत्र यतिबौद्धजैनानां गणिकायां स्वसिद्धान्तधर्मसम्बन्धकथनेन स्वस्वपक्षपरिग्र-योग्यत्वयोजनादवस्कन्दः।

जैसे (आनन्दकोश नामक) प्रहसन में–

यति– (वेश्या के) दोनों स्तनों में प्रत्यक्षभूत द्वैतवाद अन्तर (भेद) होना कहते हैं।

बौद्ध– क्षणिकवाद वाले सौगत (बौद्ध) में पैर रखने वाले (दीक्षित) दोनों दृष्टियों में भेद होना कहते हैं।

जैन– कोई दीक्षित आर्हती (जैन मतावलम्बी) भुजाओं के मूल में शुचिता (पवित्रता) को स्थापित करते हैं।

सभी– नाभी के मूल में सभी सिद्धान्तों का मूलतत्त्व फल को फैलाते हैं (स्वीकारते हैं)।।642।।

यहाँ यति, बौद्ध और जैनों का वेश्या के प्रति अपने सिद्धान्तों के अनुसार गुण

सम्बन्धी कथन के द्वारा अपने-अपने पक्ष की स्थापन- योग्यता की संयोजना के कारण अवस्कन्द है।

अथ व्यवहारः-

व्यवहारः स्वसंवादो द्वित्राणां हास्यकारणम् ।

(३) व्यवहार- दो-तीन लोगों का हास्यकारक वार्तालाप व्यवहार कहलाता है।।२७८पू.।।

यथा तत्रैव (आनन्दकोशनाम्नि) प्रहसने-

बौद्धः- *(यतिं विलोक्य) कुतो मुण्डः एकदण्डी।* ***मिथ्यातीर्थ-*** *(विलोक्य दृष्टिमपकर्षन् आत्मगतम्) क्षणिकवादी न संभाषणीय एव। तथापि दण्डमन्तर्धाय निरुत्तरं करोमि। (प्रकाशम्) अये शून्यवादिन्! अदण्डो मुण्डोऽहमागलादस्मि।*

जैनः- *(आत्मगतम्) नूनमसौ मायावादी। भवतु, अहमपि किमप्यन्तर्धाय प्रस्तुतं पृच्छामि। (प्रकाशम्) अये महापरिणामवादिन् बृहद्बीज लोम्नां समानजातीयत्वेऽपि केषाञ्चित् सङ्कर्तनम् अन्येषां संरक्षणमिति व्यवस्थितेः किं कारणम् ।* ***मिथ्यातीर्थः-*** *जीवदमेध्यमङ्गधारको नरपिशाचोऽयम् अन्तर्धायापि न संभाषणीयः।* ***निष्कच्छकीर्तिः-*** *(सादरम्) सखे! आर्हतमुने! वादे त्वयायमप्रतिपत्तिं नाम निग्रहस्थानमारोपितो मायावादी।* ***मिथ्यातीर्थः-*** *(आत्मगतम्) नूनमिमावपि मादृशावेव लिङ्गधारणमात्रेण कुक्षिम्भरी स्याताम्। (इति पिप्पलमूलवेदिकायां (निषीदति।)*

इत्यत्र यतिबौद्धजैनानां संवादो व्यवहारः ।

जैसे (आनन्दकोश नामक) प्रहसन में-

बौद्ध- (यति को देखकर) यह मुण्डित शिर वाला एकदण्डी (एक दण्ड धारण करने वाला अथवा भिक्षुओं का समुदाय) कहाँ से (आ गया)। **मिथ्यातीर्थ-** (देखकर आँख चुराता हुआ अपने मन में) इस क्षणिकवादी (बौद्ध) से बात नहीं ही करना चाहिए तथापि दण्ड को छिपाकर (इसे) निरुत्तर कर देता हूँ। (प्रकट रूप से) अरे! शून्यवादी! मैं आकण्ठ से दण्डरहित तथा मुण्डित शिर वाला हूँ।

जैन- (अपने मन में) निश्चित ही यह मायावादी (वेदान्त वाला है) अच्छा मैं भी कुछ अन्तर्हित करके (भीतर रख कर) प्रस्तुत के विषय में पूछता हूँ (प्रकट रूप से) अरे महापरिणामवादी बृहबीज! समान जाति वाले कुछ बालों को कटवाने तथा कुछ (बालों) की सुरक्षा- इस व्यवस्था का क्या कारण (प्रमाण) है। **मिथ्यातीर्थ—** जीवन से अमेध्य अङ्ग को धारण करने वाले इस नर-विशाच से अन्तर्हित करके भी बात नहीं करनी चाहिए। **निष्कच्छकीर्ति-** (आदरपूर्वक) हे मित्र! अर्हत मुनि! तुम्हारे द्वारा वाद में यह मायावादी (यति) प्रत्यक्षज्ञान में पछाड़ (पराजित कर) दिया गया। **मिथ्यातीर्थ-** (अपने मन में) निश्चित ही ये दोनों भी मेरे

समान वेष-धारण करके पेट भरने वाले हैं। (पीपल की जड़ के चबूतरे पर बैठता है)।

यहाँ यति, बौद्ध और जैन का (परस्पर) वार्तालाप व्यवहार है।

अथ विप्रलम्भः-

विप्रलम्भो वञ्चना स्याद् भूतावेशादिकैतवात् ।।२७८।।

(४) विप्रलम्भ- भूत के आवेश इत्यादि के द्वारा छल से ठगना विप्रलम्भ कहलाता है।।२७८उ.।।

यथा (तत्रैव आनन्दकोशनाम्नि) प्रहसने-

प्रियाहं सर्वभूतानां नाम्ना स्वच्छन्दभक्षिणी ।
गृह्णाम्येनां यदि त्रातुं कृपा वः श्रूयतामिदम् ।।643।।
सुराघटानां सप्तत्या विंशत्या दृप्तगड्डरैः ।
छागैश्च दशभिः कार्या चिरण्टीतर्पणक्रिया ।।644।।
अद्य कर्तुमशक्यं चेत् तत्पर्याप्ततमं धनम् ।
आस्थाप्यमस्याः यक्षिण्या जरठायाः पटाञ्चले ।।645।।

जैसे वहीं (आनन्दकोश) प्रहसन में-

स्वच्छन्दभक्षिणी नाम से मैं सभी प्राणियों की प्रिया हूँ। मैं इसको पकड़ रही हूँ। यदि तुम लोग (इसे) बचाने की कृपा करना चाहते हो तो यह सुनो।।643।।

बीस मदोन्मत्त भेड़ों के साथ सत्तर शराब के घड़ों से और दस बकरों द्वारा चिरण्टी (तरुणी होने पर भी पिता के घर रहने वाली स्त्री) का तर्पण कार्य करना चाहिए।।644।।

यदि आज करने में असमर्थ हो तो अधिकाधिक धन इस पुरानी (या कठोर) यक्षिणी के वस्त्र के अञ्चल में रख देना चाहिए।।645।।

(इति पुनरपि व्यात्तवदनं नृत्यति।) निष्कच्छकीर्तिः-व्रतिनौ! किमुत विधेयम्। मिथ्यातीर्थः- प्रत्याम्नायपक्ष एव युज्यते। अरूपाम्बरः- (आत्मगतम्) किं करोमि न किमपि हस्ते पणादिकम्। (प्रकाशम्) भोः! जीवहिंसाकृते प्रत्याम्नायकरणमपि न मे सम्मतम्। मिथ्यातीर्थः- भोः अहिंसावदिन्! म्रियमाणः प्राणी न रक्षणीय इति किं युष्मद्धर्मः। अरूपाम्बरः- (साक्षेपम्) एकेन सुखमुपादेयम् अन्येन धनं प्रदेयमिति युष्मद्धर्मः। (निष्कच्छकीर्तिः सान्तर्हासं स्वधनं यतिधनं च जरठायाः पटाञ्चले बद्ध्वा सबलात्कारं जैनस्य कटकं तस्याः पादमूलेऽर्पयति)। मधुमल्लिका- (साङ्गभङ्गप्रकृतिमुपगम्य सस्मरणभयमिव) अम्मो देवदा विलंबेण कुप्पिस्सदि। ता चिरंटिआतप्पणं कादुं गच्छेमि। (अम्हो देवता विलम्बेन कोपयिष्यति। तत् चिरण्डिकातर्पणं कर्तुः गच्छामि) (इति कटकमादाय निष्क्रान्ता।)

इत्यादौ भूतावेशकैतवेन जैनबौद्धसन्यासिनो विलोभ्य धनं कयापि गणिकया

गृहीतमित्ययं विप्रलम्भः।

(फिर विवृत मुख होकर नाँचती है) **निष्कच्छकीर्त्ति-** हे दोनों व्रतधारियों! क्या करना चाहए? **मिथ्यातीर्थः-** वेद (प्रतिपादित यज्ञ में हिंसा) का पक्ष (आश्रय) लेना ही (उचित) है। **अरूपाम्बर-** (अपने मन में) क्या करूँ? हाथ में पैसे इत्यादि भी नहीं है। (प्रकट रूप से) जीवहिंसा के लिए वेद का सहारा लेना मेरे मत से ठीक नहीं है। **मिथ्यातीर्थ-** हे अहिंसा का पक्ष लेने वाले! मरते हुए जीव की रक्षा नहीं करनी चाहिए।

क्या यह तुम्हारा धर्म है? **अरूपाम्बर-** (आक्षेप के साथ) एक हाथ से सुख लो और दूसरे से धन दो यही तुम्हारा धर्म है। (निष्कच्छकीर्ति छिपाये हुए अपने धन को तथा सन्यासी के धन को उस पुरानी (अथवा कठोर यक्षिणी) के वस्त्रों के आँचल में बाँध कर बलपूर्वक जैन के कुण्डल को उसके पादों में दे देता है) **मधुमल्लिका-** अङ्ग-भङ्ग को सामान्य करके तथा मानो भय का स्मरण करती हुई) अरी माँ! बिलम्ब करने से देवता कुपित हो जाएँगे। तो चिरण्डिका का तर्पण करने के लिए जा रही हूँ। (इस प्रकार कुण्डल लेकर निकल जाती है)।

इत्यादि में भूतावेश के छल से जैन, बौद्ध और सन्यासी को विलोभित करके किसी गणिका के द्वारा धन ले लिया गया अत: यह विप्रलम्भ है।

अथोपपत्तिः-

उपपत्तिस्तु सा प्रोक्ता यत् प्रसिद्धस्य वस्तुनः ।
लोकप्रसिद्धया युक्तया साधनं हास्यहेतुना ।।२७९।।

(५) उपपत्तिः- हास्य के निमित्त अत्यधिक प्रसिद्ध कथावस्तु को (अपनी) युक्ति से सिद्ध कर देना उपपत्ति कहलाता है।।२७९।।

यथा तत्रैव (आनन्दकोशनाम्नि) प्रहसने-

मिथ्यातीर्थः- (पुरोऽवलोक्य) अये उपसरित्तीरं पिप्पलनामा वनस्पतिः, यश्च गीतासु भगवता निजविभूतितया निर्दिष्टः। (विचिन्त्य) कथमस्य तरोरियमतिमहिमासम्भावना। (विमृश्य) उपपद्यत एव,

तत्पदं तनुमध्याया येनाश्वत्थदलोपमम् ।
तदश्वत्थोऽस्मि वृक्षाणामित्यूचे भगवान् हरिः ।।646।।

जैसे वहीं (आनन्दकोश) प्रहसन में-

मिथ्यातीर्थ- (सामने देख कर) यह सरिता के तट पर पीपल नाम की वनस्पति है जो गीता में भगवान् की विभूति के रूप में निर्दिष्ट है। (सोचकर) इस वृक्ष की इस अत्यधिक महत्व की सम्भावना कैसे हुई? (याद करके)—

जिस (चञ्चलता के) कारण पतले कमर वाली (रमणी) के पैर की पीपल के नीवन पत्र से उपमा दी जाती है उसी (चञ्चलता के कारण) से 'मैं वृक्षों में पीपल हूँ' भगवान् कृष्ण ने

ऐसा कहा है।।646।।

अत्र लोकप्रसिद्धेनाश्वत्थदलपदमूलयोः साम्येन हेतुना लोकप्रसिद्धस्यैव भगवद-श्वत्थयोरैक्यस्य साधनं हास्यकरणमुपपत्तिः।

यहाँ लोक प्रसिद्ध पीपल के दल और पद की समानता के कारण से लोकप्रसिद्ध ही भगवान् और पीपल की एकता को सिद्ध कर देना हास्यकारी उपपत्ति है।

अथ भयम्-

स्मृतं भयं तु नगरशोधकादिकृतो दरः ।

(६) भय- नगर-रक्षियों इत्यादि से किया गया त्रास भय कहलाता है।।२८०पू.।।

यथा तत्रैव (आनन्दकोश नाम्नि) प्रहसने-

जैनः- अराजकोऽयं विषयः, यन्नगरपरिसराश्रिततपस्विनां धनं चोर्यते। (इत्युद्बाहुराक्रोशति)। नगररक्षकाः- अये किमपहृतं धनम्। कियत्? (इति नगररक्षकास्तं परितः प्रविश्य परिसर्पन्ति।) अरूपाम्बरः- धिक् कष्टम् नगरशोधकाः समायान्ति। (इत्यूर्ध्वबाहुरोष्ठस्पन्दनं करोति।) (मिथ्यातीर्थो गणिकामाक्षिप्य समाधिं नाटयति।) (निष्कच्छकीर्तिरेकपादेनावर्तिष्ठमानः कराङ्गुलीर्गणयति।)

इत्यादौ जैनादीनां भयकथनाद् भयम्।

जैसे वहीं (आनन्दकोश नामक) प्रहसन में-

जैन- ओह! यह अराजकता का विषय है कि नगर की सीमा में रहने वाले तपस्वियों का धन चुरा लिया जाता है। (इस प्रकार हाथों को उठाकर आक्रोश करता है) **नगररक्षक-** क्या धन छीन लिया गया? कितना? (इस प्रकार नगररक्षक उसको चारो ओर से घेर कर आगे बढ़ते हैं)। **अरूपाम्बर-** अरे! कष्ट है। (ये तो) नगररक्षक आ रहे हैं। (भुजाओं को उठा कर होंठ को कँपाता है *मिथ्यातीर्थ वेश्या का आक्षेप करके समाधि लगाने का अभिनय करता है। निष्कच्छकीर्ति* एक पैर पर खड़ा होकर हाथ की अङ्गुलि पर गिनता है)।

इत्यादि में यहाँ जैन इत्यादि लोगों के भय का कथन होने से भय है।

अथानृतम्-

अनृतं तु भवेद् वाक्यमसत्यस्तुतिगुम्फितम् ।।२८०।।
तदेवानृतमित्याहुरपरे स्वमतस्तुतेः ।

(७) अनृत- असत्य स्तुति से गुम्फित वाक्य अनृत कहलाता है। अन्य (कतिपय) आचार्य अपने मत की प्रशंसा करने को स्तुति कहते हैं।।२८०उ.-२८१पू.।।

तथा तत्रैव (आनन्दकोशनाम्नि) प्रहसने-

बालातपेन परिमृष्टमिवारविन्दं

माञ्जिष्ठचेलमिव मान्मथमातपत्रम् ।
सालक्तलेखमिव सौख्यकरण्डमद्य
यूनां मुदे तरुणि! तत्पदमार्तवं ते ।।647।।

अत्र आर्तवारुणस्योरुमूलस्य वर्णनादिदमनृतम् ।

जैसे वहीं (आनन्दकोश नामक) प्रहसन में-

'हे तरुणि! सूर्य की धूप से स्पर्श किये गये कमल के समान, माञ्जिष्ठ वस्त्र वाले कामदेव के छाते (छतरी) के समान और अलक्तक की रेखा वाली प्रसन्नता की टोकरी के समान तुम्हारा पद रूपी पुष्प आज युवकों की प्रसन्नता के लिए कारण है।।647।।

यहाँ पदमूल पुष्प की अरुणिमा का असत्य वर्णन होने के कारण यह अनृत है।

अपरं तु यथा कर्पूरमञ्जर्याम्(१/२३)-

भैरवानन्दः-

रण्डा चण्डा दिक्खिआ धम्मदारा
मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ ।
हिक्खा भोज्जं चम्मखण्डं च सेज्जा
कोलो धम्मो कस्स णो होइ रम्मो ।।648।।
(रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा
मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च।
भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डं च शय्या
कौलो धर्मः कस्य नो भवति रम्यः।।)

दूसरे मत के अनुसार जैसे कर्पूरमञ्जरी (१.२३)में-

भैरवानन्द-

रण्डा (विधवा), चण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियाँ हमारी धर्मपत्नियाँ हैं, भिक्षा का अन्न हमारा भोजन है, चर्मखण्ड हमारी शय्या है, मद्य पीते हैं और मांस खाते हैं। हमारा यह कुलक्रम से आया हुआ धर्म किसको अच्छा नहीं लगता है, अर्थात् सबको अच्छा लगता है।।648।।

अथ विभ्रान्तिः-

वस्तुसाम्यकृतो मोहो विभ्रान्तिरिति गीयते ।।२८१।।

(८) विभ्रान्ति- वस्तु की समानता के कारण उत्पन्न भूल विभ्रान्ति कहलाता है।।२८१उ.।।

यथा तत्रैव (आनन्दकोशनाम्नि) प्रहसने-

बौद्धः- (पुरोऽवलोक्य)

हेमकुम्भवती रम्यतोरणा चारुदर्पणा ।

कापि गन्धर्वनगरी दृश्यते भूमिचारिणी ।।649।।

जैनः– अयि क्षणभङ्गवादिन्! एतदुत्पातफलं प्रथमदर्शिनो भवत एव परिणमेत्। (इति लोचने निमीलयति।) बौद्धः– (पुनर्निर्वर्ण्य) हन्त किमपदे भ्रान्तोऽस्मि।

न पुरीयं विशालाक्षी न तोरणमिमे भ्रुवौ ।
न दर्पणमिमौ गण्डौ न च कुम्भाविमौ स्तनौ ।।650।।

इत्यत्र बौद्धस्य मोहो विभ्रान्ति ।

जैसे वहीं (आनन्दकोशनामक) प्रहसन में–

बौद्ध– (सामने देखकर)—

सुवर्ण के कुम्भ से युक्त, रमणीय तोरण वाली और सुन्दर दर्पण वाली यह कोई गन्धर्वों की नगरी (उल्का) भूमि पर विचरण करती हुई दिखलायी पड़ रही है है।।649।।

जैन– अरे! क्षणभङ्गवादिन्! इस उत्पात फल (उल्कापात) को पहली बार देखने वाले आप को ही परिणाम मिले। (आँखे मलकाता है)-

बौद्ध– (फिर देख कर) क्या मैं अस्थान (अकारण) ही भ्रमित हो गया हूँ?

यह (गन्धर्वों की) पुरी नहीं है, यह तो विशाल नेत्रों वाली (रमणी) है, ये तोरण नहीं है, ये तो (रमणी) की दोनों भौंहें हैं। ये दोनों दर्पण नहीं है ये दोनों तो (रमणी) के गाल हैं। ये कुम्भ नहीं है ये दोनों तो रमणी के स्तन हैं।।650।।

यहाँ बौद्ध का मोह विभ्रान्ति है।

अथ गद्गदवाक्–

असत्यरुदितोन्मिश्रं वाक्यं गद्गदवाग् भवेत् ।

(९) गद्गदवाक्– असत्य और रोदन से मिश्रित वाक्य गद्गद वाक्य कहलाता है।।२८२पू.।।

यथा तत्रैव (आनन्दकोशनाम्नि) प्रहसने–

(भगिन्यौ परस्परमाश्लिष्य रुदित इव)

गुह्यग्राही– (आत्मगतम्)

अनुपात्तबाष्पकणिकं गद्गदनिःश्वासकलितमव्यक्तम् ।
अनयोरसत्यरुदितं सुरतान्तदशां व्यनक्तीव ।।651।।

जैसे (आनन्दकोश नामक) प्रहसन में–

(दो बहने परस्पर चिपक कर मानों रो रहीं हैं) **गुह्यग्राही–** (अपने मन में)—

गिरते हुए आँसुओं की बूँदों से युक्त, गद्गद तथा निःश्वास के कारण रुकी हुई और अस्पष्ट इन दोनों की रुलाई इनकी सुरतान्त (सम्भोग के अन्त) की अवस्था को मानों प्रकट

कर रही है॥६५१॥

अत्र गद्गदवाक्यं स्पष्टमेव ।

यहाँ गद्गद वाक्य स्पष्ट है।

अथ प्रलापः-

प्रलापः स्यादयोग्यस्य योग्यत्वेनानुमोदनम् ॥२८२॥

(१०) **प्रलाप-** अयोग्य (कथन) का योग्य (कथन) के द्वारा अनुमोदन करना प्रलाप कहलाता है॥२८२उ.॥

यथा तत्रैव' (आनन्दकोशनाम्नि प्रहसने)-

राजा- (सौदार्योद्रेकम्) अये बिडालाक्ष अस्मदीये नगरे विषये च-

पतिहीना च या नारी जायाहीनश्च यः पुमान् ।
तौ दम्पती यथाकामं भवेतामिति घुष्यताम् ॥652॥

बिडालाक्षः-देवः प्रमाणम्। (इति सानुचरो निष्क्रान्तः)।

गुह्यग्राही- (सश्लाघागौरवम्)

नष्टाश्वभग्नशटकन्यायेन प्रतिपादितम् ।
उचिता ते महाराज! सेयं कारुण्यघोषणा ॥653॥

अपि च,

मन्वादयो महीपालाः शतयो गामपालयन् ।
न केनापि कृतो मार्ग एवमाश्चर्यसौख्यदः ॥654॥

जैसे वहीं (आनन्दकोश नामक) प्रहसन में-

राजा- (उदारता के अतिशय के साथ)- हे विडालाक्ष! हमारे नगर में (इस) विषय में-

जो पति से रहित नारी है और जो पुरुष पत्नी से विहीन है, वे दोनों इच्छानुसार दम्पती (पति और पत्नी) हो जाए- ऐसी घोषणा कर दी जाय॥652॥

विडालाक्ष- (इस विषय में) देव (आप) प्रमाण हैं। (अनुचर के साथ निकल जाता है।)

गुह्यग्राही- (प्रशंसा और गौरव के साथ) —

विनष्ट हुए अश्व और टूटी हुई गाड़ी के न्याय का आप ने प्रतिपादन कर दिया है। हे महाराज! आप की करुणता-पूर्वक घोषणा उचित है॥653॥

और भी-

मनु इत्यादि सैकड़ों राजाओं ने पृथ्वी का पालन किया किन्तु किसी ने भी इस प्रकार के आश्चर्यजनक और आनन्ददायक मार्ग को नहीं बनाया॥654॥

अत्रायोग्यस्यापि राजादेशस्य धर्माधिकारिणा गुह्यग्राहिणा न्यायपरिकल्पनया योग्यत्वेनानुमोदनादयं प्रलापः।

यहाँ राजा की अयोग्य आज्ञा का भी धर्माधिकारी गुणग्राही द्वारा न्याय की परिकल्पना से योग्यता के साथ अनुमोदन करने से यह प्रलाप है।

(प्रहसनस्य भेदः)–

शुद्धं कीर्णं वैकृतं च तच्च प्रहसनं त्रिधा ।

प्रहसन के भेद– वह प्रहसन तीन प्रकार का होता है— (१) शुद्ध (२) कीर्ण और (३) वैकृत।(२८३पू.)

(तत्र शुद्धम्)–

शुद्धं श्रोत्रियशाखादेर्वेषभाषादिसंयुतम् ।।२८३।।
चेटीचेटजनव्याप्तं तल्लक्ष्यं निरूप्यताम् ।
आनन्दकोशप्रमुखं तथा भगवदज्जुकम् ।।२८४।।

(१) शुद्ध प्रहसन– पाखण्डी श्रोत्रिय इत्यादि के वेश, भाषा इत्यादि में संयुक्त, चेटी चेट लोगों से व्याप्त प्रहसन शुद्ध प्रहसन होता है। आनन्दकोश, भगवदज्जुक इत्यादि इसके उदाहरण है।।२८३उ.-२८४।।

(अथ कीर्णम्)–

कीर्णं तु सर्ववीथ्यङ्गैः सङ्कीर्णं धूर्तसङ्कुलम् ।
तस्योदाहणं ज्ञेयं बृहत्सौभद्रकादिकम् ।।२८५।।

(२) कीर्ण– सभी वीथ्यङ्गों से सम्पन्न तथा धूर्तों से व्याप्त प्रहसन कीर्ण या सङ्कीर्ण प्रहसन कहलाता है। इसका उदाहरण बृहत्सौभद्रक इत्यादि हैं।।२८५।।

(अथ वैकृतम्)–

यच्चेदं कामुकादीनां वेषभाषादिसङ्गतैः ।
षण्डतापसवृद्धाद्यैर्युतं तद् वैकृतं भवेत् ।।२८६ ।।
कलिकेलिप्रहसनप्रमुखं तदुदाहृतम् ।

(३) वैकृत– जो कामुक इत्यादि लोगों की वेष और भाषा से समन्वित और हिजड़ा, तपस्वी तथा वृद्ध इत्यादि लोगों से युक्त होता है, वह वैकृत प्रहसन होता है। कलिकेलि प्रहसन आदि उदाहरण हैं।।२८६-२८७पू.।।

अथ डिमः–

ख्यातेतिवृत्तं निर्हास्यश्रृङ्गारं रौद्रमुद्रितम् ।।२८७।।

कैशिकीवृत्तिविरलं भारत्यारभटीस्फुटम् ।
नायकैरुद्धतैर्देवयक्षराक्षसपन्नगैः ।।२८८।।
गन्धर्वभूतवेतालसिद्धविद्याधरादिभिः ।
समन्वितं षोडशभिर्न्यायमार्गणनायकम् ।।२८९।।
चतुर्भिरङ्कैरन्वीतं निर्विमर्शकसन्धिभिः ।
निर्घातोल्कोपरागादिघोरक्रूराजिसम्भ्रमम् ।।२९०।।
सप्रवेशकविष्कम्भचूलिकं हि डिमं विदुः ।
अस्योदाहरणं ज्ञेयं वीरभद्रविजृम्भणम् ।।२९१।।

(९) **डिम**– जो (इतिहास) प्रसिद्ध कथावस्तु वाला, शृङ्गार और हास्य रस से रहित, दीप्त रौद्र (रस) से युक्त, कैशिकी वृत्ति से रहित तथा भारती और आरभटी वृत्ति से युक्त, देव, यक्ष, राक्षस, पन्नग (वासुकी इत्यादि) उद्धत नायक से युक्त, गन्धर्व, भूत, वैताल, सिद्ध, विद्याधर आदि सोलह न्याय मार्ग वाले नायकों से समन्वित होता है। चार अङ्कों से युक्त, विमर्श सन्धि से रहित होता है। विनाश, उल्का, सूर्यग्रहण या (चन्द्रग्रहण इत्यादि) क्रूरता, संक्षोम, युद्ध, आतङ्क से युक्त होता है तथा प्रवेशक, विष्कम्भक और चूलिका से सम्पन्न होता है ऐसे रूपक को डिम समझना चाहिए वीरभद्रविजृम्भण को इसका उदाहरण जानना चाहिए।।२८७उ.-२९१।।

अथेहामृगः–

यत्रेतिवृत्तं मिश्रं स्यात् सविष्कम्भप्रवेशकम् ।
चत्वारोऽङ्का निर्विमर्शगर्भाः स्युः सन्धयस्त्रयः ।।२९२।।
धीरोद्धतश्च प्रख्यातो दिव्यो मर्त्योऽथ नायकः ।
दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीं कन्यां वा हर्तुमुद्यतः ।।२९३।।
स्त्रीनिमित्ताजिसंरम्भः पञ्चषाः प्रतिनायकाः ।
रसा निर्भयबीभत्सा वृत्तयः कैशकीं विना ।।२९४।।
स्वल्पस्तस्याः प्रवेशो वा सोऽयमीहामृगो मतः ।
व्याजान्निवारयेदत्र सङ्ग्रामं भीषणक्रमम् ।।२९५।।
तस्योदाहरणं ज्ञेयं प्राज्ञैर्मायाकुरङ्गिका ।

(१०) **ईहामृग**– ईहामृग की कथावस्तु (प्रख्यात और कवि-कल्पना से) मिश्रित होती है। इसमें चार अङ्क तथा विमर्श और गर्भ सन्धि से अन्य (मुख, प्रतिमुख और निर्वहण) तीन सन्धियाँ होती हैं। इसमें धीरोद्धत प्रख्यात देवता अथवा मनुष्य नायक होता है इसमें दिव्य स्त्री या (प्रेम को) न चाहती हुई भी कन्या के अपहरण के लिए प्रतिनायक उद्यत रहता है। स्त्री के लिए युद्ध होता है, पाँच-छः प्रतिनायक होते हैं। वीभत्स से रहित अन्य रस

तथा कैशिकी से अन्य वृत्तियाँ होती हैं। इसमें किसी बहाने से भीषण युद्ध का निवारण कर देना चाहिए। मायाकुरङ्गिका को इस (ईहामृग) का उदाहरण समझना चाहिए।।२९२-२९६पू.।।

इत्थं श्रीशिङ्गभूपेन सर्वलक्षणशालिना ।।२९६।।
सर्वलक्षणसम्पूर्णं लक्षितो रूपकक्रमः ।

इस प्रकार सभी लक्षणों के ज्ञाता शिङ्गभूपाल ने रूपकों के क्रम को सभी लक्षणों से लक्षित किया है।।२९६उ.-२९७पू.।।

नाटकपरिभाषा-

अथ रूपकनिर्माणपरिज्ञानोपयोगिनी ।।२९७।।
श्रीशिङ्गधरणीशेन परिभाषा निरूप्यते ।
परिभाषात्र मर्यादा पूर्वाचार्योपकल्पिता ।।२९८।।
सा हि नौरतिगम्भीरं विविक्षोर्नाट्यसागरम् ।

नाटक विषयक परिभाषा- अब शिङ्गभूपाल रूपकों के लिए निर्माण के उपयोगी परिभाषा का निरूपण कर रहे हैं। आचार्यों द्वारा उपकल्पित मर्यादा परिभाषा कहलाती है। वह (परिभाषा) अत्यधिक गम्भीर नाट्यसागर को निरूपित करने की नौका है।।२९७उ.-२९९पू.।।

(परिभाषाभेदाः)

एषा च भाषानिर्देशनामभिस्त्रिविधा मता ।।२९९।।

परिभाषा के प्रकार- (१) भाषा (२) निर्देश और (३) नाम के भेद से यह (परिभाषा) तीन प्रकार में कही गयी है।।२९९उ.।।

(तत्रभाषाभेदौ-)

तत्र भाषा द्विधा भाषा विभाषा चेति भेदतः ।

(१) भाषा के भेद- (अ) भाषा और (आ) विभाषा भेद से भाषा दो प्रकार की होती है।।३००पू.।।

(तत्र विभाषाभेदाः)-

चतुर्दशविभाषाः स्युः प्राच्याद्या वाक्यवृत्तयः ।।३००।।
आसां संस्काररहित्याद् विनियोगो न कथ्यते ।
उत्तरादिषु तद्देशव्यवहारात् प्रतीयताम् ।।३०१।।

(१) विभाषा- चौदह विभाषाएँ होती हैं। व्याकरण से रहित होने के कारण इनका विनियोग नहीं कहा जा रहा है। उत्तर इत्यादि में उस स्थान पर व्यवहरित होने के कारण समझ लेना चाहिए।।३००उ.-३०१।।

(भाषा-भेदौ)

भाषा द्विधा संस्कृता च प्राकृती चेति भेदतः ।

(२) भाषा– संस्कृत और प्राकृतिक भेद से भाषा दो प्रकार की होती है॥३०२पू.॥

(तत्र संस्कृतभाषा)

कौमारपाणिनीयादिसंस्कृता संस्कृता मता ।।३०२।।
इयं तु देवतादीनां मुनीनां नायकस्य च ।
विप्रक्षत्रवणिक्शूद्रमन्त्रिकञ्चुकिनामपि ।।३०३।।
लिङ्गिनां च विटादीनां योगिनीनां प्रयुज्यते ।

संस्कृत भाषा– कुमार, पाणिनि (इत्यादि वैयाकरणों) के द्वारा शुद्ध की हुई भाषा संस्कृत भाषा कहलाती है। यह देवता और मुनि नायकों की तथा विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मन्त्री और कञ्चुकी, लिङ्गिनी, विट और योगिनियों की प्रयोज्य भाषा होती है॥३०२उ.-३०४पू.॥

अथ प्राकृती (भाषा)–

प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता ।।३०४।।
षड्विधा सा प्राकृतं च शौरसेनी च मागधी ।
पैशाची चूलिका पैशाच्यपभ्रंश इति क्रमात् ।।३०५।।

प्राकृतिक भाषा– मूल संस्कृत की विकृत (भाषा) प्राकृती भाषा कहलाती है। वह क्रमशः छः प्रकार की होती है- प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची और अपभ्रंश॥३०४उ.-३०५पू.॥

(प्राकृतम्)–

अत्र तु प्राकृतं स्त्रीणां सर्वासां नियतं भवेत् ।
क्वचिच्च देवी गणिका मन्त्रिजा चेतियोषिताम् ।।३०६।।
योगिन्यप्सरसोः शिल्पकारिण्या अपि संस्कृतम्।
ये नीचाः कर्मणा जात्या तेषां प्राकृतमुच्यते ।।३०७।।
छद्मलिङ्गवतां तद्वज्जैनानामिति केचन ।

(१) प्राकृत– प्राकृत सभी स्त्रियों की नियत भाषा है। कहीं-कहीं महारानी, वेश्या, मन्त्री की पुत्री, स्त्रियाँ, योगिनी, अप्सराएँ शिल्पकारिणी की भी भाषा संस्कृत होती है॥३०६-३०७पू.॥

जो कर्म अथवा जाति से नीच होते हैं उनकी भाषा प्राकृत कही गयी है। कुछ

लोग कपट चिह्न वाले जैनों की भाषा भी प्राकृत ही मानते हैं।।३०७उ.-३०८पू.।।

(शौरसेनी)-

अधमे मध्यमे चापि शौरसेनी प्रयुज्यते ।।३०८।।

(२) **शौरसेनी-** अधम और मध्यम (श्रेणी के लोगों) में शौरसेनी भाषा ही प्रयोग में लायी जाती है।।३०८उ.।।

(मागधी)-

धीवराद्यतिनीचेषु मागधी च नियुज्यते ।

(३) **मागधी—** धीवर इत्यादि अत्यधिक नीच पात्रों में मागधी भाषा नियोजित की जाती है।।३०९पू.।।

(पैशाचीचूलिकापैशाच्यौ)-

रक्षःपिशाचनीचेषु पैशाचीद्वितयं भवेत् ।।३०९।।

(४-५) **पैशाची और चूलिका पैशाची-** राक्षस, पिशाच और नीचों में पैशाची और चूलिका पैशाची का प्रयोग होता है।।३०९पू.।।

अपभ्रंशस्तु चण्डालयवनादिषु युज्यते ।

(६) **अपभ्रंश-** चाण्डाल, यवन इत्यादि में अपभ्रंश का प्रयोग होता है।।३१०पू.।।

(भाषाव्यतिक्रमः)-

नाटकादावपभ्रंश- विन्यासस्यासहिष्णवः ।।३१०।।
अन्ये चण्डालकादीनां मागध्यादीन् प्रयुज्जते ।
सर्वेषां कारणवशात् कार्यो भाषाव्यतिक्रमः ।।३११।।
महात्म्यस्य परिभ्रंशो मदस्यातिशयस्तथा ।
प्रच्छादनं च विभ्रान्तिर्यथालिखितवाचनम् ।।३१२।।
कदाचिदनुवादं च कारणानि प्रचक्षते ।

भाषा का व्यक्तिक्रम- नाटक इत्यादि में अपभ्रंश के विन्यास को न मानने वाले कुछ अन्य आचार्य के मत में मागधी इत्यादि भाषाओं का प्रयोग करना चाहिए। कारण-विशेष से सभी पात्रों की भाषा में व्यतिक्रम कर देना चाहिए। महत्ता (गौरव) का परिभ्रंश, मद की अधिकता, प्रच्छादन (छिपाना), विभ्रान्ति (जल्दीबाजी), यथा लिखित का वाचन, कभी-कभी अनुवाद- ये (भाषा व्यतिक्रम के) कारण कहे गये हैं।।३१०उ.-३१३पू.।।

अथ निर्देशपरिभाषा-

साक्षादनामग्राह्याणां जनानां प्रतिसंज्ञया ।।३१३।।
आह्वानभङ्गी नाट्यज्ञैर्निर्देश इति गीयते ।

निर्देश परिभाषा- प्रत्यक्ष रूप से नाम न लेने योग्य लोगों की प्रतिसंज्ञा (उनके नाम के स्थान पर अन्य नाम का प्रयोग) के द्वारा आह्वान-भङ्गिमा को नाट्यज्ञों ने निर्देश कहा है।।३१३-३१४पू.।।

(निर्देशभेदाः)-

स त्रिधा पूज्यसदृशकनिष्ठविषयत्वतः ।।३१४।।

निर्देश के भेद- निर्द्देश तीन प्रकार का होता है- (१) पूज्य, (२) सदृश (समान) और (३) कनिष्ठ।

(तत्र पूज्यनिर्देशः)-

पूज्यास्तु देवा मुनयो लिङ्गिनस्तत्समाः स्त्रियः ।
बहुश्रुताश्च भगवच्छब्दवाच्या भवन्ति हि ।।३१५।।
आर्येति ब्राह्मणो वाच्यो वृद्धस्तातेति भाष्यते ।
उपाध्यायेति चाचार्यो गणिका त्वज्जुकाख्यया ।।३१६।।
महाराजेति भूपालो विद्वान् भाव इतीर्यते ।
देवेति नृपतिर्वाच्यो भृत्यैः प्रकृतिभिस्तथा ।
सार्वभौमः परिजनैर्भट्टारकेति च ।।३१८।।
वाच्यो राजेति मुनिभिरपत्यप्रत्ययेन वा ।
विदूषकेण तु प्रायः सखे राजन्नितीच्छया ।।३१९।।
ब्राह्मणैः सचिवो वाच्यो ह्यामात्य सचिवेति च ।
शेषैरार्येत्यथायुष्मन्निति सारथिना रथी ।।३२०।।
तपस्विसाधुशब्दाभ्यां प्रशान्तः परिभाष्यते ।
स्वामीति युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः ।।३२१।।
आवुत्तेति स्वसुर्भर्ता स्यालेति पृतनापतिः ।
भट्टिनी स्वामिनी देवी तथा भट्टारिकेति च ।।३२२।।
परिचारजनैर्वाच्या योषितो राजवल्लभाः ।
राज्ञा तु महिषी वाच्या देवीत्यन्याः प्रिया इति ।।३२३।।
सर्वेण पत्नी त्वार्येति पितुर्नाम्ना सुतस्य वा ।
तातपादा इति पिता माताम्बेति सुतेन तु ।।३२४।।
ज्येष्ठास्त्वार्या इति भ्रात्रा तथा स्युर्मातुलादयः ।

(१) पूज्य निर्देश- देवता मुनि इत्यादि पूज्य होते हैं। लिङ्गिनी और उनके समान विख्यात स्त्रियाँ भी (पूज्या होती हैं)। ये भगवत् शब्द द्वारा वचनीय होते हैं।, ब्राह्मण आर्य शब्द

से तथा वृद्ध तात शब्द से वाच्य होते हैं। आचार्य उपाध्याय से ,गणिका (वेश्या) अज्जुका से, राजा महाराज से, विद्वान् भाव शब्द से वाच्य होते हैं। कामना से ब्राह्मणों के द्वारा राजा नाम से, सेवकों और प्रजाओं द्वारा देव शब्द से तथा परिजनों के द्वारा सार्वभौम राजा भट्टारक शब्द से वाच्य होता है।मुनियों द्वारा अपत्यप्रत्यय के कारण राजा शब्द से वाच्य होता है तथा विदूषक द्वारा इच्छानुसार सखे या राजन् शब्द से तथा ब्राह्मणों द्वारा सचिव अमात्य या सचिव शब्द से वचनीय है। शेष लोगों द्वारा राजा आर्य तथा सारथि द्वारा रथारुढ़ राजा आयुष्मान् शब्द से वाच्य होता है। प्रशान्त (नायक राजा) तपस्विन् तथा साधु शब्द से वाच्य होता है। युवराज स्वामी शब्द से, राजकुमार भर्तुदारक शब्द से तथा भागिनीपति (बहनोई) राजा आवुत्त, सेनापति श्यालक शब्द से वचनीय होता है। राजा की प्रियतमा स्त्री सेवकजनों द्वारा भट्टिनी, स्वामिनी, देवी और भट्टारिका शब्द से वाच्य होती है राजा के द्वारा राजमहिषी देवी शब्द से तथा अन्य (पत्नियाँ) प्रिया शब्द से वाच्य होती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सभी लोगों द्वारा पत्नी आर्या शब्द से, पुत्र द्वारा पिता तातपाद तथा माता अम्बा शब्द से वाच्य होती है। भाई के द्वारा बड़ा भाई तथा मामा इत्यादि आर्य शब्द से वचनीय होते हैं।।३१५-३२५पू.।।

अथ सदृशनिर्देशः-

सदृशः सदृशो वाच्यो वयस्येत्याह्वयेन वा ।।३२५।।
हलेति सख्या तु सखी कथनीया सखीति वा ।

(२) सदृशनिर्देश-समान लोगों द्वारा अपने समान लोगों को 'वयस्य' इस प्रकार के आह्वान से तथा सखी के द्वारा अपनी सखी हला अथवा सखी शब्द से कथनीय होती है।।३२५उ.-३२६पू.।।

अथ कनिष्ठनिर्देशः-

सुतशिष्यकनीयांसो वाच्या गुरुजनेन हि ।।३२६।।
वत्सपुत्रकदीर्घायुस्तातजातेति संज्ञया ।
अन्यः कनीयानार्येण जनेन परिभाष्यते ।।३२७।।
शिल्पाधिकारनामभ्यां भद्र भद्रमुखेति वा ।
वाच्ये नीचातिनीचे तु हण्डे हञ्जे इति क्रमात् ।।३२८।।
भर्त्रा वाच्याः स्वस्वनाम्ना भृत्यः शिल्पोचितेन वा ।

(३) कनिष्ठ निर्देश- गुरुजनों (श्रेष्ठ लोगों) द्वारा पुत्र, शिष्य, कनिष्ठ लोग वत्स, पुत्रक, दीर्घायु, तात, जात इस नाम से कथनीय होते हैं। अन्य कनिष्ठ पूज्य लोगों द्वारा उनके शिल्प और अधिकार वाले नामों से भद्र अथवा भद्रमुख नाम से परिभाषित किये जाते हैं तथा नीच और नीचतर लोग (बड़ों द्वारा) क्रमशः हण्डे और हञ्जे शब्द से अभिहित किये जाते हैं। स्वामी के द्वारा सेवक उनके नाम अथवा कार्य के अनुसार नामों से बुलाते हैं।।३२६उ.३२९पू.।।

एवमादिप्रकारेण योज्या निर्देशयोजना ।।३२९।।
लोकशास्त्राविरोधेन विज्ञेया वाक्यकोविदैः ।

इत्यादि इस प्रकार से निर्देश की योजना करनी चाहिए जो लोक तथा शास्त्र के अनुसार वाक्य-कोविदों द्वारा जाना (कहा) गया है।।३२९उ-३३०पू.।।

अथ नामपरिभाषा–

अनुक्तनाम्नः प्रख्याते कञ्चुकिप्रभृतेरपि ।।३३०।।
इतिवृत्ते कल्पिते तु नायकादेरपि स्फुटम् ।
रसवस्तूपयोगीनि कविर्नामानि कल्पयेत् ।।३३१।।

(३) नाम-परिभाषा– प्रख्यात तथा कल्पित इतिवृत्त में अनुक्त नाम (पूज्य होने के कारण नाम न लिए जाने) वाले कच्चुकी इत्यादि तथा नायिका इत्यादि का रस तथा इतिवृत्त के लिए उपयोगी नामों की कवि कल्पना कर ले।।३३०-३३१पू.।।

(तत्र कञ्चुकीनामकरणम्)

विनयन्धरबाभ्रव्यजयन्धरजयादिकम् ।
कार्यं कञ्चुकिनां नाम प्रायो विश्वाससूचकम् ।।३३२।।

कञ्चुकी का नामकरण– विनयन्धर, बाभ्रव्य, जयन्धर,जय इत्यादि विश्वाससूचक नाम कञ्चुकियों का रखना चाहिए।।३३२।।

(अथ चेटीनामकरणम्)–

लतालङ्कारपुष्पादिवस्तूनां ललितात्मनाम् ।
नामभिर्गुणसिद्धैर्वा चेटीनां नाम कल्पयेत् ।।३३३।।

चेटी का नामकरण– ललितात्मा वाली लता, अलङ्कार, पुष्प इत्यादि वस्तुओं के नाम से अथवा गुण की सिद्धि (निपुणता) के अनुसार चेटियों का नामकरण करना चाहिए।।३३३।।

(अथानुजीविनामकरणम्)–

करभः कलहंसश्चेत्यादि नामानुजीवनाम् ।

(वन्दिनामकरणम्)–

कर्पूचण्डकाम्पिल्येत्यादिकं नाम वन्दिनाम् ।।३३४।।

अनुजीवियों और चारणों का नामकरण– करभ कलहंस इत्यादि अनुजीवियों का और कपूरचण्ड, काम्पिल्य इत्यादि चारणों का नाम रखना चाहिए।।३३४।।

(अथमन्त्रिनामकरणम्)–

सुबुद्धिवसुभूत्यादि मन्त्रिणां नाम कल्पयेत् ।

(अथपुरोधसः नामकरणम्)

देवरातः सोमरात इति नाम पुरोधसः ।।३३५।।
श्रीवत्सो गौतमः कौत्सो गार्ग्यो मौद्गल्य इत्यपि ।

मन्त्री और पुरोधा का नामकरण– सुबुद्धि, वसुभूति इत्यादि मन्त्रियों का तथा देवरात, सोमरात इत्यादि और श्रीवत्स, गौतम, कौत्स, गार्ग्य, मौद्गल्य इत्यादि पुरोधाओं (पुरोहितों) का नाम रखना चाहिए।।३३५-३६६पू.।।

(अथ विदूषकनामकरणम्)–

वसन्तकः कापिलेयः इत्याख्येयो विदूषकः ।।३३६।।

विदूषक का नामकरण– वसन्तक, कापिलेय इत्यादि विदूषक का नामकरण करना चाहिए।

(अथ नायकनामकरणम्)–

प्रतापवीरविजयमानविक्रमसाहसैः ।
वसन्तभूषणोत्तंसशेखरोपपदोत्तरैः ।।३३७।।
धीरोत्तराणां नेतृणां कुर्वीत नाम कोविदः ।
चन्द्रापीडः कामपाल इत्याद्यं ललितात्मनाम् ।।३३८।।
उग्रवर्मा चण्डसेन इत्याद्युद्धतचेतसाम् ।
दत्त सेनान्तनामानि वैश्यानां कल्पयेत्सुधीः ।।३३९।।

नायक का नामकरण– धीरोत्तर नायकों का प्रताप, वीर, विजय, मान, विक्रम और साहस (अर्थ) वाले वसन्त, भूषण, उत्तंस, शेखर उत्तरवर्ती पद वाला नाम रखना चाहिए। ललित (नायकों) का चन्द्रापीड, कामपाल इत्यादि तथा उद्धत (नायकों) का उग्रवर्मा, चण्डसेन इत्यादि नामकरण करना चाहिए।।३३७-३३९।।

(अथ नायिकानामकरणम्)–

कर्पूरमञ्जरी चन्द्रलेखा रागतरङ्गिका ।
पद्मावतीति प्रायेण नाम्ना वाच्या हि नायिकाः ।।३४०।।

नायिका का नामकरण– नायिकाएँ प्रायः कर्पूरमञ्जरी, चन्द्रलेखा, राजतरङ्गिणी, पद्मावती-इन नामों से अभिहित की जानीं चाहिए।।३४०।।

(अथ देवीनामकरणम्)–

देव्यस्तु धारिणीलक्ष्मीवसुमत्यादिनामभिः ।

महारानी का नामकरण– धारिणी, लक्ष्मी, वसुमती इत्यादि नामों द्वारा देवियाँ (महारानियाँ) कही जानी चाहिए।।३४१पू.।।

(अथ भोगिनिनामकरणम्)–

भोगवती कान्तिमती कमला कामवल्लरी ।।३४१।।
इरावती हंसपदेत्यादिनाम्ना तु भोगिनी ।

भोगिनियों का नामकरण– भोगिनी (विषय वासनाओं में लिप्त) स्त्रियों को भोगवती, कान्तिमती, कमला, कामवल्लरी, इरावती, हंसपदा इत्यादि नाम से अभिहित किया जाना चाहिए।।३४१उ.-३४२पू.।।

(अथ त्रैवर्णिकनामकरणम्)–

विप्रक्षत्रविशः शर्मवर्मदत्तान्तनामभिः ।।३४२।।

विप्र क्षत्रिय और वैश्य का नामकरण– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के नाम के अन्त में क्रमशः शर्म, वर्म औद दत्त लगना चाहिए।।३४२उ.।।

(अथ विद्याधरनामकरणम्)–

शिखण्डाङ्गदचूडान्तनाम्ना विद्याधराधिपाः ।

विद्याधरों का नामकरण– विद्याधरों का शिखण्ड, अङ्गद और चूड़ अन्त वाला नाम रखना चाहिए।।३४३पू.।।

(अथ कापालिकनामकरणम्)–

कुण्डलानन्द घण्टान्तनाम्ना कापालिका जनाः ।।३४३।।

(कापालिकानामकरणम्)

योगसुन्दरिका वंशप्रभा विकटमुद्रिका ।
शङ्खकेयूरिकेत्यादिनाम्ना कापालिकास्त्रियः ।।३४४।।

कापालिक तथा कापालिकाओं का नामकरण– कपालिकों का कुण्डल, आनन्द और घण्ट से अन्त होने वाला नामकरण करना चाहिए और कापालिका स्त्रियों का योगसुन्दरिका, वंशप्रभा, विकटमुद्रिका, शङ्खकेयूरिका इत्यादि नाम रखना चाहिए।।३४३उ.-३४४।।

(अथ सुवासिनीनामकरणम्)–

आनन्दिनी सिद्धिमती श्रीमती सर्वमङ्गला ।
यशोवती पुत्रवतीत्यादिनाम्ना सुवासिनी ।।३४५।।

सुवासिनी स्त्री का नामकरण- सुवासिनी स्त्री आनन्दिनी, सिद्धिमती, श्रीमती, सर्वमङ्गला, यशोमती, पुत्रवती इत्यादि नामों से अभिहित की जानी चाहिए।।३४५।।

(अथ सत्काव्यप्रशंसा)–

इत्यादि सर्वमालोच्य लक्षणं कृतबुद्धिना ।
कविना कल्पितं काव्यचन्द्रार्कं प्रकाशते ।।३४६।।

सत्काव्यप्रशंसा- इन सभी लक्षणों की समालोचना करके प्रत्युत्पन्न बुद्धि वाले कवि द्वारा निर्मित काव्य (रूपक) सूर्य और चन्द्रमा के रहने तक (अनन्त-काल तक) चमकता रहता है।।३४६।।

(ग्रन्थोपसंहारः)

लक्ष्यलक्षणनिर्माणविज्ञानकृतबुद्धिभिः ।
परीक्ष्यतामयं ग्रन्थो विमत्सरमनीषया ।।३४७।।

ग्रन्थ का उपसंहार-

उदाहरण सहित लक्षण के निर्माण-विज्ञान में कृत बुद्धि वाले (विद्वानों) द्वारा विमत्सर (ईर्ष्या से रहित) कामना से इस ग्रन्थ की परीक्षा की जानी चाहिए।।३४७।।

भरतागमपारीणः श्रीमान् शिङ्गमहीपतिः ।
रसिकः कृतवानेवं रसार्णवसुधाकरः ।।३४८।।

भरतवेद (नाट्यवेद) के सुविज्ञ और रसिक श्रीसम्पन्न शिङ्गभूपाल ने इस प्रकार (इस) रसार्णवसुधाकर की रचना किया है।।३४८।।

संरम्भादनपोतशिङ्गनृपतेर्घाटीसमाटीकने
निःसाणेषु धणं धणं धणमिति ध्वानानुसन्धायिषु ।
मोदन्ते हि रणं रणं रणमिति प्रौढास्तदीया भटाः
भ्रान्तिं यान्ति तृणं तृणं तृणमिति प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजः ।।३४९।।

अनपोत शिङ्गभूपाल के युद्ध के कारण आक्रमण में जाने पर निःसाण (लोहा पीटने की घान) पर धण-धण इस प्रकार की ध्वनि का अनुसन्धान करने पर उस (शिङ्गभूपाल) के प्रौढ योद्धा (धण धण धण को) रण रण रण यह (समझकर) आनन्दित होते हैं और शत्रु राजा (के योद्धा) तृण तृण तृण यह (समझकर) भ्रम में पड़ जाते हैं।।३४९।।

मत्वा धात्रा तुलायां लघुरिति धरणीं सिंहभूपालचन्द्रे
सृष्टे तत्रातिगुर्व्या तदुपनिधितया स्थाप्यमानैः क्रमेण ।
चिन्तारत्नौघकल्पद्रुमततिसुरभीमण्डलैः पूरितान्ता-
प्यूर्ध्वं नीता लघिम्ना तदरिकुलशतैः पूर्णतेऽद्यापि सा द्यौः ।।३५०।।

।।इति श्रीमदान्ध्रमण्डलाधीश्वरप्रतिगण्डभैरवश्रीमदनपोतनरेन्द्रनन्दन-
भुजबलभीमश्रीसिंहभूपालविरचिते रसार्णवसुधाकरनाम्नि नाट्या-
लङ्कारशास्त्रे भावकोल्लासो नाम **तृतीयो विलासः।'**

विधाता ने तराजू पर पृथ्वी को (द्युलोक) से हल्का समझकर शिङ्गभूपाल रूपी चन्द्रमा को बनाकर तथा उस (शिङ्गभूपाल) में क्रमशः अत्यन्त भारी धरोहर के रूप से

स्थापित चिन्तामणि की वृद्धि वाले कल्पवृक्ष के समूह की सुगन्ध-मण्डल से पूर्ण करके पृथ्वी को लघुता से ऊपर उठाया (इस प्रकार पृथ्वी द्युलोक से भारी हो गयी)। अब (उस द्युलोक के हल्केपन को) उस (शिङ्गभूपाल) के (युद्ध में मारे गये) सैकड़ों (असंख्य) शत्रुओं के समूहों द्वारा पूरा किया जा रहा है।।३५०।।

।।इस प्रकार आन्ध्र देश के भीषण युद्ध में प्रचण्डभैरव की कान्ति वाले राजा श्री अनपोतराज को आनन्दित करने वाले (पुत्र) भुजाओं के बल में भीम के समान श्रीशिंगभूपाल द्वारा विरचित रसार्णवसुधाकर नामक नाट्यालङ्कार शास्त्र में भावकोल्लास नामक तृतीय विलास समाप्त।।

।।समाप्तश्चायं ग्रन्थः।।

✦ ✦ ✦

परिशिष्ट–१

उदाहृतश्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
अंह शेषैरिव परिवृत्तः	चमत्कार चन्द्रिका	२८३
अकलिअपरिरंभविब्भाई	कर्पूरमञ्जरी १.२	२७४
अङ्के केऽपि शशङ्किरे	सुभाषितावली, श्लोक १९८२	१७८
अङ्गुल्याग्रनखेन	अमरुशतके, ५	२५९
अङ्गेषु स्फटिकादर्श	—	६०
अज्जं मोहणसुत्तं	गाथासप्तशती, ४.६०	२९२, २९४
अज्ञातपूर्वां द्विजतामवज्ञाम्	—	१८६
अतनुकुचभरानतेन	शिशुपालवध, ७.६६	१४६
अतिप्रयत्नेन रतान्त०	—	१४६
अत्राभूदनपोतसिंह	—	२५३
अथ भूतानि कर्णघ्न	किरातार्जुनीय, १५.१	१०५
अथ मदनवधू०	कुमारसंभव, ४.४६	२६९
अथ यन्तारमादिश्य	रघुवंश, १.५४	९३
अथ विश्वात्मने गौरी	कुमारसम्भव, ६.१	७५
अथ सा पुनरेव विह्वला	कुमारसम्भव, ४.४	२२९
अथ स्वास्थाय देवाय	महावीरचरित, १.१	३९७
अथो महेन्द्रं गिरिं	—	२१८
अथोर्मिमालोन्मद०	रघुवंश, १६.५४	६९
अद्य कर्तुमशक्यं चेत्	आनन्दकोशप्रहसन	४४१
अद्यापि तन्मनसि	चौरपञ्चाशिका, ११	८१
अद्वैतं सुखदुःखयोः	उत्तररामचरित, १.३८	२१६
अनन्यसाधारण एषः	शिङ्गभूपालका	२६२
अनारतं तेन पदेषु	किरातार्जुनीय, १.१५	१६
अनिर्मिन्नो गभीरत्वात्	उत्तररामचरित, ३.१	१७४

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
अनुपात्तबाष्पकणिकं	आनन्दकोशप्रहसन	४४५
अनुभवत दत्त वित्तं	—	९१
अनेन लङ्का यदकारि	बालरामायण, ८.४८	३४५
अन्तर्नाडीनियमित०	प्रबोधचन्द्रादय, १.२	३९७
अन्त्रैः स्वैरपि संयत	—	१३०
अन्योन्यसूतोन्मथनात्	रघुवंश, ७.५२	१२०
अन्वासितमरुन्धत्या	रघुवंश, १.५६	२१४
अपकर्ताहमस्मीति	काव्यादर्श में उद्धत, २.२९३	२३८
अपां फेनेन तृप्तोऽसौ	बालरामायण, १०.९४	३५०
अपि तुरगसमीपात्	रघुवंश, ९.६७	२०५
अपेतव्याहारं धुत०	योगेश्वरस्येति सरस्वती—कण्ठाभरण में उद्धत, ५.२७	११४
अप्यवस्तूनि कथा०	कुमारसंभव, ८.६	८१
अभ्युत्तानशयालुना	—	१९९
अभ्युद्गते शशिनि	—	१०७
अमुष्मै चौराय व	सुभाषितावली, १९३९	२७९
अयं रामो नायं	—	२०७
अयि कर्ण कर्णसुभगां	वेणीसंहार, ५.१४	२२८
अयि पीणधणत्थण	प्रबोधचन्द्रोय, ३.१९	४३८
अय्यस्मदग्रकरयन्त्र०	बालरामाण, १०.७६	३४९
अरिव्रजानामनपोत०	—	२००
अर्चिष्मन्ति विदार्य	दशरूपक में उद्धृत	१११
अलं विवादेन यथा	कुमारसम्भव, ५.८२	२०३
अलसलुलितमुग्धानि	उत्तररामचरित, १.२४	१९२
अलिअपसुत्तअ०	गाथासप्तशती, १.२०	२६०
अलोलैश्च श्वास	—	२५०
अवधूयारिभिर्नीताः	किरातार्जुनीय, ११.५८	१७३
अवलोक एव नृपतेः	शिशुपालवध, १३.६	२०,१६१
अव्यासुरन्तःकरणा	—	१९३

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
अशक्नुवन् सोढुमधीर	शिशुपालवध, १.५३	२३२
अशस्त्रपातमव्याज	मालतीमाधव, ५.१२	३६४
अशिथिलपरिरम्भात्	—	७२
अशीमहि वयं भिक्षाम्	वैराग्यशतक, ५५	१८०
अश्रान्तकण्टकोद्गमं	शिङ्गभूपाल का	२१६
असौ विद्वान्धीरः	मालतीमाधव, २.११	३८८
अस्त्यद्यापि चतुः समुद्र	—	१८१
अस्मद्गोत्रमहत्तरः	अनर्घराघव, १.१८	१८४
अस्मिन्क्षणे	—	१३५
अहमेव मतो महीपतेः	रघुवंश, ८.८	१८
अहिणवमहुलोलुपो तुमं	अभिज्ञानशाकुन्तल, ५.१	९२
आअरपसारिओट्ठं	गाथासप्तशती, १.२२	२०९
आकर्णाकृष्टचापो०	बालरामायण, ८.८५	३३८
आकर्ण्य कर्णयुगलै	शिङ्गभूपाल का	७७
आकीर्णधर्म०	शिङ्गभूपाल	३५
आघ्राय चानन	शिशुपालबध ८.१०	१९४
आत्माक्षेपक्षोभितैः	करुणाकन्दल	२८१
आदर्शनात् प्रविष्टा	विक्रमोर्वशीय, २.२	४२
आधूतमूर्धदशकं	वीरानन्द	२२२
आनन्दजः शोकजमश्रु०	रघुवंश, १४.५३	१३४
आपुच्छन्तस्स	—	१७१
आमेखलं सञ्चरतां	कुमारसम्भव १.५	१५९
आमोदमामोदनं	—	६३
आयाते दयिते मनोरथ	अमरुशतक, ७७	१८५
आयुष्मतः किल लवस्य	उत्तररामचरित, ६.६१६	३६२
आरक्तराजिभिरियं	विक्रमोर्वशीय, ४.१५	१७७
आरामे रतिराजपूजन०	—	२५१
आर्तं कण्ठगतप्राणं	नागानन्द, ४.११	२८०
आर्यशरपातविवरात्	अभिरामराघव	१६८

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
आर्यामरण्ये	हनुमन्नाटक १४.९१	८७
आलोएसञ्चिअ	गाथासप्तशती, २.३०	१०७
आलेप: क्रियतामयं	—	११०
आलोक्य दु:शासनं	—	१२६
आलोक्य हारमणि०	शिङ्गभूपाल का	३२
आलोलैरनुमीयते	—	६४
आलोलैरभिगम्यते	—	७७
आविर्भवत्प्रथमदर्शन०	शिङ्गभूपाल का	५६
आशूत्थानं सदृश	—	१६३
आ शैशवादनुदिनं	वेणीसंहार, ६.३८	३९०
आश्चर्यमुत्पलदृश:	मालतीमाधव, ३.५	३८१
आश्लेषोल्लासिताशयेन	सिंहभूपाल का	३६
आसनैकप्रियस्यास्या:	—	१७०
आस्तां तावदनङ्गचाप	—	१५३
आस्तां धनु: किमसिना	बालरामयण, ८.३७	३४४
इति भीष्मभाषित वच:	शिशुपालवध, १५.४७	१८७
इति वाचमुद्धतमुदीर्य	शिशुपालवध, १५.३९	२७८
इदं कविभ्य: पूर्वेभ्य:	उत्तररामचरित, १.१	३९६
इदं किमार्येण कृतं	कन्दर्पसम्भव	२६१
इन्दुर्लक्ष्मीरमृतमदिरे	बालरामायणे, ७.३६	३३२
इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन	बालरामायणे, १.४२	३१४
इन्द्रजिद्बाणसम्भीता:	—	१२५
इभकुम्भतुङ्गकठिन	शिशुपालवध, १३.१६	१८३
इयं गेहे लक्ष्मी:	उत्तररामचरित, १.३८	३०२
ईसिवलिआवणआ	—	१७९
उत्तानामुपधाय बाहु	—	१९१
उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते	—	७२
उत्तुङ्गौ कुचकुम्भौ	शिङ्गभूपाल का	३७
उत्तुङ्गौ स्तनकलशौ	शिङ्गभूपाल का	९७

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
उत्पत्तिर्देवयजनात्	महावीरचरित, १.२१	२०४
उत्पाट्य दर्प०	शिशुपालवध ५.५९	१६०
उत्फुल्लगण्डयुगम्	कुवलयावली, २.१५	९३, २७६
उत्स्मयित्वा महाबाहु:	रामायण, १.१.६५	२०
उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुर०	रत्नावली २.४	३०३
उद्यानं किमुपागतास्मि	—	२५१
उद्वृत्तारिकृताभिमन्यु०	शार्ङ्गधरपद्धति में उद्धृत	१७३
उन्नमय्य सकचग्रह०	सुभाषितावली	२०८
उन्मीलन्नवमालती	शिङ्गभूपाल का	२०८
उभे तदानीमुभयोस्तु	कन्दर्पसम्भव	२११
उल्लोलितं हिमकरे	शिङ्गभूपाल का	३२
उषसि स गजयूथ	रघुवंश, ९.७१	१९४
ऋजुतां नयत: स्मरामि	कुमारसम्भव, ४.२३	८५
एक: कैलासमद्रिं	बालरामायण, २.२५	३११
एकत्रासनसंगमे	अमरुशतक, १९	३९
एकत्रासनसंस्थिति:	अमरुशतक, १८	१७६
एकस्यैवोपकारस्य	हनुमन्नाटक, १३.३५	१६
एकोऽपि त्रय इव भाति	भोजचरित, २९८	६१
एतत् कृत्वा प्रियमनुचित०	मेघदूत, २.५५	१४३
एतच्छ्रान्तविचित्र०	बालरमयण, ६.१२	३३०
एतस्मान्मां कुशलिनम्	मेघदूत, २.४५	९०, २१२
एतस्मिन् मदकल०	उत्तररामचरित १.३१	६७
एतेनोच्चैर्विहसित०	बालरामायण, ३.२६	३१७
एते वयममी दारा:	कुमारसम्भव, ६.६३	९१
एवंवादिनी देवर्षौ	कुमारसम्भव, ६.८४	२००
एष ब्रह्मा सरोजे	रत्नावली, ४.११	३६५
एषा पूगवती प्रफुल्ल०	—	६७
एषा मीलयतीदं	प्रियदर्शिका, ४.९	१६८
एहइ सो वि पउत्थो	गाथासप्तशती, १.१७	१७१

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
औत्सुक्यादनपोत०	—	२५४
औत्सुक्येन कृतत्वरा	रत्नावली, १.२	३३,१०८
कः पौरवे वसुमतीं	अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १.२१	३६०
कचैरर्धच्छिन्नैः	करुणाकन्दल	२१९
कच्चित् कान्तारभाजां	अनर्घराघव, १.२५	३९१
कण्ठे कृतावशेषं	रत्नावली, २.२	४२१
कथमपि न निषिद्धो	वेणीसंहार, ३.४०	१८७
कदा मुखं वरतनु	मालविकाग्निमित्र, ४.१६	१३३
कन्दप्पुछामदप्प०	बालरामायण, ७.४	४२२
कपोले जानक्याः	हनुमन्नाटक, १.१९	८६
कमवङ्कन्तविलासं	बालरामायण, १.५	४१६
करैरुपात्तान् कमलो०	—	१२७
कर्ता द्यूतच्छलानां	वेणीसंहार,५.२६	३८३
कर्पूर इव दग्धोऽपि	बालरामायण,३.११	३२४
कल्याणदायि भवतोऽस्तु	रसकलिका	११३,१५६
कल्याणबुद्धेरथ वा	रघुवंश, १४.६२	७५
कविर्भारद्वाजो जगत्	करुणाकन्दल	४०१
कश्चित् कान्ताविरह	मेघदूत, १.१	२६८
कस्तूर्या तत्कपोलद्वयभुवि	चमत्कारचन्द्रिका, ३.२७	२८६
कस्ते वाक्यामृतं त्यक्त्वा	शिङ्गभूपाल का	८७
कस्त्वं भोः कथयामि	दशरूपक में उद्धृत २१९	१९८
का त्वं शुभे कस्य	रघुवंश, १६.८	१६
का दीयतां तव रघूद्वह	बालरामायण, १०.६४	३५१
कान्ते कृतागसि पुरः	शिङ्गभूपाल का	३४,१३४
कान्ते पश्यति सानुराग०	शिङ्गभूपाल का	३४
कान्ते सागसि काचित्	शिङ्गभूपाल का	३८
कामं प्रत्यादिष्टां	अभिज्ञानशाकुन्तल, ५.३१	२०६
काये सीदति कण्ठरोधिनि	—	१६७
कालागुरूद्गारसुगन्धि०	—	६७

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
किं कण्ठे शिथिलीकृता	वेणीसंहार, २.९	२५
किं कामेन किमिन्दुना	—	२५२
किं तादेण णरिन्द	बालरामायण, ६.१९	३१
किं देव्याः कृतरोष०	रत्नावली, ३.१९	२१३
किं पद्मस्य रुचिं न हन्ति	रत्नावली, ३.१३	३७६
किं विद्यासु विशारदैरपि	—	१३९
किसलयमिव मुग्धं	उत्तररामचरित, ३.५	१४४
कीनाशोऽपि बिभेति	करुणाकन्दल	१६३
कुर्युः शस्त्रकथाममी	अनर्घराघव	१४०,१९६
कुलशोकहरं कुमारं	महेश्वरानन्द	४१३
कुलस्य व्यापत्त्या सपदि	करुणाकन्दल	२८२
कुवलयदलश्यामः	मालतीमाधव, ५.५	२२
कृतमनुमतं दृष्ट०	वेणीसंहार, ३.२४	२२१
कृतान्तजिह्वाकुटिलां	शिङ्गभूपाल का	१२९
कृतावशेषेण सविभ्रमेण	—	१८५
केलिगेहं ललितशयनं	शिङ्गभूपाल का	४६
केवलं प्रियतमादयालुना	कुमारसम्भव, ८.८४	१९२
कैतवेन शयिते	कुमारसम्भव, ८.३	१०९
कैलासाद्रावुदस्ते	प्रियदर्शिका १.२	१५७
को दोषो मणिमालिका	शिङ्गभूपाल का	२६,२५८
कोपेन प्राविधूत	उत्तररामचरित, ५.३६	२२४,३५
को वा जेष्यति सोम	—	२०२
कोशद्वन्द्वमियं दधाति	सुभाषितावली, १३.५६	९१
कौपीनाच्छादने	बालरामायण, २.२	२७५
क्रियाप्रबन्धाद०	रघुवंश, ६.२३	२६६
क्रियासुः कल्याणं भुजग०	अभिरामराघव	३९६
क्रूरक्रमं किमपि	बालरामायण, ६.९	३२८
क्रोधान्धैः सकलं हतं	वेणीसंहार, ६.४५	१८१
क्वचित्कान्तारभाजां	अनर्घराघव १.२५	३९१

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
क्व वयं क्व परोक्ष०	अभिज्ञानशाकुन्तल, २.१८	३६५
क्षामैश्च गण्डफलकैः	आनन्दकोशप्रहसन	५९
क्षीरोदवेलेव सफेन	कुमारसम्भव, ७.२६	६३
क्षुद्राः संन्त्रासमेनं	हनुमन्नाटक, १२.२	८४
क्षेत्राधीशशुना	—	११२
खं वस्ते कलविङ्क०	रामानन्दे	३७१
खर्वाटधम्मिल्लभरं	—	२६६
गच्छाम्यच्युतदर्शनेन	काव्यप्रकाश में उद्धृत, ५.२७	१०६
गण्डग्रावगरिष्ठ	—	९८
गते प्रेमावेशे प्रणय	अमरुशतक, ४३	२९०
गत्वोद्रेकं जघनपुलिने	शिशुपालवध, ७.७४	१२८
गमनमलसं शून्या	मालतीमाधव, १.२०	१७८
गाढ़ालिङ्गनपीडित	शृङ्गारतिलक १.२६	४१
गाढ़ालिङ्गनवामनी०	अमरुशतक, ४०	२१२
गान्धर्वेण विवाहेन	अभिज्ञानशाकुन्तल, ३.२०	३९३
गीतान्तरेषु श्रमवारि	कुमारसम्भव, ३.३८	१२८
गुणाधारे गौरे यशसि	—	१८९
गुणो न कश्चिन् मम	रामानन्द	४०२
गुर्वादेशादेव निर्मीय	अनर्घराघव, २.५९	१७२
गोपानसीसंश्रित	—	६८
गोरक्षणं समद०	धनंजयविजय, १६	३९१
गोष्ठीषु विद्वज्जन०	—	१८
गौडं राष्ट्रमनुत्तमं	प्रबोधचन्द्रोदय, २.७	१५१
घनबन्धननिर्मुक्तः	प्रियदर्शिका, ३.८	४०६
चकार काचित्	—	७७
चन्द्रबिम्बमुदयाद्रिं	शिङ्गभूपाल का	५१,६५
चन्द्रापीडं सा च जग्राह	कादम्बरीकथा सार, ८.८०	२७३
चरणकमलकान्त्या०	—	८०,९४
चरणोआसणिसण्णस्स	गाथासप्तशती, २.८	२६४

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
चारुनृत्तविगमे च	रघुवंश, १९.१५	१२९
चिक्षेप लक्ष्मीर्निटिलात्	कन्दर्पसंभव	१७५
चित्रं नेत्ररसायनं	बालरामयण, २.१६	३१२
चिरयति मनाक् कान्ते	शिङ्गभूपाल	४६
चिरलालित एष:	—	६६
चिराय रात्रिंचर	अनर्घराघव, ५.४५	१०३
चुम्बनेष्वधरदान०	कुमारसम्भव, ८.८	२७२
चूताङ्कुरास्वाद०	कुमारसम्भव, ३.३२	६५
जगति जयिनस्ते	मालतीमाधव, १.३९	२०५,३८०
जनयति त्वयि वीर	अनर्घराघव, १.२६	३९२
जनस्य साकेत०	रघुवंश, ५.३१	१३
जनाय शुद्धान्तचराय	रघुवंश, ३.१६	१६१
तं वीक्ष्य सर्वावयन	रघुवंश ६.६९	२४७
ततो गम्भीरं विनिवर्तितेन	—	८५
ततोऽभिषङ्गानिल	रघुवंश, १४.५४	१६६
तत्क्षणं परिवर्तित०	कुमारसम्भव, ८.७९	१४९
तत्तादृगुज्ज्वलकुत्	अनर्घराघव, १.१२	४९१
तत्पदं तनुमध्याया:	आनन्दकोशप्रहसन	४४२
तत्सख्या मरुताथ वा	—	१५३
तथागतायां परिहासपूर्वं	रघुवंश, ६.८२	८१
तदङ्गमानन्दजडेन	—	१३१
तदिह कलहकेलौ	बालरामायण, १०.७७	३४९
तद्गीतश्रवणैकाग्रा	रघुवंश, १५.६६	१२६
तद् वक्त्रं नयने च ते	रसकलिका,	१६६,१७७
तनयां तव याचते हरि:	—	९०
तन्मे मन: क्षिपति	मालतीमाधव, ४.८	२०४
तन्वी दर्शनसंज्ञयैव	—	२५६
तन्वी श्यामा शिखरिदशना	मेघदूत, २.१५	५७
तम: सवर्णं विदधे	—	४९

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
तमशक्यमपाक्रष्टुम्	रघुवंश, १२.१७	२०
तमस्तमो नहि नहि	—	८९
तमिस्रामूर्च्छाल०	अनर्घराघव, ७.१	४२०
तव प्रसादात् कुसुमायुधः	कुमारसम्भव, ३.१०	२२०
तवास्मि गीतरागेण	अभिज्ञानशाकुन्तल, १.५	४०७
तस्य पाण्डुवदना०	रघुवंश, १९.५०	१४५
तस्य संस्तूयमानस्य	रघुवंश, १५.२७	२१,१७३
तस्याः प्रासन्नेन्दुमुखः	रघुवंश, २.६८	१८३
तह तह ग्रामी	—	१५०
तां नारदं कामचरः	कुमारसंभ, १.५०	४०
तानर्घ्यानर्घ्यमादाय	कुमारसम्भव, ६.५०	८५
ता राघवं दृष्टिभिरा०	रघुवंश, ७.१२	१४
तिष्ठन् भाति पितुः पुरो	नागानन्द, १.७	१८१
तिष्ठेत् कोपवशात्	विक्रमोर्वशीय, ४.९	२६७
ते च प्रापुरुदन्वन्तं	रघुवंश, १०.६	१९४
त्रस्तः समस्तजन०	शिशुपालवध, ५.७	२७५
त्रिभागशेषासु निशासु	कुमारसम्भव, ५.५७	१९३
त्रुटितनिबिडनाडी०	बालरामायण, ४.६१	३२४
त्र्यैयक्षाकिंस्विदक्ष्णः	बालरामायण, ६.३०	३३२
त्रैलोक्याभयलग्नकेन	अनर्घराघव, १.२८	१६९
त्वं जीवितं त्वमसि	उत्तररामचरित, ३.२६	३८५
त्वद्रूपाद्विपिनाय	बालारामायण ६.१३	३३५
त्वं रुक्मिणी त्वं खलु	—	८९
त्वय्यर्धासनभाजि	अनर्घराघव, १.२९	१७५
त्वामालिख्य प्रणय०	मेघदूत, २.५८	१३४
दत्तं श्रुतं द्यूतपणं	—	७८
दत्तेन्द्राभयदक्षिणा	अनर्घराघव १.२७	१९२
दंतक्खअं कवोले	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.२२१ में उद्धृत	२७३

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
दधतो मङ्गल०	रघुवंश १.२८	१९
दधत्सन्ध्यारुण०	शिशुपालवध २.१८	१२९
दर्शनसुखमनुभवत:	अभिज्ञानशाकुन्तल, ६.२१	३६९
दशरथकुले संभूतं	अनर्घराघव, २.६२	१८०
दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि	मालविकाग्निमित्र, ४.१४	३५८
दिक्षु क्षिप्ताङ्घ्रि:	वेणीसंहार, २.१९	१५८
दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलब्ध	वेणीसंहार, २.१३	२२५
दीना दीनमुखै:	वैराग्यशतक, २१	१४४
दीर्घाक्षं शरदिन्दु०	मालविकाग्निमित्र, २.३	६०
दुरासदे चन्द्रिकया	—	६५
दुल्लहजणाणुराओ	रत्नावली, २.१	२८९
दुल्लहो पिओ तस्मिं	मालविकाग्निमित्र, २.४	२४८
दुष्ट कालीय सर्पोऽत्र	विष्णुपुराण, ५.१३.२७	७६
दूरप्रोत्सार्यमाणाम्बर०	धनञ्जयविजय, ६.१	१५९
दूरे तिष्ठति सोऽधुना	शिङ्गभूपाल का,	४५
दृप्यद्विक्रमकेलय:	बालरामायण, ७.४६	३३३
देवो रक्षतु व: किल	—	२२७
देव्या लीलालपितमधुरं	—	११२
द्योतितान्त: सभै:	शिशुपालवध, २.७	८५
द्वारे नियुक्तपुरुषा०	मालविकाग्निमित्र, १.१२	२३५
द्वीपादन्यस्मादपि	रत्नावली, १.७	४०५
धत्से धातुर्मधुप	—	८७
धात्रीवचोभिर्ध्वनि	—	७१
धिक् शौण्डीर्यमदोद्धतं	बालरामायण, ८.१४	३३९
धूतानामभिमुख०	किरातार्जुनीय, ६.३	१३३
ध्यानव्याजमुपेत्य	नागानन्द, १.१	२८९
ध्वंसेत हृदयं सद्य:	किरातार्जुनीय, ११.५७	१८८
न त्रस्तं यदि नाम	महावीरचरित, २.२८	२३
ननन्द निद्रारस०	—	१५६

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
न नवः प्रभुराफलो०	रघुवंश, ८.२२	१३
ननु वज्रिण एव वीर्य०	विक्रमोर्वशीय, १.१८	१५
न पुरीयं विशालाक्षीं	आनन्दकोशप्रहसन	४४५
न प्रत्युद्गमनं करोति	—	३८
नष्टाश्वभग्नशकट०	आनन्दकोशप्रहसन	४४६
नाट्याचार्यस्त्वमसि	वीरभद्रविजृम्भण	४११
नामव्यतिक्रमनिमित्त	शिङ्गभूपाल का	२५८
नार्हा केवलवेदपाठ०	—	४१८
निःश्शङ्कमागत०	शिङ्गभूपाल का	३६
निःशङ्का नितरां	शिङ्गभूपाल का	४८
निःश्वासोल्लसद्	शिङ्गभूपाल का	३७
नितान्तसुरतक्लान्तां	शिङ्गभूपाल का	१४७
निरन्तरालेऽपि विमुच्य	शिशुपालवध	१६०
निर्दग्धत्रिपुरेन्धना०	बालरामायण, ९.५७	३४५
निर्भिद्यन्त इवाङ्गकानि	करुणाकन्दल	२२८
निर्माल्यं नयनश्रियः	बालरामायणे, १.४०	३११
निर्वाणं जलपानपीडन०	बालरामायण, ७.३२	३३०
निर्वाणवैरदहनाः	वेणीसंहार, १.७	४०५,४१४
निर्विभुज्य दशनच्छदं	कुमारसंभव, ८.४९	८०
निवातपद्मस्तिमितेन	रघुवंश, ३.१७	१८२
निष्टापस्विद्यदस्थ्नः	मालतीमाधव, ५.१७	२३०
निष्ठीवन्त्यो मुखरित०	—	१४९
निष्प्रत्यूहमुपास्महे	अनर्घराघव, १.१	३९७
नीचैराख्यं गिरि	मेघदूत, १.२५	६९
नीतो दूरं कनकहरिणा	अनर्घराघव, ५.७	११७
नृपानप्रत्यक्षान् किमप०	अनर्घराघव, ५.७	१०३
नेत्राञ्चलेन ललिता	सिंहभूपाल	३४
नेदानींतनदीपिका	सिंहभूपाल	४०२
न्यायोपाधिरयं यदश्रु०	करुणाकन्दल	२२८

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
पक्वकर्पूरनिष्पेषं	बालरामायण, ४.६५	३२२
पच्चक्खमंतुकारअ	—	२५७
पटालग्ने पत्यौ नमयति	अमरुशतक, ४१	१७३
पतिहीना च या नारी	आनन्दकोशप्रहसन	४४६
पत्नी परिलम्बिकुचा	वीरभद्रविजृम्भण	४१७
पप्रच्छ पृष्टमपि	उत्तररामचरित, १९.६१	१७१
परस्परेण क्षतयो:	रघुवंश, ७.५३	२९१
पराजितश्चोलभयेन	—	२३२
परिधौतभवत्पदाम्बुना	—	९६
परिम्लानं पीनस्तनं	रत्नावली, २.१२	९८
पश्येम तं भूय इति	—	१३१
पाणिपल्लवविधूननं	किरातार्जुनीय, ९.५०	७९
पादाघातै: सुरभि:	बालरामायण, ५.४९	१९०
पि पि प्रिय स स स्वयं	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.६५ में उद्धृत	२१८
पिशुनवचनरोषात्	—	२६३
पुंसानुनीता	—	७९
पुराणमित्येव	मालविकग्निमित्र, १.२	४००
पूर्वं प्रहर्त्ता न	रघुवंश ७.४७	१३६
पौत्र: कुशस्यापि	रघुवंश, १८.४	१३
पौलस्त्य: प्रणयेन	बालरामायण, २.२०	३१५
प्रकटितरामाम्भोज:	बालरामायण, २.२०	३२४,४०६
प्रणमति जनकस्त्वां	बालरामायण ४.६७	३२२
प्रणयकोपभृत:	शिशुपालवध, ६.३८	१५६
प्रणयिसखीसलील०	मालतीमाधव, ५.३१	१८६,३५९
प्रतिवाचमदत्त केशव:	शिशुपालवध, १६.२५	२१
प्रतिश्रुतं द्यूतपणं	—	२११
प्रत्यक्षादिप्रमणसिद्धं	प्रबोधचन्द्रोदय, २.४	१८९
प्रत्यङ्गमङ्कुरित०	प्रसन्नराघव, १.७	४१६

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
प्रत्यासीदति सागसि	शिङ्गभूपाल का	३९
प्रभाते प्राणेशं	शिङ्गभूपाल का	४७
प्रविशन्त्या चिताचक्रं	बालरामायण, १०.९	३५४
प्रह्लादवत्सल वयं	—	११४
प्राप्ता: श्रिय: सकल०	वैराग्यशतक, ६७	१३९,१९६
प्राप्ता कथमपि दैवात्	रत्नावली, २.१८	११५
प्रियमाधवे किमसि	मालतीमाधव, ९.९	२४
प्रियामहं पूर्वभृतानां	आनन्दकोशप्रहसन	४४१
प्रियेऽपरा यच्छति	किरातार्जुनीय, ८.१५	१७०
प्रीतिरस्य ददतोऽभवत्	शिशुपालवध, १४.४१	१८४
प्रीते पुरा पुररिपौ	अनर्घराघव, ४.९	१५४
बद्ध: सेतुर्लवणजलधौ	बालरामाण, १०.१५	३४८
बन्दीकृत्य जगद्विजित्वर०	अनर्घराघव, ५.४४	१०२
बहि: सर्वाकारप्रवण०	मालती माधव, १.१७	१७५
बहुवल्लहस्स जो होइ	गाथासप्तशती, १.७२	२१५
बाणैर्लाञ्छितकेतुयष्टि०	बालरामायण, ९.५६	३४०
बालातपेन परिमृष्टं	आनन्दकोशप्रहसन	४४३
बाला प्रसाधनविधौ	शिङ्गभूपाल का	३२,७०
बाला सखीतनुलता	—	७६
बालेयतण्डुलनिलोप०	अनर्घराघव, २.२०	२१७
बिन्दुद्वन्द्वतरङ्गिता०	कर्णसुन्दरी (श्लोक.३)	१५२
भर्ता नि:श्वसितेऽपि	—	२७,४१
भवतु विदितं व्यर्थालापै:	अमरुशतक, ३०	२६७
भिक्षां प्रदेहि	—	८८
भुजविटपमदेन	अनर्घराघव, ५.११	१८७
भूमात्रं कियदेतत्	अनर्घराघव, ४.३५	२१
भृशं निपीतो०	—	६६
भो लङ्केश्वर दीयतां	बालरामायण, ९.१९	३४३
भ्रूभङ्गभिन्नमुपरञ्जित०	वीरानन्द	२२५

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
मज्झण्णे जणसुण्णे	—	२८
मञ्चेषु पञ्चेषु समाकुलानां	—	१२८
मधुः द्विरेफः कुसुमैक०	कुमारसम्भव, ३.३६	२९२
मधुरया मधुबोधित०	शिशुपालवध, ६.२०	९४
मधुव्रतानां मद०	—	६६
मनस्विनीनां मनसोऽपि	—	६८
मन्दाकिनी सैकत०	कुमारसम्भव, १.२९	८२
मन्ये प्रियाहृतमनाः	मालविकाग्निमित्र, ३.२३	२१४
मन्वादयो महीपालाः	आनन्दकोशप्रहसन	४४६
मम कण्ठगता	रत्नावली ३.१६	३८८
मया मूर्ध्नि प्रह्वे	बालरामायण, ६.११	३२९
मयेन निर्मितां लङ्काम्	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.३९४ में उद्धृत	११७
मय्येव विस्मरणं	अभिज्ञानशाकुन्तल, ५.२३	२२६
मल्लिकाभारभारिण्यः	काव्यादर्श, २.२१३ में उद्धृत	४९
महार्हशय्यापरिवर्तन०	कुमारसम्भव, ५.१२	६२
मा गर्वमुद्वह कपोल०	सुभाषितरत्नकोश	१८८
माधवो मधुरमाधवी०	—	६८
मानमस्या निराकर्तुम्	काव्यादर्श, २.२९०	२६४
मानुषीषु कथं वा स्यात्	अभिज्ञानशाकुन्तल, १.२२	३७७
मा भूच्चिन्ता तवेयं	वीरभद्रविजृम्भण	४१३
मामाहुः पृथिवीभुजां	विक्रमोर्वशीय, ४.४७	३८४
मायाचुञ्चुरथेन्द्रजित्	—	११९
मार्तण्डैककुलप्रकाण्ड०	बालरामायण, ७.३	४२२
मासि मघौ चन्द्रातप	शिङ्गभूपाल	५०
मुखं तु चन्द्रप्रतिमं	—	८८
मुञ्च कोपमनिमित्त०	कुमारसम्भव, ८.५१	२६०
मुहुरिति वनविभ्रम०	शिशुपालवध, ७.६८	१६९
मुहुरुपहसिताम्	शिशुपालवध, ७.५५	२६३

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
मृद्नन् क्षीरादिचौर्यात्	—	१५४
मेदच्छेदकृशोदरं	अभिज्ञानशाकुन्तल, २.५	३७८
मेदोमज्जाशोणितैः	—	२३०
यः कर्ता हरचाप०	बालरामायण, ४.५६	३२६
यः कौमारहरः स एव	शीलाभट्टारिका का	२१४
यच्छित्रं जननी०	बालरामायण, ४.३३	३२५
यत् प्रागेव मनोरथैः०	मालतीमाधव, १०.२३	३०४
यत्र स्त्रीणां प्रियतम०	मेघदूत, २.६	७३
यथा यथा रोहति	बालरामायण, १०.२२	३५१
यदत्र चिन्तातितिपाश०	—	१२६
यदयं रथसंक्षोभात्	विक्रमोर्वशीय, १.११	२०६
यदर्थमस्माभिरसि	अनर्घराघव, ४.५९	११८
यदृच्छासंवादः किमु	उत्तररामचरित, ५.१६	१०५
यदेव रोचते मह्यं	—	२३६
यदैव पूर्व जनने	कुमारसम्भव, १.५३	२१५
यद् गौरीचरणाब्जयोः	बालरामायण, ९.४०	३४२
यमोऽपि विलिखन् भूमि	कुमारसम्भव, २.२७	१७९
यस्मिन् महीं शासति	रघुवंश, ६.७५	१९१
यस्य व्रजमणेर्भेदे	बालरामायण, ३.६६	३१८
यस्यां ते दिवसास्तया	उत्तररामचरित, २.२९	१४०
यस्याचार्यकमिन्दु	बालरामायण, ४.७२	३२०
यस्यास्ते जननी	बालरामायण, ४.४२	३१९
या कौमुदी नयनयोः	मालतीमाधव, १.३७	३८२
याता भवेद् भगवती	मालतीमाधव, ८.१४	३७५
यान्ति घ्नन्ति गलादधः	आनन्दकोशप्रहसन	४३८
याभ्यां दुकूलान्तर०	—	६१
यामीति प्रियपृष्टायाः	—	२६७
यावन्नैव निकुम्भिला०	बालरामायण, ८.१५	३३७
युगान्तकालप्रतिसंहृता०	शिशुपालवध, १.२३	१८३

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
ये नाम केचितदिह नः	मालतीमाधव, १.८	४००
योगीन्द्रश्च नरेन्द्रश्च	बालरामायण, १०.१४	३५४
रणरसिकसुरस्त्री०	बालरामायण ९.५९	३४५
रण्डा चण्डा दिक्खिदा	कर्पूरमञ्जरी, १.२३	४४४
रतिक्रीडाद्यूते कथमपि	दशरूपक में उद्धृत	७८
रथाङ्गनाम्नोरिव	रघुवंश, ३.२४	२१०
रथी निषङ्गी कवची	रघुवंश, ७.५६	२७९
रम्यं गायति मेनका	—	२९१
रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च	अभिज्ञानशाकुन्तल, ५.२	१७६
राघवस्य गुरुसार०	—	१३०
राजत्कोरककण्टकाः	पद्मावती	३९८
राज्ञः प्रियाय सुहृदे	मालतीमाधव, २.८	३५९
रामप्रवासजननीं	वीरानन्द	२२४
रामो दान्तदशाननः	बालरामायण, १०.१०२	३५३
रामो नाम बभूव हुं	कृष्णकर्णामृत, २.७१	१६२
रामो शिष्यो भृगुभव	बालरामायण, ४.६९	३२०, ३२३
राहो तर्जय भास्वकरं	बालरामायण, ५.२२	१५१
रुग्णं चाजगवं न	बालरामायण, १०.१०४	३०५, ३५५
रुद्राणि लक्ष्मि वरुणानि	बालरामायण, १०.२	३४७
रुद्राद्रेस्तुलनं स्वकण्ठ०	बालरामायण, १.५१	१५२
रुन्धती नयनवाक्य०	किरातार्जुनीय, ९.६७	१४८
रुन्ध्यानया बहुमुखीं	कुवलयावली, ३.१	१३२
रुषा समाध्मातमृगेन्द्र	—	१३२
रोमाञ्चमङ्कूरयति	—	१६५
रोमाणि सर्वाण्यपि	नैषधचरित, १४.५३	१३०
लाक्षां विधातुम्	उत्प्रेक्षावल्लभ	६२
लालाजलं स्रावतु वा	—	२८६
लालाफेनव्यतिकर०	—	१६४
लिखन्नास्ते भूमिं	अमरुशतक, ७	२५९
लिङ्गैर्मुदः संवृत०	रघुवंश, ७.३०	१७४

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
लीनेव प्रतिबिम्बितेव	मालतीमाधव, ५.१०	१७७
लीलाए तुलिअसेलो	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.२३६ में उद्धृत	२७२
लीलातामरसासहता	अमरुशतक, ७२	२६५
लीलावधूतकमला	रत्नावली, २.८	२४७
लूनक्षत्रियकण्ठ०	बालरामायण, ४.५६	३२६
लोकोत्तरं चरितं	बालरामायण, २.५१	३१५
लोकोपकारिणी लक्ष्मीः	—	१८८
लोलभ्रूलतया विपक्ष०	अमरुशतक, ८३	११०
लोलांशुकस्य पवना०	वेणीसंहार, २.२३	३०२
वक्त्रैः प्रयत्नविकचैः	आनन्दकोशप्रहसन	५८
वपुषा करणोज्झितेन	रघुवंश, ८.३८	१३५
वयं तथा नाम यथात्थ०	मालतीमाधव, ७.१	१०८
वर्षासु तासु क्षणरुक्	—	६८,१५५
वह्ने निह्नोतुमर्चिः	बालरामायण, १.३१	१५१
वाचा कार्मुकमस्य	बालरामायण, ३.७१	३२०
वाटीषु वाटीषु विलासिनी०	—	१४१
वाणीमुरजक्वणितं	अभिरामराघव	४१२
वामं सन्धिस्तिमितवलयं	मालविकाग्निमित्र, २.६	७४,३९३
वारं वारं तिरयति	मालतीमाधव, १.३८	१४१,१९७
वालधिं त्रातुमावृत्य	—	१४
विजनमिति बलादमुं	शिशुपालवध, ७.५१	१९०
विद्राणे वित्तनाथे	सुभाषितसुधानिधि, १.४.१०	२३३
विद्वानसौ कलावान्	अभिरामराधव	४१२
विनापि हेतुं विकटं	—	१४९
विन्ध्याध्वानो विरल	बालरामायण, ६.५०	१४५
विभूषणप्रत्युपहार०	रघुवंश, १६.८०	२३१
विमर्दरम्याणि समत्सराणि	—	२७२
विललाप स बाष्प	रघुवंश, ८.४३	१३१
विवृण्वती शैलसुतापि	कुमारसंम्भव, ३.६८	७१

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
विवृद्धिं कम्पस्य प्रथयति	रत्नावली, ४.१३	१४५
विस्तारी स्तनभार:	अवलोक में उद्धृत, ९३	५६
विहायैतन् मानव्यसनं	—	२६३
वेलातटे प्रसूयेथा:	—	१९९
व्यत्यस्तपादकमलं	पद्मावती	३९४
व्यपोहितुं लोचनतो	किरातार्जुनीय, ८.१९	८३,२१०
व्यर्थं यत्र कपीन्द्र	रामानन्दे, उत्तररामचरिते ३.४५	३८२
व्यावृत्तिक्रमणोद्यमे	—	३३
शक्त्या वक्षसि मग्नया	—	२१९
शमप्रधानेषु तपोधनेषु	अभिज्ञानशाकुन्तल, २.७	३७५
शय्या पुष्पमयी पराग	—	१६५
शरकाण्डपाण्डुगण्ड०	मालविकाग्निमित्र, ३.८	१३३
शिरसा प्रथम गृहीतां	मालविकाग्निमित्र, १.३	४०६
शिला कम्पं धत्ते०	—	२२०
शिष्यतां निधुवनो०	कुमारसंभव, ८.१७	७३
शुद्धान्तस्य निवारित:	—	२०१
शैलात्मजापि पितु:	कुमारसंभव, ३.७५	२४८
श्रियो मानग्लाने०	—	११६
श्रीरेषा पाणिरप्यस्या:	रत्नावली, २.१७	३७९
श्रीसिंहक्षितिनायकस्य	चन्द्रकारचन्द्रिका	२८३
श्रीसिंहभूपप्रति०	—	२०१
श्रीहर्षो निपुण: कवि:	रत्नावली, १.६	४०४
श्रुतिशिखरनिषद्या०	—	२२२
श्रुत्वा दु:शश्रवमद्भुतं च	अनर्घराघव, ४.८	१७५
श्रुत्वा नि:साणराणं	—	२३२
स कदाचिदवेक्षित	रघुवंश, ८.३२	२४
स कीचकनिषूदन:	वेणीसंहार, ६.१८	१६२
सखि मे नियतिहताया:	शिङ्गभूपाल का	२०६
सखे कोऽयं रौद्र:	वीरभद्रविजृम्भणे	४०९
सख्या कृतानुज्ञमुपेत्य	—	१२७

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
स गुप्तमूलप्रत्यन्तः	रघुवंश, ४.२६	२१९
सङ्कल्पैरनपोतसिंह	—	२५५
सङ्क्षिप्येत क्षण इव	मेघसंदेश, २.४१	१८४
सङ्गत्यामनपोतसिंह	—	२५४
सञ्चारिणी दीपशिखेव	रघुवंश, ६.६७	१४२,१९८
सत्पक्षा मधुरगिरः	वेणीसंहार, १.६	३९९,४१५
सद्यः पुरीपरिसरेऽपि	बालरामायण, ६.३४	१४७
सन्तुष्टे तिसृणां पुरां	अनर्घराघव, ३.४१	१७
समं पुत्रप्रेम्णा करट०	—	२७७
स मानसीं मेरुसखः	कुमारसंभव, १.१८	२३
सम्प्रेषितश्च हनुमान्	बालरामायण, १०.२३	३४८
सम्प्रेषितो माल्यवता	बालरामायण, १.२३	३०९
सम्यक् संस्कारविद्या	बालरामायण, १०.१०५	३५६
सरसिजमनुविद्धं	अभिज्ञानशाकुन्तल, १.१७	३७८
स रागवानरुणतलेन	—	१८२
स रामो नः स्थाता	हनुमन्नाटक, १०.१२	२८९
सर्वक्षितिभृतां नाथ	विक्रमोर्वशीय, ४.५१	३९२
सर्वत्यागी परिणतवयाः	बालरामायण, ४.७१	३२१
सर्वाः संपत्तयस्तस्य	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.७६ में उद्धृत	२३९
सलीलं धम्मिल्ले	शिङ्गभूपाल का	५२
सविधेऽपि मय्यपश्यति	—	२७७
सशोणितैस्तेन शिली०	रघुवंश, ७.६५	१९
ससुरेण ढज्जमाणे	शिङ्गभूपाल का	१७१
सह दिअवसणिसाहिं	कर्पूरमञ्जरी, २.९	३८०
साक्षाद्भूतं वदति	आनन्दकोशप्रहसन	४३९
सा चन्द्रकान्तामपि	—	६५
सा दुर्निमित्तोपगतात्	रघुवंश, १४.५०	१४३
साधारणान्निरातङ्क	महावीरचरित, १.३०	२४०
साधु त्वया तर्कित०	नैषधीयचरित, ३.७७	२४६

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
सा पत्युः परिवारेण	—	१५६
सालोएं चिअ सूरे	गाथासप्तशती, २.३०	१०७
सा संभवद्भिः कुसुमैर्लतेव	कुंमारसंभव, ७.२१	६४
सीतां हित्वा दशमुख०	रघुवंश, १४.८७	२४
सीताप्रियं च दलितेश्वर	बालरामायण, ८४१	३३८
सुभद्रायाः श्रुत्वा तदनु	सिंहभूपाल	२२३
सुरतश्रमसंभृतः	रघुवंश, ८.५१	१३९
सुराघटानां सप्तत्या	आनन्दकोशप्रहसन	४४१
सूत्रधारचलद्दारु	बालरामायण, ५.५	३२८
सूर्याचन्द्रमसौ यस्य	विक्रमोर्वशीय, ४.१९	१५
सेवाया अनपोतसिंह०	—	२५२
सेव्यं किं परमुत्तमस्य	वीरभद्रविजृम्भण	४१०
सोढाहे नमतेति दूत	—	२८०
सोऽधिकारम०	रघुवंश, १९.४	२१
सोऽयं त्रिः सप्तवारान्	महावीर चरित, २.१७	१७
स्तम्भस्तथालम्भितमां	नैषधीयचरित, १४.५९	१२५
स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्	अभिज्ञानशाकुन्तल, ५.२२	३६७
स्त्रीमात्रं ननु ताटका	हनुमन्नाटक, १४.२१	१८९
स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्	रघुवंश, १.२५	१४
स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वर०	शृङ्गारप्रकाश में उद्धृत	२६
स्नातुं विमुक्ताभरणा	—	५९
स्नायुन्यासनिबद्ध	बालरामायण, २.१	१११
स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि	अभिज्ञानशाकुन्तल, २.२	११५
स्पष्टाक्षरमिदं यत्नात्	रत्नावली, २.६	३७२
स्मयमानमायताक्ष्याः	मालविकाग्निमित्र, २.११	२७६
स्मरति न भवान् पीतं	वेणीसंहार, ५.४१	३८६
स्मरस्तथाभूत०	कुमारसंभव, ३.५१	१६६
स्रस्तस्रक्कबरीभरं	—	५१
स्वप्नकीर्तितविपक्ष०	रघुवंश, १९.२२	२५, २५८
स्वप्ने दृष्टकारा	—	२४७

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
स्वविक्रियादर्शित	—	१५५
स्वेदक्लेदितकङ्कणाम्	—	१४७
हंस प्रयच्छ मे कान्ताम्	विक्रमोर्वशीय, ४.३३	३७३
हं हो पुष्पक मे कानम्	बालरामायण, १०.५९	३५०
हत्वा शन्तनुनन्दनस्य	धनंजयविजय, ६७	११८
हन्त सारस्वतं चक्षुः	अभिरामधाव	४१०
हन्तालोक्य कुटुम्बिनः	—	१५८
हरस्तु किंचित् परिलुप्त	कुमारसंभव, ३.६७	२०७
हर्षोत्कर्षः किमयं	बालरामायण, ८.१२	३४१
हस्तालम्बितमक्षसूत्र	बालरामायण, १.५३	२१९
हा तातेति क्रन्दितं	रघुवंश, ९.७५	१४३
हा वत्साः खरदूषण	महावीरचरित, ४.११	१०४
हावहारि हसितं	शिशुपालवध, १०.१३	१४८
हा हा धिक् परगृहवास	उत्तररामचरित, १.४०	१४२
हेमकुम्भवती रम्य०	आनन्दकोशप्राहसन	४४४
हे मद्वाणि निजां	बालरामायण, ६.१३	३३५

✦ ✦ ✦

परिशिष्ट- २
अन्य नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों से उद्धृत स्थल

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
अन्येऽपि यदि भावा:	भावप्रकाश	१९५
अर्थोपक्षेपणं यत्र	नाट्यशास्त्र, १९.३३	३०२
अविज्ञातभयामर्श:	भावप्रकाश, ७.४२	२९
असङ्गोऽपि स्वभावेन	भावप्रकाश, ७.३७	२८
इयमङ्कुरिता प्रेम्णा	भावप्रकाश, १६.७७	२३७
ईर्ष्या कुलस्त्रीषु	शृङ्गार तिलक, १.१२८	४४
ईहामृगश्च विज्ञेय:	नाट्यशास्त्र, १८.३	२९७
उपचारपरो ह्येष:	भावप्रकाश, ७.३९	२९
एतत्स्वभावजं	नाट्यशास्त्र, ६.७१	२३४
कामतन्त्रेषु निपुण:	भावप्रकाश, ७.३८	२९
क्रीडितं केलिरित्यन्यौ	सरस्वतीकण्ठाभरण	८२
गणिकाया नानुरागो	भावप्रकाश, ६८	४३
चित्तस्याविकृति: सत्त्वं	भावप्रकाश, ८	७०
त्र्यवस्थैव परस्त्री	भावप्रकाश, २८	५४
ददाति काले काले	भावप्रकाशिका	१९
दृष्ट दोषे विरज्येत	भावप्रकाश, ७.४१	२९
द्व्यर्थो वचनविन्यास:	नाट्यशास्त्र, १९.३४	३०३
धर्मार्थसाधनं नाट्यं	नाट्यशास्त्र,	४२८
नाटकं सप्रकरणं	नाट्यशास्त्र १८.२	२९७
पताका कस्यापि	भावप्रकाशिका	३००
पूर्वानुरागो विविधं	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.६५	२७०
बीभत्सोऽद्भुतशृङ्गारी	भावप्रकाश, १६.२०	२८८
भयानके च बीभत्से	नाट्यशास्त्र, २०.७४	१२२
भावो वापि रसो वापि	नाट्यशास्त्र, ७.११९	१२१,२८४
मित्रैर्निवार्यमाणोऽपि	भावप्रकाश, ७.४३	२९

श्लोक	स्रोत	पृष्ठ
यत्रारभट्यादिगणा:	शृङ्गारप्रकाश	१२०
रौद्र: शोकभयाश्लेषात्	भावप्रकाशिका	२८८
वच: सातिशयं शिलष्टं	नाट्यशास्त्र, १९.३२	३०२
विप्रलम्भस्य यदि वा	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.६३	२७०
विशेष: क्रीडितं केलि	सरस्वतीकण्ठाभरण	८२
वीरो भयनाकप्राय:	भावप्रकाशिका, ६.१७	२८८
व्याविद्धं दीर्घकालत्वात्	सरस्वतीकण्ठाभरण, ५.६६	२७०
शृङ्गारं चैव हास्यं च	नाट्यशास्त्र, २०.७३	१२२
शृङ्गारहास्यकरुण	शृङ्गारतिलक, ३.५४	१२३
शृङ्गाराभास एतत्स्यात्	शृङ्गारतिलक, १.१२२	४३
शृङ्गारो हास्यभूयिष्ठ:	भावप्रकाशिका,	२८८
शोभायै वेदिकादीनां	भावप्रकाशिका,	३००
संकेताच्च परिभ्रष्टा	भावप्राकाशिका,	५४
स मन्तव्यो रस: स्थायी	नाट्यशास्त्र, ७.१२०	२८५
सहसैवार्थसंपत्ति:	नाट्यशास्त्र, १९.३१	३०१
सामान्यवनिता वेश्या	शृङ्गारलितक, १.१२०	४३
स्त्रियं कामयते यस्तु	भावप्रकाशिका	१९

✦ ✦ ✦

अमरुशतकम्। 'रसिकसंजीवनी' संस्कृत तथा 'प्रकाश' हिन्दी टीका

शाबरभाष्यम्। श्रीमच्छबरस्वामिप्रणीतं। 'विवेक' हिन्दीव्याख्यासमन्वितम्। व्याख्याकार एवं संपा० म० म० डॉ० गजाननशास्त्री मुसलगांवकर

आर्यासप्तशती। श्रीविश्वेश्वरपण्डितविरचिता। ग्रन्थकर्तृकृत-व्याख्यासंवलिता। सम्पादक-पण्डित विष्णुप्रसाद भण्डारी। सम्पूर्ण

उदारराघवम्। कविमल्ल-मल्लाचार्यप्रणीत 'विषमबोधाख्य' संस्कृत टीका सहित। सम्पादक-डा० सुधाकर मालवीय

ऋतम्भरा। सम्पादक-डा० वीरमणिप्रसाद उपाध्याय

ऋतुसंहारम्। कालिदासकृतम्। 'हरिप्रिया' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। व्याख्याकार-श्रीलक्ष्मीप्रपन्नाचार्य

औचित्यविचारचर्चा। क्षेमेन्द्रविरचिता। सान्वय 'रमा' संस्कृत- हिन्दी व्याख्या, विशेष टिप्पणी (नोट्स) विभूषित। व्याख्याकार-डा० रमाशंकर त्रिपाठी

कादम्बरी। सविमर्श 'भवबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेता। व्याख्याकार- डा० जयशंकरलाल त्रिपाठी। आदितः शुकनासो-पदेशांतो भागः

कादम्बरी-कथामुखम्। 'चन्द्रिका' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। व्याख्याकार- पण्डित सरयूप्रसाद पांडेय

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
पोस्ट बॉक्स नं० ११९८
के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : २३३५०२०
e-mail: cssoffice @ satyam.net.in

ISBN: 81-7080-125-7 Rs. 300/-

Cover Designed by Pratyush Chatterjee